सामने आया। मध्य-युग में आसाम के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन में, आसाम-निवासियों की दृष्टि में शंकरदेव का व्यक्तित्व सबसे बड़ी घटना है। शंकरदेव और उनके अनुयायियों के धार्मिक आन्दोलन का लक्ष्य केवल धर्मोपदेश देना और अपनी शिष्य-मंडली बढ़ाना ही नहीं था। उन्होंने असमिया जीवन और साहित्य को, बुद्धि और शिक्षा को, बड़ी प्रेरणा दी। शंकरदेव और उनके अनुयायियों ने असमिया में युग-प्रवर्तक साहित्य निर्मित किया। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शती ईस्वी में संत कवियों ने जो साहित्य निर्मित किया वह कई प्रकार का था: महाभारत, रामायण और भागवत पुराण के अनुवाद, उनके आधार पर आख्यान आदि वैष्णव सिद्धान्तों के भाष्य और टीकाएँ, धार्मिक गीत तथा नाटक; जिन्हें क्रमशः 'बरगीत' और 'अंकिया नाट' कहा जाता था।

असमिया साहित्य ईसा की सत्रहवीं शती में, आहोम राजाओं के आश्रय में विकसित हुआ। इसी काल में उसमें बुरंजियों का सबसे अधिक विकास हुआ है। आहोम राज-दरबारों के मुख्यतः गद्य में लिखे ऐतिहासिक वृत्त या अभिलेखों को 'बुरंजियाँ' नाम से अभिहित किया जाता है। इस काल के इस विलक्षण ऐतिहासिक साहित्य के विषय में सर जी० ए० ग्रियर्सन ने आलोचना करते हुए लिखा है: "असमिया लोग अपने राष्ट्रीय साहित्य के प्रति गर्व अनुभव करते हैं। यह गर्व उचित ही है। ज्ञान की और अध्ययन की एक ऐसी शाखा में वे सर्वाधिक सफल हुए हैं जिसमें भारत सामान्यतः बहुत पिछड़ा हुआ है। बुरंजियों की ऐतिहासिक रचनाएँ अगणित हैं, और बहुत बड़ी-बड़ी हैं। असमिया नागरिक के लिए बुरंजियों का ज्ञान एक आवश्यक और अनिवार्य गुण माना जाता है।"* धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त असमिया के और भी जो बहुत-से गद्य और पद्य के ग्रंथ राज-दरबारों के आश्रय में लिखे गए, वे वैद्यक, ज्योतिष, गणित-शास्त्र, नृत्य और स्थापत्य के विषय में हैं। कई शृंगार-रसपूर्ण घटनाओं पर भी गीत और पद्य रचे गए, और 'गीत-

* 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया'।

गोविन्द' के कई अनुवाद भी हुए।

जब राजाश्रय में ऐतिहासिक और उपयोगी साहित्य का विकास हो रहा था, तब वैष्णव सत्रों और मठों की छाया में एक भिन्न प्रकार का साहित्य जन्म ले रहा था। इनका नाम 'चरितपुथी', (वैष्णव सन्तों की जीवनियाँ) था। यह हमारे साहित्य में एक नया ही प्रकार था। अब तक तो साहित्य देवी-देवताओं के एकछत्र अधिकार में था, परन्तु अब बुरंजियों और चरित-पुथियों, दोनों में पहली बार मानवी चरित्रों को भी उनका विषय बनाया गया।

आधुनिक काल

अट्ठारहवीं शती का अन्तिम भाग और उन्नीसवीं शती का प्रथम भाग आसाम के इतिहास के अन्धेरे काल-खण्ड हैं। खानाजंगी और बलवे के अतिरिक्त मोआमरियों के बीच में धार्मिक संघर्ष भी हुए। मोआ-मरिया वैष्णवों का एक लड़ाकू सम्प्रदाय था। अन्त में बर्मियों के आक्रमण (ईस्वी १८१५–१८१९, १८२४) भी हुए और आसाम को स्वतन्त्रता खोनी पड़ी। अंग्रेजों ने आसाम को १८२७ में हथिया लिया। ब्रिटिश राज्य के प्रारम्भ में (१८३६–१८७२) असमिया भाषा को स्कूलों तथा कचहरियों में कहीं भी स्थान नहीं मिला। अतः असमिया भाषा के विकास और प्रगति का यह युग नहीं था। ईस्वी १८३६ में, जिस वर्ष असमिया की सरकारी स्थिति समाप्त हुई, उसी वर्ष आसाम में अमरीकन बैप्टिस्ट मिशन के कुछ सदस्य आये। अपनी और पोथों के साथ, सब प्रकार के साधनों में से एक छापाखाना भी वहीं ले आये। १८४६ ईस्वी में अमरीकन मिशनरियों ने शिवसागर से असमिया भाषा में 'अरुणोदय' नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। धार्मिक पुस्तिकाओं के साथ-साथ, मिशनरियों ने विविध विषयों पर स्कूल के पाठ्य-ग्रन्थ भी प्रकाशित किये। मिशनरियों के प्रयत्नों से और उस समय के स्थानीय नेताओं के बल से सहायता पाकर, असमिया

को सन् १८८२ में अपनी उचित स्थिति पुनः प्राप्त हुई। इस काल के साहित्यिक कृतित्व के विषय में मिस्टर पी० एच० मूर नामक मिशनरी विद्वान् और भाषाशास्त्रज्ञ ने १९०७ में कहा था :

"असमिया का आधुनिक साहित्य, चाहे वह ईसाई धर्म-विषयक हो या अन्य, उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम आठ वर्षों की ही उपज मानना चाहिए। असमिया ईसाई साहित्य के संस्थापकों में ब्राउन, ब्रान्सन और निधि लेवी यह त्रयी विशेष रूप से प्रख्यात है।"

फिर भी साहित्य संज्ञा को सार्थक करने वाला लेखन बीसवीं शती के प्रारम्भ से शुरू हुआ। उन दिनों कलकत्ता के कालेजों में जिन असमी तरुणों ने शिक्षा प्राप्त की थी उन्हींके प्रयत्न से यह कार्य बढ़ा। कलकत्ता में पढ़ने वाले सर्वश्री चन्द्रकुमार अगरवाल (१८५८–१९३८), लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ (१८६८–१९३८), हेमचन्द्र गोस्वामी (१८७२–१९२८), और पद्मनाथ गोहाँई बरुआ (१८७१ १९४६) ये चारों मित्र थे। इन चारों तरुणों ने १८८९ में 'जोनाकी' (जुगनू) नामक एक मासिक पत्रिका शुरू की। इस पत्रिका में प्रायः उन्हीं स्वरों का आरोह मिलता है, जो कि अंग्रेजी रोमांटिक आन्दोलन में विशिष्टता से पाया जाता है। आधुनिक असमिया साहित्य के पुनर्जागरण की मूल उत्स वह राष्ट्रीय चेतना, इन लेखकों तथा उनकी मित्रमंडली के लेखकों के द्वारा विविध रूपिणी अभिव्यञ्जना पाती रही।

इन लेखकों ने न केवल कोमल गीत, स्फूर्तिदायक देशभक्तिपूर्ण कविताएँ और ओजस्वी वर्णनात्मक कविताएँ, कई विषयों को छूते हुए निबंध, कहानियाँ, नाटक और साहित्यिक, सामाजिक तथा धार्मिक उपन्यास ही लिखे, बल्कि ऐतिहासिक गवेषणा तथा लोक-गीत और लोक-वार्ताओं के संग्रह-जैसे कार्यों में भी बहुत दिलचस्पी ली।

प्रारंभिक रोमांटिक

अंग्रेजी साहित्य से इन कवियों ने अपनी मुख्य स्फूर्ति ग्रहण की।

ये सब प्रेम और सौंदर्य के भावगीतों के लेखक थे । इन कवियों में लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ सबसे अधिक सव्यसाची थे । वे उत्तम कवि तथा महान् निबंधकार होने के साथ-साथ विख्यात पत्रकार भी थे । उनकी कविता ने सब रूढ़ शृंखलाओं को तोड़ दिया । उन्होंने न केवल भाव-जगत् में एक नवीन स्वर दिया था, अपितु वे ताजे साहित्य-रूप और शैलियों को भी शुरू करने वाले थे । प्रेम-गीत, प्रकृति-विषयक कविताएँ, आख्यान-काव्य, तथा वीर-काव्य उनकी विशेष देन हैं । उनके देशभक्तिपूर्ण गीतों और कविताओं में, (उदाहरणार्थ 'अमोर जन्मभूमि', 'मोर देश', 'असम संगीत' और 'बीन बैरागी' में) लक्ष्मीनाथ ने असमिया संस्कृति और इतिहास की महत्ता को बड़ी उमंग और उच्छ्वसित भाषा से वर्णित किया है । बेजबरुआ की राष्ट्रीय भावनाओं को अतीत के रोमांटिक आदर्शीकरण ने उत्प्रेरणा दी ।

देशभक्तिपूर्ण कविता के दूसरे लेखक कमलाकान्त भट्टाचार्य हैं । कमलाकान्त की देश-भक्ति केवल एक विस्मृति और नींद में डूबे हुए देश को अपने अतीत सांस्कृतिक गौरव की दिशा में जगाने के लिए ही नहीं थी, किन्तु उनका उद्देश्य देश में लोकतन्त्रात्मक शासन की आवश्यकता सिद्ध करना भी था । कमलाकान्त के 'चिन्तानल' और 'चिन्ता-तरंग' नामक दो सिद्ध काव्य हैं । स्वतन्त्रता के अभाव और उसके कारण हुई देश की दशा को उन्होंने बहुत गहराई के साथ अनुभव किया है ।

चन्द्रकुमार अगरवाल ने कई सुकोमल पद लिखे, जो अब 'प्रतिमा' और 'बीन बैरागी' नामक काव्य-संग्रहों में संकलित हैं । इन पर फ्रांसीसी दार्शनिक कॉम्ट और और वैष्णवों के मानवता की पूजा के सिद्धांत का प्रभाव है । दुर्गेश्वर शर्मा और नीलमणि फूकन आध्यात्मिक विचारों वाले दो और कवि हैं । दार्शनिक कवि दुर्गेश्वर शर्मा का प्रधान विषय आत्मा और परमात्मा, तथा व्याकुल आत्मा की आत्म-ज्ञान के लिए शाश्वत आकांक्षा है । नीलमणि फूकन की कविताओं में भावों की अपेक्षा विचार अधिक हैं । उनकी 'मानसी' नामक कृति में कवि की

सौंदर्य-पिपासा लक्षित होती है और उनकी 'सन्धानी' में भी इसी प्रकार की सत्य और सौन्दर्य की अमर टोह दिखाई देती है। कुकन १६४२ में अगस्त क्रान्ति में भाग लेने के कारण कारावासी हुए थे। कारागार की अपनी अनुभूतियों को उन्होंने 'जिजिरी' नामक कृति में अभिव्यक्त किया है।

हितेश्वर बड़बरुआ अंग्रेजी साहित्य के गम्भीर अध्येता थे। उनकी रचनाओं में शेक्सपीयर, वर्ड्स्वर्थ और मिल्टन के प्रभाव का प्राचुर्य मिलता है। असमिया भाषा में अतुकांत मुक्तछंद, सानेट और विलापिका आदि उन्हींके द्वारा शुरू हुए। अतुकांत पद्य-रचना के लिए उन्होंने माइकेल मधुसूदन दत्त के उदाहरण से परे जाकर शेक्सपीयर तक के भण्डार को भी टटोला। उनके काव्यों में ऐतिहासिक 'कमतापुर ध्वंस' (१६१२) और 'युद्ध क्षेत्रत आहोम रमणी' विख्यात हैं। दोनों काव्य आहोम-इतिहास में से हैं, और ये ऐतिहासिक भावों से भरे हैं। बड़बरुआ की अपने पितृदेश के प्रेम से परिपूर्ण ये वीर-रसयुक्त पंक्तियाँ असमिया में लोकोक्ति का रूप धारण कर चुकी हैं :

"जो रणांगन में अपना जीवन अर्पित करता है
अपने पितृदेश की मुक्ति के लिए समर-रत,
उसे मृत्यु के बाद आनन्द मिलता है।
उसके लिए मृत्यु शाश्वत विश्राम है।
सुख से भरा, विश्व माता के अंक में,
उसके लिए अग्नि मधुर चाँदनी के समान है,
मिट्टी का बिछावन फूलों की सेज है,
और उसके बदन को छेदने वाले भाले
उस पर फूलों की वर्षा की तरह हैं।"

इसी काल के दूसरे मनोरंजक कवि हैं अंबिकागिरि रायचौधुरी। अंबिकागिरि असम में कवि, गायक, संगीत-रचनाकार, पत्रकार, राजनीतिक क्रांतिकारी और देश-भक्त के नाते विख्यात हैं। अपने युवा-काल

में उन्होंने कोमल प्रेम-गीत लिखे। उनका प्रतीकवादी काव्य 'तुमि' १६१५ में प्रथम प्रकाशित हुआ। छोटी-छोटी दशमात्रिक पंक्तियों में, यह कविता अपनी कोमलता, मधुर लय और मनोहारी संगीत के कारण अद्वितीय बन पड़ी है। 'तुमि' की विषय-वस्तु कवि के सुन्दर और अतीन्द्रिय कल्पना-चित्रों से भरी हुई है। बाद के जीवन में, स्वतन्त्रता के आन्दोलन और उसमें बन्दी-जीवन के अनुभव के कारण जीवन और काव्य के प्रति कवि का दृष्टिकोण बहुत अधिक बदल गया। अब अंबिकागिरि केवल उद्बोधपूर्ण राजनीतिक कविताएँ ही लिखते हैं।

इस काल के सबसे महत्वपूर्ण कवि हैं रघुनाथ चौधुरी, जिन्हें सामान्यतः 'विहगी-कवि' (पक्षियों के कवि) कहा जाता है। उनके प्रथम कविता-संग्रह 'सादरी' (प्रिया) में पक्षियों और फूलों के प्रति कवि की विशेष ममता दिखाई दी थी। उसके बाद उनकी दो और लंबी कविताएँ अलग से प्रकाशित हुईं, जिनके नाम हैं 'केतेकी' (बुलबुल) और 'दहीकटरा' (पक्षी विशेष)। इन दो कविताओं में विहग-विषय ही कवि के मन में अधिक प्रतिष्ठित हुआ। 'केतेकी' की केन्द्रीय कल्पना यह है कि इस पक्षी के आगमन के साथ-साथ सारी पृथ्वी को एक नवजन्म प्राप्त होता है। 'केतेकी' का गीत एक प्रकार का 'तनुरहित आनन्द' और मनुष्य के लिए अज्ञेय पूर्णता का सुखद स्वर-मिलाप है। कवि ने यहाँ इस विषय के द्वारा प्रकृति के उन सौंदर्य-स्थलों का चित्रण किया है जो उन्हें प्रिय हैं। कालिदास की कृतियों ने उन्हें बहुत प्रभावित किया है।

यतीन्द्रनाथ दुआरा* में विनैतिक निराशावाद की रोमांटिक विकृति अपनी पूरी अभिव्यक्ति पाती है। उनकी रचनाएँ उनकी व्यक्तिगत भावनाओं, परस्पर विरोधी मनोदशाओं, लज्जालु प्रेम और भावनात्मक आशाभंग आदि का लेखा हैं। दुआरा ने असमिया कविता को शाब्दिक और छांदिक विविधता की समृद्धि दी, मानो वे ही प्राकृतिक कल्पना-चित्रों को

* आपकी रचना 'बनफूल' को स्वतन्त्रता के बाद प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ असमिया-ग्रन्थ के नाते साहित्य [illegible] गया।

समृद्धि और ताजगी से भरी नई फसल असमिया साहित्य में लाए। उन्होंने अपनी बहुत-सी कल्पना-प्रतिमाएँ नदी, नाव और नाविकों से प्रेरित होकर बनाई हैं। यतीन्द्रनाथ की एक पुरानी कृति 'अमर तीर्थ' (१९२६) थी, जो कि खय्याम की रुबाइयों का एक भाव-कोमल और उत्तम अनुवाद है। वे अपने गद्यकाव्यों (कथा-कविता) के लिए विख्यात ही नहीं, बल्कि इस धारा में वे एक-मात्र सफल असमिया लेखक हैं।

रत्नकांत बरकाकती की कविताओं में भौतिक प्रेम के कोमल भाव बड़े ही आकर्षक और सुन्दर ढंग से व्यंजित हुए हैं। रत्नकांत को रवींद्रनाथ ठाकुर के अध्ययन से, विशेषतः छन्दों के मामले में, बहुत लाभ हुआ है। छंद के क्षेत्र में देवकांत बरुआ ने असमिया कविता में एक नया चमत्कार उत्पन्न किया। देवकांत ने अपनी प्रेम-कविताओं को उस नाट्यात्मक स्व-संवाद (मोनोलॉग) के रूप में ढाला, जैसा कि राबर्ट ब्राउनिंग में पाया जाता है।

डिम्बेश्वर निओग और विनन्दचन्द्र बरुआ ने कई सशक्त भक्तिपूर्ण छन्दबद्ध कविताओं की रचना की। उन्होंने मुख्यतः आसाम के गौरवमय अतीत को उसके दुखद वर्तमान के विरोध में अंकित किया। जहाँ-जहाँ उन्होंने प्राचीन को फिर से उठाया है, वह धैर्य, स्फूर्ति और वर्तमान और भविष्यत् के लिए प्रकाश पाने के लिए ही उठाया है। वे अपने पुरातन काल के श्रेष्ठ पुत्रों और पुत्रियों का स्मरण करके उनकी हुई पीढ़ी को उनके आदर्शों पर चलने का आदेश देते हैं। विदेशी सत्ता और शोषण की शृंखलाओं को तोड़कर पुनः एक समृद्ध, और जीवन की सब दिशाओं में प्रगतिशील आसाम के निर्माण का सन्देश देते हैं। साहित्य, भाषा, संस्कृति, सब-कुछ पुनः संजीवित करना होगा। अधिक ज्वलन्त देश-भक्तिपूर्ण कविता अम्बिकागिरि चौधुरी के पद्यों में पाई जाती है।

इस अर्द्धशताब्दी में जिन अनेक महिलाओं ने साहित्य को योगदान दिया, उनमें नलिनीबाला देवी सबसे अधिक प्रतिभाशालिनी हैं। रहस्यवादी कवयित्री के नाते नलिनीबाला देवी में पारिमार्जित व्याकुलता

है, एक ऐसी चीज के लिए प्यास है, जो किसी व्याख्या में नहीं बँधती। यही केन्द्रीय विषय उनके 'संधियार सुर', 'सपोनर सुर' तथा 'परशमणि' नामक तीनों काव्य-संग्रहों में मिलता है। उनकी सभी कविताओं में एक ऐसे हृदय के दर्शन होते हैं जो कि जीवन के व्यापक दुःख और दर्द से घायल है। धर्मेश्वरी देवी बरुम्रानी दूसरी प्रसिद्ध भक्ति-प्रधान कवयित्री हैं। धर्मेश्वरी देवी के 'फुलर शराई' (फूलों का टोकना) और 'प्राणर परश' (प्राण-स्पर्श) नामक दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। दोनों ही में प्रकृति में परमात्मा के दर्शन और व्यक्तिगत आत्मा के विश्वात्मा में मिलन की इच्छा में गहरी आस्था व्यक्त हुई है। गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में आज की अनेक उदीयमान लेखिकाओं में सुप्रभा गोस्वामी, प्रीति बरुआ, निर्मल वरदलै, उदयहिरा दास, सुचित्रता रायचौधुरी आदि उल्लेखनीय हैं।

युद्धोत्तर कविता

गत महायुद्ध तक असमिया कविता के प्रधान विषय दैवी तथा मानवी दोनों प्रकार के प्रेम के अतिरिक्त प्रकृति और देश-भक्ति थे। तब से हमारे कवि, विशेषतः नये कवि, समाजवादी और मार्क्सवादी सिद्धान्तों से अधिकाधिक परिचित होने लगे हैं। ये तरुण बुद्धिवादी यूरोपीय प्रतीकवादियों के सिद्धान्तों और टेकनीक से भी अधिक प्रभावित होने लगे हैं। इन तरुण लेखकों में कुछ टी० एस० इलियट तथा बुद्धदेव वसु, जीवनानन्द दास, अमिय चक्रवर्ती आदि आधुनिक बंगाली कवियों से बहुत प्रभावित हैं, क्योंकि इनमें से बहुत-से असमिया लेखकों की कालेज की शिक्षा कलकत्ता में हुई या उन्होंने बंगला-कविता गहरी सहानुभूति के साथ पढ़ी। ये कवि अपनी रचनाओं में पूँजीवादी शोषण का उल्लेख करके, वर्ग-संघर्ष और समाज-व्यवस्था में शीघ्र ही आमूल चूल परिवर्तन करने की ओर संकेत करते हैं। नई समाज-व्यवस्था के कारण उत्पन्न सेक्स के उलझे हुए प्रश्न, और अवचेतन मन की

बारीकियाँ भी इस नई कविता में विचित्र शैली और अपरिचित भाषा में व्यक्त होती हैं। अतः न केवल विषय-वस्तु परन्तु इस नई कविता का बाह्य रूप भी एकदम नया है। ये कवि ऐसे हैं कि जिन्होंने पुराने काव्य-रूप और टेकनीक छोड़ दिये हैं और उन्होंने मुक्त-छंद को अपनाया है। उनके कल्पना-चित्र नये हैं, और जहाँ पुराने प्रतिमानों का प्रयोग भी उन्होंने किया है वहाँ एक विलक्षण ढंग में नया अर्थ ही उनकी रचनाओं में परिलक्षित होता है।

इन प्रगतिशील लेखकों में इस प्रकार की प्रतीकवादी कविता के सबसे प्रथम प्रयोग करने का श्रेय हेम बरुआ को है। बरुआ की कल्पना-चित्रावली नवीन और मौलिक तथा टेकनीक क्षिप्त और असाधारण है। नवकांत बरुआ ने भी इसी शैली में प्रयोग किये हैं। उनका 'हे अरण्य, हे महानगर' एक ऐसी भाषा में लिखा गया है जिसमें बोल-चाल की साधारण भाषा और कठिन संस्कृत शब्दों का विचित्र मिश्रण है। उनकी नई काव्य-शैली कई प्रकार की उलझी हुई भाव-प्रतिमाओं से बोझिल है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पत्रकारिता ने इस नई कविता के विकास में सहायता दी। विशेषतः 'रामधेनु' (इंद्र-धनुष) नामक मासिक पत्रिका के आस-पास सब नये अच्छे लेखक जमा हो गए हैं, जैसे वे एक परिवार के सदस्य हों। क्योंकि इन तरुण कवियों में कई लोग साहित्य को राजनीतिक और सामाजिक वाद-विवाद तथा अराजकतापूर्ण और अव्यवस्थित रूप में प्रचार का माध्यम मानते हैं, अतः उनके पद्य पत्रकारिता के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाए। आधुनिक असमिया कविता में सबसे खेदजनक स्थिति यह है कि पुराने कवियों ने प्रायः लिखना बन्द कर दिया है, और तरुण कवि अभी प्रयोगावस्था में ही हैं। अभी असमिया में सच्चे अर्थों में, नई कविता का जन्म होना बाकी है।

नाटक

नाटक और रंगमंच दोनों क्षेत्रों में असमिया की परम्परा बड़ी

ही समृद्ध रही है। अंकिया नाट, (जो कि मध्ययुगीन नाटय-रचना थी) अभी भी गाँवों में लोकप्रिय मनोरंजन के नाते अपना प्रभाव कायम रखे हुए हैं। परन्तु आधुनिक अर्थों में नाटक पश्चिम से ही आया है। असमिया में पश्चिमी ढंग के सबसे पुराने नाटककार गुणाभिराम बरुआ, हेमचन्द्र बरुआ और रुद्रराम बरदलै हैं। इस कला-रूप का पहला सुविकसित उदाहरण हमें लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ और पद्मनाथ गोहाँई बरुआ में मिलता है। बेजबरुआ के नाटकों में देश-भक्ति की भावना सबसे प्रधान थी। 'चक्रध्वज सिंह' में उन्होंने असम के इतिहास के एक गौरवपूर्ण अध्याय का चित्रण किया है। यह नाटक आहोम राजा चक्रध्वज सिंह (१६६३-१६६९) के राज्य पर आधारित है। उनके राज्य-काल में आसाम पर बार-बार मुस्लिम आक्रमण हुए और लचित बरफूकन के सुयोग्य नेतृत्व में आक्रामकों को मार भगाया और पूरी तरह हराया। 'बेलि-मार' (सूर्यास्त), जिसमें कि आसाम पर बर्मा के आक्रमण (१८१६) की कहानी है,न केवल तत्कालीन घटनाओं को चित्रित करता है, परन्तु उसमें उस समय के आहोम-राज-दरबारों की उस विलास-जर्जर ह्रासोन्मुखता की भी गंध है,जिसके कारण आसाम को अपनी स्वतन्त्रता खोनी पड़ी। एक दूसरे ऐतिहासिक नाटक 'जयमती' में इतिहास का चित्रण होने के साथ-साथ एक भोली-भाली नागा लड़की डालिमी के चरित्र के आस-पास रोमांटिक विस्मय का भाव-वलय बुना गया है। लक्ष्मीनाथ के प्रहसन खूब व्यंग और हास्य से भरपूर हैं :

पद्मनाथ गोहाँई बरुआ हमारे गद्य और पद्य के महान् लेखकों में से एक हैं। उन्होंने ऐतिहासिक और पौराणिक दोनों प्रकार के विषयों पर नाटक लिखे और तीन प्रहसनों की रचना की। उनके चार नाटक 'जयमती' (१९००), 'गदाधर' (१९०७), 'साधनी' (१९११) और 'लचित फूकन' (१९१५), आहोम-इतिहास पर आधारित हैं। कथानक के विकास की दृष्टि से उनके नाटकों में संयम का सर्वथा अभाव तो दृष्टिगत होता ही है, साथ ही उसने इनसे कोई नई दिशा या प्रकाश

भी नहीं दिखाया। अति भावुकतापूर्णता, भूत-प्रेत, परलोक-विषयक वस्तुओं के अनावश्यक वर्णन, प्रकृति-प्रेम, प्रयोजनहीन संवाद और हास्यमय अनुचित दृश्यों के कारण इन ऐतिहासिक नाटकों में कथानक के सहज संगठित विकास में बाधा पड़ी है। गोहाँई बरुआ ने सामान्य जनता और ग्रामीण दृश्यों के चित्रण में बहुत कुशलता दिखाई है। अपनी 'गाँवबूढ़ा' नामक कृति में तो वे बहुत ही सफल हुए हैं। इस प्रहसन में उन्नीसवीं शती की अंतिम दशाब्दी के ब्रिटिश शासन का बहुत यथार्थवादी चित्र दिया गया है। दीनबंधु मित्र के बंगाली नाटक 'नीलदर्पण' की भाँति 'गाँवबूढ़ा' एक प्रयोजन-प्रधान नाटक होने के साथ-साथ इस शताब्दी के प्रारम्भिक काल के नाट्य-साहित्य को एक सार्थक देन है। इस नाटक में गाँव की सरपंची का निःशुल्क रूप से काम करने वाले एक बूढ़े की जिम्मेदारियों और कष्टों से भरी जिन्दगी का चित्र है। बेचारे का घर-बार और व्यक्तिगत जीवन, अत्यधिक कार्यव्यस्तता के कारण, प्रायः शून्य हो गया। इस कार्य के लिए उसे कोई पुरस्कार आदि दिये जाने के स्थान में छोटे-बड़े सभी सरकारी इन्सपेक्टरों के हाथों झिड़कियाँ और अपमान तक सहना पड़ा।

चन्द्रधर बरुआ दूसरे प्रसिद्ध नाटककार हैं। उनके 'मेघनाद वध' (१६०४) और 'तिलोत्तमा संभव' नामक दो पौराणिक नाटक मुक्त-छंद में हैं और दोनों में इन्द्रजीत के वध और तिलोत्तमा के लिए सुंदोपसुंद के परस्पर विनाश की कथा है। कथानक के विकास और चरित्र-चित्रण दोनों में माइकेल मधुसूदन दत्त का प्रभाव स्पष्ट है। 'भाग्य परीक्षा' नामक प्रहसन में भाग्य और लक्ष्मी के बीच में परिहासपूर्ण निर्णय दिया गया है। इस प्रहसन में, लेखक ने ग्राम-जीवन के बहुत-से चित्र समुचित [illegible] और जनसाधारण की भाषा में उपस्थित किये हैं। यहाँ यह भी [illegible] है कि इस काल के बहुत-से नाटककारों को गम्भीर नाटकों [illegible] प्रहसन-लेखन में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। इन प्रहसनों [illegible] महन्त के 'बिया विपर्यय', 'कुकुरीकनार' तथा 'भठमंगला'

आदि बहुत लोकप्रिय हुए। उनकी विषय-वस्तु, संवाद और दृश्य हास-परिहास से युक्त और मनोरंजक हैं।

भारत-भर में स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन चल रहा था। ऐसे समय में ऐतिहासिक नाटक बड़ी संख्या में लिखे गए। आसाम के प्राचीन इतिहास से उन्हें कथानक के रूप में बहुत-सी तैयार सामग्री प्राप्त हुई। नकुलचन्द्र भुइयाँ का 'बदन बरफुकन', प्रसन्नलाल चौधरी का 'नीलाम्बर', दंलधर राजखोवा का 'स्वर्ग देव प्रताप सिंह' और देवचंद्र तालुकदार का 'भास्कर वर्मन' आदि कुछ ऐसे ऐतिहासिक नाटक हैं जो कि इस शताब्दी के आरम्भिक काल में लिखे गए थे। 'भास्कर वर्मन' में तालुकदार ने सचमुच ही एक धीरोदात्त वीर और विद्वान् चरित्र निर्मित करने के साथ-साथ ऐतिहासिक पार्श्वभूमि को अत्यन्त स्पष्ट और सप्राण रूप से व्यक्त किया है। अतुलचंद्र हजरिका ने लगभग एक दर्जन पौराणिक नाटक लिखे हैं। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक विषयों पर भी उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है, जैसे 'कन्नौज कुँवरी' और 'छत्रपति शिवाजी' में। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अतुलचंद्र हजरिका ने असमिया-रंगमंच की माँग पर अनेक नाटक लिखे, चूंकि उनके नाटकों से पहले बंगाली लेखकों की रचनाएँ ही असमिया-रंगमंच पर खेली जाती थीं। असमिया साहित्य से परमुखापेक्षिता की इस प्रवृत्ति का परिमार्जन भी हजरिका ने किया।

स्वतन्त्रता के बाद, देश-भक्ति की विशेष भावना से परिपूर्ण क्रान्तिकारी ढंग के ऐतिहासिक नाटक और भी लिखे गये। चन्द्रकांत फूकन के 'पियली फूकन' और प्रवीन फूकन के 'मणिराम दीवान' में उन्नीसवीं शताब्दी के उन दो देशभक्तों का जीवन व्यक्त है, जिन्होंने अंग्रेजों को भगाकर देश को मुक्त करने के गुप्त षड्यंत्र किये थे। दुर्भाग्य से दोनों की मंत्रणाओं का पहले ही पता चल गया और बिना मुकद्दमा चलाए ही उनको फाँसी पर चढ़ा दिया गया। १९४२ के सशस्त्र-आंदोलन के शहीद 'कुशल कोंवर' पर लिखा गया सुरेन्द्रनाथ सैकिया का नाटक

अद्भुत सफलता प्राप्त कर चुका है।

कमलानन्द भट्टाचार्य 'नाग कोंवर' और ज्योतिप्रसाद अगरवाल के 'शोणित कुँवरी' और 'कारेंगर लिगिरी' रोमांटिक ढंग के नाटक हैं। ज्योतिप्रसाद अगरवाला आधुनिक असमिया नाटक और रंगमंच के इतिहास के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं। वे उत्कृष्ट देश-भक्त, प्रथम श्रेणी के कवि और गीतात्मक नाटकों के प्रणेता हैं। यूरोप में शिक्षा ग्रहण करने के कारण ही ज्योतिप्रसाद के गीतों, धुनों और नाटकीय रचना-कौशल (टेकनीक) पर बहुत-सा प्रभाव विदेशी है।

उपन्यास

बीसवीं शती से पहले असमिया साहित्य में उल्लेखनीय उपन्यास बहुत ही कम थे। रजनीकांत बरदलै ने उपन्यास को सृजनशील कल्पना-युक्त गद्य-रचना का सही रूप दिया। रजनीकांत ने अपने कथानक मुख्यतः बुरंजियों में से लिये। परन्तु उनका पहला उपन्यास 'मिरी जीयरी' (मिरी बिटिया)* जो १८९५ में लिखा गया था, ऐतिहासिक उपन्यास नहीं था। इस उपन्यास में एक मिरी युवक और युवती की प्रेम-कहानी दुहराई गई है। उपन्यास की घटनाएँ सुवनसिरी नदी के किनारे पर घटित होती हैं, जो कि उस करुणापूर्ण मानव-कथा की केवल तटस्थ पार्श्वभूमि ही नहीं, अपितु उसमें सक्रिय भाग लेने वाला भी है। प्रारंभिक असमिया साहित्य में आदिवासियों के प्रति ऐसा प्रेम और आंचलिक प्रकृति का ऐसा सजीव अध्ययन वास्तव में अद्भुत ही है। बरदलै के दो और उपन्यास 'मनोमती'† (१९००) और 'रहदई लिगिरी' (१९३०), भी प्रेम विषय को लेकर ही हैं। दोनों का निर्माण आसाम पर बर्मा के आक्रमण की पार्श्वभूमि पर हुआ है। तीसरी रचना 'दंदुवा-

* इस उपन्यास का हिन्दी अनुवाद साहित्य अकादेमी की ओर से प्रकाशित हो रहा है।

† इस उपन्यास का अनुवाद भी अकादेमी प्रकाशित कर रही है।

द्रोह' अट्ठारहवीं शती के एक राजनीतिक आन्दोलन पर आधारित है। बरदलै अपने इस उपन्यास की भूमिका में (१६०६) यह स्वीकार करते हैं कि सर वाल्टर स्काट और बंकिमचंद्र चटर्जी की रचनाओं के प्रभाव ने उन्हें अपने देश के पर्वत और घाटियों के सौंदर्य की ओर आकृष्ट किया। फलतः उन्होंने अपने उपन्यासों के कथानक आसाम के इतिहास में से ही चुने। भूत काल के नायकों के शौर्य और देश में प्रचलित वैष्णव धर्म के गुणों के लिए उनके मन में जो विशेष प्रेम था, उसके कारण बरदलै की रचनाएँ कहीं-कहीं प्रचारात्मक भी हो गई हैं। परन्तु कहानी कहना ही प्रधान उद्देश्य रहने के कारण उनके उपन्यास जनता पर अपना प्रभाव कायम रख सके हैं। पद्मनाथ गोहाईं बरुआ के 'लाहरी' और 'भानुमती' नामक दोनों ही उपन्यास प्रेम-विषय के आस-पास केंद्रित हैं। उनमें आहोम-काल की पार्श्वभूमि है। ऐतिहासिक पार्श्वभूमि होने पर भी दोनों ही उपन्यासों में कोई ऐतिहासिक घटनाएँ या पात्र नहीं हैं। देवचंद्र तालुकदार और दण्डिनाथ कलिता ने अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरुष-संबंधों की खोज करने का प्रयत्न किया है। फलतः इस दिशा में वे असमिया उपन्यास को रजनीकांत बरदलै से आगे बढ़ा ले गए। तालुकदार ने 'आदर्शपीठ' में गांधीवादी विचारों का प्रतिपादन किया है; और कलिता के 'साधना' में भी उसी आदर्श स्वर की प्रधानता है।

असमिया साहित्य में उपन्यास बहुत थोड़े हैं। इस दशाब्दी तक वे अपनी परिपक्व अवस्था तक नहीं पहुँच सके। इधर कुछ वर्षों से, उनका स्तर काफी ऊँचा उठा और हमारे उपन्यासों में कई नई प्रवृत्तियाँ आ गई। हमारे उपन्यासकार पुरानी रोमांटिक शैली से हटकर अब यथार्थवादी और मनोविश्लेषणात्मक शैली पर आ गए हैं। आज के उपन्यास लेखकों ने उस ओर दृष्टि डाली है जहाँ समाज का उपेक्षित वर्ग बसता है; और वे उनका सामाजिक मूल्य भलीभाँति आँक रहे हैं। ऐसे उपन्यासों में से एक आसाम के देहाती जीवन के विषय में है,

बेजबरुग्रा कहानी को एक ऊँचे कलात्मक लोक में उठा ले गए। वह अपने जीवन-भर सपादक थे और सम्पादक के दृष्टिकोण से कहानी को जाँच सकते थे। जिसके पास बहुत थोड़ा स्थान हो, उसे कहानी के आकार और भाषा को संक्षिप्त करना ही पड़ता है। बेजबरुआ की सब कहानियाँ (जो कि अब 'साधुकथार कुकी', 'जोनबिरी' तथा 'सुरभि' नामक तीन संग्रहों में मिलती हैं) जीवन के अर्थों को चित्रित करके उसके अनुभव और क्षणिक बिंबो के टुकड़े व्यक्त करती हैं। शरच्चंद्र गोस्वामी और उन्होंने मिलकर अपनी कहानियों में स्थानीय रंग को प्रमुखता प्रदान की। यथार्थवाद उनकी कहानियो का विशेष गुण है। यद्यपि गहरी मानवीय सहानुभूति, करुणा और परिहास उनके क्षेत्र से परे नहीं है, फिर भी अपनी मध्यवर्गीय ग्रंथियो के कारण उनकी अभिव्यंजना कुंठित है। नगेन्द्रनारायण चौधुरी और त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी की कृतियों में गहरी सामाजिक चेतना देखने को मिलती है। गोस्वामी के 'ग्ररुणा' और 'मरीचिका' नामक संग्रहो में ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें हमारे आस-पास की जिंदगी के यथार्थ चित्र अकित किये गए हैं। 'अरुणा' संग्रह की 'जारज' शीर्षक कहानी बहुत ही सबल है। उसमें यह दिखाया गया है कि उसके रतन नामक एक पात्र को विवाह के कारण कितने दु.ख और सामाजिक अन्याय सहने पड़े हैं। अपनी दूसरी कहानी 'विधवा' में लेखक ने यह दरसाया है कि एक माँ और लड़की (जो दुर्भाग्यवश दोनों विधवाएँ हैं) सामाजिक उत्पीड़न की शिकार कैसे बनती हैं, और दोनों को क्या-क्या सहना पड़ता है। दूसरे महायुद्ध के साथ-साथ जो बुराइयाँ हमारे समाज में आईं 'मरीचिका' की कहानियाँ अधिकतर उन्हीके विषय में हैं। गोस्वामी का 'जिया मानुह' (जीवित मनुष्य) इसी विषय पर लिखा गया एक छोटा उपन्यास है। युद्ध के कारण सामाजिक नैतिकता कैसे लड़खड़ा रही है, और उसमें कौन-से सुधार जरूरी हैं, इसका सही समाधान प्रस्तुत करना ही इस पुस्तक का मुख्य विषय है। महीचंद्र वरा और लक्ष्मीनाथ फुकन की कहानियों में असमिया-परिहास उत्कृष्ट रूप में अभि-

ओयर सस्त' (१९५२) और 'कल्पना पर वास्तव' नामक संग्रहों में प्रकाशित हुई है। शर्मा की अधिकतर कहानियाँ प्रेम-विषयक हैं और उनमें विशेषतः नारी जीवन के कुत्सित और अविश्वसनीय जीवन का चित्रण पाया जाता है। उनकी 'सौंदरन' शीर्षक कहानी में एक नव विवाहिता पत्नी के असन्तुष्ट प्रेम का बड़ा ही वास्तविक चित्रण हुआ है और उन्होंने नारी-मन की जटिलताओं में बड़ी कुशलता से प्रवेश किया है। उनके विषय सीमित, पुनरावृत्तिपूर्ण और अपेक्षया अधिक संकीर्ण हैं।

लक्ष्मीधर शर्मा के बाद विगत दूसरे महायुद्ध तक लिखने वाले अन्य कहानी-लेखक फ्रायड से बहुत प्रभावित हुए। फलतः वे अपनी रचनाओं में मैथुन की भावना भरते रहे। कदाचित् इसका कारण यूरोपीय लेखकों का अध्ययन भी रहा हो। इनमें से बहुत-से लेखकों ने अनैतिक प्रेम-रोमान्स और अनियन्त्रित सेक्स-आकर्षण को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार कर लिया, मानो जीवन की अन्य बातों के समान यह भी एक सामाजिक मान्यता हो। परिणामस्वरूप नग्न प्रेम के चित्रण में उन्हें कोई पर्दापोश, लज्जा या संकोच नहीं जान पड़ा। ऐसा प्रतीत होता है मानो वे स्त्री-पुरुष के मौलिक सम्बन्धों का चित्रण करने में नये सामाजिक और वैयक्तिक वातावरण में पनपे विचारों का सर्वथा नये ढंग से मूल्यांकन करना चाहते हैं।

दूसरे महायुद्ध के बाद कहानी, कविता, नाटक तथा उपन्यास आदि साहित्य के सब अंगों में आमूल चूल परिवर्तन हो गया। आज की कहानी विशेषतः मध्यवर्ग, किसान और मजदूरों की समस्या से अधिक सन्निविष्ट है। नये सामाजिक और आर्थिक परिवेश, उसकी असंगतियाँ, संधि तथा अवसर की विषमता आज की कहानी के विषय हो गए हैं। दूसरे महायुद्ध के कारण जो सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक उथल-पुथल हुई है, नई कहानी नये सामाजिक मूल्यों को उससे नापना चाहती है। यह पुरानी समाज-व्यवस्था में रहते आए किसानों के जीवन के सुख और सन्तोष की तुलना नई समाज-व्यवस्था में मजदूरों की

पर गम्भीर विचार किया गया है, क्योंकि प्रायः सभी निबन्ध व्यंग-विनोद-मयी शैली में लिखे गए हैं, इसलिए वे मनोरंजक और आकर्षक हैं। बाद में हलीराम डेका और हेमचन्द्र बरुआ ने आत्म-निबन्धों की यह शैली सफलता पूर्वक अपनाई।

यद्यपि सत्यनाथ बरा ने अपने समकालीन सामाजिक रेखाचित्रों के 'केन्द्र सभा' नामक संग्रह में बेजबरुवा का ही अनुकरण किया है, फिर भी वे एक गंभीर महत्त्वपूर्ण गद्य-लेखक के नाते ही अधिक सफल हुए। उनके विचारपूर्ण तथा सुनिबद्ध निबन्ध 'सारथी' और 'चिंता-कली' नाम से प्रकाशित हुए हैं। अपने इन निबन्धों के द्वारा सत्यनाथ ने जहाँ असमिया भाषा का एक स्तर निर्मित किया वहाँ व्याकरण तथा मुहावरों को फिर से नया रूप देकर उसकी गद्य-शैली को भी निखारा। दूसरे प्रसिद्ध गद्य-शैलीकार हैं वाणीकांत काकती। अपने विशाल अध्ययन, विषयों के व्यापक ज्ञान और विद्वत्ता के कारण वाणी-कांत इस प्रदेश के एक अत्यन्त मेधावी पुरुष बने। उनकी बुद्धि की भाँति ही उनकी लेखनी भी तीखी और प्रखर थी। काकती ने बड़ी ही स्पष्ट और सुलझी हुई शैली में असमिया भाषा और साहित्य के विषय में जो विद्वत्तापूर्ण और उत्कृष्ट निबन्ध प्रस्तुत किये, वे असमिया साहित्य की अमर निधि हैं।

इस बात में कोई सन्देह नहीं कि अंग्रेजी शिक्षा ने राष्ट्रीयता के विकास में अपूर्व सहायता ही नहीं दी, बल्कि उसने भाषा, संस्कृति तथा इतिहास में हमारी रुचि भी जाग्रत की। फलतः कई विद्वान् आसाम के प्राचीन साहित्य के अध्ययन में जुट गए और ऐतिहासिक निबन्धों के लेखन की दिशा में बड़ा कार्य हुआ। हेमचंद्रगोस्वामी के प्राच्यविद्याविषयक शोध-निबन्ध सुन्दर गद्य में गुम्फित हैं। सूर्यकुमार भुइयाँ के ऐतिहासिक ग्रन्थों में आहोम इतिहास की झलक स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। भुइयाँ हमारे साहित्य के विख्यात शिल्पी हैं और उनके ऐतिहासिक प्रबन्धों में पुरानी असमिया बुरंजियों में मिलने वाले अनेक पुराने और अब लुप्तप्रायः

श्री जुबिली नागरी भंडार पुस्तकालय
बीकानेर

उड़िया

मायाधर मानसिंह

भाषा और लोग

भारतीय गणराज्य के दक्षिण पूर्वी अंचल में उड़ीसा राज्य की भाषा उड़िया है। उड़िया बोलने वाले एक करोड़ पचास लाख लोग हैं। उड़ीसा राज्य की राजनीतिक सीमाओं के बाहर कई लाख उड़िया-भाषी लोग बसते हैं। प्राचीन भारत में जिन्होंने कलिंग, उत्कल तथा ओड्र नाम से सैनिक और औपनिवेशिक गौरव प्राप्त किया उन लोगों की भाषा उड़िया है। प्राचीन उत्कलों का साम्राज्य कई शताब्दियों तक गंगा के किनारे से गोदावरी के तट तक फैला हुआ था। उनके साम्राज्य समुद्र-पार कई उपनिवेशों के रूप में भी विख्यात हुए हैं। वस्तुतः प्रसिद्ध शैलोद्भवों [redacted] राज्य दक्षिण-पूर्वी एशिया के कई देशों में फैला हुआ था। परन्तु जैसा कि साधारणतया होता है, उपनिवेश और साम्राज्य तो अब मिट गए हैं, और प्राचीन कलिंग अब एक छोटे-से उड़ीसा राज्य के रूप में सिमट आया है। अब यह भारतीय गणतन्त्र का एक भाग है और उड़िया जनता के पास फिर भी श्रेष्ठ कला और स्थापत्य की सम्पदा के रूप में एक महान् साम्राज्य विद्यमान है। उन प्राचीन, गौरवमय साम्राज्य और वास्तु के निर्माताओं ने अपनी रहस्यात्मक तथा भव्य भावी पीढ़ियों के लिए एक अमूल्य धरोहर के रूप में [redacted] बना-

४५३०

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

भाषी नहीं है परन्तु उड़ीसा में रहने के कारण जिन्हें अध्ययन के लिए फकीर मोहन के एक-दो उपन्यास पढ़ने 'आवश्यक' होते हैं, सुना है कि उपन्यासकार के नाते 'सेनापति' आधुनिक भारतीय साहित्य में सचमुच अद्वितीय हैं। जनता के लेखक होने के नाते वे इसी क्षेत्र के अन्य कई लेखकों के स्फूर्तिदाता और अग्रदूत थे। जब कि बंगाल के प्रसिद्ध बंकिमचन्द्र अत्यधिक संस्कृतमयी शैली में नवाबों, बेगमों, राजाओं, राजकुमारियों, उच्च-मध्य-वर्गीय और भद्रवर्गीय बंगालियों के बारे में लिख रहे थे, तब यह उड़ीसा का अज्ञात उपन्यासकार, सीधे-सादे अशिक्षित जुलाहों, नाइयों और किसानों के बारे में, उन गाँवों के चौकीदारों के बारे में जो कि खुद डाकुओं से मिलकर बदमाशी कराते हैं, शहरों और गाँवों में पाई जानेवाली निर्लज्ज और दुष्ट नौकरानियों के बारे में अंग्रेज मजिस्ट्रेटों के यहाँ काम करने वाले लोभी क्लर्कों, घमण्डी वकीलों, पुराने ज़मींदारों के उन युवक बेटों के बारे में जो कि अंग्रेजी शिक्षा के पहले घूँट से ही मदमस्त हो गए थे और अपने-आपको तथा अपने माँ-बापों को बड़ी कठिनाइयों में डाल रहे थे, उन सबके बारे में फकीर मोहन ने लिखा है। फकीर मोहन को अंग्रेजी में कोई विधिवत् शिक्षा नहीं मिली थी। यह एक तरह से बड़ा लाभ ही हुआ। वह मुख्यतः जनता के आदमी थे। जन साधारण की घरेलू सशक्त भाषा, जिसमें कि गाँवों की गलियों की सही गन्ध आती हो; धान के खेत और तालाब जहाँ कि गाँव की स्त्रियाँ अपने कपड़े लेकर धोने के लिए और दैनिक गप-शप के लिए आन जुटती हों, यह सब फकीरमोहन के स्वाभाविक विषय थे। इन सबका उपयोग उन्होंने अपनी कहानियों तथा उपन्यासों बहुत ही आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से किया है। इन सारी चीजों को उन्होंने ऐसे असाधारण साहित्यिक महत्व और सहृदयता के साथ चित्रित किया है कि यदि वे ऐसा न करते, तो आज वे सब असम्भव जान पड़ती।

फकीर मोहन के उपन्यासों और कहानियों में हमें स्त्री और पुरुषों की ऐसी सजीव चरित्र-मालिका मिलती है कि उनकी यथार्थवादिता और

सप्राणता के साथ-साथ उनमें एक ऐसा दिव्य स्फुलिंग है जो कि महान् साहित्यकार ही अपनी रचनाओं में निविष्ट कर सकते हैं और जिनके कारण वे पात्र अमर हो जाते हैं ; और सारे जीवित स्त्री-पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्राणवान जान पड़ते हैं। उड़ीसा के समाज के सभी स्तरों की एक राष्ट्रीय चित्रशाला का जैसा निर्माण फकीर मोहन ने किया है, उससे मुझे बार-बार महान् सर्वान्तीस के 'दॉन क्विक्सोते' नामक इस्पहानी क्लासिक ग्रन्थ की याद हो आती है, जिसमें कि स्पेन की आत्मा का स्पष्ट और कलात्मक प्रतिबिम्ब है, ऐसा कहा जाता है।

उनका उपन्यास 'छमाण आठगुण्ठ' * (छः एकड़ और आठ गुण्ठा) एक ऐसे सरल, शिशु-विहीन जुलाहे-दम्पति की कथा है, जिसे कि एक गाँव के साहूकार ने अपनी क्रूरता से बहुत अधिक शोषित किया था। इस पुस्तक में सेनापति का ग्रामीण यथार्थवाद अपनी अन्तिम सीमा पर है। यह उपन्यास सबसे पहले 'उत्कल साहित्य' नामक पत्र में क्रमशः प्रकाशित हुआ। ऐसा कहते हैं कि उस उपन्यास में हत्या का जो मुकद्दमा आता है उसकी खोज-बीन और पूर्व के वर्णन इतने सजीव थे कि दूर-दूर से गाँव के लोग यह देखने के लिए कटक में आते थे कि यह मुकदमा सचमुच कैसे हो रहा है, और वे इस उपन्यास के पात्रों को सजीव मान-कर चलते थे।

इस उपन्यासकार ने कई मौलिक बातों में प्रेमचन्द के 'गोदान' को ५० वर्ष पहले ही जैसे पूर्व-कल्पित कर लिया था, यद्यपि दोनों उपन्यासों की घटनाओं में कोई समानता नहीं है। सेनापति का 'लछमा' एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें कि बंगाल में और उड़ीसा में 'बर्गी' या मराठ आक्रमणकारियों के अत्याचारों का वर्णन है। उनके 'मामू' और 'प्रायश्चित्त' नामक उपन्यासों में यूरोपीय संस्कृति के प्रभाव से पुरानी समाज

* इस उपन्यास को साहित्य अकादेमी ने अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद लिए चुना है। हिन्दी अनुवाद हो चुका है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है विदेशी भाषाओं में भी इस उपन्यास के अनुवाद की सिफारिश की गई है।

[illegible] [redacted] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

दिया कि वह किसी भी प्राचीन कवि की रचना के समकक्ष जान पड़ती है। शब्द और अर्थ के बीच में जो घनिष्ठ सम्बन्ध है उसके प्रति एक गहरा सम्मान उन्होंने सबसे पहले अपने पद्य में आरम्भ किया। इस विषय में यानी वागर्थ के संश्लेषण अर्थात् सही शब्दों और सही विशेषणों को चुनने में वे अपने गुरु 'कालिदास' का अनुकरण करते जान पड़ते हैं।

'राधानाथ' उड़िया कविता के माध्यम में जो क्रान्ति लाए, उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उनका योगदान उनके द्वारा प्रयुक्त अन्य अलंकारों का है। एक प्रकार से उन्होंने उड़ीसा के समस्त प्राकृतिक दृश्य को सौन्दर्यान्वित कर दिया। अपनी कविता की विषय-वस्तु के लिए उन्होंने उड़ीसा के प्राचीन इतिहास या लैटिन या यूनानी पुराण-कथाओं से जनश्रुतियाँ और ऐतिहासिक गाथाएँ लीं तथा जहाँ विदेशी कथा-वस्तु ली, उसे भी उड़िया वातावरण में ऐसा ढाल दिया कि उड़ीसा का सारा भू-भाग मानो इन्हीं नायक-नायिकाओं के लिए एक रंगमंच की तरह से प्रस्तुत हो। उनके पहले चार शताब्दी तक, उड़िया कवि, (जिनमें कि सारलादास और जगन्नाथदास अपवाद हैं) केवल गंगा, यमुना और गोवर्धन-पर्वत इत्यादि उत्तर भारत के प्राकृतिक स्थानों का ही वर्णन करते थे, जबकि उनमें से किसी ने भी उन्हें शायद देखा नहीं था। अपने ही घर के सुन्दर प्राकृतिक दृश्य की ओर उनकी दृष्टि नहीं गई थी। उड़ीसा की चौड़ी और बड़ी नदियाँ महानदी, ब्राह्मणी, वैतरणी और मलयगिरि, मेघासन और महेन्द्र-जैसे चित्रोपम पर्वत अनगाए ही रह गए थे। उड़ीसा के सुन्दर भू-भाग का पहला सच्चा प्रशंसक और गायक, जिसने कि इस प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य को सब प्रकार से और भाव-कविता के उत्साह से वर्णित किया, हमें राधानाथ के रूप में मिलता है। उन्होंने 'चिलिका' सरोवर पर एक लम्बा भावपूर्ण खण्डकाव्य लिखा है। चिलिका उड़ीसा की सुन्दर समुद्र झील है। इस काव्य में चमत्कारपूर्ण, प्रसिद्ध और माधुर्य से भरे दो-दो पंक्ति वाले छन्दों में इस झील के विविध मनोरम रूपों का ऐसा सुन्दर गुण-गान हुआ है कि मानो प्रकृति देवी के प्रति

ने अपने भव्य काव्य में विश्व के साथ पवित्र जीवन और मानवीय आत्मा के आध्यात्मिक मिलन की गाथा गाई है। उनके विषय हिमालय के सुन्दर हिमजडित ऊँचे शिखरों से लेकर द्वंद्वमय जीवन की साधारण छोटी-छोटी घटनाओं तक बिखरे हुए हैं। उन्होंने कभी भी साहित्यिक कीर्ति के लिए कोई सचेष्ट प्रयत्न नहीं किया और इसलिए कभी भी कोई विशाल ग्रंथ लिखने का प्रयत्न नहीं किया। उनकी रचनाओं में छोटे-छोटे गीत, भाव-कविता, गीति-काव्य, सूत्र और सानेट असंख्य मात्रा में बिखरे हुए हैं। उन सबमें एक उच्च जीवन का वातावरण मिलता है। इनमें से कुछ; जैसे कि १०-१२ सानेट, 'नदी के प्रति', 'आकाश के प्रति' और 'ध्वनि के प्रति', उनके सूक्त और उनकी दो गीतात्मक कविताएँ 'हिमाचले उदयोत्सव' और 'ऋषिप्राणे देवावतरण' ऐसी हैं जो कि किसी भी साहित्य के लिए अमूल्य कृति की तरह मानी जायेंगी। उड़ीसा की शालाओं और होस्टलों में हमारे बालक प्रतिदिन सायंकाल को उनके रचे हुए भजन गाते हैं। उड़ीसा के राष्ट्रीय जीवन में नहीं, तो कम-से-कम साहित्य में तो उनकी कविता एक सशक्त तथा चैतन्ययुक्त, नैतिक और आध्यात्मिक बल के रूप में अभी भी चल रही है।

राधानाथ (१८४८-१९०८) एक सच्चे कवि और सौन्दर्य-द्रष्टा थे। उन्होंने—सेनापति ने जो कुछ गद्य में किया, उसकी पूर्ति कविता के रूप में की। उन्होंने उड़िया-भाषियों के लिए एक सच्चा साहित्य निर्मित किया। यह धरती का साहित्य था, और धरती के बेटों के लिए था; फिर उड़ियों ने उसमें ऐसा सौन्दर्य और चमत्कार था जो कि अभूतपूर्व था। दिखाई। कविता में जो नवीनता राधानाथ के द्वारा आई, उसकी मुक्त किया। यथेष्ट है। उन्होंने ही उड़िया-पद्य को शाब्दिक कसरत से के प्रभाव से अलंकार-प्रियता उपेन्द्र भंज और उनके अनुयायियों नहीं थी। अनुप्रासोंयुक्त कविता के एक अनिवार्य अंग के नाते अल देकर राधानाथ ने अ- अनुप्रास कम करके तथा शैली पर विशेष ध्यान पद्य को सरल वेश-भूषा में इतना आकर्षक बना

दिया कि वह किसी भी प्राचीन कवि की रचना के समकक्ष जान पड़ती है। शब्द और अर्थ के बीच में जो घनिष्ठ सम्बन्ध है उसके प्रति एक गहरा सम्मान उन्होंने सबसे पहले अपने पद्य में प्रारम्भ किया। इस विषय में यानी वागर्थ के संश्लेषण अर्थात् सही शब्दों और सही विशेषणों को चुनने में वे अपने गुरु 'कालिदास' का अनुकरण करते जान पड़ते हैं।

'राधानाथ' उड़िया कविता के माध्यम में जो क्रान्ति लाए, उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उनका योगदान उनके द्वारा प्रयुक्त अन्य अलंकारों का है। एक प्रकार से उन्होंने उड़ीसा के समस्त प्राकृतिक दृश्य को सौन्दर्यान्वित कर दिया। अपनी कविता की विषय-वस्तु के लिए उन्होंने उड़ीसा के प्राचीन इतिहास या लैटिन या यूनानी पुराण-कथाओं से जनश्रुतियाँ और ऐतिहासिक गाथाएँ ली तथा जहाँ विदेशी कथा-वस्तु थी, उसे भी उड़िया वातावरण में ऐसा ढाल दिया कि उड़ीसा का सारा भू-भाग मानो इन्हीं नायक-नायिकाओं के लिए एक रंगमंच की तरह से प्रस्तुत हो। उनके पहले चार शताब्दी तक, उड़िया कवि, (जिनमें कि सारलादास और बलरामदास अपवाद हैं) केवल गंगा, यमुना और गोवर्धन-पर्वत इत्यादि उत्तर भारत के प्राकृतिक स्थानों का ही वर्णन करते थे, यद्यपि उनमें से किसी ने भी उन्हें शायद देखा नहीं था। अपने ही घर के सुन्दर प्राकृतिक दृश्य की ओर उनकी दृष्टि नहीं गई थी। उड़ीसा की चौड़ी और बड़ी नदियाँ महानदी, ब्राह्मणी, वैतरणी और मलयगिरि, मेघासन और महेन्द्र-जैसे चित्तोत्तम पर्वत अनगाए ही रह गए थे। उड़ीसा के सुन्दर भू-भाग का पहला सच्चा प्रशंसक और गायक, जिसने कि उस अंचल के प्राकृतिक सौन्दर्य को सब प्रकार से और भाव-कविता के उत्साह से वर्णित किया, हमें राधानाथ के रूप में मिलता है। उन्होंने 'चिलिका' सरोवर पर एक लम्बा भावपूर्ण खण्डकाव्य लिखा है। चिलिका उड़ीसा की सुन्दर समुद्री झील है। इस काव्य में चमत्कारपूर्ण, प्रसिद्ध और माधुर्य से भरे दो-दो पंक्ति वाले छन्दों में इस झील के विविध मनोरम रूपों का ऐसा सुन्दर गुण-गान हुआ है कि मानो प्रकृति देवी के प्रति

उनका एक-एक काव्य चीनी-चित्र-कला के नमूने की तरह से है। उन
भावनाएँ, रंग और घटनाएँ बोलती हैं। उनका क्षेत्र सीमित था, पर
उस छोटी-सी दुनिया में, उन्होंने अनेक छोटे-छोटे स्वर्ग निर्मित कि
उनके कई छन्द और श्लोक अब जन-साधारण की बोल-चाल के भाग
गए हैं, और उनकी छन्द-रचना उड़ीसा में अब तक सर्वोत्तम काव्य-क
का मापदण्ड मानी जाती है। प्राचीन और आधुनिक सभी भारत
काव्यों में उनके ग्रन्थ सबसे पुराने और संगीतमय माने जाते हैं। उ
प्रसिद्ध काव्य 'तपस्विनी' की सीता नारी-आदर्श का एक बहुत उ
नमूना है।

सत्यवादी शाखा

इस शताब्दी के तीसरे दशक तक राधानाथ और मधुसूदन के
वाले अपनी परम्पराएँ बार-बार चलाते आए हैं, फिर भी यह क
होगा कि साहित्यिक शक्ति के नाते उनका प्रभाव पहले दशक में ही प्र
समाप्त हो गया था, क्योंकि बुद्धिवादियों की एक नई पीढ़ी धीरे-
आगे आ रही थी।

१९०३ में, अर्थात् उड़ीसा में ब्रिटिश आधिपत्य के १०० वर्ष
'उत्कल सम्मिलनी' की स्थापना हुई। इसके मंच पर राजा और
सामन्त और साधारण जनता, कन्धे-से-कन्धा मिलाकर उड़िया-भाषी
प्रदेश के एकीकरण की मिली-जुली माँग कर रहे थे। तब उड़ि
भाषी लोग चार अलग-अलग प्रदेशों में बिखरे हुए थे। वस्तुतः भ
में एकभाषा-भाषी प्रान्त की यह सबसे पहली माँग थी। १९०
प्रथम महायुद्ध के अन्त तक, और गांधीजी के आगमन और उनके अ
योग आन्दोलन तक, उड़िया लोगों का यह सबसे बड़ा स्वप्न और स
महत्त्वपूर्ण आकांक्षा थी। यह प्रादेशिक राष्ट्र-प्रेम आधुनिक भ
के जिस एक बहुत बड़े सपूत के रूप में अभिव्यक्त हुआ वे थे प
गोपबन्धु दास (१८७७-१९२८)। उनके गद्य, पद्य और भाषण

उड़ीसा की जनता को इस तरह से अनुप्राणित कर दिया, जैसा न तो कभी पहले हुआ और न बाद में ही। ऐसा लगता था कि मानो उनके शब्द समूची जनता के हृदयों से—अन्तरात्मा से—आ रहे हों। उन्होंने पुरी के पास साक्षीगोपाल नामक स्थान पर एक 'विहार' स्थापित किया, जहाँ अनेक बड़े-बड़े विद्वान् (जैसे पंडित नीलकण्ठ दास, पंडित गोदावरीश मिश्र और पंडित कृपासिन्धु मिश्र) बहुत छोटी-छोटी आय पर काम करते रहे। उन्होंने विदेशी स्वामियों के नीचे बड़े-बड़े वेतन वाली नौकरियाँ ठुकरा दीं। वे चाहते तो ऐसी नौकरियाँ उन्हें सहज ही मिल सकती थीं। यह 'विहार' नाम की शाला प्रायः बारह वर्ष तक चलती रही और यही था उड़ीसा का सांस्कृतिक केन्द्र। इस शाला के सब अध्यापक पंडित गोपबन्धु के प्राणदायक नेतृत्व के नीचे शिक्षा और साहित्य की सेवा तथा उसके पुनर्निर्माण में जुट गए। यद्यपि वस्तुतः यह एक पुनर्जीवनवादी आन्दोलन था, जो कि जनता को फिर से वैदिक संस्कृति की ओर ले जाने की माँग करता था; फिर भी उनके आदर्श थे सादा जीवन और उच्च विचार। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को देश की सेवा में निरन्तर बलि देने का और गीतों में बतलाई हुई मानवता का वे प्रचार करते थे। परन्तु उनके महान् नेता गोपबन्धु दास के जीवन को छोड़कर यह आदर्श व्यवहार में बहुत कम दिखाई देता था, इसलिए देश के जीवन में नैतिक शक्ति के नाते इस संस्था ने कोई बहुत बड़ा प्रभाव नहीं छोड़ा। उसका कुछ स्थायी रूप, इस संस्था के छोटे-से जीवन में निर्मित उत्तम साहित्य में मिलता है। वे 'सत्यवादी' नाम का एक मासिक-पत्र निकालते थे और साप्ताहिक 'समाज' की स्थापना भी उन्होंने ही की थी। इन पत्रों के पृष्ठों में गोपबन्धु ने अपनी पूरी भावनाएँ, आकांक्षाएँ और उमंगें ऐसी गद्य-शैली में व्यक्त कीं, जो कि अपनी भव्यता, दृढ़ता, व्यंजना-चातुर्य, विचारों की लिप्तता और सच्चे काव्य-रस से भरी हुई है। यह गद्य-शैली अब उड़िया में देखने को नहीं मिलती। उनकी 'बन्दी का आत्म-चिन्तन' नामक कृति उड़ीसा में लोक-गीतों की भाँति

अत्यन्त लोकप्रिय है।

पंडित नीलकंठ दास ने, जो गोपबन्धु के निकटतम अनुयायी हैं, अपनी 'आर्य जीवन' नामक पुस्तक में पाण्डित्यमयी शैली में ब्राह्मण आदर्शों का फिर से प्रचार किया। उन्होंने 'कोणार्क' पर एक सप्राण और वन्य सुन्दरता से युक्त काव्य रचा। इस काव्य की भूमिका में उड़ीसा के इतिहास का स्पष्ट और विचारप्रक्षोभक सिंहावलोकन किया गया है, जो कि सत्यवादी 'विहार' के विद्यार्थियों के स्वप्नों के रूप में चित्रित है। इन विद्यार्थियों को वे कोणार्क में शैक्षणिक यात्रा पर ले गए थे। पंडित दास राजनीति के वीरान बीहड़ में बहुत दिन भटकने के बाद अब साहित्य के रचनात्मक जगत् की ओर लौटे हैं और इधर उन्होंने एक नई दिशा दिखलाने वाला सामाजिक-साहित्यिक इतिहास लिखा है। अनेक खण्ड वाले 'उड़िया साहित्यर क्रम-परिणाम' नामक गद्य-ग्रंथ को सर्व-साधारण पाठकों ने उनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना है। उसी धारा के पंडित कृपासिन्धु मिश्र ने अपनी 'कोणार्क' और 'बारबाटी' नामक दो पुस्तकों में प्रथम श्रेणी का ऐतिहासिक साहित्य निर्मित किया और पंडित गोदावरीश मिश्र ने मन को हिला देने वाले राष्ट्रीय नाटक, कविताएँ और उत्तम वीर-गाथाएँ लिखी हैं। कुल मिलाकर अब तक उड़ीसा में सामूहिक रूप से निर्मित साहित्यिक उपलब्धियों में यह सबसे अच्छा युग और सबसे सुन्दर रचयिताओं का दल है। 'सत्य-वादी' धारा क्यों लुप्त हो गई, इसका चाहे कुछ भी कारण हो; किन्तु यह तो सच है कि उड़ीसा के राष्ट्रीय जीवन में उस धारा के नष्ट होने से एक ऐसा स्थान रिक्त हो गया, जो फिर कभी नहीं भर सका। अपने छोटे-से जीवन में यह धारा उड़ीसा के लिए वैसी ही थी, जैसी बंगाल के लिए 'शान्ति-निकेतन'।

नाटक और रंगमंच

इन वर्षों में नाटक धीरे-धीरे ऊपर आ रहे थे। न केवल साहित्य

की एक प्रतिष्ठित शाखा के रूप में, बल्कि उड़ीसा के राष्ट्रीय जीवन के अंग के नाते भी राष्ट्रीय वृत्ति में से यह नाटक निर्मित हुए। क्योंकि उड़ीसा में बंगाली नाटक-मण्डलियाँ मंच पर बंगाली नाटक खेलती थीं और यह एक चुनौती थी, जिसका उत्तर उड़िया नाटक के रूप में आगे आया। रामशंकर राय, कामपाल मिश्र, भिखारीचरण पटनायक और गोविन्द सुरदेव धीरे-धीरे रंगभूमि को एक सशक्त और सम्मानित प्रभाव के रूप में इस प्रदेश में प्रतिष्ठित कर रहे थे। उनके द्वारा रंगभूमि केवल मनोरंजन का स्थान न रहकर, समाज-सुधार और राष्ट्रीय पुनरुत्थान का भी मंच बन गई। जिस प्रकार बंगाली नाटककारों को राजस्थान और महाराष्ट्र के इतिहास से बहुत-सी सामग्री मिली थी, उसी प्रकार उड़िया नाटककारों को उड़ीसा-इतिहास के वीरों से आवश्यक सामग्री प्राप्त हुई; उदाहरणार्थ वीर राजा खारवेल, कपिलेन्द्र, पुरुषोत्तम और अनंगभीम आदि के नाम लिये जा सकते हैं, जिनकी पताका के नीचे उड़ीसा ने अपना विजय-अभियान और साम्राज्यों का विस्तार किया। उड़ीसा देश की बहुत समय तक खण्डित जाति के लिए यह वीर-पूजा एक स्वाभाविक प्रिय भावना थी।

इसी युग में वैष्णव पाणी ने ग्राम-नाटकों को क्रान्तिकारी ढंग से सुधार दिया और समूचे ग्रामीण उड़ीसा में 'यात्रा' का आधुनिक परिष्कृत रूप प्रचलित किया। अब इन 'यात्राओं' में समकालीन घटनाओं का प्रतिबिम्बन होने लगा और यह ग्राम-नाटक रंगभूमि के नाटकों के निकट आने लगे, यद्यपि उनकी भावपूर्ण संगीतमयता कम नहीं हुई। उड़ीसा के कवियों में इस एक अकेले प्रतिभाशाली व्यक्ति ने जो कमाल कर दिखाया, वह समूचे आधुनिक भारत के नाटकीय इतिहास में अद्वितीय है।

गांधी; टागुर और 'सबुज'-दल

इस समय तक गांधी की आँधी देश में फैल चुकी थी। परिम

गोपबन्धु और उनके कार्यकर्त्ताओं के दल ने अपने-आपको राष्ट्रीय आन्दोलन में तन्मयतापूर्वक लगा दिया था और तब उड़ीसा का जो एक-मात्र सांस्कृतिक केन्द्र था, वह भी इस प्रकार खो दिया गया।

इस प्रकार से जब 'सत्यवादी' दल समाप्त हो चुका था, तब कटक के कुछ थोड़े-से अण्डर-ग्रेजुएट नवयुवक एक नया साहित्यिक झण्डा लेकर बढ़ रहे थे, जिस पर बंगाल का ट्रेड मार्क लगा हुआ था। उस समय रवीन्द्र नाथ टाकुर अपनी कीर्ति और लोकप्रियता के शिखर पर थे। यह सच है कि उन का प्रभाव अदम्य है, परन्तु उस प्रभाव में उस समय के युवकों के पैर लड़खड़ाने लगे, और सिर चक्कर खाने लगा। 'टाकुर' की कविता और विवेक के महान् भण्डार में से यह तरुण कोई बहुत महत्वपूर्ण चीज अपने साथ नहीं लाए। उन्होंने केवल कुछ बाह्य गौण बातों का ही अनुकरण किया, जैसे कि तुकों या तर्क और सगति के अभाव का और कुछ रहस्यप्रियता के नाम पर अर्थहीन रचना का; जो कि हमें कभी-कभी टाकुर की कविता में भी मिलती है। यह लोग अपने-आपको 'सबूज' कहते थे। यह नाम भी उधार लिया गया था, क्योंकि शुरू में 'टाकुर' और प्रमथ चौधरी ने यह नाम, बंगाल में उस समय की रूढ़िबद्ध और सनातन विचारों के विरोध में एक आन्दोलन चला था उसके लिए प्रयुक्त किया था। और बंगाल के 'सबूज' पत्र की तरह से इन लोगों ने भी एक अपनी पत्रिका निकाली, जिसका नाम था 'युग-वीणा'।

उड़ीसा के साहित्यिक जगत् में इस दल ने एक नया आन्दोलन शुरू कर दिया। पाँच-छः वर्ष तक वे बहुत-सी नई-नई चीजें उड़िया साहित्य में लाये। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति यह जानता था कि वे चीजें उन्होंने बाहर से आयात की हैं, और उनकी जड़ें उड़ीसा की मिट्टी में नहीं हैं। इन लोगों ने अपना प्रकाशन-गृह भी शुरू किया। आश्चर्य की बात है कि बहुत जल्दी यह 'सबूज' (हरे) पीले पड़ गए।

गत दो दशाब्दियों में तरुण पीढ़ी पर 'सबूज' दल का बहुत गहरा

प्रभाव पड़ा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की शास-रचना को उन्होंने उड़िया साहित्य में प्रतिष्ठित किया और उसके साथ-साथ वे देशज छन्द-रचना भी लाए। ग्रयदाशंकर राय और वैकुण्ठनाथ पटनायक की कई कविताएँ, जो कि उन दिनों के आरंभ में लिखी गई थीं, सभी समीक्षकों के द्वारा उड़िया साहित्य के भण्डार के लिए स्वागताई मानी गई हैं। उन कविताओं को पढ़कर ऐसा आभास होने लगता है कि जैसे सचमुच हम एक नई दुनिया में पहुँच गए हैं। उनमें अपने ही ढंग के शब्द-संगीत का जादू है। उनमें प्रेम, सौन्दर्य और जीवन के नये स्वप्न हैं। ऐसी नई कल्पना-प्रतिमाएँ हैं; जो सुसंस्कृत उड़िया कानों को बहुत अटपटी और विचित्र लगने वाली नहीं थीं। प्रास तो है ही, क्योंकि उड़िया व्यक्ति के कान, 'सारळादास' से लगाकर गंगाधर मेहेर और नीलकंठ दास के काव्यों तक में कवि-मालिका के देशज-अनुप्रास से इतने परिचित थे कि उन्हें जनता की आत्मा और भाषा के सच्चे मुहावरे इस पारम्परिक कविता में मिले थे। परन्तु सबुज-दल ने जैसे उस रूढ़ि-रीति को तोड़ दिया। एक समय इस दल के लेखकों द्वारा मिलकर लिखा हुआ उपन्यास 'वासन्ती' बहुत लोकप्रिय हुआ और तरुण पीढ़ियों पर उसने कुछ अच्छा प्रभाव छोड़ा। कालिन्दीचरण पाणिग्राही का उपन्यास 'माटीर मणिष'* (मिट्टी का पुतला) इस दल के चरमोत्कर्ष के दिनों में लिखा गया। उनकी कई कहानियाँ बहुत लोकप्रिय हुईं, जो कि सम्मान उनके योग्य ही था। आज समूचे उड़ीसा में कालिन्दीचरण पाणिग्राही समकालीन समस्याओं के अच्छे प्रचारक और विशिष्ट गद्य-शैलीकार के नाते बहुत प्रसिद्ध हैं।

जनता के कवि

'सबुजों' के बाद सोशलिस्ट, या कहिए कम्युनिस्ट, तीसरे दशक के

* साहित्य अकादेमी ने इसे अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद के लिए चुना है और इसका हिन्दी-अनुवाद 'मिट्टी का पुतला' नाम से प्रकाशित भी हो चुका है।

मध्य में आये। वे अपने साथ फ्रायड, वाल्ट विटमैन और कार्लमार्क्स को लाये। यद्यपि उड़ीसा मुख्यतः कृषि-प्रधान प्रदेश था और है, तथा कल-तक उसका एक-मात्र उद्योग कुछ धान की मिलें ही था, ये नवयुग के लाने वाले सात्त्विक, हिंसक कविताएँ वर्ग-युद्ध पर लिखते थे। बेचारा गरीब रिक्शे वाला, जो कि कटक की गंदी धूलभरी सड़कों पर रिक्शा चलाता था, यह नहीं जानता था कि वह अगणित छोटी कहानियों का नायक बन गया है। जो लोग इनके गोल में नहीं आते थे उनका मध्ययुगीन या अपटूडेटनेसी कहकर मजाक उड़ाया गया। और 'जनता' की बात तो छोड़िए, इन स्वयंभू 'जनता के कवियों' में से अधिकांश की मार्क्सवादी संध्या-भाषा पढ़े-लिखे बुद्धिजीवियों के लिए भी अगम्य होती है।

परन्तु सच्ची बात कहें तो यह वर्ग-युद्ध की घोषणा एक अन्तर्राष्ट्रीय फैशन-मात्र थी। बहुत-से वामपक्षी लेखकों में कुछ नाम निस्सन्देह प्रतिभा के कारण चमक उठते हैं। उनका स्थान उड़िया-कविता में इसलिए नहीं है कि वे वामपक्षी प्रचार-काव्य लिखते थे, परन्तु इसलिए कि उनमें मानवीय भावना और सामाजिक व्यक्तिवाद का सच्चा पुट मिलता है। सची राउत राय की 'पल्लि-श्री' उड़ीसा में लोकप्रिय है और उनकी कुछ कहानियों तथा कविताओं में आधुनिक युग की निराशा का प्रतिबिंब है, जो कि साहित्य में स्थायी महत्त्व की वस्तु रहेगी। अनन्त पटनायक की कविताओं और मनमोहन मिश्र के कुछ गीतों में भावनामयता है, जिसने कि कई रसिक हृदयों को स्पर्श किया है, उनमें राजनैतिक झुकाव चाहे किसी ओर हो।

परन्तु अब तो वामपक्षी विचार-धारा साहित्यिकों का सामान्य विषय हो गया है। आत्मक युद्ध-घोषणाएँ अब नहीं सुनाई देतीं। अब ईलि-यट और एज़रा पाउण्ड की छायाएँ मंच पर चमकती हैं। प्रति मास या प्रति सप्ताह हमें कुछ ऐसा साधारण गद्य पढ़ने को मिलता है, जिसे

जान-बूझकर असंबद्ध या तर्कहीन बनाकर छन्द-रूप में काटकर प्रगतिशील कविता के नाम से प्रदर्शित किया जाता है। यह समझ में नहीं आता कि छन्द-परम्परा का बड़ी सतर्कता से रखा जाने वाला यह बहाना भी आखिर क्यों ?

ऐसे भी लेखक हैं जो विगत ३० वर्षों तक कई ऐतिहासिक आन्दोलनों के उत्थान-पतन के बीच में भी क्रमशः बराबर राजनीतिक दासता (चाहे वह वामपक्षी हो या दक्षिणपक्षी) से बचे रहे। उन्होंने जो-कुछ बुरा था उसकी बुराई की, और जो-कुछ अच्छा था उसकी प्रशंसा की। व्यक्ति की परवाह न करके वे अपनी साहित्य-रचना का कार्य निरन्तर धैर्य पूर्वक करते रहे। इस प्रकार के समृद्ध प्रामाणिक दल में से एक श्री राधामोहन गड़नायक हैं, जिनकी कविता उड़ीसा में अपने सौन्दर्य प्रेम और वीरतापूर्ण घटनाओं के निर्दोष छन्दोबद्ध अंकन के लिए प्रसिद्ध है। इनका प्राचीन साहित्य और छन्द-शास्त्र का कला-सम्बन्धी अध्ययन भी बहुत गहरा है। शान्तिनिकेतन के डॉ० कुंजविहारीदास की हमें प्रशंसा करनी चाहिए कि जिन्होंने साहित्य की शुद्ध भक्ति की है। आजकल वे उड़ीसा के ग्राम-गीतों को इकट्ठा करने के बड़े कार्य में लगे हैं।

कुल मिलाकर कविता का बाजार अब उठता जा रहा है। एक-आध कवि अपवाद हैं। उड़ीसा में विगत दशक मुख्यतः नाटकों और उपन्यासों का रहा है, जिसके बारे में कुछ और कहना आवश्यक है।

उपन्यास और नाटक

फकीर मोहन के बाद उड़िया उपन्यासों में कोई उल्लेखनीय कृति नहीं आई। इस काल एक-दो जो नये नाम आते रहे, वे विशेष प्रसिद्ध नहीं थे। उपन्यासों के क्षेत्र में जैसा युग 'मयूर रूप' का था। उनमें भी दो ही उपन्यास प्रसिद्ध हुए। गत दस वर्षों में उड़िया साहित्य में फिर

उपन्यासों की बाढ़ आई है। दो भाई, गोपीनाथ* और कान्हुचरण महान्ती और चन्द्रमणी दास तथा नित्यानन्द महापात्र इत्यादि। यदि सस्ते सनसनीखेज उपन्यासों को छोड़ दें तो हमें कान्हुचरण, गोपीनाथ और नित्यानन्द महापात्र के उपन्यासों में एक गम्भीर प्रयोजन मिलता है। गोपीनाथ महान्ती आदिवासियों के क्षेत्र में नई वस्तु की खोज में गये, जबकि उनके बड़े भाई कान्हू ने सामाजिक समस्याओं पर उपन्यास लिखे हैं। दोनों ने इस क्षेत्र में बहुत अधिक लिखा है।

रंगमंच

उड़ीसा में स्वतन्त्र प्रदेश के निर्माण के बाद रंगमंच को एक नई प्रेरणा मिली। यह कटक के नागरिक जीवन में एक स्थायी वस्तु बन गया। उड़ीसा में चार सजीव, समृद्ध थियेटर हैं और नाटक लिखने वालों को अपने पेशे से अच्छी आमदनी हो रही है। उपन्यासों की तरह से नाटकों की भी बड़ी माँग है। उड़िया नाटक की परम्परा को पंडित गोदावरीश मिश्र तथा गोविन्द सुरदेव ने जहाँ छोड़ा था, श्री अश्विनीकुमार घोष और कालीचरण पटनायक ने, अखण्ड रूप से आगे बढ़ाया है। अब पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों के दिन समाप्त हुए। केवल सामाजिक नाटक ही मंच पर खेले जाते हैं।

गद्य

उड़िया में सामान्यतः गद्य ही अधिक विकसित हुआ है। इसका श्रेय रामशंकर, फकीरमोहन, श्री रत्नाकर पति, विपिन बिहारी राय, पंडित नीलकंठ दास और श्री शशिभूषण राय (राधानाथ राय के पुत्र) आदि उनके बाद के उपन्यासकारों के निबंधों और गोपाल चन्द्र

* कन्धजाति के जीवन पर लिखे गए इनके 'अमृतर सन्तान' नामक उपन्यास पर साहित्य अकादेमी ने १९५५ में पुरस्कार दिया; और इसका हिन्दी-अनुवाद साहित्य अकादेमी की ओर से 'अमृत-सन्तान' नाम से प्रकाशित हुआ है।

प्रहराज के पैने व्यंग्यों, तथा पंडित गोपबन्धु दास के काव्यमय निबन्धों एवं भाषणों को है। वैज्ञानिक साहित्य का बहुत बड़ा अभाव भी अब पूरा किया जा रहा है। 'पूर्णचंद्र उड़िया भाषा कोष' (जिसे कि स्वर्गीय गोपालचन्द्र प्रहराज ने संकलित किया) और उड़िया विश्व-कोष का पहला खण्ड (जो हाल ही में प्रकाशित हुआ है), गम्भीर गद्य के विकास के सशक्त निर्देश-चिह्न हैं। साहित्य-समीक्षा भी तेजी से प्रगति कर रही है। श्री बंशीधर महान्ती और श्री नटवर सामन्तराय, उड़िया के प्राध्यापक हैं। वे उड़िया साहित्य के बहुत-से अज्ञात क्षेत्रों पर प्रकाश डाल रहे हैं। नटवर सामंतराय की १६वीं शती के महान् लेखकों की रचनाओं की ऐतिहासिक विवेचना बहुत ही मनोरंजक है, और वह भविष्य में आधुनिक उड़िया साहित्य के सच्चे बुद्धिवादी सर्वेक्षण का आधार बनेगी।

लेखिकाएँ

उड़ीसा में प्राचीन और मध्य युग में भी कुछ प्रसिद्ध लेखिकाएँ हुईं और आधुनिक काल में भी कई हैं। उनमें से दो लेखिकाओं का वर्णन उनकी असाधारण प्रतिभा के लिए करना आवश्यक है।

स्वर्गीय डा० कुंतला कुमारी सावत, जो कि दिल्ली में रहती थीं और वहीं उनका देहान्त हुआ, अपने समय में कवयित्री, उपन्यास-लेखिका और देश-सेविका के नाते विख्यात थीं। इस समय सबसे प्रधान प्रतिभाशाली लेखिका श्रीमती विद्युत्प्रभा देवी हैं; जिनकी भाव-कविता अपने सहज प्रवाह, निर्दोष प्रास और कल्पना-चित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं।

उड़ीसा राज्य के निर्माण के बाद जैसी पहले स्थिति थी उससे अब कहीं अधिक आशादायक चित्र साहित्य के क्षेत्र में मिलता है। हमारी कालेजों की पढ़ाई के दिनों में ३० साल तक सिर्फ एक या दो साप्ताहिक पत्रिकाएँ प्राप्त थीं; अब उड़ीसा में चार दैनिक पत्र हैं; जिनमें से एक अंग्रेजी भी है। छ: मासिक पत्रिकाएँ हैं, जबकि हमारे बचपन में सिर्फ एक या दो थीं। पुस्तकों का व्यवसाय भी तेजी से प्रगति कर रहा है।

उड़ीसा को आगे आशा और विश्वास के साथ एक उज्ज्वल भविष्य की ओर देखने के पर्याप्त कारण हैं। केवल इसलिए नहीं कि उड़ीसा के पास प्राकृतिक सम्पत्ति की सम्भावनाएँ और कोष बहुत बड़े-बड़े हैं, परन्तु इसलिए भी कि कला और संस्कृति के क्षेत्र में उसकी बड़ी ऊँची परम्परा रही है; जो कि अभी भी उन्नति कर रही है; और विविध अन्य रूपों में प्रकट हो रही है।

उर्दू

ख्वाजा अहमद फारूकी

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१८५७ के राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाएँ बहुत महत्त्व रखती हैं। उन दिनों मुगल साम्राज्य दम तोड़ रहा था, और विगत तीन सदियों में उसने जिन सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ाने का प्रयत्न किया था, वे मिट्टी में मिल चुके थे। अंग्रेज लोग अपने साथ औद्योगिक क्रान्ति और नए विज्ञान के सब साधनों को लेकर आए थे; उन्होंने भारत में अपने पैर जमाए और अपने स्वार्थ के लिए नये रूप से इस देश का शोषण आरम्भ किया। प्राचीन देसी शासन-व्यवस्था बदलकर एक नया विदेशी राज्य यहाँ आ गया, जिसमें कई त्रुटियाँ होने के साथ-साथ नई प्रगतिशीलता के गुण भी विद्यमान थे। इस नई व्यवस्था में हम पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के अधिक निकट आए और उसका प्रभाव हमारे सामाजिक जीवन तथा मानसिक वृत्तियों पर भी पड़ा।

विदेशी साम्राज्य की स्थापना के कारण आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में ब्रिटिश और भारतीय हितों के बीच में एक तीव्र संघर्ष शुरू हुआ। १८५७ का विद्रोह अचानक से घटी हुई घटना या इतिहास का एक योग-मात्र नहीं था। भारतीय जनता के मन में जमा हुआ असन्तोष के विद्रोह के रूप में फूट पड़ा, क्योंकि अंग्रेजों की विजय

कारण जनता राजनैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत पीड़ित थी। यह विद्रोह केवल फौजी बगावत न था, मगर डॉ० डफ़ के शब्दों में यह बलवा और क्रान्ति दोनों एक साथ था। एक प्रकार से वह आगे आने वाले स्वातन्त्र्य-संग्राम का विधिवत् रिहर्सल था और उसमें से संयुक्त आन्दोलन की परम्परा ने जन्म लिया। पुराने समाज की सामाजिक परम्पराएँ १८५७ में अपनी शक्ति के पुनर्संस्थापन के अन्तिम प्रयत्न में पूरी तरह से विनष्ट हो गईं। १८७० के बाद अन्य सामाजिक परम्पराएँ जाग उठीं।

सन् १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। १८७० से १८८५ के बीच का युग किसानों के असन्तोष, दस्तकारों और कारीगरों के धन्धों को कुचलने, १८६७-१८८५ के बीच में भयानक अकाल, १८७५ में दक्षिण के किसानों के विद्रोह और धीरे-धीरे बढ़ने वाले राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के लिए प्रसिद्ध है। पढ़े-लिखे मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों का वर्ग धीरे-धीरे जाग रहा था और राजनीतिक दृष्टि से उनकी सवाल सूझ रही थी। इसके पीछे जो प्रेरणाएँ काम कर रही थी उनमें अमरीका की जनता का स्वातन्त्र्य-युद्ध, आस्ट्रिया के कब्ज़े से आज़ाद होने के लिए इटली की राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-संघर्ष की कहानी, टामसपेन, स्पेन्सर, मिल और वाल्टेयर के ग्रन्थ और गैरीबाल्डी तथा मैज़िनी की जीवनियाँ आदि प्रमुख हैं। उस समय के उदारदली नेताओं ने बड़ा प्रगतिशील कार्य किया, परन्तु धीरे-धीरे जनता में बेकारी और निराशा फैलने लगी। आरम्भ में युयुत्सु राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। १९०५ से १९१८ के बीच में राष्ट्रीय आन्दोलन अधिकाधिक संघर्षपूर्ण, चुनौती देने वाले और व्यापक आधारयुक्त बनते गये। पहले महायुद्ध, होमरूल के आन्दोलन और महायुद्ध के बाद के आर्थिक संकटों ने भारत में ब्रिटिश राज्य की जड़ों को खोखला कर दिया।

रौलट-एक्ट पास हुआ, पंजाब में मार्शल-ला लग गया और खिला

फत आन्दोलन भी हुए। इन सब घटनाओं ने राष्ट्रीय असन्तोष की धारा के वेग और गहराई को और भी बढ़ाया। ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय नेताओं के विरुद्ध सख्त कदम उठाए। मौलाना आज़ाद का 'अल-हिलाल', मौलाना मोहम्मद अली का 'कामरेड' और 'हमदर्द' नामक पत्र जब्त किये गए तथा १६१५ में हमारे कई प्रसिद्ध नेताओं को जेल में डाल दिया गया। महात्मा गांधी ने खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया और १६२१ में अपना प्रसिद्ध असहयोग आन्दोलन शुरू किया। भारतीय राजनीति के क्षेत्र में गाँधी जी अपनी अन्तिम साँस तक सर्वोपरि रहे। १६३० से १६३४ और सन् १६४२ के राष्ट्रीय जन-आन्दोलनों तथा द्वितीय महायुद्ध के समानान्तर चलने वाले साम्प्रदायिक तत्त्वों ने भी ज़ोर पकड़ा, जिनका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि देश का विभाजन होकर पाकिस्तान बन गया। गाँधी जी ने 'साम्प्रदायिकता के सर्वनाश के लिए अपने रक्त का तर्पण देकर अपने-आपको एक सजीव बलि के रूप में अर्पित किया।'

साहित्यिक पृष्ठभूमि

राष्ट्रीय विकास की इन सब ऐतिहासिक मंजिलों में उर्दू साहित्य बराबर हमकदम और हर मांग पर जवाब देता हुआ चला। उसमें जनता के मनोवैज्ञानिक निरीक्षण, भावनात्मक अनुभव और काना-फूँसियाँ भी मिलती हैं। ईमानदारी से जीवन का यथातथ्य चित्रण करने के लिए उसे अपनी गुलो-बुलबुल की दरबारी कुण्ठित परम्पराएँ, लफ़्ज़ों की नक्काशी और मीनाकारी, भड़कीली कहन की खूबी तथा बासी कल्पना-चित्र छोड़ देने पड़े। अवध (१८५६ में) और दिल्ली के राज्य के (१८५७ में) पूरी तरह नष्ट होने के साथ यह परिवर्तन हुआ और तभी भारत में ब्रिटिश राज्य भी मजबूत बनता जा रहा था। उर्दू साहित्य पर भी दूरगामी महत्त्व की इन घटनाओं का प्रभाव पड़े बिना न रहा। संक्रान्ति की सभी अवस्थाएँ—भयानक संघर्ष, विकृत

प्रतिक्रियावादिता और स्वस्थ समन्वय—स्पष्टतया उर्दू साहित्य में दिखाई देते हैं। अंग्रेजी शिक्षा के कारण पुरानी विचार-धारा के साथ-साथ नया सशक्त चिन्तन सामने आया। छापेखानों और आधुनिक यातायात के साधनों ने इसकी और भी सहायता की।

ब्रिटिश संस्कृति की पहली प्रतिभाशाली छाप दिल्ली में उर्दू के पुनरुत्थान के रूप में मिलती है। यह उन्नीसवीं शती के दूसरे चरण की घटना है। दिल्ली में एक उत्साही दल ने पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान को उर्दू में लाने की कोशिश की। १८२५ में स्थापित पुराने दिल्ली कालेज ने इस राज्य में एक वैज्ञानिक पुनर्जागरण पैदा किया। उस वक्त के विज्ञान के प्रयोगों से दिल्ली कालेज के विद्यार्थी 'मन्त्रमुग्ध' हो गए। "वे अपने-आपको एक नए जमाने का मसीहा मानने लगे, और उन्होंने अपने ढंग और ख़याली मकर्ज़ बनाए।" १८४४ में दिल्ली कालेज में 'वर्नाकुलर ट्रांसलेशन सोसाइटी' की स्थापना हुई, जिसने वैज्ञानिक विषयों में किताबें छापनी शुरू कीं। प्रोफेसर रामचन्द्र ने 'फ़ुआइदुन नाज़रीन' और 'मोहिब्बे हिन्द' नामक दो पत्र प्रकाशित किए, इनका उद्देश्य मुख्यतः पश्चिमी विचारों और वैज्ञानिक मूल्यों का प्रचार करना था। १८६४ में एक दिल्ली सोसाइटी की स्थापना हुई, जिसके मंत्री प्यारेलाल 'आशोब' थे, जिन्होंने बाद में उर्दू गद्य में एक स्वस्थ परिवर्तन लाने में 'आज़ाद' (मृत्यु १९१०) और 'हाली' (मृत्यु १९१४) की सहायता की।

यह परिवर्तन एकदम तेज़ी से नहीं आया। यह धीरे-धीरे भारत की समस्याओं और स्वभाव के अनुसार होता रहा। शुरू के लोग सुधार करना चाहते थे, क्रान्ति नहीं। वे अपने अतीत से पूरी तरह कटे हुए नहीं थे, बल्कि उन्होंने अपने उच्चकोटि के साहित्यकारों को नए ढंग से प्रस्तुत किया, उनमें नए अर्थ खोजे। उनका वास्तविक उद्देश्य उर्दू में हार्दिकता और उत्साह का भाव पैदा करना था, जिससे कि वह जीवन के सत्य से अधिकाधिक निकट आ सके। वे पश्चिम के अतिरंजित अनुकरण से बचते रहे, तथा अबकी अप्रामाणिकता, लम्बे-चौड़े कल्पना-चित्र

रंग उसमें प्रतिबिम्बित थे। हाली की कविता ने बाद में आने वाले लेखकों के लिए एक नया मानदण्ड (स्टैंडर्ड) कायम किया। नए विषयों पर कविताएँ लिखी जाने लगीं, यद्यपि वह शुरू-शुरू में प्रायः अनुवादित या आधारित होती थीं। ऐसी अनेक मौलिक कविताएँ भी लिखी गईं, जिनमें उदार देशभक्तिपूर्ण विचार थे; और कहीं-कहीं तो देश के प्रति प्रायः स्त्री-सुलभ एकनिष्ठ प्रेम भी व्यक्त किया गया था। ये कवि तारों-भरी रातों, खिलते हुए फूलों और चहचहाते हुए पक्षियों के बारे में इस तरह गाते थे, मानो उन्होंने अपनी मातृभूमि को नये सिरे से खोजा हो। 'चकबस्त' (मृत्यु १९२६), 'वेनजीर शाह' (मृत्यु १९३०), सरूर जहानाबादी (मृत्यु १९१०), वहीदुद्दीन सलीम (मृत्यु १९२८), शौक किदवाई (मृत्यु १९२८) और नादिर (मृत्यु १९१२) की कविताओं में १९१४ के पहले की धारा का सही-सही चित्र मिलता है।

गज़ल में भी धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा था। हाली ने उसके क्षेत्र को बढ़ाया और उसे एक सामाजिक आधार दिया। उन्होंने पुरानी रूढ़िगत अलंकार-बहुल शैली की निन्दा करके नई गज़ल के नवयुग की घोषणा की। इन नई गज़लों में विचार और भाव सरल-से-सरल भाषा के साथ गुँथे हुए थे। यद्यपि अमीर (मृत्यु १९००) और दाग (मृत्यु १९०५) जनता में अभी भी लोकप्रिय हैं, फिर भी उर्दू-गज़ल मीर और ग़ालिब की परम्परा और रचना-शिल्प की ओर वेग से मुड़ गई है। मीर और गालिब उर्दू-काव्य-क्षेत्र में उच्चकोटि के महाकवि हैं। जहाँ हाली के सुधार की निन्दा की गई, वहाँ मीर और गालिब ने गज़ल को एक नया रंग दिया। साक़िब (मृत्यु १८९९), अज़ीज़ (मृत्यु १९३५) और 'असर' ने इन पुराने महाकवियों के चरण-चिन्हों का अनुकरण किया तथा हसरत मोहानी (मृत्यु १९५१) ने मुसहफी (मृत्यु १८२४) और नसीम देहलवी (मृत्यु १८४३) के चरण-चिन्हों का। दिल्ली और लखनऊ के पुराने भेद मिट गए और दोनों की शैलियाँ बड़ी खूबी से एक-दूसरे में मिल गईं।

इक़बाल अपनी महान् प्रतिभा-शक्ति से आगे आए और उन्होंने गजल को नया मोड़ दिया। उन्होंने समकालीन समस्याओं, सांस्कृतिक संघर्षों और सामाजिक उत्थान-पतन को गजल के रूप में विवेचित किया, जबकि मूलतः गज़ल का विषय मुख्यतः प्रेम ही था। वे रूढ़ शैलियों को (जैसे गालिब की) अपने उद्देश्य के लिए नए ढंग से अपनाने वाले थे। उनके दर्शन की सब मौलिक बातें, जो कि उनके भाव-लोक का अंश बन गई थी, उनकी गजलों की बनावट में बहुत कुशलता से गुँथी हुई मिलती हैं। उनके काव्य में बहुत विविधता, भाँति-भाँति के स्वर और प्रगतिशील सामाजिक चिन्तन सब गड्ड-मड्ड है; फिर भी उन्होंने गजल को जीवन के सत्य से भरा हुआ एक नया अर्थपूर्ण रूप दिया।

शाद अज़ीमाबादी (मृत्यु १६२७), 'नासिख' (मृत्यु १८३८) के अलंकारप्रिय तत्त्वों को 'मीर' में पाई जाने वाली तीखी ताज़गी, पैनेपन और संगीत से मिलाते हैं। रियाज़ (मृत्यु १६३४) ने अपनी तबीयत के अनुकूल इस कठोर और कष्टप्रद जीवन से पलायनवाद ग्रहण करके शराब की कविता लिखने की शरण ली। 'आरज़ू' में स्पष्टता और साहसिकता थी तथा उन्होंने जन-साधारण की आम-फहम भाषा का प्रयोग किया। उनकी शैली की विशेषता यह है कि उनकी भाषा अत्यन्त सरल है, और इस दृष्टि से उन्होंने उर्दू कविता में एक सच्चा और पक्का सुधार किया। 'यास-ओ-यागाना' (मृत्यु १६५६) में गालिब की निराश संवेदनशीलता मिलती है, यद्यपि और बातों में वे गालिब की निन्दा करते हैं। उनमें न तो कल्पना-शक्ति थी, जो कि शब्दों को पंखमय बना देती, न उनमें सूर्य-किरणों-जैसा आनन्द और वह गहरी दृष्टि थी, जिससे कि पाप भी देवी जान पड़े। फिर भी 'यास' की कुछ कविताएँ कविता के प्रगाढ़ सार से भरी हैं, क्योंकि उनमें कविता का भावात्मक महत्त्व एक नये स्वर में अभिव्यक्त हुआ है। उनका नाम उन 'आरज़ू', 'अज़ीज़' (मृत्यु १६३५), 'साकिब' और 'असर' के साथ-साथ लिया जायगा, जिन सबने लखनऊ-शैली की गज़ल को एक गहरी और सार्थक आत्मा

प्रदान की।

समकालीन काव्य-प्रवाह

आधुनिक भारत के सबसे बड़े गज़ल-लेखक 'हसरत मोहानी' कहे जायेंगे। उन्होंने अपनी कविता तब लिखनी शुरू की थी जब 'हाली' द्वारा लखनवी शैली की गज़ल की रूढ़िवादिता पर की हुई समीक्षा से सारा वातावरण भरा हुआ था। इस समीक्षा ने दो प्रकार की परस्पर-विरोधी प्रतिक्रियाएँ शुरू कीं। 'अज़मतुल्लाह खाँ' (मृत्यु १९२७) तो चाहते थे कि 'गज़ल को पूरी तरह से खत्म कर दिया जाय, चूँकि उसमें न तो कोई विचारों का क्रम ही बँधता है और न उसमें कोई सहजता और स्वाभाविकता है।' हसरत मोहानी ने उर्दू-गज़ल को नयापन दिया और बहुत चतुराई से दिल्ली और लखनऊ की दोनों शैलियाँ मिला दीं। हसरत जीवन के प्रत्येक विभाग में प्रतिवादी और क्रांतिकारी थे। केवल कला के क्षेत्र को छोड़कर उन्होंने उन सब पुराने प्रतीकों और विषयों का उपयोग किया है, जो पारम्परिक गज़ल में पाये जाते हैं। और उन्होंने एक नया स्वर एवं वातावरण प्रदान किया। वे प्राचीन और नवीन को अपनी गज़ल में मिलाते हैं। प्राचीन की सप्राणता, नवीन और वर्तमान की नई चेतना तथा भविष्यत् की सम्भावनाएँ उनकी गज़ल में एकाकार हो गई हैं। उनके प्रेम-सम्बन्धी विषय बासी और पिटे-पिटे न होकर सच्चे, यथार्थ और प्रामाणिक हैं। उनके गीति-काव्य में एक परेलू स्पर्श, प्राञ्जल रस और गम्भीर भावमयता है। 'हसरत' ने कोई नई गज़ल खोजकर नहीं निकाली, उन्होंने पुरानी गज़ल को ही नई जान दी। वे 'मुसहफ़ी' (मृत्यु १८२४) और 'मोमिन' (मृत्यु १८५१) की पंक्ति में आते हैं। उन्होंने उन दिनों कवियों के अच्छे गुणों को मिलाकर अपने प्रत्यक्ष जीवनानुभवों से प्राप्त उत्साहपूर्ण सामाजिक-राजनैतिक चेतना को भी उसमें मिलाया और इस तरह से 'हसरत' ने अपना मार्ग स्वयं निर्माण करके अपनी रचनात्मक प्रेरणा के लिए सही माध्यम खोज

निकाला।

फ़ानी की ग़ज़लें इसलिए मधुर हैं कि उनमें उनके करुण भावों की व्यंजना है। वे सर्वोत्तम भावनाओं को सौन्दर्य, प्रामाणिकता और करुणा के साथ व्यक्त करते हैं। उनकी ग़ज़लें इतनी अधिक लोकप्रिय क्यों हुईं इसका कारण यह है कि वे अपने दर्द का उत्कट वर्णन करते हैं और उनका शब्दों पर असाधारण अधिकार है। वे बहुत अधिक ईमानदार कवि हैं और जो-कुछ देखते और अनुभव करते हैं, उसे ही लिखते हैं। शुद्ध कविता में वे अपने सब समकालीनों से श्रेष्ठतर हैं। उनका जीवन एक लम्बी तकलीफ़ और भयानक असन्तुलन की कहानी है। उनकी कविता में सब जगह करुण रस का एक ही स्वर मिलता है और कदाचित् वही उनके सुन्दर संगीत का स्रोत है। किसी दैवी निराशा की गहराई में से उनके आँसू उमड़ते हैं, मानो वे उस चीज़ को खोज रहे हैं, जो कहीं नहीं है। प्रायः कहा जाता है कि उनके विचारों का संसार बहुत छोटा और अयथार्थ है।

असग़र (मृत्यु १९३६) पर 'ग़ालिब' और 'मोमिन' का गहरा प्रभाव है। उनकी कल्पनाशील वृत्ति ने ग़ज़ल को व्यापक अर्थ प्रदान किया। उनके पद्यों में उत्कृष्ट कोटि की सूक्ष्मता और कल्पना-चित्रों में इन्द्रिय-गोचरता मिलती है, जो कि उनको ग़ज़ल-लेखकों में बहुत ऊँचा स्थान दिलाती है।

'असर' की गीतिकाव्य-रचना की शक्तियाँ असाधारण विविधता लिये हुए हैं, और बहुत सहज प्रवाहयुक्त शैली में वे मानवी भावनाओं के समूचे विस्तार को व्यक्त करते हैं।

'जिगर' भी ग़ज़ल-लेखक के नाते प्रसिद्ध हैं। संगीत और लय, सुकोमल संवेदनशीलता, सौम्य तथा दार्शनिक विवेक, भावनाओं की सब तरह की दशाओं और वृत्तियों के प्रति जागरूकता आदि गुणों में वे अनन्य हैं। उनकी कल्पना अद्भुत विविधता लिये हुए है और संगीत तथा छन्द में भी उनकी विलक्षण अनेकरूपता दिखाई देती है। उनकी

कल्पना के दो मुख्य विषय—प्रेम और सौन्दर्य हैं। उनके सुस्पष्ट गीति-काव्य में मानव-आत्मा का अंकन बड़ी सूक्ष्मता से हुआ है, उसमें एक सरस उन्मुक्ति और मादक भाव है। 'जिगर' का बहुत बड़ा असर तरुण कवियों पर हुआ है। उन्होंने 'जिगर' की बाह्य विशेषताओं का अनुकरण-मात्र करने का प्रयत्न किया, लेकिन उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। 'फ़िराक़' ने पश्चिमी कवियों के स्रोत से गहरा रस-पान किया और उस संस्कृति के कई गुण उन्होंने इस तरह अपनाए कि उससे पूर्वी संस्कृति को भयंकर हानि पहुँची। आज की समस्याओं के प्रति उनकी रागात्मक प्रतिक्रिया में प्रेम, साहस और क्रान्ति की भावनाएँ विशेष रूप से दिखाई देती हैं। वे हर मनःस्थिति और परिस्थिति के प्रति बहुत भावनायुक्त चेतना से पेश आते हैं। उनके भाव-लोक पर विचार हावी है और उनके ज्ञान-भण्डार की व्यापक सीमा ने उनकी कल्पनाओं को समृद्ध किया है। परन्तु अनेक बार उनमें संयम का भी अभाव खटकता है।

'फ़ैज़' की ग़ज़ल स्पष्ट और दिल को हिलाने वाली होती है। वे अपने रूपक बहुत दूर-दूर के क्षेत्रों से लेते हैं। उनका कल्पना-लोक सहज स्वाभाविक और प्रभावशाली है। वे कई वर्षों तक राजनीतिक बन्दी रहे हैं। बन्दी-जीवन के कारण उनके प्रतीकों में एक विशेष आकर्षण पैदा हुआ है और उनके पद्यों में एक स्वप्निल मधुरता आई है। 'फ़िराक़' की भाँति ही इनकी कविता में भी ऊबड़-खाबड़पन है और वे दोनों आध्यात्मिक अरक्षितता की भावना से पीड़ित हैं। 'जज़्बी' की ग़ज़ल मुक्त और स्वाभाविक अभिव्यंजना की ओर बढ़ना चाहती है, जिसमें कि इन्द्रिय-संवेदना वाली कविता भाव-दशा से रस-दशा की ओर जाना चाहती है। उनकी विचारभरी करुणा उनके स्वर को और भी प्रभावशाली तथा गहरा बना देती है। 'रविश' के लिए सौन्दर्य-जगत् एक छिपने का स्थान है, परन्तु उनका विचार-लोक कमज़ोर और उनकी शैली हठाकृष्ट है। 'मजरूह', नदीम क़ासिमी और अख़्तरुल ईमान ऐसे उदीयमान ग़ज़ल-गो हैं, जो अपनी ज़मीन टटोल रहे हैं।

१९३६-४६ के बीच उर्दू-ग़ज़ल को भारी आलोचना का सामना करना पड़ा, परन्तु वह इस सारे आक्रमण से बच निकली। यह युग विद्रोह और प्रयोग का युग था। वर्णनात्मक कविताएँ, सानेट, गीत, अतुकान्त छन्द और मुक्त छन्द आदि सब लिखे गए तथा उनकी लोकप्रियता भी बढ़ती गई। थोड़ी देर के लिए तो ऐसा लगा कि ग़ज़ल अब पिछड़ गई, मगर फिर भी वह उसमें से विजयी होकर बाहर निकली। 'फ़ैज़' के 'दस्ते सबा' का प्रकाशन ग़ज़ल के इतिहास में ऐसी ही एक अभूतपूर्व घटना थी। देश के विभाजन और उसके साथ-साथ जो भयानक समस्याएँ सामने आईं, उन सबने ग़ज़ल की लोकप्रियता को पुनर्जीवित किया, क्योंकि ग़ज़ल आत्मनिष्ठ मन.स्थितियों का चित्रण करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त माध्यम है। शरणार्थियों के दुःख-दर्द और पुरानी परम्पराओं के लिए सौहार्द साहिर, जगन्नाथ आज़ाद, अर्श मलसियानी, महरूम, हरीचन्द अख़्तर, हफ़ीज़ होशियारपुरी, सालिक, सबरसुम, अहीर, क़तील, नासिर काज़मी इत्यादि की ग़ज़लों में साफ़ झलकता है। यह कविता कभी-कभी बहुत भड़कीली, चीख़ती हुई और वृथा भावुकता से भरी होती है, मगर यह दिखावटी या बनावटी नहीं है। इसमें मनोवृत्ति, स्वर और कल्पना की अन्विति मिलती है और यह उर्दू-ग़ज़ल के एक विशेष रूप को प्रकट करती है।

आज की उर्दू-ग़ज़ल पुरानी उर्दू-ग़ज़ल से सिर्फ़ स्वर और स्वराघात में भिन्न है। अब शायर लटकती हुई ज़ुल्फ़ों, रुख़सारों और माशूक़ के चेहरे के तिल के बारे में नहीं लिखते, बल्कि वे नग़माए-रूह की आवारा प्रकट करते हैं और आवश्यकता से अधिक नक्क़ाशी या अलंकारों से बचते हैं। अब पुराने रहस्यवादी स्वर कम होते जा रहे हैं। इन्सान और दुनिया के बारे में अधिक लिखा जा रहा है। दुर्भाग्य से, नवीनता का शौक़, बौद्धिक अनुशासन का अभाव और छन्द-शास्त्र के सिद्धान्तों का ज्ञान कम होना आदि ऐसे अनेक दोष हैं, जिनसे आधुनिक ग़ज़ल का आकर्षण और प्रभाव दूषित हो गया है। यद्यपि कुशल कवि के हाथों

गज़ल में भी उच्चतम कविता का निर्माण सम्भव है।

दूसरी तरह की कविताओं में इक़बाल का १९१४ के तूफानी दिनों में लिखा गया 'खिज़्रे राह' आधुनिक उर्दू-कविता में एक पथ-चिन्ह और बाद के कवियों के लिए एक उज्ज्वल निर्देश है। वे द्रष्टा और मानवतावादी थे। उन्होंने सभी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं को, जो कि उस समय पूर्व के देशों के सामने थीं, जीवन, परम्परा और अपने कुरान वाले अक़ीदे से उन्हें देखा। अपनी प्रतिभा के पारस-स्पर्श से उन्होंने जो कुछ लिखा, उसे कुन्दन बना दिया और कविता का अभिव्यंजना-क्षेत्र सांकेतिकता से बहुत व्यापक बनाया। 'बांगे दरा', 'बाले जिब्रील' और 'ज़र्बे कलीम' ने उर्दू में एक नवयुग निर्मित किया तथा उर्दू-कविता इतनी समृद्ध हो गई कि वह किसी भी समुन्नत साहित्य के साथ तुलना में खड़ी हो सकती है।

जोश मलीहाबादी 'शायरे-इन्क़लाब' कहलाते हैं। दो महायुद्ध, १९२१ का असहयोगिता आन्दोलन, १९२९-३० के आर्थिक संकट, १९३१ का सत्याग्रह आन्दोलन, श्रम और पूँजी के बीच संघर्ष और समाजवादी विचारों का बढ़ता हुआ प्रभाव उर्दू साहित्य को भी झकझोरता रहा और उसमें से यह क्रान्ति की भावना पैदा हुई। 'जोश' इस क्रान्ति के प्रतीक हैं, मगर वे आवश्यकता से अधिक शोर मचाने वाले, उथले और ऊबड़-खाबड़ लिखने वाले हैं। उनमें एक तरह का अनथक उत्साह है, मगर वे बहुत बार कुण्ठित रूप ले लेते हैं। वे सिर्फ़ सतही चीज़ों को छूते हैं और चमकीले शब्द शिल्प के आडम्बर के नीचे अपना खोखलापन छिपाते हैं। इक़बाल के बाद तरुण कवियों पर उनका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। नक़्क़ादों की दृष्टि में वे 'शायरी में आतुगर मुम्मा' हैं। उपमा और उत्प्रेक्षा पर उनका बहुत अधिकार है तथा मुग़लिया ऐश्वर्यमय दृश्यों के वर्णन में इन अलंकारों का वे बड़ा सुन्दर और आकर्षक इस्तेमाल करते हैं।

इसपर इन्हीं की प्रकार अनुसरण ऐसे कुशल कवि हैं, जिन्होंने बहुत-

कुछ लिखने के बावजूद भी अपनी शक्ति का दुरुपयोग क्षणिक महत्त्व के क्षुद्र विषयों पर लिखने में अधिक किया है। 'सोमाब' (मृत्यु १६५१) भी अच्छे कवि थे, जिनका छन्द पर अधिकार था। उन्होंने कुछ जल्दी में लिखा, मगर बड़े आत्म-विश्वास के साथ। उनकी कविता का प्रभाव, जिन विषय-वस्तुओं को उन्होंने छुआ, उनके महत्त्व की तुलना में विशेष नहीं है।

हाली से लेकर इकबाल, ज़फ़र अली खाँ, एहसान और माहिर तक उर्दू-नज़्म अपनी उस ऊँचाई पर पहुँची है जहाँ कि वह पहले नहीं पहुँची थी। 'हफ़ीज़ जालन्धरी' ने 'शाहनामा-ए-इस्लाम' लिखा, जो कि फ़िरदौसी की नक़ल में एक लम्बी ऐतिहासिक कविता है। दक्खन में 'नुस-रती' (मृत्यु १६७३) ने 'अलीनामा' लिखा और 'रुस्तमी' ने 'ख़ावरनामा' रचा, जो कि उर्दू में विवरणात्मक कविता के सबसे पहले नमूने हैं। परन्तु हफ़ीज़ जालन्धरी के 'शाहनामा-ए-इस्लाम' में जितनी बुलन्दी और विरा-ट्ता है उससे पाठक की कल्पना-शक्ति आश्चर्य-चकित हो जाती है। इस काव्य के पहले दो हिस्से तीसरे की अपेक्षा अधिक सफल हैं। तीसरे हिस्से में तो ऐसा लगता है कि मानो उनकी काव्य-शक्ति उन्हें छोड़ गई। हफ़ीज़ की याद उनके गीतों के लिए भी की जायगी, जो कि मधुरता और सरसता में अपनी विशेषता रखते हैं।

आधुनिक साहित्यिक धारा में एक सबसे मनोरंजक विधा है उर्दू में हिन्दी ढंग के गीतों का निर्माण। यह विधा ऐसी कविता की है जिसमें पुरानी इतिहास और मिली-जुली तथा सम्मिश्रित संस्कृति के सबसे अधिक दर्शन होते हैं। अज़मत-उल्लाह खाँ, हफ़ीज़ जालन्धरी, अख़्तर शीरानी, सागर, साकिब, मख़्मूर अहमदपुरी, हफ़ीज़ होशियारपुरी, सागर निज़ामी, आबिद और इन्द्रजीत शर्मा ने सुन्दर मंजी हुई उर्दू में गीत लिखे हैं, जिनमें हमारे घरेलू जीवन की निकटता का सौरभ है। और फ़िराक़, 'आरज़ू' और 'सफ़ा' ने नज़्म में भी उसी तरह की गीतिकाव्यात्मकता व्यक्त की है, परन्तु अज़मतुल्लाह खाँ में उसकी सबसे अधिक उत्कटता दिखाई

[illegible]
दिक शायर के सबसे बड़े शागिर्द हुए. इनकी कविता में [illegible]
है। यही कारण है कि उर्दू में अब तक प्रकाश होते अर्थों की बारीक
और विविधता तथा दृष्टि-कोमलता उनमें मिलती है। [illegible]
की शैली, शब्दों के नए आविष्कार और ऐसे प्रेम-विषयों के, जि
समाज में स्वीकृत नहीं किया जाता था, अर्थात् का साहस भी [illegible]
है। इन तीनों गुणों से उनकी कविता बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त करती
है। [illegible]

१९३४ में 'तरक्की पसन्द अदब' (प्रगतिशील साहित्य) शुरू हु[illegible]
जिसमें एक नए 'जिहाद' का-सा कट्टरपन और प्रभावकारी [illegible]
था। इस आन्दोलन में पुराने सिद्धान्तों को तोड़ने की शुरुआत [illegible]
परन्तु जो नए सिद्धान्त उन्होंने अपनाए, वे इस देश के साहित्यिक [illegible]
सार में अधिक गहरी जड़ न जमा सके। प्रगतिशील लोग इस [illegible]
[illegible] के तीव्र आलोचक थे, और उन्होंने अपने प्रयोगों की अति[illegible]
की सीमा तथा स्पष्टवादिता की [illegible] के किनारे तक [illegible]
का प्रयत्न किया। 'तीखी' और 'सालिब' इसके उदाहरण [illegible]
उन्होंने अपनी राजनीतिक विचार-धारा को पूर्णतः बड़े [illegible]
से बताई, इसमें गहराई बहुत कम थी। एक विशेष राजनीतिक [illegible]
आधार पर और ऐसे के बावजूद यह आन्दोलन, यद्यपि [illegible]
उतर जाने के बाद, उर्दू-साहित्य को एक नई प्रेरणा, [illegible]
साहस दिला के गया। जोश, फ़ैज़, फ़िराक़, जाफ़री, मजाज़,
जाँनिसार अख़्तर और मख़दूम आदि इस धारा के प्रमुख [illegible]
इनमें एक विलक्षण भावात्मकता और अत्यन्त सम्वेदनशीलता है। मजाज़
की बदलने और उसका नए सिरे से निर्माण करने की चुनौती [illegible]
अनुभव किया, तथा अपने तरीक़े से उसका यथार्थ चित्रण भी [illegible]
कोशिश की। कहीं-कहीं पूरक पढ़ने पर, उनकी कविता [illegible]
की तरह सुन्दर लगती है। यह इसलिए और भी विचित्र [illegible]

उसमें गरीबी, गुलामी और शोषण के जमाने की एक उत्कट भावपूर्ण अभिव्यंजना मिलती है। १६३१ के बाद जनता का जबरदस्त आन्दोलन शुरू हुआ। श्रमिक-वर्ग समाजवादी शासन कायम करने के लिए संघर्ष करने लगा। इन प्रगतिशील कवियों की कविता में इस जागरण का चित्र है। यद्यपि यह सही है कि उनमें सम्पूर्णता और स्थायित्व नहीं है। फिर भी वे तीखे, असन्तुष्ट और बेदार हैं। उन्होंने खिड़कियों को खोला और हमें भी बुलाया तथा कहा कि झुककर बाहर झांको!

पूरे उर्दू-काव्य-साहित्य पर विचार करते हुए ऐसा लगता है कि वह बहुत प्रेरणादायक और असंख्य सम्भावनाओं से भरा हुआ है। उसमें हमारी देश-भक्ति का जज़्बा, असाम्प्रदायिकता और उदार दृष्टिकोण, स्वातंत्र्य-संग्राम और आर्थिक विषमता के विरुद्ध संघर्ष, दंगों से लहू-लुहान देश का दर्द और शरणार्थियों की भयानक समस्याएं, इन सब बातों का तटस्थ प्रतिबिंब मिलता है। विभाजन के बाद जो दुख-दर्द आया, धीरे-धीरे वह दर्द कम हो गया है। जख्म भर रहे हैं, कड़ुवाहट कम हो रही है। हमने अब एक कल्याण-राज्य और समाजवादी ढंग के समाज की नींव रखी है। साथ-ही-साथ हम एक ऐसे नए सौन्दर्यदर्शी दृष्टिकोण की भी नींव रख रहे हैं, जिसमें संस्कृति के हमारे गहरे ज्ञान के साथ-साथ अन्य संस्कृतियों के अतीत और वर्तमान का भी ज्ञान सन्निहित होगा। आज के उर्दू-कवि में प्रयोजन की गम्भीरता और आगे बढ़ने का साहस है। वह नए हिन्दुस्तान के स्वप्न को पकड़ना चाहता है। उसकी पहुँच और पैठ एक साथ व्यापक और स्फूर्तिदायक है। अधिक प्रभावशाली होने के लिए उसमें भावना और विचार का सन्तुलन तथा सहकार आवश्यक होगा। सच्ची काव्य-कला के सृजन की यही एक आवश्यक शर्त है। समकालीन अभिरुचि के लिए उसे बहुत अधिक स्पष्टता, और सर्व-साधारण तथ्यों को दोहराना आदि बातें कम करनी होंगी।

[illegible] और विचारधारा में [illegible]

मेहनतकश किसान भाइयों के जीवन की चुनी हुई सार्थक घटनाओं और उत्कट क्षणों को चित्रित किया। लेकिन नियाज़, यलदरम और लाम० अहमद यथार्थ को एक ओर ठेलकर दूसरी ओर बड़ी मौलिकता दिखला रहे थे। उनका कृत्रिम कल्पनाशील और सुपरिचित यथार्थ को रोमांटिक ढंग से चुनना, ऐसा था कि उनका प्रभाव उस युग के प्रत्येक लेखक पर हुआ। प्रेमचन्द ने कहानी को रोमांटिकवाद की दलदल से उबारा; नियाज़ और यलदरम की एकतरफ़ा कोशिश से कहानी उस स्थान पर पहुँची थी। उर्दू कहानी को प्रेमचन्द ने इस तरह से एक मज़बूत नींव पर रखा। उनके सामने चेखव और मोपासां-जैसे विदेशी आदर्श लेखक थे। प्रगतिशील साहित्य के आन्दोलन ने कहानी लिखने की रुचि को बढ़ाया, और १९३६ के बाद तो वह साहित्य की एक निश्चित दिशा ही बन गई। प्रेमचन्द ने उर्दू कहानी को एक प्रयोजनशील दिशा देकर जैसे अपने तूफ़ानी ज़माने की आत्मा का इतिहास व्यक्त कर दिया।

प्रेमचन्द कभी-कभी सुधारवादी हो उठते हैं, लेकिन उन्होंने अपने प्रदेश के लोगों की ज़िन्दगी में से महत्त्वपूर्ण घटनाएँ और व्यक्तिगत भावनाएँ चुनकर उनका यथातथ्य सफल मानवतावादी ढंग से किया। उनकी कहानियों में कला और जीवन का बड़ा सुन्दर संगम मिलता है, उदाहरणार्थ 'कफ़न' उनकी एक उत्कृष्ट कहानी है। उर्दू कहानी के इतिहास में यह एक नया मोड़ है। १९३२ में विभिन्न लेखकों की कहानियों का एक संग्रह 'अंगारे' नाम से प्रकाशित हुआ और वह ज़ब्त हो गया, फिर भी उसका समकालीन कहानी-लेखकों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना अपने महत्त्वपूर्ण घटना थी, जिसने कहानी की राह ही बदल दी, और उसे यथार्थवाद की ओर मोड़ दिया गया।

१९३६ से १९४६ तक उर्दू-कहानी में प्रगति धारा के घोषणा-पत्र की ही गूंज और प्रतिगूंज सुनाई देती है। हुसैनी, कृशनचन्दर, बेदी, अख्तर अंसारी, अहमद अली, इस्मत, हयातुल्लाह, बलवंत सिंह, अहमद नदीम क़ासमी, हसन अस्करी, गुलाम अब्बास, मुमताज़ शीरीं, मुमताज़ मुफ्ती, इब्राहीम जलीस और मंटो में से हरेक ने अपने-अपने ढंग से कहानी के विकास में सहायता दी। उनकी कल्पनाशील प्रतिभा सब प्रकार की रूढ़ियों और परम्पराओं को तोड़कर आगे बढ़ी, और उन्हें नया रास्ता तथा नई शैली बनाने में उसने सहायता दी। यह लेखक जितनी ही प्रवृत्तियों के आन्तरिक द्वंद्व से उलझते दिखाए हैं उतना ही सामाजिक और समाज-वैज्ञानिक समस्याओं से भी। अहमद अली की 'हमारी गली', और 'मेरा कमरा', कृशनचन्दर की 'दो फर्लांग लम्बी सड़क', मन्टो की 'नया क़ानून', हयातुल्लाह की 'आख़िरी कोशिश', इस्मत की 'दोज़ख़ी' और बेदी की 'गर्म कोट' शीर्षक कहानियां मेरे कथन की उत्तम उदाहरण हैं। इनमें हमें कला और जीवन का उत्तम संगम मिलता है। कुछ कहानियां दुर्भाग्य से सेक्स के मामले में वैचित्र्य-भरी, अति प्रगल्भ और चीत्कारमयी हैं।

मंटो, बेदी, कृशनचन्दर, इस्मत, हयातुल्लाह, अख्तर ओरानवी और अहमद अली इत्यादि की कहानियां इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि उनमें एक व्यापक क्षेत्र, विविधता और भांति-भांति के स्वर पाये जाते हैं। कल्पना और निरीक्षण का उनमें सुखद मिश्रण हुआ है, और यह भविष्य के लिए बहुत अच्छा चिह्न सिद्ध हुआ है। अहमद नदीम क़ासमी, बलवन्तसिंह, गुलाम अब्बास, हिजाब इम्तियाज़, मुमताज़ मुफ्ती, आग़ा बाबर, इब्राहीम जलील, हाजरा मसरूर, खदीजा आबिद हुसैन, सादीक़ा मंसूर, मुमताज़ शीरीं, शमीम सलीम, महेन्द्रनाथ, सुहैल, कुर्रतुलऐन और शफ़ीकुर्रहमान प्रमुख कहानी लेखकों के नाते आगे आए, जिन्होंने मनुष्य-स्वभाव के अपने निरीक्षण बड़ी ईमानदारी और नाटकीय प्रभाव से कहानियों में आंके। मगर कुछ कमज़ोर कलाकारों के द्वारा कहानी सेक्स की कुण्ठा, सनसनीखेज़ चमत्कारवाद और भूठी-भावुकता की घना-

१९४७ में देश का विभाजन एक भयानक ट्रैजेडी थी; और उसके साथ-साथ अकथनीय दुःख और दर्द लाखों लोगों को उठाना पड़ा। बहुत-सों के घर-बार नष्ट हो गए और बहुत-से या तो हिन्दुस्तान में आए या उन्हें पाकिस्तान में जाना पड़ा। उर्दू-कहानी-लेखकों ने इस ट्रैजेडी का बड़ी तटस्थता और तीखेपन से वर्णन किया। कृश्नचन्दर की 'हम वहशी हैं' समझदारी और उदारता के लिए की गई उनकी हार्दिक अपील है। उनकी काव्यमयता और मानववाद यहाँ स्पष्ट दिखाई देते हैं और यह सचमुच एक उत्तम कला-कृति है। इस्मत ने भी दंगों और उनके साथ उठने वाली समस्याओं पर लिखा है। उनकी कहानी 'सोने का अंडा' और 'चौथी का जोड़ा' शान में कम नहीं हैं। मगर उनकी कहानियाँ कृश्नचन्दर की कई कहानियों की तरह से बहुत खुली और जोश-भरी हैं। ऐसा लगता है कि कलाकार का व्यक्तित्व सोद्देश्यता की भीड़ में खोता हो गया है। अहमद नदीम कासमी एक प्रामाणिक यथार्थवादी कुशल कहानी-लेखक हैं, उन्होंने प्रवृत्तियों की आन्तरिक हलचलों का चित्रण करके मानवीय समस्याओं पर ज़ोर दिया है। उनका दृष्टिकोण राजनैतिक न होकर कलात्मक अधिक है, और उनकी कहानियों में कल्पना और भावना के द्वारा जीवन का नया अर्थ पाने की कोशिश दिखाई देती है। 'नया फरहाद', 'ग्रासिसे-गुन' और 'अलहमदुलिल्लाह' में वे बहुत प्रामाणिक और प्रेरणादायक हैं तथा उनकी अपनी विशेष शैली है। ख्वाजा अहमद अब्बास भी दिलचस्प लेखक हैं, मगर उनके दोष वही हैं जो कृश्नचन्दर के; और उनकी कहानियों में जहाँ राजनैतिक संदेश है, वहाँ स्पष्टतः सृजनात्मक शक्तियों का ह्रास दिखाई देता है।

उदीयमान कहानी-लेखकों में से निम्न लेखकों का उल्लेख किया जा सकता है—देवेन्द्र इस्सर, अनवर अज़ीम, अशफ़ाक़ अहमद, अमीनहीन,

इब्नुल हसन, खलील अहमद, शौकत सिद्दीकी, अनवर और इन्तजार हुसैन । इनमें कहानी के शिल्प के कई ढंग दखाई देते हैं, जो कि पाठक में सजीव अनुभव का स्पर्श जागृत करते हैं । इनमें रचना की साहसिकता और यथार्थवादी व्यंजना दिखाई देती है । जहां तक विषय-वस्तु और उसकी शिल्पगत विविधता का प्रश्न है, वे सबसे अधिक पठनीय हैं । प्रकृति-वर्णन की पृष्ठभूमि पर इन्होंने संकेत और विषय-वस्तु को बुनने की कोशिश की है । थोड़े-से कुशल आघातों से वे उन सूक्ष्म मन:स्थितियों का अनुभव हमें करा देते हैं, जो घटना और परिस्थितियों के बन्धन को नहीं मानतीं । अब कुरूपता का आग्रह कम होता जा रहा है, तब ये लेखक जीवन से सुन्दर छोटे-छोटे स्थल चुन रहे हैं । चरित्र और घटनाओं के नए अर्थ को भी इन्हें टोह है । सृजनशील कलाकारों के नाते उनमें कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है । वे समकालीन युग का भावनात्मक इतिहास दे रहे हैं, यही कहा जा सकता है । अब वे उस अश्रद्धा की छाया से मुक्त हो रहे हैं और यह अनुभव हो रहा है कि हिन्दुस्तान में शान्ति और समृद्धि का नव जागरण आ रहा है ।

उपन्यास

उर्दू उपन्यास 'दास्तान' या 'कहानियों की परम्परा' में विशेष समृद्ध रहे हैं । ये ज्यादातर फारसी से अनुवादित होते थे और नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित होते थे । ये मानवोपरि कहानियां, साधारणतया साहस, स्त्री-दाक्षिण्य और प्रेमभरी घटनाओं का बहुत लम्बा-चौड़ा वर्णन देती थीं । इनमें अलौकिक शौर्य और सद्गुणों से भरे हुए नायक होते थे और वे क्रमश: कई तरह के जादूगरों और राक्षसों के साथ रोमहर्षक सामना करते हुए चले जाते थे । इन खल-नायकों में भी जो ईर्ष्या और दुष्टता होती थी वह अकल्पनीय थी । नजीर अहमद (मृत्यु १९१२) के बाद उर्दू उपन्यास का पण्डित रतननाथ सरशार (मृत्यु१९०२) से वास्तविक आरम्भ हुआ, जिन्होंने १८७८ में 'फसाना-

आदर्शीकरण नहीं करती। अब्दुल हलीम शरर (मृत्यु १९२६) का 'दिले-गुदाज़' भी ऐतिहासिक उपन्यासों में एक उपयोगी देन थी। उपन्यासकार, इतिहासकार, आलोचक, निबन्धकार, तथा पत्रकार सभी दृष्टि से 'शरर' एक ऊँचे लेखक थे। बहुत अधिक लिखकर भी वे बराबर एक हास्य-लेखक ही बने रहे। लखनऊ की एक पढ़ी-लिखी नर्तकी 'उमराव जान', जिसका कि तख़ल्लुस 'अदा' था, की आत्म कथा के रूप में 'उमराव जान अदा' नामक पुस्तक लिखने के कारण मिर्ज़ा हादी रुसवा प्रसिद्ध हैं। नज़ीर अहमद के 'जाहिदर बेग', सरशार के 'खोजी', रुसवा के 'बिसमिल्ला' और राशिदुल ख़ैरी के 'नानी आसोब' बहुत ही मनोरंजक और सजीव चित्र हैं ; जो उर्दू साहित्य में सदा याद किये जायेंगे।

उपन्यासकारों में सबसे ऊँचे प्रेमचन्द थे। वे यथार्थवादी और गरीब दलितों के दुख-दर्द का सही चित्रण करने वाले थे। वस्तुतः उन्होंने हाँके जाने वाले गूँगे पशुओं को भी वाणी दी और उनमें सरल मानवीयता की भव्यता भर दी। हमारी जनता के आर्थिक संघर्ष और आत्मिक जागरण की झाँकी हमें प्रेमचन्द में देखने को मिलती है। वे कहानी-लेखक और उपन्यासकार के लिए पथ-निर्देशक प्रकाश की तरह थे। उनका उपन्यास 'मैदाने-अमल' शरर, रुसवा और राशिदुल ख़ैरी के उपन्यासों से इतना भिन्न है कि वह आधुनिक उर्दू उपन्यासों का आरम्भ है। उनका 'गोदान' एक शाहकार है। ग्रामीण जनता की ज़िन्दगी यहाँ उपन्यास के रूप में बड़ी स्पष्टता से नाट्यमय ढंग से अंकित की गई है। इसमें इतनी विविधता की रंगीनी है कि जो पहले उर्दू उपन्यास में कभी नहीं दिखाई गई।

'प्रगतिशील आन्दोलन' मुख्यतः कहानियों पर ज़ोर देता रहा,

उपन्यास पर उतना नहीं। १६३६ से १६४६ के काल-खण्ड में उर्दू में कहानी ही प्रमुख विधा रही। इस दशक में सिर्फ कृशनचन्दर का 'शिकस्त' एक-मात्र पठनीय उपन्यास लिखा गया, जिसमें कि कोई विशेषता नहीं है और जो बिलकुल सृजनात्मक नहीं है।

आज के प्रसिद्ध उपन्यासकारों में इस्मत चुग़ताई, अज़ीज़ अहमद, कुर्रतुल ऐन हैदर और सालिहा आबिद हुसैन का उल्लेख किया जा सकता है। इस्मत की 'टेढ़ी लकीर' की कल्पना मौलिक नहीं है, लेकिन उसका शिल्प और ढंग नया है। उसने इस उपन्यास में एक मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार का गहन चित्रण करके उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि में सेक्स की भावना का अध्ययन प्रस्तुत किया है। अज़ीज़ अहमद का 'गुरेज़' बड़े चमकीले ढंग से लिखा गया है। मगर सेक्स की समस्या को उन्होंने जिस तरह से प्रस्तुत किया है उसके नंगेपन और स्थूलता से कई पाठक चौंकते हैं। अज़ीज़ अहमद की 'ऐसी बुलन्दी ऐसी पस्ती' और 'दावतम' बस पढ़ने ही योग्य है, और कुछ नहीं।

कुर्रतुल-ऐन हैदर ने दो महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखे हैं, 'मेरे भी सनम ख़ाने' और 'फ़सानए-ग़मे-दिल'। उन्होंने जेम्स जॉयस की नकल करने का प्रयत्न किया है, और कभी-कभी सफलता पूर्वक अचेतन मन के प्रवाह को अंकित करने का शिल्प अपनाया है।

सालिहा आबिद हुसैन के अतिरिक्त आज के प्रायः सभी उपन्यास-कार श्रद्धा-शून्य हैं। वह भी बहुत चैतन्यमय या गहरी लेखिका नहीं है, मगर उन्हें कुछ कहना है। एहसन फारूकी ने आधुनिक जीवन के ढकोसलों पर पैना व्यंग्य है। उनकी 'आशनाई' और 'शामे-अवध' आकर्षक हैं, लेकिन उनमें गहराई नहीं है। फ़य्याज़ अली के उपन्यास 'अनवर' और 'शमीम' मनोरंजक हैं। शायद उन-जैसे लेखक बहुत थोड़े हैं, जो कि जन-रुचि को सही-सही समझते हैं। रामानन्द सागर का उपन्यास 'और इन्सान मर गया' पहले पृष्ठ से अन्तिम पृष्ठ तक पाठक का ध्यान खींचकर रखता है। १६४७ के साम्प्रदायिक दंगों में

उर्दू उपन्यास में कई कमियाँ हैं। उर्दू में ऐसे बहुत थोड़े [illegible] हैं जिन्होंने दुनिया के बड़े साहित्य का अध्ययन किया हो और जो कि मानवी चेतना की जटिलता में गहरे घुस सके हों या सजीव अनुभव का प्रामाणिक स्पर्श पाठक को दे सके हों। अहमद अली, कृशनचन्दर, इस्मत, अजीज़ अहमद, ख्वाजा अहमद अब्बास, सालिहा आबिद हुसैन, कुर्रतुल ऐन हैदर, ए० हमीद, इंतिज़ार हुसैन, आदिल रशीद, रशीद अख्तर, जमनादास अख्तर और शौकत थानवी प्रभावशाली तथा उदीयमान उपन्यासकार हैं। कुल मिलाकर वे उर्दू की मानवतावादी परम्पराओं के प्रति पूर्ण आस्था रखते हैं।

रेखा-चित्र और रिपोर्ताज़

रेखा-चित्र-लेखकों में फरहतुल्ला बेग, रशीद अहमद सिद्दीक़ी, क़ाज़ी अब्दुल गफ्फार, मौलाना अब्दुल मजीद दरियाबादी, नियाज़ फतेहपुरी, डा० आबिद हुसैन और ख्वाजा हसन निज़ामी के नाम बहुत महत्वपूर्ण हैं। हिन्दुस्तानी जीवन और रिवाजों की बहुत रंगीन झाँकी उनके स्केचों में मिलती है और उन्हें पढ़कर पाठकों को आनन्द होता है।

उर्दू साहित्य में रिपोर्ताज अभिव्यंजना का नया माध्यम है। कृशनचन्दर के 'पौधे', 'सुबह होती है', आदिल रशीद के 'खिज़ाँ के फूल', फिक्र तौंसवी का 'छठा दरिया', ताजवर सामरी का 'जब बंधन टूटे' और इब्राहीम जलीस का 'दो मुल्क एक कहानी' पत्रकारिता की विजय दिखलाकर यही सिद्ध करते हैं कि विभाजन के बाद भी उर्दू के लेखकों ने अपना मानवतावादी दृष्टिकोण कैसे दृढ़ रखा।

नाटक

उर्दू में सबसे पहला नाटक अमानत की 'इन्दर-सभा' था। यह

संगीतमय सुखान्त नाटक वाजिद अली शाह के जमाने में खेला गया। १८६५ में उन्हें गद्दी से उतार देने के बाद, पारसी थियेट्रिकल कम्पनी ने जनता के मनोरंजन के लिए नाटक खेले। मोहम्मद मियाँ रौनक बनारसी, तालिब और एहसान लखनवी इस कम्पनी के प्रसिद्ध नाटककार थे। आग़ा हश्र काश्मीरी को 'उर्दू रंगमंच का मारलो' कहा जाता है। इस युग के अधिकतर नाटक बड़े ही कठिन और लययुक्त गद्य में लिखे गए हैं।

उर्दू में बड़े नाटकों का बहुत अभाव है। इश्तियाक़ हुसैन क़ुरैशी, सैयद इम्तियाज़ अली 'ताज', प्रोफेसर मोहम्मद मुजीब, डा० आबिद हुसैन, अहमद शुजा, शाहिद अहमद देहलवी, आबिद अली आबिद, फ़ज़ल हक़ क़ुरैशी, मन्टो, मिर्ज़ा अदीब, उपेन्द्र नाथ अश्क, मोहम्मद हुसैन, के० एल० कपूर और मोहन कामथी ने उर्दू नाटक के क्षेत्रों को काफ़ी प्रतिष्ठा दी। देश की स्वतंत्रता और मिश्र-संस्कृति को अपनाने के साथ-साथ उर्दू नाटक भी आगे बढ़कर पहले की कमियों को पूरा करने का प्रयत्न कर रहा है। एकांकी नाटक और रेडियो-नाटक भी बहुत लोकप्रिय हैं। फ़िल्म-संवादों की भी बाढ़-सी आई है, मगर वे साहित्य के लिए देन न होकर जनता की अभिरुचि पर टिप्पणी हैं।

भारत में उर्दू थियेटर विकसित करने की गहरी कोशिश हो रही थी। आधुनिक थियेटर देशज नहीं है। पश्चिमी रंगमंच के प्रभाव से क़रीब एक सदी से उसका विकास हो रहा है। जन-नाट्य के पुराने रूप जो अभी बचे हैं वे गाँवों और मेले-ठेलों के घुमन्तू अभिनेताओं तथा मण्डलियों के रूप में हैं और वे भी कम होते जा रहे हैं। यह ज़ोरों से कोशिश की जा रही है कि इस पुरानी परम्परा को भी जीवित रखा जाय। हबीब तनवीर का 'आगरा बाज़ार' पुराने और नए ढंग के नाटकों का एक सुन्दर मिश्रण है, जो उर्दू नाटक के उज्ज्वल भविष्य का सूचक है।

हामिद हसन कादरी, [illegible] मजनूं गोरखपुरी, प्रोफ़ेसर कलीमुद्दीन, प्रोफ़ेसर मसूद हुसैन रिज़वी, इबादत बरेलवी, फ़िराक, असकरी और मुमताज़ हुसैन के नाम महत्व-पूर्ण हैं। प्रोफ़ेसर आले अहमद सरूर और एहतशाम हुसैन प्रसिद्ध समी-क्षक हैं, जो कि साहित्य को उसके सही सामाजिक रूप में देखते हैं। आलोचना के नाम पर इम्प्रेशनिज़्म (प्रभाववाद) की धारा ज़ोरों से बह रही है, और उसे 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त का समर्थन भी प्राप्त है, लेकिन अब वह धारा बहुत धीमी हो गई है। साहित्य के इतिहासकारों में मोहम्मद शेरानी, गुलाम रसूल मेहर, हामिद हसन कादरी, नसीरुद्दीन हाशमी, अब्दुस्सलाम नदवी, डॉ० रामबाबू सक्सेना, मालिकराम, असर अज़ीम, तन्हा, प्रोफ़ेसर सरवरी, डा० ज़ोर आदि कई लेखक और प्रसिद्ध हैं, जिनकी खोजों ने नए तथ्यों पर प्रकाश डाला है, कई ग़लतियों को सुधारा है और कई विख्यात कृतियों को चिकित्सक-जैसी तटस्थता से परखा है। उर्दू साहित्य के क्षेत्र में काज़ी अब्दुल वदूद, इम्तियाज़ अली अर्शी और डॉ० अब्दुल सत्तार सिद्दीकी का काम भूस्तर-वैज्ञानिकों-जैसा है, जिन्होंने अतीत काल के चित्रों वाले जो पत्थर बचे हैं उन्हें खोज निकाला और जाँचा है। इधर की दशाब्दी में आलोचनात्मक साहित्य में बड़ी बाढ़ आई ; यद्यपि सच्ची वैज्ञानिक पद्धति से आलोचना का लिखा जाना अभी बाकी है।

हास्य और व्यंग

[illegible] में व्यंग साहित्य की चमक आ गई है। इम्तियाज़ अली ताज, [illegible] अहमद सिद्दीकी, काज़ी अब्दुल गफ्फार, डॉ० आबिद हुसैन [illegible] और शौकत थानवी ने बड़ी मधुरता और [illegible] [illegible] में [illegible] के साथ लिखा है, और उनकी शैली में बड़ी

हाज़िर-जवाबी है।

वैज्ञानिक और ऐतिहासिक साहित्य

वैज्ञानिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, शैक्षणिक और अन्य गम्भीर विषयों पर लिखने वाले उर्दू लेखकों में बहुत ही थोड़े लेखकों का उल्लेख किया जा सकता है। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, डॉ० आबिद हुसैन, ख्वाजा गुलामुस्सैयदैन, डॉ० ज़ाकिर हुसैन, सैयद सुलेमान नदवी, मौलाना अब्दुल मजीद दरियाबादी, नियाज़, अबुलहसन अली, शाह मोईनुद्दीन, ज़फ़र हुसैन, सईद अहमद, हिफ़्ज़ुर्रहमान, मौलाना हुसैन अहमद, मनाज़िर एहसन गैलानी, खलीक़ अहमद निज़ामी, मौलाना अशरफ़ अली, शहाबुद्दीन अब्दुर रहमान और मौलाना मौदूदी ने बहुत-सा गम्भीर साहित्य लिखा है, जिनमें स्पष्टता, विद्वत्ता, शोध या रूपान्तर सभी गुणों के आदर्श मिलते हैं।

पत्र-साहित्य

उर्दू इस क्षेत्र में बहुत ही समृद्ध है। उर्दू ख़तूत में बड़ी विविधता और व्यापकता मिलती है। साहित्यिक इतिहास में रजब अली बेग सुरूर, वाजिद अली शाह, मिर्ज़ा ग़ालिब, हाली, शिबली, मेहदी अफ़ादी और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद-जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने ये पत्र लिखे हैं। विचार और भावनाओं का वह अंतर्द्वन्द्व, जो कि इन संवेदनशील आत्माओं में पाया जाता है और जो उनकी हार्दिक भाषा-शैली में व्यक्तिगत बातचीत के ढंग पर व्यक्त किया गया है, उसकी स्पष्ट झाँकी इन पत्रों में मिलती है। नियाज़ के पत्र साबुन के बुलबुलों की तरह हैं, इतने नाज़ुक और हसीन कि उन्हें छूते हुए डर लगता है। मौलवी अब्दुल हक़ और हामिद हसन क़ादरी के पत्र ऐसे अनौपचारिक और प्रत्युत्पन्न हैं कि जैसे उनकी दैनिक बातचीत होती थी; और इन लेखकों की तरह वैसे ही वे स्पष्टवादिता और सहृदयता से भरे हैं। डॉ० इक़बाल और सैयद

उन्हें पढ़ने के लिए अवकाश मिला और वे तब तक नहीं भेजे गए जब तक कि हर जुमला घिसकर एक फूल नहीं बन गया। रेशम के कीड़े की तरह उन्होंने इन पत्रों को अपने जेल के दिनों में काता है, शब्दों की नक़्क़ाशी और सुकोमलता तथा निर्दोष कलात्मकता की दृष्टि से यह पत्र लासानी हैं। सज्जाद ज़हीर ने भी जेल में से चिट्ठियाँ लिखीं, मगर वे पढ़ने में बहुत ही रसहीन और भयानक लगती हैं। सफ़िया अख़्तर की चिट्ठियों में बड़ी ताज़गी और भावनाओं की गहराई दिखाई देती है। इनके पत्रों की शक्ति और संयम का सामूहिक प्रभाव पढ़ने वाले पर ऐसा ही होता है जैसा किसी दवा या समुद्री हवा का। उनकी अपनी एक विशेष शैली है। उनके पत्रों में उनके व्यक्तित्व का सार इस तरह मँडराता है जैसे कि कोई व्यापक सौरभ हो।

हिन्दुस्तान के इतिहास की तूफ़ानी नदी में आज का युग आशा और सम्भावनाओं के जादुई द्वीप की तरह से अलग खड़ा है; और इस देश की उन्नति के बड़े आन्दोलन में एक महत्वपूर्ण मंज़िल की तरह से है। तूफ़ान और अंधेरे की रात गुज़र चुकी है। आज के उर्दू साहित्य में यह सब धाराएँ झलकती हैं; यह जीवन और प्रेम का एक संश्लेषण है। कई कमियों के बावजूद यह उदार, प्रेरणादायक और मानवतापूर्ण है और नए भारत के निर्माण में उसका जो सामाजिक उत्तरदायित्व है उसे यह भूला नहीं है।

* इस पुस्तक का कठिन शब्दों के अर्थ सहित नागरी लिपि में, रूपान्तर साहित्य ... से प्रकाशित होने वाला है।

कन्नड

वि० कृ० गोकाक

भूमिका

[illegible]

[illegible]

सुलेमान विविध प्रकार की साहित्यिक हलचलों के बीच में अपने पत्र भी लिखते रहे हैं, लेकिन उनमें उनके मन का पूरा संकेत मिलता है। मौलाना आज़ाद के पत्र 'गुबारे ख़ातिर' * जल्दी में नहीं लिखे गए थे, उन्हें पकने के लिए अवकाश मिला और वे तब तक नहीं भेजे गए जब तक कि हर जुमला लिखकर एक फूल नहीं बन गया। रेशम के कीड़े की तरह उन्होंने इन ख़तों को अपने जेल के दिनों में काता है, शब्दों की नक्क़ाशी और सुकोमलता तथा निर्दोष कलात्मकता की दृष्टि से यह पत्र लासानी हैं। सज्जाद ज़हीर ने भी जेल में से चिट्ठियाँ लिखीं, मगर वे पढ़ने में बहुत ही रसहीन और भयानक लगती हैं। सफ़िया अख़्तर की चिट्ठियों में बड़ी ताज़गी और भावनाओं की गहराई दिखाई देती है। उनके पत्रों की शक्ति और संयम का सामूहिक प्रभाव पढ़ने वाले पर ऐसा ही होता है जैसा किसी दवा या समुद्री हवा का। उनकी अपनी एक विशेष शैली है। उनके पत्रों में उनके व्यक्तित्व का सार इस तरह मँडराता है जैसे कि कोई व्यापक सौरभ हो।

हिन्दुस्तान के इतिहास की तूफ़ानी नदी में आज का युग आशा और सम्भावनाओं के जादुई द्वीप की तरह से अलग खड़ा है; और इस देश की उन्नति के बड़े आन्दोलन में एक महत्त्वपूर्ण मंज़िल की तरह से है। तूफ़ान और अंधेरे की रात गुज़र चुकी है। आज के उर्दू साहित्य में यह सब धाराएँ झलकती हैं; वह जीवन और प्रेम का एक संश्लेषण है। कई कमियों के बावजूद वह उदार, प्रेरणादायक और मानवतापूर्ण है और नए भारत के निर्माण में उसका जो सामाजिक उत्तरदायित्व है उसे वह भूला नहीं है।

* इस पुस्तक का कठिन शब्दों के अर्थ सहित नागरी लिपि में, रूपान्तर साहित्य अकादेमी से प्रकाशित होने वाला है।

काल-खण्ड साहित्य और जीवन में वीरशैव क्रांति का युग है। इसमें से नई साहित्य-विधाएँ—जैसे 'वचन' या छोटे गद्य-गीत और नये छंद जैसे रगळे, त्रिपदी और षट्पदी निकलीं। गद्य-शैली बोल-चाल की भाषा के निकट आ गई। १३३६ से १५७५ तक का युग स्वर्ण विजयनगर-युग था, जिसमें 'दासों' या वैष्णव संत कवियों की, कुमारव्यास, लक्ष्मीश और रत्नाकरवर्णी-जैसे महाकवियों की, निजगुण शिवयोगी-जैसे वीरशैव रहस्यवादियों की रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १५७५ से १७०० तक मुख्यतः पुरानी साहित्यिक विषय-वस्तु ही आगे चलती रही। विजयनगर के विध्वंस के बाद बदली हुई समाज-व्यवस्था की ओर सर्वज्ञ-जैसे व्यंग्यकार निर्देश करते हैं। अट्ठारहवीं शती में मैसूर के चिक्कदेव राय के नीचे चपू काव्य का पुनर्निर्माण होता है, और गद्य का विशेष रूप से; जैसे इतिहास आदि के लिए प्रयोग पाया जाता है। उन्नीसवीं शती के द्वितीय शतक तक यह विषय बराबर चलते रहते हैं। आधुनिक काल प्रायः इसी समय शुरू हुआ।

आधुनिक काल

आज के भारत की नाना रूपों में उपलब्धियों का निर्माण जीवन के जिस नये विचार और आचार-आन्दोलन से शुरू हुआ, उसका आरम्भ एक शताब्दी से पहले हुआ। उसका पूरा प्रभाव, और जिस संश्लिष्ट परिवर्तन की ओर वह प्रकट और अदृश्य रूप से हमें ले जा रहा है उसका पूरा अनुभव अभी नहीं हो पाया है। कन्नड साहित्य पर इन नई शक्तियों का प्रभाव पिछली शती के मध्य में शुरू हुआ। उस समय के कुछ विद्वानों और ईसाई मिशनरियों के लेखन में यह प्रभाव दिखाई देता है। उसी समय कन्नड भाषा भी मध्य युग से आधुनिक रूप और शैली की ओर बढ़ रही थी। केम्पु नारायण का 'मुद्रामंजूषा' (१८२३) मध्य युग से आधुनिक कन्नड की ओर स्थित्यन्तर का पथ-चिन्ह है। यह गद्य में एक रोमांस है, जिसमें कि संस्कृत के नाटक

'मुद्राराक्षस' की कहानी को एक ऐसी भाषा में मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कि मध्ययुगीन और आधुनिक व्याकरण-रूपों का विचित्र मिश्रण है। मुम्मडि कृष्णराय, जो कि १७९४ से १८६८ तक मैसूर राज्य के राजा थे, कला और साहित्य के बड़े आश्रयदाता और स्वयं एक उत्तम साहित्यकार थे। उनके नाम पर जो कन्नड रचना मिलती है वह मुख्यतः गद्य में है। वह स्वयं इस बात का चिन्ह है कि आने वाला युग क्या था, यानी कन्नड में इस काल के बाद गद्य अधिक महत्त्व प्राप्त करने लगा। यह कहा जाता है कि जहाँ गद्य समाप्त होता है वहाँ पद्य शुरू होना चाहिए, मगर इससे पूर्व के १४०० वर्षों के कन्नड साहित्य में गद्य तो कहीं भी शुरू नहीं हुआ था और पद्य अनन्त था। कन्नड साहित्य के इस आधुनिक गद्यराज्य के स्वामी के नाते एक मैसूर का राजा प्रख्यात है।

पश्चिमी प्रभाव

आधुनिक भारतीय साहित्य का निर्माण देशज या विदेशी प्रभाव से हुआ, जो कुछ दिनों के बाद केवल विद्वानों की चर्चा का गौण विषय बन जायगा। लेकिन यह बात बहुत सही है, और जिसे शुरू में ही कह देना चाहिए कि पश्चिम ने भारतीय क्षितिज पर ऐसे दीपक जलाए जो कि पहले कभी नहीं देखे गए थे। भारतीय लेखकों के विचार-विश्व में १०० वर्ष पहले जो भाव तैरकर आया वह एक नया नक्षत्र ही नहीं था, परन्तु एक समूचा आकाश था। अंग्रेजी साहित्य ने भारतीय लेखकों को नई आँखें और नये कान दिए। उपन्यास, छोटी कहानी, शोकान्तिका, जीवन-चरित, आत्म-कथा, निबन्ध, डायरी, पत्र, गीति-काव्य या ऐसी ही और नई साहित्यिक विधाएँ तथा उनकी आकर्षक उपशाखाएँ उनके सामने अनन्त वैविध्य और समृद्धि का कोष खोलने लगीं। उन्होंने बड़ी दिलचस्पी से शेक्सपीयर और मिल्टन, एडीसन और स्विफ्ट, जौन्सन, गोल्डस्मिथ और बर्क, वर्डसवर्थ, शेले, कीट्स, स्कॉट,

जेन आस्टीन और मेरडिथ, डिकन्स और थैकरे की रचनाएँ पढ़ीं। स्काट ने जो स्फूर्ति बंगला में बंकिम और मराठी में आपटे को दी थी, वह इन सब उपन्यासकारों ने कन्नड में वेंकटाचार्य और गळगनाथ को प्रदान की।

शेक्सपीयर ने कन्नड सुखान्त नाटक, शोकान्तिका और ऐतिहासिक नाटकों के निर्माण को प्रभावित किया। यहाँ तक कि कन्नड पौराणिक नाटकों पर भी शेक्सपीयर की रचना का प्रभाव है। गोल्डस्मिथ और शेरीडन ने कन्नड में 'कामेडी आफ मैनर्स' की उद्भावना की। इब्सन कन्नड सामाजिक नाटकों के स्फूर्तिदाता थे, और शॉ विवेचन-प्रधान नाटकों के। कन्नड-गीति-नाट्य और संगीतिका भी अंग्रेजी साहित्य-परम्परा से विकसित हुई। यद्यपि यह मानना होगा कि कर्नाटक की जन-परम्पराओं में उनके समान कुछ पहले से ही एक जीवित शक्ति के रूप में उपस्थित था। पो, हॉथर्न और कानन डाइल ने कन्नड कहानी की नामकरण-विधि की। कइयों के नाम न भी दें तो बॉस्वेल और मेकाले कन्नड-जीवनी-लेखकों के आदर्श बने। वर्ड्सवर्थ के 'दि प्रिल्यूड' 'भूमिका' नामक खण्ड काव्य) और मिल, टाल्सटाय तथा आस्कर वाइल्ड की आत्म-कथाओं ने त्रिविक्रम, दिवाकर और मधुर चेन्न-जैसे लेखकों को अपनी आत्म-कथाएँ लिखने के लिए प्रेरित किया। लेम्ब, हैज़लिट और दूसरे निबन्धकारों के आत्म-निबन्धों ने गप्पों और 'चमक' नामक संग्रहों के लिए भूमिका बनाई। कोलरिज, आर्नल्ड और ब्रैडले की समालोचनाओं ने कन्नड के आलोचना-साहित्य को दिशा प्रदान की। पैलग्रेव की 'गोल्डन ट्रैज़री' ने कन्नड-काव्य में नई क्रान्ति पैदा कर दी। बी०एम० श्रीकंठय्या-जैसे अंग्रेजी के प्रसिद्ध अध्यापक इन भाव-गीतों से आकर्षित हुए और उन्होंने उनमें से कई गीतों का कन्नड में अनुवाद किया। इन अनुवादों के संकलन, काव्य में नई धारा के प्रवर्त्तक हो गए। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि इस रूप में मानो कन्नड-काव्यों के लिए नए छन्दों का भंडार मिलेगा, क्योंकि नए कन्नड छन्द अंग्रेजी छन्द-शास्त्र से बहुत अधिक

प्रभावित हैं, यद्यपि वे मध्ययुगीन छन्द-रचना के सहज विस्तार के रूप में भी माने जा सकते हैं।

नये साहित्यिक रूपों और हेतुओं का यह प्रभाव आधुनिक कन्नड के लिए असीम अर्थपूर्ण घटना थी, जैसे कि वह अन्य भारतीय साहित्यों के लिए भी रही हो। इसने भारतीय साहित्य को एकदम बदल दिया; मानो समूचे वैज्ञानिक चिंतन और धर्म में मानविक शोध ने क्रान्ति कर दी। कन्नड साहित्य की इमारत में उस घटना ने कई नए कमरे बनवा दिए। जो तरुण साहित्यिक ऊंची शिक्षा के लिए इगलैंड या अमरीका गए थे, उन्होंने मूल स्रोत से इन प्रभावों को ग्रहण किया और नया रूप-शिल्प प्रारम्भ किया। उदाहरणार्थ कैलासम् और आद्य के नाटकों में और गोकाक तथा वी० सदाशिवराव की कविता में।

इगलैंड के साथ सांस्कृतिक सम्पर्क का स्थायी और अ-ललित (अप्लाइड) साहित्य पर भी उतना ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। मध्य-युग के प्रारम्भ से पहले मानो भारतीय वैज्ञानिक चिन्तन का विकास रुक गया था। परन्तु हमारे विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति जो शुरू हुई उसके चाहे और कुछ भी दोष रहे हों, किंतु एक काम उसने जरूर की, और वह थी नये वैज्ञानिक लेखन को बड़ी प्रेरणा देना। अब कन्नड में सभी प्रमुख भौतिक और सामाजिक विज्ञानों पर पुस्तकें मिलती हैं। जब कर्नाटक के विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम कन्नड बन जायगा तब इस क्षेत्र में और भी प्रगति हो सकती है। जब कन्नड वैज्ञानिक और अर्थ-शास्त्र-वेत्ता आगे बढ़ेंगे और कन्नड में वे अपने आविष्कार तथा सृजनात्मक निरीक्षणों को व्यक्त करेंगे, तभी एक सच्चा अ-ललित साहित्य भाषा को समृद्ध बनायगा। परन्तु कन्नड-पत्रकारिता एक ऊंचे स्तर पर पहुंच गई है। पत्रकारों की सहिष्णुता और स्वार्थ-त्याग के इतिहास को धन्यवाद है। वह भी यद्यपि अंग्रेजी परम्परा की उपशाखा के नाते शुरू हुई और उसने अंग्रेजी रंगत वाली कन्नड भाषा के माध्यम से समाचारों और विचारों को देना शुरू किया। वह पहले हमारी भाषा में अटपटी शैली जान

पड़ती थी। अब वह अपनी बहार पर आ गई है, जैसा कि भारती[य] प्रजातन्त्र भी अब अपने पैरों पर खड़ा है। और ये दोनों सब तरह [के] लोगों तथा कार्य-कलापों पर, इस धरती की भाषा में, खण्डन-मण्डन क[र] सकते हैं। बच्चों और निरक्षर प्रौढ़ों के लिए भी नया साहित्य आग[े] बढ़ रहा है, जिसमें अनुवाद, अनुकरण और मौलिक सृजन ये तीनों ह[ी] प्रक्रियाएँ (यद्यपि सीधी इसी क्रम से नहीं) चल रही हैं।

क्लासिकल पुनर्जागरण

जब हम भारतीय साहित्य पर पश्चिम के प्रभाव की छान-बीन करते हैं तब हमारे सामने एक विचित्र 'वदतो व्याघात' उपस्थित हो जाता है। एक ओर तो हमें विदेशी आदर्शों से पूजा की भावना बढ़ती दिखाई देती है और साथ-ही-साथ दूसरी ओर प्राचीन गौरव का पुनर्आविष्कार भी उसमें मिला हुआ दिखाई देता है। एक ऐसा प्रेरणादायक राष्ट्रीयवाद, जो कि आवश्यक मध्यवर्ग पर छा गया था, स्वेज नहर के माध्यम से भारत में आया। हमने वेदों और उपनिषदों तथा कालिदास, शूद्रक और पाणिनि की सच्ची महत्ता को शोपेनहावर, मैक्समूलर, राइडर और कोथ द्वारा पुनः खोजा। डार्विन, मिल और बर्ट्रेंड रसेल के माध्यम से हम कई बार ऐसे खतरे के निकट पहुँच जाते हैं कि कहीं हम वेदों और उपनिषदों को जला न डालें। इस नव जागरण की भावना इतनी सर्वव्यापी थी कि कई बार हमें ऐसा अनुभव होने लगा कि कहीं इस नए आन्दोलन का सार-मात्र पुनर्जागरण ही न हो। बसवप्प शास्त्री थे, जो कि इस नए प्रभाव के सबसे पहले ग्रहणकर्ताओं में से थे और [जिन्होंने] कन्नड़ में 'ओथेल्लो' का अनुवाद किया था, कालिदास के 'शाकुन्तल' [का अनु]वाद किया। मुद्दणामल ने 'उत्तर रामचरित' और तुरमरी [ने ...] का रूपान्तर आधुनिक कन्नड़ में प्रस्तुत किया। धीरे-धीरे [...] के संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रन्थों के नए अनुवाद एक लम्बी [...] देते रहे और अब वह एकदम भिन्न प्रकार के वाता-

चरण में पुनर्जीवित किये गए हैं। कन्नड में पुराणों के अनुवाद भी हुए। ऐसा लगता है कि जब हम महान् यूरोपीय लेखकों की वेदी पर धूप जलाते थे तब उस नई उमंग के साथ-साथ यह भी निश्चय करते थे कि हम अपने स्वाभिमान और अपनी उस महान् परम्परा को भी न भूलें, जिसे कि हम कुछ समय के लिए भूल गए थे।

विदेशी मिशनरियों ने हमारे प्राचीन की पुनर्प्रतिष्ठा में बड़ा योग दिया, यद्यपि उनकी दृष्टि अधिकतर ईसाई-धर्म के प्रचार की ही थी। राइस द्वारा 'दि एपिग्राफिका कर्नाटिका' के प्रकाशन से आधुनिक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक अध्ययन शुरू होता है। किटेल की 'कन्नड-इंग्लिश डिक्शनरी' ने साहित्यिक जिज्ञासुओं के लिए कन्नड भाषा के उस व्यापक भण्डार को खोल दिया, जो लगभग १५०० वर्षों से संचित था। 'कविचरिते' के खण्डों से आलोचनात्मक और जीवनी-चरित्र-विषयक अध्ययन का आरम्भ हुआ, इसमें कन्नड के साहित्यकारों की जीवनियाँ और लेखन का ऐतिहासिक अध्ययन है। 'काव्य कलानिधि' के प्रकाशकों ने प्राचीन कन्नड-कविता के कोष को पाठकों के सन्निकट उपस्थित किया। श्री हलकट्टी ने कन्नड साहित्य के एक मूल्यवान विभाग 'वचन साहित्य' को खोज निकाला। रत्नाकर वर्णी, जो कि प्रायः विस्मृति में खो गए थे, फिर आगे लाए गए और उन्हें अपने उचित स्थान पर कन्नड, काव्य की प्रमुख पंक्ति में प्रतिष्ठित किया गया। सर्वज्ञ और सब हरिदास भी अपने उचित स्थान पर आए। कैंसटन के छापाखाने ने उसके देश-वासियों की जेबें अत्यधिक सोने से भर दी, यह सही है। परन्तु उसने कन्नड जनता को एक सूत्र में गुम्फित किया। इसका प्रभाव यह हुआ कि कन्नड जनता भारत के अन्य भाषा-भाषियों की भाँति संयुक्त हो गई और वह फिर अपनी पुरानी धरोहर तथा परम्परा से उत्कटता पूर्वक प्रेम करने लगी।

महान् साहित्य-परम्परा की यह नव्य जागरित चेतना कन्नड-साहित्य की एक असाधारण घटना थी। बेन्द्रे ने कन्नड सरस्वती को सम्बोधित करके

कहा है :

"तुममें योग और भोग दोनों विद्यमान हैं,
ओ जैन मधुकोष के मधु !
वीरशैव रहस्यवादी आहें भरते रहे
तुम्हारे लिए, ओ उनके आत्मा की प्रेयसी !
आ गायक सन्तों की नर्तकी,
तुमने उनके आनन्द और अभियोगों को वाणी दी।
मुकुण्णा के प्रेम और कोमलता को
तुम्हारे इन्द्रधनुषी शब्द पहुँच सके और आशीर्वाद दे सके।
ओ देवी ! अद्भुत सुन्दरी कुमारी !
मेरी अन्तरात्मा से मिल जा !
मैं कितनी देर से राह देख रहा हूँ,
गीत, मोह, गीत !"

लोक-कविता का पुनर्जागरण, जिसमें बेन्द्रे और मधुरचेन्न ने बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया, अपने-आपमें वीर-गाथाओं और अन्य गीतों के लिए एक प्रेरणा थी। पुराने शिला-लेख और उन वीरों के मृत्यु-लेख खोजे गए जिन्होंने हमारे इतिहास में बड़ी देन दी थी। लोकगाथाओं और कहावतों की भी खोज हुई, और जब वह एकत्रित करके प्रकाशित किये गए तो यह पता लगा कि वह हमारी संस्कृति के कोष हैं। कन्नड की बोलियों का वैज्ञानिक अध्ययन करके उन स्थलनामों की खोज हुई, जिन्होंने हमारी कविता और नाटकों को रंगीनी दी। कन्नड साहित्य में भाषा-विज्ञान-संबन्धी खोज इन्हीं कार्यों से प्रारम्भ हुई।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के परस्पर सहयोग को भारतीय पुनर्जागरण की जिन दो धाराओं के विकसन से बल मिला वे पश्चिमीकरण और पुनर्जागरण की धाराएँ थीं। कर्नाटक के 'यक्षगान' ने मराठी नाटक के विकास को प्रभावित किया। मराठी उपन्यास ने आपटे के ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वारा कन्नड उपन्यास के विकास को दूसरी ओर मोड़ा।

महान् भारतीय विचारक—जैसे राजा राममोहन राय, महर्षि दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, योगिराज अरविन्द, श्रीमती एनी बेसेण्ट, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री रमण महर्षि किसी एक प्रान्त या प्रदेश के नहीं थे, परन्तु सम्पूर्ण भारत के थे। यह विचारक इस नवीन जागरण के, जो कि बहुविध होकर भी एकाकार है, महत्त्वपूर्ण प्रतीक थे; और देश ने उन्हें इसी प्रकार से ग्रहण किया। उनकी जीवनियों और उनके उद्गारों ने अगणित सुसंस्कृत पुरुषों तथा स्त्रियों के दृष्टिकोण को आकार दिया और देश में उनमें से प्रत्येक का प्रभाव अपने-अपने ढंग से आज भी उतना ही शक्तिशाली है जैसा कि उनके प्रारम्भ के दिनों में था। इनके सन्देशों के सम्प्रेषण का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम अंग्रेजी भाषा थी, जैसे श्री अरविन्द और पंडित नेहरू के लेखन के लिए परोक्ष और रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा गांधी जी के लिए अपरोक्ष रूप से, अंग्रेजी का उपयोग बहुत मूल्यवान सिद्ध हुआ।

एक विश्लेषण

पुनर्जागरण का प्रमुख विषय कलाकार की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता और उसकी रचनात्मक प्रेरणा था। कलाकार पुरातत्त्वज्ञों की भांति भूतकाल को केवल भूतकाल के लिए खोदकर नहीं निकालना चाहता। जैसे कोई मद्दकारी यूरोपीय प्रवासी अपने सामान पर सब तरह के लेबल लगाने और उन्हें प्रदर्शित करने में बड़ा सन्तोष अनुभव करता है, वैसे कलाकार नहीं चाहता। उसको अपनी यथार्थता की अन्तरानुभूति और उसके अपने वर्तमान तथा भविष्यत् में अनुमान होते हैं। यदि वह प्राचीन काल की ओर मुड़ता है और उसकी समृद्ध परम्परा से स्फूर्ति ग्रहण करता है तो वह भी एक प्रकार से अपने निरीक्षणों को सिद्ध करने के लिए और बल देने के लिए ही। यदि वह आस-पास देखकर और दूसरे देशों की साहित्यिक हलचलों में रस लेता है तो वह इसीलिए कि उनमें उसे एक समान धर्म, लय तथा उसी प्रकार का स्पन्दन मिलता

है। यदि उसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो तो यह इसलिए होता है कि वह रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कस्तूरीमृग की तरह से अपने भीतर की सुगन्धि से मस्त और दिग्भ्रमित होता है। वह अपने जीवन-दृष्टिकोण के विस्तार को ऊर्ध्व तथा समतल दोनों आयामों में देखता है। आधुनिक भारतीय भाषाओं ने अंग्रेजी साहित्य से इस अद्भुत ढंग से ऋण लिया और वे अपने अभूतपूर्व अभियान पर चल पड़ें। उन्होंने अपने प्राचीन स्फूर्ति-स्रोतों का यथेच्छ आस्वादन करके अपनी शक्ति को पुनर्नूतन बनाया, क्योंकि जो स्त्री-पुरुष इस काल में इन भाषाओं को बोलते थे, उन्हें अपना नया जीवन-निर्माण करना था। उनकी अपनी कुछ आकांक्षाएँ थीं, जिनके लिए वे काम करना चाहते थे।

यह नया जीवन क्या था? यह सब कन्नड जनता के संदर्भ में परिभाषित किया जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी का प्रथमार्ध उनके लिए विचार और जीवन की नवीन धारा का सामान्य परन्तु महत्त्वपूर्ण आरम्भ था। भाषा का गठन अदृश्य रूप से बदल रहा था और गद्य ने अपने व्याप्य क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाया था।

कन्नड पुस्तकों का मुद्रण आरम्भ हो गया था और मैसूर के 'कर्नाटक प्रकाशिका'-जैसे कन्नड पत्र १८६५ में शुरू हो गए थे। इञ्जील का कन्नड अनुवाद १८२३ में प्रकाशित हुआ था। दक्षिण कर्नाटक में मैसूर के राजाश्रय ने कन्नड की साहित्यिक परम्परा को स्थापित करने और चलाने में बड़ी सहायता दी। शेष कर्नाटक प्रदेश अगणित शासकीय सुविधाओं वाले टुकड़ों में बँटा हुआ था। कन्नड को यहाँ भी केवल अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ा। परन्तु उसने इस कारण से बहुत अधिक प्रभाव ग्रहण किया और वह जल्दी ही अन्तर्नाट्यात्मक विचार-पद्धति तथा व्यंजना सीख सकी। इस काल की रचनाओं में अनिश्चितता का स्वर और संक्रान्ति का स्पर्श है। परन्तु मध्ययुगीन साहित्यिक परम्परा अक्षुण्ण रही और वह धीरे-धीरे साहित्य-जगत् में अपने अधिकार जमाती रही।

प्रथम अवस्था

उन्नीसवीं शती का उत्तरार्ध नवजीवन की हलचल से स्पंदित है। पश्चिमीकरण की प्रतिक्रिया और पुनर्जागरण इस युग के मुख्य विषय हैं। अनुवादों के द्वारा संस्कृत और अंग्रेजी के श्रेष्ठ ग्रंथों का प्रभाव कन्नड़ में बराबर आता रहा। नाटक, उपन्यास, जीवनियाँ और आलोचना धीरे-धीरे अपने सच्चे रूप में विकसित होने लगे। इन सब विधाओं में उपन्यास सबसे अधिक सुस्थापित था। एम०एस० पुट्टण्ण कन्नड़-कथा-साहित्य में वास्तववाद के सबसे पहले महत्त्वपूर्ण प्रवर्तक थे। मुद्दण्ण के 'रामाश्वमेध' नामक महाकाव्य के रूप में इस नई चेतना की सौन्दर्यमयी एकरूपता अभिव्यंजित हुई। यह महाकाव्य औपन्यासिक रूप का और गया है। इसमें परम्परित जनश्रुति को ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि वह नई लगती है, क्योंकि उसमें एक नया जीवन-दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है। इसके रचयिता मुद्दण्ण और उनकी पत्नी मनोरमा का प्रेम ऐसा ही है जैसा बेनेडिक और बिएट्रिस का। इस युग में कई साहित्यिक पत्रिकाएँ शुरू हुई और नए साहित्यिक रूप चुपचाप प्रचलित होते गए। शैली, छन्द और कल्पना-चित्रों में भाव-गीत परम्परित अवस्था में थे। नए प्रभाव के कारण ये गीत भी बदलते गए। शरीफ साहब-जैसे प्रतिभाशाली ग्रामीण गायक सूत की मिल की नई विचित्र इमारत को देखकर आश्चर्य करते रहे और उसके प्रति उन्होंने अपनी श्रद्धा व्यक्त की। यद्यपि यह केवल उन्होंने अपने आध्यात्मिक विषय के प्रतीक के रूप में ही किया। इसी युग में ईसाई मिशनरी संस्थाएँ बाइबल के भजनों और धार्मिक गीतों के अनुवाद करती रहीं।

१९०० से १९२० का काल अधिक निश्चित और विविध उपलब्धियों का काल है। बी० रामाराव, आलूर, मुदवीडु, मुळिय तिम्मप्पय्य, पंजे मंगेशराव और एस०जी० नरसिंहाचार-जैसे लेखक इस काल में आगे आए। एस० वट्टी, बी०एम० तट्टी, शांतकवि, . . . इत्यादि की काव्य-

रचनाओं और उपरिलिखित लेखकों की रचनाओं में आधुनिक कन्नड कविता निश्चित रूप से विकास प्राप्त कर रही थी। एच० नारायणराव और बी०एम०श्रीकंठय्य के भावगीतानुवाद पहले ही प्रकाशित हो चुके थे। केरूर बड़े प्रतिभाशाली अग्रदूत थे और उन्होंने बड़े अच्छे नाटक, उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं। पत्रकार तो वह अच्छे थे ही १९१४ में कन्नड देश में साहित्य परिषत् की स्थापना के बाद पुनर्जागरण प्रतिष्ठित हुआ।

स्वर्ण युग

१९२० के बाद आधुनिक कन्नड साहित्य अपने स्वर्ण युग में प्रवेश कर रहा है। सारे कर्नाटक में गायक पक्षियों के नीड़ मानो चहचहाने लगे। 'तळिर' मण्डली बी० एम० श्रीकंठय्य, मास्ति और डी०वी० गुण्डप्प के नेतृत्व में, मंगळौर की 'मित्र-मण्डली' पंजे और गोविन्द पै तथा बेन्द्रे के नेतृत्व में धारवाड़ का 'गेळेयर गुम्पु'—ये और अन्य दल सारे प्रदेश में सक्रिय थे एवं उन्होंने अत्यन्त सुन्दर कविताएँ रचीं। प्रतिभाशाली छोटे कवि, जैसे के०वी० पुट्टप्प, वी० सीतारमय्य, पु०ति०नरसिंहाचार, राजरत्नम्, कडेंगोडलु, मधुरचेन्न और मुगळि इन्हीं दलों में से आगे आए। बेटिगेरी और सेलि भी बड़ी आकर्षक कविताएँ लिखी हैं। उन्होंने *ऐसी कविताएँ लिखी, जिनमें कि धरती का प्रेम और जिस युग में* वे थे उसकी बढ़ती हुई राष्ट्रीयता का पूरा भावलोक व्यक्त हुआ है। प्रगाथा (ओड), विलापिका, गीतिकाव्य, सानेट, गाने और भजन; वर्णनात्मक कविता, खण्ड-काव्य, वीर काव्य, रोमांस, दार्शनिक कविता, नाट्य-गीत और स्वगत-भाषण : ये और अन्य काव्य-विभाग उत्कट आनन्द और सच्ची प्रेरणा से विकसित किये गए। उन दिनों कई तरह के विशिष्ट उपन्यास लिखे गए, जिनके कई उदाहरण आज भी प्रकाशमान हैं;—बेटिगेरि के 'सुदर्शन' में सामाजिक शिष्टाचार के उपन्यास, ए०एन० कृष्णराव के 'संध्याराग' चरित्र-प्रधान उपन्यास, कस्तूरी के 'चक्रदृष्टि' में व्यंग्य-प्रधान उपन्यास, देवुडु के 'अंतरंग' में मनोवैज्ञानिक उपन्यास

कारन्त के 'मरळि मण्णिगे' में काल-प्रधान उपन्यास, मुगळि के 'कारण पुरुष' में समस्या-प्रधान उपन्यास, और आद्य के 'विश्वमित्र सृष्टि' में अचेतन प्रज्ञा-प्रवाह वाला उपन्यास। कारन्त का 'बेट्टद जीव' आंचलिक उपन्यास का एक उत्तम उदाहरण है। वेंकटेशैय्या, केरूर, मास्ति और के० वि० अय्यर के ऐतिहासिक उपन्यास बड़े मनोरंजक हैं। जासूसी उपन्यास अभी अपढ़ हाथों में ही है। ए० एन० कृष्णराव के 'नट-सार्वभौम', के० वि० पुट्टप्प के 'कानूर सुब्बम्म' और गोकाक के 'समरसवे जीवन' आदि उपन्यास सम्मिश्र ढंग के हैं।

इस युग में टी० पी० कैलासम्, हुईलगोळ, गरूड, संस और आद्य आदि नाटकों के भी बहुत प्रसिद्ध लेखक हुए। विभिन्न प्रकार के नाटक बड़ी सफलता पूर्वक लिखे जाने लगे—पौराणिक नाटक (गरूड का 'पादुका पट्टाभिषेक' और लि०के० वेंकटरामप्प का 'मण्डोदरी'), ऐतिहासिक नाटक (संस का 'सुगुण-गम्भीर' और मास्ति का 'ताळीकोटे'), सामाजिक नाटक (हुइलगोळ के 'शिक्षण-सम्भ्रम', कैलासम् के 'होमरूल' और आद्य के 'हरिजन्वार') और व्यंग्य-नाटक (कारन्त के 'गर्भगुडी' और मुगळि के 'नामधारी')। तीखी ट्रेजडी के लिए संस के नाटक और कैलासम् के 'कौन दोषी है ?'-जैसे नाटकों की ओर हमें जाना चाहिए। रोमांटिक सुखान्त नाटकों के लिए गोकाक के 'युगान्तर'-जैसे नाटक पठनीय हैं। कैलासम्, आद्य और बेन्द्रे एकांकी नाटकों के अधिकारी लेखक हैं। गीति-काव्य का अपना विशेष इतिहास है, जिसमें 'श्री' के 'अश्वत्थामन' और के० वि० राघवाचार के 'एण्टीगोनी' (प्राचीन यूनानी से सीधे अनूदित), अतुकान्त पद्य-नाटक जैसे शेक्सपीयर ने पुट्टप्प और डी०वी०जी० द्वारा रूपान्तरित और मास्ति के 'यशोधरा,' 'तिरुपाणि' और पु० ति० नरसिंहाचार का 'अहल्या'-जैसा संगीत-रूपक और कारन्त के 'सौमिय सौभाग्य' और 'यारो अन्दरु' (किसी ने कहा था) जैसे शोकान्त तथा सुखान्त ऑपेरा आदि। अतुकान्त पद्य कन्नड के 'रगळे' छन्द से मेल एक-से मिलते-जुलते हैं और इसी कारण नाट्य-लेखन के लिए अत्यन्त

आवश्यक अतुकान्त पद्य बड़ी सरलता से कन्नड़ में प्रचलित हो गए।

कहानी आधुनिक साहित्य-विधाओं में सबसे लोकप्रिय है। मास्ति कन्नड़ कहानी के पिता थे और उन्होंने दार्शनिक कहानियों (जैसे 'सारिपुत्र के अन्तिम दिन'), देशभक्तिपूर्ण कहानियों (जैसे 'वसुमती'), ऐतिहासिक कहानियों (जैसे 'निजगल की रानी'), ग्रामीण जीवन की कहानियों (मोसरिन मंगम्म) और गीतिकाव्यात्मक कहानियों (जैसे 'यं इन्दिरा है या नहीं') में कई उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किये। बेंद्रे, आनंद, गरुड़, गोपालकृष्णराव, कृष्णकुमार, श्रीमती गौरम्मा आदि कई अन्य लेखकों ने कहानी को समृद्ध करके उसके क्षेत्र को घटना और चरित्र, भावना और विचार, वातावरण और मनोविज्ञान आदि दिशाओं में व्यापक बनाया।

निबन्ध आधुनिक कन्नड़-साहित्य का दूसरा महत्वपूर्ण विभाग है। इसका आरम्भ बहुत पहले टीका-व्याख्या और पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हुआ। परन्तु व्यक्तिगत निबन्ध 'गप्पें' और 'चमक'-जैसे निबन्धों के संग्रह से ही आगे बढ़ा और अब उसमें विविधता और व्यापकता भी कुछ संग्रहों में मिलती है, जैसे—ए० एन० मूर्तिराव का 'हगलुगनसुगळु' (दिवा-स्वप्न) नारायण भट्ट का 'उपन्यासगळु', एन० के० कुलकर्णी का 'मुगील मुट्टिगे' और आद्य का 'रसारस्य',। एम० कृष्णशर्मा और बेन्द्रे के 'रेखा-चित्र' टी० एन० श्रीकण्ठय्य और ए० एन० कृष्णराव के 'आलोचनात्मक निबंध,' पुट्टप्प के 'वर्णनात्मक निबन्ध', 'भावना चित्रगळु' से पु० ति० न० के 'कथात्मक निबंध' और बोरकार के 'पत्रात्मक और भौगोलिक-सांस्कृतिक निबंध' मोटे तौर पर यह दर्शाते हैं कि इस क्षेत्र में कितनी और कैसे उपलब्धियाँ हुईं। हमारे साहित्य में डी० वी० गुण्डप्प के 'गोखले'-जैसे यथार्थ जीवन-चित्र हैं और पुट्टप्प के 'विवेकानन्द'-जैसे रोमांटिक जीवन-चित्र भी हैं। कन्नड़ में आत्म-कथा मधुर चेन्न के 'प्रेम्पुर'-जैसे आध्यात्मिक रामरस्वामि के 'दस वर्ष'-जैसे साहित्यिक और बोरकर के 'मोठे स्वरूप'-जैसे सौन्दर्यात्मक, और दिवाकर के 'मेरेमने'-जैसे मुख्यतः राज-

नयिक मिलते हैं। साहित्यिक रूप की नई डायरी का उत्तम उदाहरण गोकाक के 'समुद्र पार से' और अश्वत्थनारायणराव के 'मुक्ति का मूल्य' में मिलते हैं। बी० सीतारामय्य, गोरूरु, मास्ति आदि ने बड़े मनोरंजक प्रवास-वर्णन लिखे हैं। इस काल में साहित्यिक आलोचना अधिकतर नवीन आन्दोलन के घोषणा-पत्र को परिभाषित करने के रूप में है। उसमें प्राचीन कन्नड साहित्य की विशाल समृद्धि का नया अर्थ और यूरोपीय साहित्य को संजीवन देने वाले आदर्श की विवेचना है। उसमें प्राचीन और नवीन का सम्मिलन है। इस संदर्भ में टी०एन० श्रीकंठय्य के 'भारतीय काव्य मीमांसे' मुगळि का 'कन्नड साहित्य चरित्रे', कृष्ण० मूर्ति के 'ध्वन्यालोक' अनुवाद और टीका और कर्की के 'छन्दोविकास' का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। पिछले पृष्ठों में उल्लिखित कई लेखकों ने साहित्यिक समालोचना में भी योगदान दिया है। कई समालोचकों जैसे माळवाड और रंगण्ण ने भी इस क्षेत्र को समृद्ध बनाया। बसवनाळ और कुन्दणगार-जैसे विद्वानों ने प्राचीन कन्नड के श्रेष्ठ ग्रंथों के शास्त्रीय पाठ-शुद्ध संस्करण प्रकाशित किये। कुछ प्रसिद्ध साहित्यिकों [illegible] सम्मान में प्रकाशित अभिनन्दन-ग्रंथों में भी कन्नड-साहित्य-समीक्षा की मूल्यवान सामग्री देखने को मिलती है। वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि उनमें से कइयों ने एक से अधिक साहित्यिक विधाओं में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

१९३९ और बाद

अगली धारा १९३९ के लगभग शुरू हुई। उसी वर्ष दूसरा महायुद्ध भी छिड़ गया और सन्' ३० में जिस 'प्रगतिशील' आन्दोलन का सूत्र-पात हुआ था इस समय तक वह और भी जोर पकड़ गया, और इस युग के साहित्य पर उसने बड़ा गहरा प्रभाव डाला। वह मानो नवीन तरुण साहित्यिक पीढ़ी के उदय का एक धुरी-बिन्दु बन गया। 'रसऋषि' इस नवीन चेतना को सिद्ध करने वाले गीतों का संकलन था। पहले समय के लेखक भी बराबर लिख रहे थे और कुछ नवीन दिशाओं में उन्होंने

नेतृत्व भी किया। भारत में तब ही सन्' ४२ का 'भारत छोड़ो आन्दोलन', १९४७ में 'स्वतंत्रता का आगमन', साम्प्रदायिक दंगे, भारतीय रियासतों का विलीनीकरण, गांधी जी का खून, गोआ का मुक्ति-आन्दोलन और भारत में भाषावार प्रदेशों का पुनर्गठन आदि अनेक नाटकीय घटनाएँ घटित हुईं। नवीन साहित्यिक पीढ़ी इस वातावरण की छाया और प्रकाश में बढ़ी। पुरानी पीढ़ी के लेखकों ने इन स्थितियों पर एक विकसित कला और परिपक्व दृष्टि से ध्यान दिया। परन्तु तरुण लेखक उनकी ओर नई ताजगी और उत्कटता से देखकर मानसिक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते थे।

कविता के क्षेत्र में और नई शक्ति आई। के० नरसिंहस्वामि अडिग, श्रीधर, कणवि, एक्कुण्डि, किन्निगोळि, शर्मा और अन्यों ने गीति-काव्य में नई संवेदना फूंकी। लम्बी कविता में कई तरह की विशेषताओं और विविधता की उपलब्धि हुई। पुट्टप्प ने अपनी 'रामायण'* पूरी की। डॉ० वी० गुडप्प ने 'कण' नाम से पद्य में अपने विश्वासों की दार्शनिक प्रस्तावना प्रकाशित की। मास्ति ने 'नवरात्रि' के नाम से अपना कथाचक्र प्रस्तुत किया, जो कि इंगलिश् कवि चौसर की कैंटरबरी कहानियों की तरह से था। बेन्द्रे की 'सखी गीता' में रोमांटिक महाकाव्य की पूरी मस्ती और मुक्ति है। गोविन्द पै की ईसा और बुद्ध पर लिखी कविता ऐसी ही 'घटना' है जैसी कि आर्नल्ड का 'सोहराब रुस्तम'। 'विनायक' की गीत-सरणि 'बाळदेगुलदल्लि' भारतीय पुनर्जागरण का शिल्पमय प्रकटीकरण है। अडिग की 'कन्दर' और 'गोंदलपुर' ऐसी नई रचनाएँ थीं, जैसी टी० एस० इलियट की 'दि वेस्ट लैंड'। 'विनायक' के 'समुद्र गीतों' ने कविता में मुक्त-छन्द और नई विषय-वस्तु आरम्भ की। रचना का रोमांटिक ढंग, चाहे वह लोक-गीतों के रूप में हुआ या अन्य रूपों में, कविता में सुप्रतिष्ठित हो गया था। अतः नए

* यह एक अनुकरण महाकाव्य है, जिसे साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला है।

काव्य-प्रयत्नों के लिए, नई शैली और कल्पना-चित्र, नए छन्द और रचना-विधान अत्यन्त आवश्यक थे। आधुनिक टेक्नीक में बहुत-कुछ आशा दिखाई दी। विनायक, अडिग, शर्मा, शिवरुद्रप्प, कणवि और अन्य इन रास्तों पर साहस के साथ चल पड़े। आधुनिकतावादी रास्ता काव्य लिखने के अनेक रास्तों में से एक है और उन आधुनिकता-वादियों में भी कई रास्ते और हैं। अब इन सबका अन्वेषण हो रहा है।

१९१२ में विविध साहित्य-प्रकारों में क्या और कितनी उपलब्धियाँ हुईं, उनका लेखा-जोखा देने के लिए यहाँ स्थान नहीं है। परन्तु कथा साहित्य के क्षेत्र में मिर्जी, कट्टीमनि, इनामदार, कुळकुन्द शिवराव, त० रा० सुब्बराव, के० टी० पुराणिक और हेग्गडे आदि कुछ नए नामों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से कुछ लेखकों ने छोटी कहानियाँ भी लिखी हैं, जिनके साथ हुइलगोळ और अनन्तमूर्ति और चदुरंगि-जैसे लेखक प्रसिद्ध हैं। नाटक के क्षेत्र में पर्वतवाणि, एम० जे० वेंद्रे, एम० के० कुलकर्णि आदि कुछ नए नाम हैं। माडिग, पदकवार और कार्लिंग ने ललित-निबन्धों को आगे बढ़ाया। के० कृष्णमूर्ति, के० नरसिंहमूर्ति और कई ने साहित्य समालोचन में योग दिया।

द्वितीय महायुद्ध की पार्श्वभूमि में कई उपन्यास और कहानियाँ लिखी गई हैं। ये कविता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण विषय थे। गोविन्द पै कहते हैं जब तक मानव मानवतापूर्ण रहेगा तब तक युद्ध-भूमि शांति की आशा रहेगी। इक्बाल कहते हैं, यह महायुद्ध इसी धरती पर हुआ, जहाँ ईसा, बुद्ध और बसव ने अपना शांति-मंत्र प्रचारित किया। 'विनायक' ने 'असुर' में हिटलर के साथ कवि के एक काल्पनिक इंटरव्यू का वर्णन करके आसुरी प्रवृत्तियों का पर्दा दिया है। चिन्नाल ने हिरोशिमा में हुए बम्ब-काण्ड के बारे में बहुत ही तीखी करुणा से लिखा है और कस्तूरी ने अणु-अस्त्रों का मजाक उड़ाया है। हास्य-वीर-रस-मिश्रित छन्दों में श्री राव ने युद्ध का महत्त्वपूर्ण वर्णन पद्य में दिया है।

'भारत छोड़ो आन्दोलन' इनामदार और कट्टीमनि के उपन्यासों

में प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुआ है। वी० सीतारामय्य एक शक्तिशाली प्रगाथ में इस बड़े आंदोलन का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

"ये जनता !
इनके आगे बढ़ने वाले अभियान को कौन रोक सकता है ?
इनकी असीम आशाओं को कौन सीमा में बाँध सकता है ?
ऊँचे-ऊँचे मंदिर ऊपर उठेंगे।
अपने शिखर वे आकाश की नीलिमा तक उठायेंगे।
यह लोग नक्षत्रों के चमकीले प्रकाश पर खिलखिलायेंगे।
अनाप हवाओं को ये नाप लेंगे।"

राव ने एक लम्बी कविता में नेताजी सुभाषचंद्र बोस की आइ० एन०ए० की विजय का वर्णन किया है। १६४३ के बंगाल के अकाल ने कन्नड में कई कहानियों और उपन्यासों (जैसे मुगळि के 'अन्न' इत्यादि) को प्रेरणा दी। उसी समय गोविन्द पै ने एक कविता में लिखा :

"समृद्ध होने पर भी हम भूख से मर रहे हैं।
जीवन होने पर भी हम लोग मुर्दों की तरह से जी रहे हैं।"

आजादी के आने के साथ-साथ सभी हृदय स्पन्दित हो उठे। हर कवि ने मानो स्वाधीनता-गान लिखे। उपन्यासों और नाटकों ने भी कविता के साथ स्पर्धा शुरू की। इस घटना से सभी विधाओं में विजयोल्लास और भाव-व्यंजना की गई—जैसे श्रीरंग का नाटक 'शोकचक्र'। दक्षिण कन्नड के कवियों ने 'उद्घोष' नाम से एक कविता-संग्रह प्रकाशित किया, जिसमें स्वतंत्रता-प्राप्ति का आनन्द मनाया गया। परन्तु इस आनन्द की भावना के साथ-ही-साथ स्वप्न-भंग की छाया भी गहरी हुई। विनायक ने भारतमाता को दुःख के साथ दो चेहरे वाली देवी जैनस के रूप में देखा है :

"ओ दो रूपों की पीड़ा,
ओ दो जीवन और दो प्रेम की !"

यह एक उलझा हुआ रास्ता है, यह रास्ता एक के दो बनने का है।

गांधीजी के जन्म-दिन के अवसर पर बेंद्रे ने लिखा : "कम-से-कम आज के दिन हम सच बोलें। बाकी साल-भर तो हम झूठ को पूरी तरह देते ही हैं।" विसाल ने लिखा : "सड़क की बत्तियों पर दीपक लटकाकर आजादी के आने की घोषणा कर रहे हैं, पर साथ-ही-साथ मैं कैसे भूलूं यह राक्षस-जैसी चिमनी, जिसमें से काला धुआं निकल रहा है और जो आदमी को इस तरह खा रहा है, जैसे ईंधन हो ?"

गांधीजी की हत्या के कारण लोगों की चेतना जागी और उनमें एक नया मूल्य-भाव उत्प्रेरित हुआ। कन्नड कवियों ने राष्ट्र-पिता को अपनी श्रद्धांजलि एक मार्मिक गीत-संग्रह के रूप में अर्पित की। 'हेमंत' ने देश की एकता के स्थपति वल्लभभाई पटेल पर एक हृदयस्पर्शी विलापिका लिखी। कवि धीरे-धीरे रचनात्मक और विधायक काम के अंत की ओर मुड़े, क्योंकि इस सारी निराशा में से वही एक रास्ता था। 'अडिग' ने लिखा है : "ओ मित्र, अभी भी यहां वह बगीचा है, जिसमें आशाएँ अंकुरित होती हैं। इन कांटों और पत्थरों के नीचे बड़ी समृद्ध जमीन है, उसमें कई फव्वारों और झरनों का स्रोत छिपा है।"

विनायक ने कल्पना की है कि भारत माता कह रही है :
"इसके लिए सभी ने मानव अवतार लिया।
विश्वास करो इस पर, मेरे बच्चो !
देश से दरिद्रता के दुःख को बाहर करो !
समानता और समदृष्टि को सिंहासन पर आसीन करो !
तब यहीं आकर स्वतन्त्रता की यह शाख जिसे तुमने आज यहाँ बोया है—
फिर स्वतन्त्रता का सही अर्थ देगी और प्रकाशपुष्पों में खिल उठेगी।"

नए आन्दोलन के मूल तत्त्व

नए युग की मनोवृत्ति के उदाहरण के रूप में मैंने अधिकतर कविता को ही चुना। साहित्य के अन्य विभागों में भी काफी काम किया गया है। अब इस अध्याय का शेष अंश, मैं जीवन और विचारों के इस नए आंदोलन के मूल तत्त्व के विवेचन के लिए देना चाहता हूं, जो अपनी संपूर्णता में पुनर्जागरण कहलाता है।

जिन व्यक्तियों ने यह साहित्य निर्मित किया या कर रहे हैं उनके विविध सिद्धान्त और मान्यताएं हैं। उनमें हिंदू हैं, उत्तगी-जैसे ईसाई हैं, अकबर अली-जैसे मुस्लिम हैं। उनमें जैन, लिंगायत, ब्राह्मण और फर्डिनांड रेड्डी आदि हैं। उनकी शिक्षा भी अलग ढंग से हुई है। यदि शरीफ साहब को कन्नड अक्षरों का जरा-सा ज्ञान था तो 'कैलासम्'-जैसों को सर्वोत्तम अंग्रेजी विश्वविद्यालयों की बहुत अच्छी शिक्षा भी उपलब्ध हुई थी। वि०के० लक्ष्मेश्वर-जैसे प्राथमिक शालाओं के अध्यापक भी उनमें हैं, बसवनाळ-जैसे माध्यमिक शालाओं के अध्यापक, होसापूरमठ-जैसे वकील, देसाई दत्तमूर्ति-जैसे क्लर्क, मुद्दण-जैसे ड्रिल मास्टर और गोविंद पै-जैसे जमींदार। उनमें मिशनरी, पुरोहित, स्वामी और मठाधीश भी हैं, उनमें पत्रकार हैं, वेंकट शेट्टी और शांति-जैसे दुकानदार हैं, पंजे मंगेश-राव-जैसे शिक्षा-विभाग के इंस्पेक्टर हैं, विश्वविद्यालय के अध्यापक हैं। (जो कि आज लेखकों का एक बहुत बड़ा वर्ग है) मास्ति-जैसे सिविलियन हैं और शिवराम-जैसे चिकित्सक हैं, सिद्दवनहळ्ळि कृष्णशर्मा-जैसे राजनीतिक कार्यकर्ता और आंदोलनकर्ता भी हैं, जिनमें से कुछ बड़ी ऊंची महत्त्वपूर्ण जगहों पर हैं—जैसे बिहार के भूतपूर्व राज्यपाल आर०आर० दिवाकर। कन्नड साहित्य का गणतंत्र चौसर के कैंटरबरी कहानियों के तीर्थयात्रियों की तरह, कई तरह के और कई विश्वासों के लेखकों का एक पचमेल है। हवा जोरों से और हल्की दोनों तरह से बहती है, और अपने स्पर्श से सैलानी गायकों के होठों में और साथ-ही-साथ गंभीर

विद्वानों की वाणी में अमर उत्साह पैदा करती है। कुछ लोगों ने साहित्य को अपना व्यवसाय बना लिया है, जैसे कारंत और ए० एन० कृष्णराव ने।

नवीन लेखन के कई महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों में एक आत्माभिव्यंजना है। मनुष्य के व्यक्तित्व की पवित्रता पर उसका आग्रह है। लेखकों के लिए यह नया साक्षात्कार था कि साहित्य व्यक्तित्व की अभिव्यंजना होकर स्वयं पूर्ण होता है। इस खोज ने नए लेखकों को उन्मत्त कर दिया। गीत और निबंध, उपन्यास और नाटक इत्यादि भी इसी व्यक्तिवाद के सम्प्रदाय से गुण-गान करने लगे। बहुत हाल में कवि अब सचेष्ट होकर इस विषय से दूसरे पहलू की ओर मुड़े हैं, साहित्य व्यक्तिवाद के पलायन भी है, वह विश्व-मानव की अभिव्यंजना है। कलाकार के हृदय में भावों की जो शोभा-यात्रा चल रही है, उसकी ही व्यंजना काफी नहीं है, बल्कि कलाकार में जो विश्व-मानव छिपा हुआ है, उसकी व्यञ्जना भी आवश्यक है।

इन लेखकों ने प्रकृति को नई आँखों से देखा। आधुनिक काल के आरम्भ तक के कन्नड साहित्य में 'जोग' नामक विश्व-विख्यात जल-प्रपात पर कोई काव्य-रचना नहीं हुई थी, यह एक आश्चर्य की बात है। परन्तु आधुनिक कन्नड में उस प्रपात की ध्वनि और लय भरपूर गुंजित हुई। आधुनिक कन्नड कविता में प्रकृति के प्रति रोमांटिक दृष्टिकोण पूरी तरह से व्यक्त हुआ है। प्रत्येक सुन्दर दृश्य कन्नड कल्पना-जगत् का एक भाग बन रहा है। कर्नाटक की कला और स्थापत्य कई गीत और निबन्धों के विषय बने। पुट्टप्प के उल्लासमय गीत 'सह्याद्रि' के विषय में हैं, बेन्द्रे ने उष काल और रात्रि के प्रतीक प्रयुक्त किये हैं, सीतारामय्य ने खुले रास्ते और फव्वारों से भरे सरोवर पर गीत लिखे हैं, 'विनायक' ने समुद्र की भव्यता और भयानकता व्यक्त की है, और पु० ति० नरसिंहाचार ने कृत्तिका का वर्णन एक अमर प्रश्न की तरह से किया है, जो कि आकाश के अवकाश में भटकता रहता है। कन्नड कविता

में कारखाने की आवाज़ और टर्बाइन के विद्युत्-इञ्जन की ध्वनि भी सुनाई देने लगती है। यह कहना आवश्यक नहीं कि इन विषयों पर नई साहित्यिक विधाओं में भी बहुत-कुछ लिखा गया है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण स्वर राष्ट्रीयता का है। बेन्द्रे का 'तेंतीस करोड़ का गीत' एक उदात्त सामूहिक संगीतयुक्त रचना है। उनकी 'स्वप्न में दृश्य' नामक कविता में एक व्यक्ति है, जो स्वप्न में अपनी उस माता को पहचानता है जो कि इस देश की आत्मा है, और जब वह यह माँग रखती है कि : "तुम सिद्ध करो, यदि तुम मनुष्य हो तो, मेरी वेदी पर अपना बलिदान करो !" तब वह भय से घबराकर जाग पड़ता है। उनकी कविता 'तरुण संन्यासी' में यह विषय है कि आन्तरिक मुक्ति बाह्य मुक्ति की पहली आवश्यकता है। परम्परित प्रेम-विषयक कृति वासनामय, सौन्दर्यमय अथवा नैतिक अधिक थी, आध्यात्मिक कम। परन्तु अब कई उपन्यासों, नाटकों और कविताओं में प्रेम का अर्थ है, एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति की आत्मा की पहचान और खोज। स्त्री और पुरुष-संबंधी कविता लिखी जा रही है, जिसमें विविध प्रकार के अगणित मानवीय चरित्रों का चित्रण है। सामाजिक न्याय की कविता और भी मार्मिक है। बेन्द्रे के 'भोजन के एक कौर की भीख' नामक भावपूर्ण गीत में भारत के मूक लाखों जनों की व्यथा है। उनकी 'अथवा सोना नाच रहा था' नाटक-कविता पूँजीवाद पर एक प्रखर अभियोग है :

> "उस (सोने) ने मन्दिरों में घण्टियों को टन-टन बजाना
> शुरू किया।
> उसने महलों में वायलिन और वीणा में कोमल राग भर
> दिये।
> उसने बाज़ारों में सिक्के के सौने खनखनाते हुए छोड़ दिए।
> पागलों की तरह, भ्रमित की तरह नाचते हुए,
> धरती पर छिन्न होकर वह गिर पड़ा,
> जब कि वह तेज चरम सीमा पर था।"

राजरत्नम् के 'रत्न के पद' कन्नड़ के बोल-चाल के मुहावरों का प्रभावशाली उपयोग करते हैं और समाज में जो विषमता तथा अन्याय फैला है उनका दम्भ-स्फोट करते हैं। 'तिरुपाणि' नामक गीति-नाट्य में मास्ति ने एक हरिजन सन्त की शुद्धि का विषय लिया है; और अस्पृश्यता के विषय पर 'जलगार' और 'उद्धार' नामक सशक्त नाटक एवं 'चोमनदुडी' नामक उपन्यास लिखे गए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति से भी कन्नड कविता बहुत उद्वेलित हुई और उसने पुट्टप्प की 'कोकिल और सोवियत रूस'-जैसी कविता में भविष्य-वाणी की और बेन्द्रे ने 'रुद्रवीणा' में लिखा:

> "पृथ्वी में ज्वालामुखी फूट पड़ा है।
> पर्वत टूट रहे हैं।
> चट्टानों के बाँध झरनों को व्यर्थ ही बाँध रहे हैं
> लाल मिट्टी बेकार ही उछाल रहे हैं।
> न्यायासन उलट गया है
> राजाओं के सिंहासन दाव-पात्र बन गए हैं
> मन की उथल-पुथल के पीछे
> जाति और वर्ण लौटकर आ रहे हैं।

गीतों, कहानियों, उपन्यासों और नाटकों में से भी आध्यात्मिक कल्पनाएँ प्रमुखता से आगे आ रही हैं। 'श्री' के 'शुक-गीता', मधुर-चेन्न के 'मेरी प्रेयसी' और बेन्द्रे की 'जीवन की तलवार'-जैसी कविताएँ, शान्ति के 'उषा'-जैसे एकांकी, गोकाक के 'समरसता ही जीवन है' नामक उपन्यास में, कारन्त के 'मुक्तद्वार'-जैसे संगीत-रूपकों में इस प्रवृत्ति का प्रमाण है। पुनर्जागरण का एक प्रमुख लक्षण इस तरह के रुमान है।

पौराणिक विषयों और पात्रों का मानवीकरण दूसरा महत्त्वपूर्ण विषय है। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि पुराणों के खलनायक, जैसे 'रावण' का पक्ष भी समर्थनीय बना है, जैसे पुट्टप्प की 'रामायण' में, सी०के० वेंकटरामय्य के 'मन्दोदरी' में, या आद्य के 'निरुत्तर कुमार' में

उत्तर कुमार का। आधुनिक कन्नड कविता, उपन्यास, नाटक और अन्य रूपों में कला तथा प्रेरणा के विषय में विचार एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। मास्ति के 'सुब्बण्ण', ए०एन० कृष्णराव के 'संध्याराग', गोकाक के 'कलोपासक' और 'विमर्शक वैद्य', कैलासम् के 'पूर्णिमा', आद्य के 'पूर्वरंग' और 'सम्पुष्ट रामायण' तथा पु० ति० नरसिंहाचार के 'रस सरस्वती' आदि इस दिशा में कुछ उदाहरण हैं।

आठ सहायक उप-नदियाँ

आधुनिक कन्नड साहित्य के संगम में कई नदियाँ आकर मिलती हैं। ये धाराएँ सभी आधुनिक साहित्यों में पाई जाती हैं और वे इस बात का उदाहरण हैं कि भारतीय पुनर्जागरण कितना विविध और समृद्ध रहा है। नये युग के साथ-साथ इनमें से कुछ धाराएँ अधिक सक्रिय बनी हैं। कुछ धाराओं का बल बढ़ता गया। ऐसा भी लगता है कि कुछ धाराएँ एक-दूसरे के विरोध में हैं। परन्तु जीवन का यह लक्षण है कि वह परस्पर-विरोधी चीजों को अपना लेता है और उनसे ऊपर उठता है तथा विरोध में अविरोध पैदा करता है। समग्र-स्थान पर उन्हें देखने से यह पता लगता है कि इस नई धारा की जटिलता एवं सर्वव्यापी एकता कहाँ है।

सबसे पहले व्यंग्य लेखकों का या यथार्थवादियों का दल है। इनके मन में कई आदर्श छिपे हुए हैं और उसीके प्रकाश में वे मानवीय अपूर्णताओं को परखते और उनकी निन्दा करते हैं। ये एक तरह से उखड़े हुए कवि हैं। कैलासम्, कारन्त, कस्तूरि, बीचि, आद्य, अडिग, कट्टीमनि और वि०जी० भट्ट-जैसे लेखक हमारी महान् मूर्खताओं और अंधश्रद्धाओं पर हँसते हैं। हमारी दैनिक जीवन के ढोंग और ढकोसलों का वे पर्दाफाश करते हैं। हमारी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक संस्थाओं के झूठे विश्वासों और खोखलेपन को वे खोलकर रखते हैं। वे यूटोपिया के ढंग की कागज की नौकाएँ नहीं चलाना चाहते, किन्तु वे साथ-ही-साथ,

अपने-अपने ढंग से, रूढ़िवादी या रूढ़ि-विरोधी व्यक्तित्व के भीतर छिपी हुई कोमलता, अच्छाई और मधुर समझदारी भी व्यक्त करते हैं। इस दृष्टि से वे सब मानवतावादी हैं। अन्य धाराओं के लेखक भी यथार्थवादी लेखकों के इन विश्वासों के समान ही हैं। परन्तु इनके व्यक्तित्व का मुख्य झुकाव या श्रेय इतना ही नहीं है इनमें से कुछ यथार्थवादी डी० एच० लारेंस या प्रारम्भिक टी० एस० इलियट के ढंग पर घोर घोर, विध्वंस तथा अभिशाप की भविष्य-वाणी व्यक्त करते हैं। उनकी कराहें या निराशाभरी चीखें कभी-कभी अवशो आधुनिकतावादियों की लय, स्वरापात और विराम चिह्नों को भी पकड़ती हुई चलती हैं। भारत में यद्यपि इतने दुःख-दैन्य पहले न हैं तब बाहरी लेखकों से भारतीय लेखकों को दुखी, असहाय या क्रोधी होना सीखना आवश्यक नहीं है। बंगला उपन्यास और नाटक हमारे सामाजिक जीवन की विषमता पर तीव्र प्रकाश डालते हैं। बन्द के 'हास्य की भट्टी' नाटक में नायिका ने विवाह के बारे में यह कहा है: 'अगर यह सच है कि विवाहिता को ही मुक्ति मिलती है, तो उसकी आत्मा स्वर्ग में पहुँचे, इसका कोई मूल्य नहीं। यदि उसकी आत्मा नरक में सदा के लिए बन्द रहे तो उसमें उसे सुख मिलेगा। क्योंकि यदि स्वर्ग का दर्शन हुआ तो न तो उसे या उसके माता पिताओं को कभी शान्ति मिलेगी।" … को तो विवाह में 'सरस्वेश'-जैसी कठिनाइयाँ आन पड़ती हैं: "यहाँ इस पृथ्वी पर वेश्या की पुत्री यह समस्या है। इस पर हम यह का अवसर उसके विवाह का प्रश्न है। जो व्यक्ति उसका … सम्मान बनना चाहे, वह उसे राह से पीछे और उसमें टाटी … है?" नाम, विधवा, पढ़ी-लिखी लड़की, संयुक्त परिवार, बदलता समाज, और पुत्रारिका ये सब नई उपन्यास और नाटकों के विषय हैं। … के 'कोलते और टॅाम', … के 'सरकारों की …' और एस० के० कुलकर्णि के 'चार …' में … की स्थिति को व्यवस्था … के 'मृत्यु के नाटक' में साम्यवाद पर अविरोध लगाया है और

कैलासम् ने 'होमरूल' नाटक में मूर्खों के प्रजातंत्र का मज़ाक उड़ाया है, जैसे कि म्यूनिसिपल काउंसलर लोगों के लिए यह नियम उस नाटक में है : "अगर और जब चुने जायं तो दो काउंसलर कभी भी उसी एक गली में न रहें। इससे करदाता को यह आश्वासन मिल जायगा कि कम-से-कम शहर की एक से अधिक गलियाँ साफ रहेंगी, जितने काउंसलर कारपोरेशन में होंगे उतनी ही गलियाँ साफ़ रहेंगी।"

फिर एक प्रगतिशील लेखकों का दल है जो कि मुख्यतः समाज की पुनर्व्यवस्था की समस्या से ही सम्बद्ध है। दिनकर देसाई, एस० दोड्डमनि, अर्चिक, बँकण्णा और कुळकुन्द शिवराव में एक सशक्त सामाजिक चेतना राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय रूप में है। उनमें से कुछ तो जबरदस्त प्रचारक हैं और वे मार्क्सवादी विचारों में डूबे हुए हैं। परन्तु मार्क्सवाद स्वयं जिन बहुत-से परिवर्तनों में से गुजरा है, उनमें 'स्तालिनवाद' और अब 'स्तालिनवाद विरोध' दो प्रमुख हैं। कई लेखक अब कल्याण राज्य के आदर्श के प्रति सचेष्ट और समुत्सुक हैं। गरीब जीवन के असंख्य चित्र हैं, जिनमें समाजवाद के लिए ज़ोरों से अपील की जाती है—बेंद्रे के 'भिखारियों की बुराई', राजरत्नम् के 'नरक का न्याय' और रमाकान्त के 'क्रान्ति' इनके प्रमुख उदाहरण हैं। हमारे कई यथार्थवादियों और उपन्यासकारों ने समाजवाद में एक निश्चित सम्प्रदाय पा लिया है।

तीसरे कुछ रूढ़िवादी हैं, जो कि अपने सुप्रतिष्ठित विश्वास के मूल्य मानते हैं और अपनी शक्ति तथा समय उन्हीं विश्वासों के लिए अर्पित करते हैं। वे उस सिद्धान्त के साहित्य की खोज और पुनर्व्याख्या में संलग्न हैं। मठों के स्वामी इस क्षेत्र में विशेष रूप से सक्रिय हैं। इस दिशा में पुराने ग्रन्थों की टीकाएँ, पाण्डुलिपियों की समालोचना और सम्पादन का महत्त्वपूर्ण कार्य एफ० जी० हलकट्टि और आर० एस० पंचमुखि ने किया है। कुछ और लोगों ने भी ऐसे विश्वासों के लिए कार्य किया है, जिसमें उनका जन्म नहीं हुआ था ; जैसे—राजरत्नम् ने बौद्ध धर्म के लिए। परन्तु इस दिशा में लेखक उतने सृजनात्मक नहीं हैं, जितने कि दार्श-

धनात्मक । हमारे-जैसे क्रांतिकारी युग में रूढ़ियों में विश्वास शायद ही प्रेरणादायक शक्ति हो सके । यदि उनका सम्पर्क अन्य प्रकार के विचारों के साथ उचित रूप से न हो पाय तो दूसरी ओर यह भी डर है कि उनके धार्मिक विश्वास कट्टरपन और बौद्धिक संकीर्णता तक पहुँच सकते हैं, परन्तु सदियों से कर्नाटक में विविध प्रकार के विश्वास बराबर साथ-साथ चलते रहे हैं । इस बारे में यह प्रदेश सौभाग्यशाली है । जैन, वीरशैव, वैष्णव, श्री वैष्णव और अद्वैतवाद की जड़ें प्राचीन कन्नड साहित्य में मिलती हैं । इस्लाम और ईसाई धर्म की कलमें भी इस वृक्ष पर लगाई गईं और वे जमीं । इन सब धर्मों के वर्णन के विषय में जो कार्य हो रहा है, वह अमूल्य है । वह एक नए संश्लेषण की रचना में उपयोगी सिद्ध होगा, यदि उसमें पारस्परिक स्पर्धा और वाद-विवाद न उत्पन्न हो ।

प्रतिष्ठित धर्म और रूढ़िवाद की बुराइयों के कारण लेखकों का एक नया दल आगे आया—यह अद्वैतवादी मानवतावादी है । आज के 'निरंजन कुमार', वी० जी० भट्ट की कविताएँ, शर्मा के 'हृदय गीत' इस धारा के उदाहरण हैं । डी०वी० गुडप्प भी एक संशयवादी हैं, जिनका झुकाव रहस्यवाद की ओर है । वे 'कग्ग' में अपने संशयवाद का मध्य काव्यात्मक प्रमाण अथ-रूप में प्रस्तुत करते हैं । वि० सीतारामय्य उस मानवतावादी स्वभाव का विशेष दिग्दर्शन करते हैं जो कि पश्चिम का एक प्रमुख भाग रहा है । इनका स्वभाव कुछ रहस्यवाद की ओर झुका हुआ है । परन्तु पूरी तरह से नहीं । चूँकि इसमें व्यक्तित्व के समर्पण के लिए स्थान नहीं है और यह अधिक बुद्धिवादी है, फ्रायड और युग के ढंग पर यह अवचेतन और उत्तोलन आदि मानसिक क्रियाओं की खोज में अधिक दिलचस्पी लेते हैं, इन्हें आइन्स्टाईन-जैसे वैज्ञानिक के सिद्धांत से भी अधिक लगाव है । जो भी कारण हो, सीतारामय्य, एस०वि० रगण्ण, ए०एन० मूर्तिराव और नरसप्प-जैसे मानवतावादी लेखकों की रचनाएँ दुर्लभ सुकोमलता और करुणा तथा दृढ़ प्रामाणिकता और सूक्ष्म संवेदनाशीलता से भरी हुई हैं । सीतारामय्य ने कन्नड देश का वर्णन बहुत ही

मधुर ढंग से किया है, उन्होंने बड़े सुन्दर परिहास के साथ प्रतिभा के क्षणिक और चंचल आगमन का वर्णन किया है। अंध साम्प्रदायिक उन्माद के समय जब एक विद्यार्थी हिन्दू और मुसलमान दोनों को बचाने में मर गया, उसके प्रति उन्होंने हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की। वह यह भी जानते हैं कि भौतिकी प्रयोगशाला में प्रकाश के साथ जो प्रयोग किये जाते हैं, जिनसे अनिश्चित का अन्धकार आलोकित होता है वह शिक्षितों के लिए भी अंधेरे की तरह हो सकते हैं।

लेखकों का एक पाँचवाँ वर्ग ऐसा भी है, जिसका स्वभाव काव्यात्मक धार्मिक ढंग का है। उनमें मास्ति, पु०ति० नरसिंहाचार, गोविंद पै, देनुरु शालि, कर्कि, इन्चल और एक्कुंडि आदि उल्लेखनीय हैं। रूढ़ियाँ, मन्दिर, पुराण-गाथाएँ आदि सब उन्हें आकर्षित करती हैं। लेकिन वह ऐसे अधिकार और अनुभव की सूक्ष्मता के साथ बोलते हैं कि हमारे हृदय में घर कर जाते हैं। उनमें से कुछ अपने विश्वासों के प्रति बहुत मुखर नहीं हैं। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनके हिसाब से मानवात्मा चेतना का एक प्रकाशमय कण-मात्र नहीं है, वह मिट्टी में बसे हुए परमेश्वर का अमर स्फुल्लिंग है। इसी दृष्टि से वे जीवन, प्रकृति और मनुष्य को देखते हैं।

अब ऐसे भी कुछ लेखक हैं,जिनका चरम उद्देश्य सौंदर्य-जगत् में साहस-पूर्ण अभियान ही है। पुट्टप्प और 'आनन्द'-जैसे लेखकों के लिए आत्मा का सौंदर्य-जगत् में अभियान ही जीवन का अर्थ है, पुट्टप्प का परमात्मा भी सौंदर्य है। कला और जीवन का यह सुखद समीकरण ऐसा है कि पुट्टप्प अपने समृद्ध इन्द्रिय-संवेदन में मजे से रहते हैं। कलासुन्दरी नामक काल्पनिक देवी की धनुषाकार पलकों का अदम्य जादू उनके ऊपर है। उनका सौंदर्यवाद साधारण नहीं है, क्योंकि उनमें श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द और श्री अरविंद के प्रभाव के लिए भी स्थान है, जैसे कि उनके रूपकात्मक महाकाव्य 'रामायण' में व्यक्त है।

यह भी आवश्यक है कि नीतिशास्त्रीय, विचारपूर्ण या दार्शनिक

लेखन का उल्लेख यहाँ किया जाय, जिसमें एक विशेष उदात्त सोद्देश्यता है। होन्नापूरमठ, तारानाथ, दिवाकर और गूदिहाळ मठ आदि इस धारा के लेखक हैं। उनके लेखन का उद्देश्य समाज का नैतिक और बौद्धिक पुनर्जागरण है।

फिर लेखकों की एक आस्तिक धारा भी है। श्री अरविंद का प्रभाव भी, जिससे कि पुट्टप्प की रचनाएँ रंजित हैं, इस धारा के लेखक की प्रमुख प्रेरणा है। श्री अरविंद का दर्शन ऐसा है कि उसमें आत्मा और भौतिक जगत्, समाज और व्यक्ति, विवेक और अन्तरानुभाव का बहुत सुलझा हुआ समन्वय मिलता है। व्यापक रूप से यह कई मूल्यों को सन्तुलित करता है। बुद्धिवाद और रहस्यवाद, सौंदर्यवाद और समाजवाद, कर्म और ज्ञान-जैसे परस्पर-विरोधी तत्वों का यह समाहार करता है। इसके कारण बेन्द्रे, मधुरचेन्न, गोकाक, मुगळि आदि लेखक भी श्री अरविंद की ओर आकर्षित हुए। उनकी चेतना का वैयक्तिक और सामाजिक विकास वाला दूसरा छोर किसी और ढंग से परिपूर्ण नहीं हो सकता था। प्रत्येक की वैयक्तिक *प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न रही हैं।* यह सच है कि मधुरचेन्न ने व्यक्तिगत पक्ष को अधिक विकसित किया। उन्होंने सोचा कि उनके व्यक्तित्व के भीतर की गहराई में जीवन का मूल्य खोजा जाय :

"बिजली की तरह दूर तक कौंधती हुई,
मैं आश्चर्य करता हूँ, ओ चंचल, तुम कौन हो ?
यहाँ वहाँ चमकती थिरकती हुई
इतनी सुन्दर और चमकीली तुम कौन हो ?"

बेन्द्रे इस द्विविध विकास के विषय में पहले से ही बहुत सचेत थे। जिस कवि ने यह रोमांटिक कल्पना-चित्र दिया था :

"मेरी हमेशा से इच्छा है
कि मैं उस मुलायम ढेर पर सोऊँ
जहाँ बादलों का तकिया हो और बिलकुल भूला रहूँ
दुःख की स्मृति-मात्र से !"

और जिन्होंने ऐसी कविता लिखी, जो कि आन्तरिक चेतना के प्रकाश और रंगों से प्रतिभासित थी, उन्होंने यह भी लिखा :

"और उस गरीब की अन्तर-ध्वनि
जो कि अधभूखे, अधनंगे हैं,
बाढ़ की तरह से गरजती हुई चुनौती देती हुई आ रही है,
जब कि वह रोटी के लिए चीख रहे हैं :
ईश्वर को हम जमीन में दफना देंगे
और रात के वक्त जब गश्त देंगे तब उसकी कब्र पर जायेंगे !
चीखते हुए मनुष्यों के धर्म और सम्प्रदायों को हम आग लगा देंगे,
और उस ईश्वर की कब्र पर धूप की तरह जलायेंगे।
मृत्यु के घण्टे में जो आत्मा है उसे हम हिलायेंगे
और उनके पीछे-पीछे चीखते हुए पहुँचेंगे।
मृत्यु के भय से पागल और उन्मत्त
हम इस धरती का ही एक ग्रास बना लेंगे।"

मैं यह समझता हूँ कि प्रत्येक भारतीय प्रदेश में इन आठ दल के लेखकों के समान और भी लेखक मिलेंगे, क्योंकि भारतीय पुनर्जागरण कहीं कम, कहीं ज्यादा, इन सब साँचों में ढल रहा है। यह एक समृद्ध और बहुमुखी जागरण है, जो कि भारतीयों को विश्व में अपने सांस्कृतिक मिशन को पूरा करने के लिए सक्षम बनायगा, यह निश्चित । प्रत्येक लेखक के विश्वास उसकी परिस्थितियों से आबद्ध रहते हैं, उसके वातावरण और रुझान पर भी ध्यान रखना चाहिए। सब प्रकार के विश्वास साहित्य के लिए वहाँ तक सच हैं जहाँ तक कि वह लेखक के लिए सच हैं और उसके लेखन को किसी तरह मिथ्या नहीं कर देते। इस कारण से, वह कौन-सा दर्शन मानता है या किसका प्रचार करता है, इस बात से लेखक को नहीं जाँचना चाहिए, बल्कि उसे उसकी चेतना

में जो ज्योति जल रही है, उसको उत्कटता से जाँचना चाहिए। दर्शन तो उस खूँटी की तरह है जिस पर कोई भी टोपी या बहुरंगी कोट टाँगा जाता है। महत्त्वपूर्ण वस्तु वह टोपी या कोट है, न कि वह कोई खूँटी या हैंगर।

कुछ अधिक सूक्ष्म विश्लेषण करने पर हमें यह तथ्य मिलेगा कि इन सब धाराओं का परिणाम यह है कि वह मिल-जुलकर एक तथा नया जीवन बना देते हैं; एक जटिल, व्यक्तिगत और सामाजिक चेतना का निर्माण करते हैं। यथार्थवाद समाज की नींव को साफ करता है, अज्ञान भ्रष्टाचार और अन्धविश्वास का बहुत-सा कूड़ा-करकट जड़ से बाहर निकालता है; उससे व्यक्ति में एक प्रकार की सुदृढ़ प्रामाणिकता और सचाई जगती है। प्रगतिवाद उसके सही रूप में एक नवीन समाज का आदर्श सामने रखता है, एक ऐसा समाज, जिसमें यह विश्वास हो कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने सर्वोत्तम सम्पूर्ण विकास का स्वतंत्र और बेरोक मौका मिले। परम्परावाद परिश्रम पूर्वक हमारे विश्वासों की मूलभूत बातों को खोलकर बतलाता है और कहता है कि हमारी जनता में कहीं-न-कहीं एकता के महत्त्वपूर्ण बीज मौजूद हैं तथा स्वस्थ मनोवृत्ति किसी भी कट्टरपन को नहीं पनपने देता; और वह हममें यह इच्छा जगाता है कि मुक्त एवं खुली आँखों से हम अनुभव ग्रहण करें तथा मानवीय चेतना को उस पर डालें। नीतिवाद का तर्क है कि एक सुव्यवस्थित सामाजिक आदर्श और व्यक्तिगत अनुशासन हो। मानवतावाद से हमारी जनता के मस्तिष्क और हृदय की दुर्लभ संवेदनशीलता भरी है। सौंदर्यवाद उनमें उसके सब वास्तविक और विश्वात्मक रूपों में सौंदर्य का प्रेम अंकुरित करता है। आत्मिकवाद अस्तित्व की दूसरी ओर ऊँची ऊर्ध्व चेतना की समृद्ध संवेदनशीलता पैदा करता है। यह सिद्ध करता है कि व्यक्ति के विकास की ऊँचाई की कोई सीमा नहीं है। इच्छामय आत्मा के बदले चेतन आत्मा और भी इस चेतन आत्मा की ओर ऊँची किसी परम स्थिति में यह विश्वास ले जाता है;

और इस प्रकार से मनुष्य में उस शक्ति का रहस्य निमित करता है, जिससे कि इस पृथ्वी पर नया स्वर्ग बन गया है। भारतीय पुनर्जागरण का यह एक-मात्र उद्देश्य है। साहित्य उसी जागरण की पारदर्शी अभिव्यंजना है, इसलिए साहित्य में भी इन सब मोर्चों पर हलचल दिखाई दे रही है और इन विविध केन्द्रों पर साहित्य सक्रिय हो रहा है। इस सारी विविधता में एकता है और वह एकता उस नये सर्वरूप संगीत की एकता है, जिससे साहित्य जीवन पाना चाहता है।

यह नहीं कहा जा सकता कि आधुनिक कन्नड साहित्य सर्वरूपता की गहराई तक पहुँच सका है, या सभी जन के हृदय में वह अपनी संवेदना ले जा सकता है। आज तो हमारा साहित्य एक नये समन्वय की ओर विकसित हो रहा है। भारत में सभी स्थानों पर यह दिखाई दे रहा है, चाहे उसका आरम्भ कितना ही अधम दिखाई देता हो और वैयक्तिक सौंदर्य-बोध के अभियानों में कई बार एक अतिरेक से दूसरे अतिरेक पर परिवर्तन दिखाई देता हो, फिर भी साहित्य की दिशा उसी समन्वय की ओर है।

कश्मीरी

पृथ्वीनाथ 'पुष्प'

भूमिका

आज का कश्मीरी साहित्य गत पन्द्रह वर्षों की सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों का एक अकाल-परिपक्व, किंतु होनहार बालक है। वह परिपक्व इस अर्थ में है कि गत तीन दशाब्दियों के भीतर उसने वह उपलब्ध कर लिया, जिसे कि भारत के अन्य प्रमुख साहित्यों को उपलब्ध करने में प्रायः एक शताब्दी लगी। संस्कृत और फारसी में चलती आ रही छः शताब्दियों से ऊपर की लम्बी साहित्यिक श्रेष्ठ परम्परा का उत्तराधिकारी आधुनिक कश्मीरी साहित्य है, परन्तु कश्मीरी कभी भी दरबारी भाषा नहीं रही; और अभी हाल तक वह प्रार्थमिक शालाओं में भी पाठ्य-क्रम का विषय नहीं थी। इससे पता चल सकता है कि कश्मीरी में पत्रकारिता क्यों अविकसित रह गई है और गद्य को अभी भी वहाँ अपना स्थान बनाना है। यह इसलिए नहीं है कि सृजनात्मक प्रतिभा की वहाँ कमी है। इसका प्रमुख कारण, जहाँ प्रकाशन के साधनों का अभाव है वहाँ उससे भी अधिक पढ़ने वाली जनता की भयानक उपेक्षा है।

फिर भी अख्तर मोहिउद्दीन, उमेश कौल, रोशन, नादिम, कुरेशी और ताज बेगम की कहानियाँ एक उज्ज्वल भविष्य की ओर

संकेत करती हैं। और उतनी ही उज्ज्वल है पुष्कर भान तथा अली मुहम्मद लोन के नाटकों में पैदा की हुई आशाएँ। इन रचनाओं में कोई नई शैली या रचनाओं की दृष्टि से उन्नति नहीं दृष्टिगत होती। उनकी विषय-वस्तु में धरती की वह सोंधी बास है जो उस नई जिंदगी की ओर अचूक निर्देश करती है, जो कि कश्मीर में जाग रही है। गतिशील राजनैतिक कार्यकर्त्ता, बेदार किसान, दुल-मुल मध्यवर्गीय, मिहनती कारीगर, तेज मांझी, पसीने से लथ-पथ मजदूर, पागल क्लर्क, मनमौजी सैलानी, और गरीब दयनीय स्त्रियाँ यह सब मानो एक नये सवेरे की ताजगी में साँस लेते हुए बदलती हुई दुनिया की नई समस्याओं में प्रवेश कर रहे हैं। इसमें से बहुत-सा लेखन, निःसन्देह एक प्रकाशमय विहान की आशा से भरा हुआ है; लेकिन उसमें से बहुत बड़ा हिस्सा आज की कठोर वास्तविकता से उलझा हुआ है। और वही मुख्य धारा है, जो आज के कश्मीरी पद्य में सर्वाधिक मुखरित हुई है।

प्राचीन परंपरा

कश्मीरी गद्य तो अभी घुटनों के सहारे ही रेंगना सीख रहा है। परन्तु उसके उलटे कश्मीरी पद्य की स्थिति काफी ऊँची है और वह बहुत सार्थकता लिये हुए है। कश्मीरी पद्य की साहित्यिक परंपरा ११वीं सदी जितनी पुरानी है, जब कि शितिकण्ठ ने अपने 'महानय प्रकाश' नामक शैव तान्त्रिक ग्रंथ के लिए 'जनसुलभ भाषा' का प्रयोग किया। यह स्पष्ट था कि जनता की भाषा लोकप्रिय धार्मिक गाथाओं के प्रचार के लिए एक सुविधाजनक माध्यम के नाते चुनी गई, परन्तु वह जल्दी ही दूसरे साहित्यिक कार्य भी करने लगी। उन दिनों का कश्मीर राजनैतिक संकट से पीड़ित था; और शैव दर्शन के मुस्लिम सूफियों द्वारा प्रचारित सूफी मत के अनिवार्य संपर्क से नये सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर खड़े हो रहे थे। इस मनोराग का नया स्वर स्पष्टतः सुन पड़ा (१४

१४वीं शती) के उद्‌गारों में और उस कवयित्री से उम्र में छोटे समकालीन शेख नूरुद्दीन वली (नुन्द ऋषि) के उपदेशात्मक पदों में मिलता है। लल्ल द्यद के वचनों में परम सत्ता की कल्पनाओं से परिपूर्ण रहस्यवादी गीता-रमस्रता के कुछ सुन्दर अंश मिलते हैं। यह परम सत्ता सर्वतोव्यापी और फिर भी सबसे ऊपर है। इस प्रकार से आत्मनिष्ठ और वस्तु-निष्ठ तत्त्व एक सुन्दर चित्रबंध में गुँथ गए हैं। नुन्द ऋषि के छंदों में भौतिक और आध्यात्मिक के संतुलन के लिए ज़ोरदार आग्रह है। इन दोनों संत कवियों में कबीर के पूर्व दर्शन मिलते हैं। इन कवियों की रचनाओं में कबीर की भाँति आत्मसंयम की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है और धर्म के नाम पर ढोंग तथा बाह्याचार के महत्त्व की खूब निंदा देखने को मिलती है। उनके पदों में हिंदुत्व और इस्लाम एक ही भाषा में बोलते हैं, और ये उस मानवी बंधुत्व, सामाजिक समता और आध्यात्मिक एकता के लिए सोत्साह प्रार्थना करते हैं, जो कि सब जाति, वर्ण-भेद से परे है और सैद्धांतिक जड़ता के बंधनों को काटती जाती है।

बाद में फारसी 'मसनवियों' ने इस साहित्यिक विकास में एक सुविधापूर्ण टेकनीक दी। और महमूद गामी ने रहस्यवादी परंपरा को एक नया मोड़ दिया। 'यूसुफ-जुलेखा', 'लैला मजनूँ' और 'गुलरेज़'-जैसे फारसी के श्रेष्ठ काव्यों के काश्मीरी अनुवाद रूपकात्मक प्रेमाख्यानों-जैसे मौलिकता लिये हुए हैं; जब कि 'हमील' इस बात का उत्तम उदाहरण है कि कला के क्षेत्र में भी सहकारिता से कैसे काम लिया जाता है। उसका वर्णनात्मक अंश वली उल्लाह मट्टू और उसके गीत ज़रीफ की प्रतिभा से भरे हैं; और फिर भी इनका संगम आश्चर्यजनक ढंग से संपूर्ण है।

लबी (वर्णनात्मक) कविताएँ, जो कि विगत दो शताब्दियों में बहुत ही लोकप्रिय थीं, कई शतक पहले भी लिखी जाती थीं। पंद्रहवीं शती के बहुश्रुत सुलतान ज़ैनुल आबदीन के दरबारी कवियों ने न केवल

फिरदौसी का 'शाहनामा' कश्मीरी भाषा में अनूदित किया, प्रत्युत कश्मीरी भाषा में 'बाणासुर-वध' नामक एक महाकाव्य, 'जैनचरित' नामक एक पद्य-जीवनी और 'जैन-विलास' नामक एक नाटक भी लिखा। इस राज्याश्रयदाता की मृत्यु के बाद जो अराजकता फैली उसमें ये सब और इस काल की अन्य रचनाएँ नष्ट हो गईं। उन्नीसवीं शती में यह परंपरा फिर जागी और रहस्यवादी रोमांसों के लिए महमूद गामी ने उनका फिर से उपयोग किया। परमानन्द ने उसे नया अर्थ देकर, कृष्ण और शिव के विषय में प्रचलित लोक-परंपराओं से प्रेरणा ली। उनके 'राधा-स्वयंवर', 'सुदामा-चरित' और 'शिवलग्न' आदि काव्य ऊँचे काव्य-गुणों से भरे हैं। उनमें वैष्णव उत्साह शैव-उन्मुक्ति से मिला हुआ है। पौराणिक विषयों के बावजूद, अपने सामाजिक प्रभाव में वे बहुत आनददायक और वास्तविकतापूर्ण जान पड़ते हैं। प्रकाशराम कुरिगामी (अठारहवीं शती) के लोकप्रिय 'रामावतार-चरित्र' के रूप में रामायण कविता, इससे बहुत पहले अपनी बहार पर पहुँच चुकी थी। वहाब परे (उन्नीसवीं शती) के ऐतिहासिक आख्यान ने भी नई राह पकड़ ली थी।

लल्ल द्यद के वचनों के रूप में कश्मीरी साहित्य में गीति काव्य के जो बीज बोये गए, वे हब्बा खातून और अरणिमाल के उत्कट विरह-काव्यों और उच्छ्वसित दोह के रूप में सुपुष्पित हुए। वस्तुतः हब्बा खातून (यूसुफ शाह चक की प्रतिभाशाली पत्नी) ने सोलहवीं शती में साहित्यिक परम्परा को पुनर्जीवित किया। इससे कश्मीरी साहित्य में एक प्रकार से रचनात्मक साहित्यिक कार्य का नवयुग आरम्भ हुआ। एक किसान लड़की ने, जिसे कि रानी की ऊँची प्रतिष्ठा मिली, कश्मीरी गीति-काव्य को भौतिक जीवन-स्पन्दन से अंकृत कर दिया। उसके गीतों से मुसुक और कसक की ऐसी करुण रागिनी उमड़ पड़ी कि उसने सारे युग को आप्लावित कर दिया। अठारहवीं शती में एक ब्राह्मण फारसी कवि की परित्यक्ता पत्नी अरणिमाल ने कश्मीरी

भाषा को कुछ सुन्दरतम गीत दिये, जिनमें कि वैयक्तिक और पारस्परिक भावनाओं का सहज प्रवाह उमड़ा पड़ता था। यह धारा बाद में धार्मिक कविता के रूप में दूसरे ही रास्ते पर चली गई, और उसमें से हमें 'लीला' और 'नात' मिले। कृष्ण राजदान और नाजिम ने लोक-साहित्य के स्वरों का उपयोग करके उसका एक उत्तम समृद्ध पट बुना। परन्तु यह रहस्यवादी गीतात्मकता भी अलग रूप से आज तक बहती आ रही है, और वह मास्टरजी* (जिंदा कौल) के आध्यात्मिक मानवतावादी स्वर की चरम पराकाष्ठा तक पहुँची।

विगत शताब्दी के अन्त से काश्मीरी कविता में समकालीन जीवन सीधा व्यक्त होने लगा। मकबूल करालवारी और वहाब परे के व्यंग्य ने यह राह बनाई, जिसे आज हम यथार्थवादी कविता कहते हैं। इस काल के कई कवियों ने कई तरह की साहित्यिक विधाएँ आजमाईं, जैसे व्यंग्य, हजलगोई, कारटून, पैरोडी, करुणा-हास्य-मिश्रण, हतोल, 'रोह' (लोक-नृत्य-गीत) अन्तिम, किन्तु गुणों में अन्तिम नहीं, ऐसी गजल। को रसूल मीर ने एक अभूतपूर्व ऐन्द्रिकता और ऐसा माधुर्य दिया जो स्मृति में मंडराता रहता है। मीर की गजल ने महजूर (१८८५—१९५२) को प्रेरणा दी, और 'महजूर' आधुनिक कश्मीरी कविता के अग्रदूत बने।

समकालीन स्थिति

विगत ढाई दशकों की कश्मीरी कविता में कश्मीर के सामाजिक, राजनीतिक जागरण का प्रतिबिम्ब बहुत अच्छी तरह दिखाई देने लगा। इस कविता में सामन्ती जुल्मों के नीचे दबी हुई जनता की आज़ादी के लिए महान् संघर्ष का भी चित्र मिलता है। कश्मीर की जनता की नए कश्मीर के लिए कितनी अधिक जागरूक चेतना है, यह भी इस

* इनकी पुस्तक 'सुमरन' को साहित्य अकादेमी ने १९५६ का पुरस्कार दिया है।

कविता में प्रसार हुआ है। जनता में जो यह नया परिवर्तन आ रहा था, उसकी चेतना 'मजदूर' ने ही सबसे पहले जागृत की। उनकी देशभक्तिपूर्ण राष्ट्रीय कविता ने कश्मीरी कविता को नया स्वर ही नहीं, किन्तु एक नया दृष्टिकोण भी दिया। गुल-पो-बुलबुल और बम्बुर-यम्बर-जल (भौंरा और नरगिस) आदि कई मकेलों में उन्होंने एक नई जान ही नहीं फूँकी, बल्कि नई उमंगों के सायक नए संकेतवाद भी उन्होंने विकसित किये। इस संकेतवाद से एक बड़ा लाभ यह हुआ कि वह सरकारी सेंसर से बच गई, नहीं तो सामन्ती निरंकुश शासन में जनता में नई सामाजिक, राजनीतिक चेतना जागृत करने वाले गीत जाने से कैसे बच पाते? उनसे छोटे समकालीन कवि अब्दुल अहद आज़ाद अधिक स्पष्ट वक्ता थे। उनकी उत्साहपूर्ण वाणी, जिसमें देश-प्रेम कूट-कूट कर भरा था, धार्मिक सम्प्रदायवाद तअस्सुब और राष्ट्रीय संकीर्णता के विरुद्ध एक जबरदस्त जिहाद थी। वस्तुतः अहद आज़ाद की वाणी सब तरह के प्रतिवादों के विरुद्ध थी। मानववाद उनका अपना विश्वास था, वे इस बात के जबरदस्त प्रचारक थे कि एक ऐसा वर्ग-हीन समाज स्थापित हो, जहाँ व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में कोई भेद न किया जाय।

उन दिनों कश्मीरी प्रायः द्विविध राष्ट्रीय पद्धति के शाप से पीड़ित थे। एक ओर सामन्ती राजाशाही थी तो दूसरी ओर साम्राज्यवादी रेजीडेंटशाही। जनता को बड़ा ही सख्त मुकाबला करना पड़ा और तब आरिफ ने अपनी कविता 'मगर कारवाँ सोन' में (मगर हमारा आज़ादी का कारवाँ बढ़ता ही जायगा इस युद्ध की वीर गाथा गाई। कश्मीरी साहित्य का सारा वातावरण क्रांतिकारी उत्साह से भरा हुआ है। यहाँ तक कि एक ओर आमि नामक कुली-कवि ने उन मेहनतकश मजदूरों के दुःख-दर्द का चित्र खींचा, जो कि सामन्ती व्यवस्था के बोझों नीचे पीसे जा रहे थे। मास्टर जी-जैसे रहस्यवादी ने सरल, किन्तु भी अत्यन्त आधुनिक स्वर में न केवल चिरन्तन लगन और

उल्लास का गान किया, परन्तु यह भी कहा कि इस काल-सरिता में से मुझे एक ऐसे आदर्श मानवों के (वर्गहीन) समाज में ले जा, जहाँ घरेलू साम्प्रदायिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन पूरी तरह सुख-शान्ति के साथ समन्वित हो।

कबाइली हमलावरों के पहले काश्मीर का साहित्यिक दृश्य इसी प्रकार का था। इस हमले ने आज़ादी की लड़ाई को जनता के मोर्चे के रूप में बदल दिया। १९४५ के शिविर में न केवल कश्मीर की राजनीतिक जिन्दगी ने एक नया मोड़ लिया, अपितु देश की साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्परा में जो-कुछ भव्य और दिव्य था वह पुनर्जीवित हो उठा।

नए सांस्कृतिक आन्दोलन के प्रमुख संघटकों में से एक नादिम थे। वे पूरी तरुणाई और चैतन्य आशावाद के सबसे उदीयमान कश्मीरी कवि हैं। उन्होंने अपने आस-पास तरुणों का एक दल मित्रों के रूप में पाया, जिसमें रोशन, राही, प्रेमी और कई लोग थे। आरिफ, आरिज, अम्बरदार और फाज़िल-जैसे पुराने कवि भी इस नई धारा के साथ-साथ चलने लगे तथा कई नौसिखिए कवि नई प्रेरणा एवं आकांक्षाओं के गान गाने लगे। उस समय का वातावरण संकटपूर्ण था और मातृ-भूमि का भविष्य अनिश्चित था। 'महजूर' इन सबको आशीर्वाद देने के लिए ही थे।

कबाइली हमले के खिलाफ पूरे देश में गुस्से की एक धारा उमड़ी, जिसमें कि राष्ट्रीय कविता प्रस्फुटित हुई। असामाजिक और अलोकतन्त्रीय तत्त्वों के विरुद्ध सब तरह की लोकप्रिय शक्तियाँ मोर्चा बनाने लगीं। नादिम की 'मेरी जवानी ताज़ी है' इस धारा को व्यक्त करने वाली एक विशिष्ट कविता है। इस धारा में जनता आर्थिक और राजनीतिक दोनों प्रकार की दासता के बन्धनों से मुक्त होने के लिए लड़ने का नया निश्चय करती है। आन्तरिक शान्ति और सुव्यवस्था उस घड़ी की सबसे अनिवार्य आवश्यकता थी। कवि ने इस माँग का पूरे ज़ोर के साथ

उत्तर दिया और उसने देश की सांस्कृतिक परम्परा में जो-कुछ भी मूल्यवान था, उसमें जोर देकर इस संघर्ष को बल दिया। उन्होंने अपने देशवासियों को यह दिखाया कि कृषि-सम्बन्धी सुधारों का क्या महत्त्व है, साहूकारी और गाँव की कर्जदारी को पूरी तरह खत्म करना कितना जरूरी है! इस तरह मेहनतकश के नए रूप पर बल दिया गया। यह रूप इस भविष्य के समाज-निर्माण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था। और कवि ने किसानों को पुकारा :

"हल लेकर
हर साल
नया नसीब लिखते हैं
धरती माता की पेशानी पर···"

किस लिए ?

"अपनी धरती को सुखी बनाने,
उसके ललाट पर गुस्से की सलवटें दूर करने,
उसके चेहरे पर की झिकनें
उसकी आँख का मोतियाबिन्द दूर करने के लिए।"

हवा ने कवि से कहा :

"मैंने गुलाब की आँखों को देखा
गुस्से से लाल थीं :
इन्कलाब ने नई जान फूँक दी है
झरनों में;
घास को मैंने होड़ लेते हुए देखा
उत्साही फूलों के साथ—
मुझे एक नया निश्चय दिखाई दिया
प्रसन्न दौड़ते हुए जल प्रपात में ;
मुझे यह (सरो) साइप्रस के पेड़ चट्टान की तरह खड़े दिखाई
दिए,

और घास की पत्तियाँ भी
अपने पैरो पर खड़ी हो रही थी।"

प्रकृति को देखकर नादिम का हृदय उछल उठता है। वह लिखता है :

"पर्वतो से खेलता हुआ झरना
जिसके घाघरे में घुंघरू लगे हैं
और मोती जड़े हुए हैं,
बहुत सवेरे जाग उठा,
जब कि चाँद ढल रहा था
और वह अपने उन्मत्त यौवन के साथ आकर खेलने लगा
पत्थर के गोल टुकड़ो के साथ।"

परन्तु कवि को यह देखकर बड़ा दुख हुआ

"मजदूर से उसका हिस्सा चुराकर
साहूकार ने अपने भण्डार भरे हैं
और वह बड़ी अकड़ के साथ हर बाजार में घूम रहा है
आदमी का मांस जो वह बेचता है ग्राहक को देख रहा है।"

कश्मीर राज्य में जो नई आर्थिक रचनाएँ हुई हैं उनके साथ जनवादी विषयो के प्रति यह आग्रह बहुत स्वाभाविक है। विगत कुछ वर्षों में लोक-साहित्य की विधाओं के प्रति विशेष प्रेम प्रदर्शित करने वाली एक और जो लोकप्रिय धारा प्रवाहित हुई उसमें फसल के सामूहिक गान, पालने और लोरी के गीत, तथा मजदूरों के गाने इत्यादि का स्वर और भी तेजी से गूँजा। रोशन ने कश्मीर की विभोपम ऋतुओं पर कई सुन्दर कविताएँ और कल्पना-चित्र लिखे हैं, इन चित्रों में जन साधारण अपने सब तरह के काम करते हुए शान्ति और समृद्धि की ओर मजबूती से कदम उठाते हैं। प्रेमी ने भी मजदूरो की जिन्दगी के कई पहलू अपनी कविता में आँके हैं। विशेष आनन्ददायक तो वे गीत हैं, जिनमें कि उन किसानों के चित्र हैं, जो खेती पर गोड़ाई, बुआई तथा निराई करते हैं, और जो घास-फूँस उखाड़कर फेंकते हैं; जो फसल काटते हैं; जो

केदार चुनते हैं। अपनी 'हारुद' (फसल) कविता में उसने एक नये नृत्य-गीत की धुन में एक बदली हुई किसान जाति का बहुत सुन्दर लय-पूर्ण चित्रण किया है।

संक्रान्ति-काल सदा ही कठिन और एकरसतापूर्ण होता है; लोग बहुत जल्दी अधीर हो जाते हैं। उन्हें विकास की गति धीमी लगती है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं यदि कहीं-कहीं स्वप्न-भंग और निराशा की धारा भी बही हो। प्रायः वे सब कवि, जिन्होंने कि नई व्यवस्था का स्वागत किया था, कभी-कभी निराशा की आह भी भरते हैं। जन-साधारण जिन कष्टों में से गुज़र रहा था वे सब सामाजिक बुराइयों और नौकरशाही की पोल के कारण और भी अधिक बढ़ गए; और कवि को इन सब बुराइयों के विरुद्ध, जैसे चोर बाजार और भ्रष्टाचार के विरुद्ध, आवाज बुलन्द करनी पड़ी। स्वर्गीय 'महजूर'की कुछ गज़लों और 'आरिफ' की रुबाइयों का बहुत बड़ा हिस्सा इन्हीं कड़ुवे व्यंग्यों और सच्ची आलोचनाओं से भरा हुआ है। इनमें यह दिखाया गया है कि 'पुरानी व्यवस्था' का कुछ प्रभाव अभी भी कैसे शेष है। उदाहरणार्थ 'महजूर' ने नई पाई हुई 'आज़ादी' का मजाक इस तरह उड़ाया है :

"यह आज़ादी एक स्वर्गीय परी है;
भला वह दर-दर कैसे भटक सकती है ?
नहीं, वह तो एक-आध दो घरों में ही मौज मनाती है ''
जनता दुखी है; नौकरशाही दूल्हों की तरह से
आज़ादी की शाहज़ादी के साथ अपने घरों में सुहाग रात
मनाते हैं !"

इन दुष्टों का सबसे बुरा चित्र और कठिन प्रताड़ना रोशन की एक कविता में है, जिसमें एक शहीद की दुखिया माँ उन ढोंगियों का पर्दाफाश करती है जो कि प्रतिवर्ष उसके लड़के की कब्र पर जमा होते हैं और बड़े स्वांग से फूल बरसाते हैं। वह माँ अपने लड़के की अमर आत्मा से शिकायत करती है कि इन लोगों ने आज़ादी के साथ विश्वास-

घात किया है, इन्होंने लड़ाई आधे रास्ते में छोड़ दी और अब यह आराम से पुराने ढंग की राज-व्यवस्था के सहारे सो रहे हैं। एक दूसरी शक्तिशाली कविता 'भ्रम' में कवि ने कश्मीरियों के उस निश्चय को वाणी दी है जो कि उस साज़िश को तोड़ देना चाहती है, जिसमें कि कश्मीर को हिन्दुस्तान से अलग काटने की आस रखी जा रही है।

कश्मीर के भविष्य के बारे में सुरक्षा-परिषद् के अनिश्चय के कारण, जो विषम त्रिशंकु-जैसी स्थिति जनता में है, उसने भी कश्मीरी कविता को बहुत-सा नया विषय दिया। कवि यह सब जानते हैं कि पर्दे के पीछे क्या हो रहा है, सुरक्षा-परिषद् की घटनाओं को वे बहुत उत्सुकता-पूर्वक और अधीरता से देख रहे हैं। उन्होंने युद्ध-पिपासुओं की निन्दा की, अपने राष्ट्र से उन्होंने सारी दुनिया के लिए शान्ति की इच्छा का स्वाभाविक समर्थन किया, जिस शान्ति के बिना वे अपने आदर्श स्वप्नों वाले नए कश्मीर को अभी नहीं बना पायेंगे। कश्मीरी भाषा को इस बात पर गर्व है कि उसने शान्ति के समर्थन में बड़ी ही मार्मिक रचनाएँ दी। शान्ति कश्मीरियों के लिए कोई अमूर्त आदर्श नहीं है, परन्तु एक प्रत्यक्ष वास्तविकता है—दुनिया-भर के जन-साधारण के लिए आज की घड़ी में वह एक अपरिहार्य आवश्यकता है। कश्मीरी कवि ने शान्ति के बारे में इस तरह से सोचा :

> "आज मैं नहीं गाऊँगा ··
> कोई वासना से भरा कोमल और सान्त्वना देने वाला गीत
> गुल-ओ-बुलबुल का···
> न झरने का, और न फूलों के कुञ्जों का,
> न शबनम का, न बहार का ··
> क्योंकि आज, क्योंकि आज···
> पतझड़ की विषैली साँस
> बसन्त की हवा को दूर भगा देना चाहती है;
> मनुष्य बड़ी तेजी से तैयारी कर रहा है

मनुष्य का फिर से शिकार करने के लिए……
इसलिए आज मैं चल पड़ूँगा,
आज चल पड़ूँगा, आज ही चल पड़ूँगा
मैं रास्ता बनाऊँगा,
मैं सब विघ्न-बाधाओं को चूर-चूर कर एक साथ कर दूँगा;
मैं दुश्मन से, डाकू से मुकाबला करूँगा,
और चिल्लाकर कहूँगा—'हाथ ऊपर उठा लो';
हँसिया, हथौड़ा और कलम से सुसज्जित
दृढ़ निश्चय के साथ
मैं बराबर पहरा देता रहूँगा
एक चौकी से दूसरी चौकी तक !"

कुछ शांति की कविताएँ युद्ध-पिपासुओं को जनता की उत्कट चुनौती के रूप में हैं, परन्तु सबसे अधिक प्रभावशाली वे हैं जिनमें कि जनसाधारण के रचनात्मक प्रयत्नों पर बल देकर जीवन के विविध क्षेत्रों में जनता के रचनात्मक कार्य को दिखलाकर शांति की परम्परा का महत्त्व स्पष्ट किया गया है। नादिम, रोशन, राही और कामिल की कविताएँ इन्हीं विषयों पर आधारित हैं। यही नहीं उनमें प्रकृति की सुन्दर पार्श्वभूमि पर घरेलू और राष्ट्रीय दिशाओं में जीवन के व्यापक चित्र-पट को भी खोलकर व्यक्त किया गया है।

वस्तुतः बहुत-सी आधुनिक कविता इस कल्पना से प्रभावित है कि यदि जनसाधारण को एक प्रिय और सुरक्षित भविष्य का आश्वासन मिल जाय तो वह कितना कमाल करके दिखला सकता है। वह इसलिए कवि उस चमकते हुए सूरज के गीत गाता है, जो कि क्षितिज पर नया संदेश लेकर घूमता है, जो कि सदियों के अंधेरे को दूर करता है और नए मानवता के सवेरे की अगवानी करता है। राही पूछता है :

"अंधेरा, बिजली और तूफान कैसे रह सकेंगे
जबकि सूरज उगेगा और सवेरे की किरणें फूटेंगी ?

पतझड़ का पीलापन कँपाता हुआ भाग जायगा
जबकि सुन्दर वासन्तिक संगीत गूँज उठेगा···"

राही ने अपने अन्य बड़े समकालीनों पर भी कल्पनात्मक व्यंजना में मात दी है। कश्मीरी गजल में, जिसे महजूर, आजाद और मास्टरजी ने एक नया सामाजिक, राजनीतिक रस दिया था, राही ने सफलता पूर्वक प्रयोग किया। कामिल ने भी इकबाल के ढंग पर ऐसी कई गजलें लिखी हैं जिनमें भावना को बौद्धिक रूप दिया गया है।

गजल ही अकेला कोई ऐसा रूप नहीं है जिसमें कि नई चेतना फूँकी गई हो। समकालीन कश्मीरी कविता ने कश्मीरी छन्दशास्त्र के क्षेत्र को भी बहुत व्यापक बनाया है और उसमें कई तरह के पुराने छन्द फिर से नये किये गए हैं और कुछ छंद नये भी गढ़े गए हैं। उदाहरणार्थ वाख, रुबाई, मसनवी, शेर और लोक-छंदों के साथ-साथ सानेट भी अब बहुत सफलतापूर्वक लिखे जा रहे हैं। आपेरा और (रेडियो) पद्य-रूपकों में भी मुक्त छंद और दूसरे नये छंद-रूपों तथा-मिश्र-बन्धों के प्रयोग की नई सम्भावनाएँ दी हैं। मुक्त छंद कश्मीरी भाषा के लिए बहुत उपयुक्त है, क्योंकि उसमें बड़े समृद्ध आन्तरिक अनुप्रास और लचीले स्वर-प्रयोग की क्षमता है।

कश्मीरी में आपेरा और गीति-नाट्य बहुत हाल में लिखे गए हैं और नादिम ने एक पुरानी लोक-कथा को बहुत कुशलता पूर्वक एक नवीन-रूपक के साँचे में ढाला है। बम्बुर (भ्रमर) और यम्बरज़ल (नरगिस) के पुनर्मिलन को दिखलाते हुए कवि ने शीतकाल और उसके पीछे से आक्रमण के कारण इन दोनों प्रेमियों के वियोग तथा अन्ततः रचनात्मक शक्ति, प्रेम की शक्ति पर अन्तिम विजय का प्रतीकात्मक चित्रण किया है। एक तरह से इस रूपक में उन्होंने दुष्टों के चंगुल से कश्मीर की मुक्ति को सूचित की है। कामिल के 'रथहरि' में बसन्त द्वारा शिशिर के अन्तिम पराभव का चित्रण है; सबसे नये आपेरा 'हीमाल त नागराय' में नादिम और रोशन ने मिलकर एक पुरानी लोक-कथा के रूप में जनमानस के मानवीकरण की कल्पना प्रस्तुत की है।

कश्मीरी कविता में सबसे नई धारा प्रतीकवाद की ओर फिर से लौटने की है। हाँ इसमें एक बड़ा अन्तर है; फिर भी इस कविता में व्यक्त करने की अपेक्षा छिपाने की ओर अधिक प्रवृत्ति है और जब रूपवाद प्रधान हो उठा तो कविता धीरे-धीरे साहित्यिक व्यायाम का एक अंग बन जाती है। फिर भी हम यह देखते हैं कि नये कश्मीरी साहित्य में कुल मिलाकर 'आज' की घटनाओं में बड़ी सजीव दिलचस्पी दिखाई देती है। उसमें प्रकाशमय आगामी 'कल' के लिए भी प्रामाणिक चिन्ता है। यह निःसन्देह वर्तमान से भरी हुई है, जिसमें दुःख भी है, और सुख भी, समस्या भी है और सफलता भी स्पन्दन भी, है और कंपन भी, आह भी है और आनन्द भी, आशा भी है और निराशा भी; फिर भी इन सबके साथ-साथ कश्मीरी साहित्य को अपने भविष्य की चिन्ता बराबर है; क्योंकि भविष्य का वर्तमान पीढ़ी पर बहुत सख्त दावा है।

उगते हुए कश्मीरी गद्य ने भी सुखद आरम्भ कर दिया है। जिन्दगी जैसी है उसके साथ उसका घना सम्पर्क है और जैसी वह होनी चाहिए उस आदर्श व्यवस्था की प्राप्ति के लिए वह प्रयत्नशील है। यह आशा की जा सकती है कि कश्मीरी भाषा में पत्रकारिता के विकास के साथ-साथ निबन्ध, समालोचना इत्यादि उपेक्षित विभाग भी धीरे-धीरे विकसित होंगे। अब राजनीतिक अनिश्चय और आर्थिक अव्यवस्था की निराशा उत्पन्न करने वाली मन स्थिति मिट चुकी है, अब ऐसा कोई कारण नहीं कि कश्मीरी साहित्य फिर से उठकर कलात्मक व्यंजना के नये क्षेत्र न खोज सके। कला के जीवन में सामाजिक उद्देश्य की बढ़ती हुई चेतना में से चैतन्य, यथार्थवाद की धारा अब कश्मीरी साहित्य में प्रत्यक्ष उपलब्धियों के रूप में अधिकाधिक परिमार्जित हो रही है केवल रूप-शिल्प और विषय-वस्तु में नवीनता की झलक अब बहुत [illegible] जा रही है, उसे एक नये समन्वित शिल्प-पूर्णता की यथेष्ट [illegible] में परिवर्तित किया जाना चाहिए। कश्मीर के साहित्यिक [illegible] की आज की पीढ़ी के आगे यह एक बड़ा काम है।

गुजराती

मनसुखलाल झवेरी

सामान्य परिचय

भारत के पश्चिमी समुद्र-किनारे पर गुजरात प्रदेश की जनता की भाषा गुजराती है। आजकल इस प्रदेश में गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ यह तीनों सम्मिलित हैं। गुजराती भाषा-भाषियों की संख्या डेढ़ करोड़ से ऊपर है।

गुजराती भाषा संस्कृत से निकली है। शौरसेनी, प्राकृत और गौर्जर अपभ्रंश मँझली अवस्थाएँ थीं। गुजराती करीब ११०० ईस्वी में अपने स्वतन्त्र रूप में शुरू हुई, परन्तु इस विशेष नाम से वह १७ वीं सदी से ही जानी गई, जबकि उस प्रदेश का नाम गुजरात रखा गया।

कवि नर्मदाशंकर (या कि लोकप्रिय ढंग से जैसे उन्हें कहते हैं नर्मद) आधुनिक गुजराती साहित्य के जनक माने जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि नर्मद के पहले कोई साहित्य नहीं था। गुजरात का साहित्य तो गुजराती कविता के होमर-जैसे प्रथम महाकवि नरसिंह मेहता के समय से विकसित होता आ रहा है। चार शताब्दियों तक, (१४१४ से १८५२ ईस्वी तक) गुजरात में सैकड़ों कवि हो गए; जिनमें छः कवि गुजराती लेखकों में सदा के लिए प्रथम श्रेणी के लेखक माने जाते हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दी में नरसिंह महेता और मीराबाई दो बहुत प्रसिद्ध गुजराती भक्त कवि हुए। सत्रहवीं शताब्दी की बृहत्त्रयी थे— अखो, प्रेमानन्द और शामल। अखो एक सुनार थे, जो व्यंग्य-तीखी आलोचना और निर्भय दम्भ-स्फोट के आचार्य थे; प्रेमानन्द आख्यान-कवि के नाते प्रसिद्ध हैं, उन्होंने गुजराती कविता में विविध रसों का बहुत सुन्दर अंकन किया है, और शामल पुराने लेखकों में बड़े साहसी कवि थे, जिन्होंने लीक-लीक चलना छोड़कर रोमांटिक कथा के क्षेत्र [illegible] पूरा-पूरा उपयोग किया। अट्ठारवीं शती के उत्तरार्द्ध में मधुर कवि दयाराम हुए, जिनकी 'गरबीओ' के कारण उनका नाम गुजरात के अमर गीतकारों में लिया जाता है। इन छः श्रेष्ठ लेखकों के अतिरिक्त मध्ययुगीन गुजराती कवियों में भालण भी हुए; जिन्होंने मुक्त अनुवाद की परम्परा प्रतिष्ठित की। पद्मनाभ ने अपने 'कान्हड़-दे-प्रबन्ध' में ऐतिहासिक वीर रस की व्यंजना की, भीम ने 'भागवत् पुराण' के ढंग पर श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया, धीरो और भोजो ने इस जीवन की असारता पर जोर दिया तथा स्वामीनारायण-सम्प्रदाय के ऐसे कई कवि हुए जिन्होंने मानवी शरीर को ही परमात्मा एवं मुक्ति के पाने का प्रधान माध्यम मानकर उसका महत्त्व वर्णित किया।

सामान्यतः कविता चार शताब्दियों की लम्बी अवधि में भौतिक यथार्थ के स्पर्श से अछूती रही। जीवन की अनन्त विविधता इन कवियों का विषय नहीं थी, वे प्रेम के गीत गाते थे, परन्तु वह प्रेम केवल दैवी राधा कृष्ण का ही था। जो-कुछ साम्प्रदायिक नहीं है वह काल्पनिक और मायवी है, ऐसा वे मानते थे। इस प्रकार से उस समय

कर धीर-धीरे — ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की प्राचीन परम्परित लीकों में दल-

कार ... ... जम गई और अट्ठारहवीं शती के अन्त तक वह मुक्-

... [illegible] रही।

... है, ने भी ... जीवन भी अट्ठारहवीं शती के अन्त तक चार पर

... आज ... था। १७६६ में सूरत के नवाब की मृत्यु के बाद और

उसी साल से श्रीरामपुर में पहला मिशनरी स्कूल खुलने के बाद पुरानी व्यवस्था बदल गई और नई व्यवस्था ने जन्म लिया। १८१८ से १८५७ तक भारत में ब्रिटिश शक्ति की जड़ें गहरी और मजबूत हो गई थी।

पश्चिम का प्रभाव

ब्रिटिश राज्य के साथ-साथ पश्चिमी सभ्यता का बलशाली प्रभाव भी आया। विज्ञान के आविष्कारों ने दूरी कम करके जनता का मानसिक क्षितिज विस्तृत बनाया। धीरे-धीरे स्थानीय राजनीतिक असन्तोष समाप्त होने लगा और गुजरात के तरुण समाज-सुधार के कार्यक्रम में पूरी तरह जुट गए। वे शिक्षा, अंध श्रद्धा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, और अन्तर्जातीय विवाह आदि समस्याओं के समाधान में पूरी तरह जुट पड़े। इन सब कार्यों में उन्होंने पश्चिम को अपना आदर्श माना।

इस युग का साहित्य, जिसमें एक प्रतिनिधि नर्मद (१८३३ से १८८६) हो गए थे, ऐसा है कि उसमें कविता ने पहली बार आत्मनिष्ठता के तत्त्व का पूरा मूल्य रूप पाया। ऐतिहासिक उपन्यास विकसित होने के साथ-साथ सामाजिक व्यंग्य रूपक, निबन्ध, जीवन-चरित्र, आत्मकथा, नाटक और साहित्य-आलोचना ने भी गद्य में निखार पाया।

१८८६ में नर्मद की मृत्यु के उपरान्त गोवर्धन (१८५५-१९०७) का युग शुरू हुआ। इस युग में पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों को सर्वोत्तम सम्मेलन के रूप में प्रस्तुत किया गया। यह सम्मेलन केवल यान्त्रिक सम्मिश्रण नहीं था; परन्तु उसका आधार पूर्व की संस्कृति और केवल वही तत्त्व थे जो कि अनिवार्यतः पश्चिम से लिये गए थे। उनकी कलम इस पौधे पर ही लगाई गई थी। यह युग उदात्त और सन्तुलित मस्तिष्क वाले ऐसे विचारकों का था, जो अपने विषय का व्यापक ज्ञान रखते थे। उनका विश्वास था कि विवेक—और केवल अन्ध श्रद्धा तथा केवल रूढ़िवादिता ही मनुष्य के विचार और कर्म के नियन्ता नहीं होते। इसी दृष्टि से उन्होंने अपने समय के मौलिक प्रश्नों का जो विवेचन और

विश्लेशण किया वह ऐसे ढंग से किया गया कि जिससे रूढ़ सनातनी लोगों को चौंकाने वाला धक्का भी पहुँचे और तरुणों की उपेक्षा या निष्कासन भी न हो।

इसी युग (१८८६ से १९१४) में गद्य में कहानी और पद्य में खण्ड-काव्य, सानेट और विलापिका आदि का जन्म हुआ। चार खण्डों में 'सरस्वतीचन्द्र' नामक उपन्यास भी इसी युग में लिखा गया; जो कि गुजराती भाषा का सर्वोत्तम ऐतिहासिक ग्रंथ है। इस युग में गुजराती का एक-मात्र हास्य रस का उपन्यास 'भद्रभद्र' भी लिखा गया। निबंध, नाटक, संवाद और पत्र-गद्य की कुछ ऐसी विधाएँ हैं जो इसी युग में विकसित हुई। इसी युग में संस्कृत और अंग्रेजी के श्रेष्ठ ग्रंथों के प्रामाणिक अनुवादों ने भी साहित्य को समृद्ध बनाया तथा गुजराती रंगमंच विकसित होकर अपने परमोच्च बिन्दु पर पहुँचा। इसी युग में नानालाल, कान्त, कलापी बलवन्तराय और नरसिंहराव-जैसे कवि हुए। कई प्रकार के मुक्त छन्द के प्रयोग भी इसी युग में किये गए। भाषा-विज्ञान, ऐतिहासिक शोध, व्याकरण, छन्द-शास्त्र और साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में इस युग में बहुत मूल्यवान कार्य हुआ। मणिलाल द्विवेदी, आनन्दशंकर और केशवलाल ध्रुव तथा दूसरे कई महत्वपूर्ण लेखक भी इस युग में हुए।

गांधी युग

१९१४ गुजराती साहित्य का युगान्तरकारी काल है। इसी समय महात्मा गांधी अफ्रीका से लौटे थे और थोड़े-से महीनों में ही उन्होंने पूरे भारत-खण्ड के वातावरण को जैसे चमत्कृत कर दिया था। गांधीजी, होमरूल-आन्दोलन और जलियाँवाला बाग तथा देश के बाहर प्रथम महायुद्ध, उसके परिणाम और रूस की क्रांति इत्यादि घटनाओं ने गुजरात के भाव-जीवन के अन्तरतम को छू लिया। केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता नहीं, परन्तु धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और साहित्यिक सभी क्षेत्रों

में सारे गुजरात की आत्मा स्वतन्त्रता की भावना से भर उठी ।
गुजरात नवीन जीवन से स्पन्दित हो उठा ।

साहित्य के क्षेत्र में इस युग में कई प्रमुख साहित्यिकों की जयन्तियाँ और पुण्य तिथियाँ मनाई गईं, कई साहित्यिक व्याख्यानमालाएँ आयोजित की गईं। शरदोत्सव और वसन्तोत्सव हुए, कला-प्रदर्शनियाँ और वाद-विवाद तथा लोक-गाथाओं एवं लोकगीतों की सभाएँ भी हुईं। इसी समय अव्यावसायिक रंगमंच का जन्म भी हुआ।

गांधी-युग के लेखकों ने जीवन को कई दृष्टिकोणों से देखा था। आर्थिक विषमता के कारण समाज की जो असह्य स्थिति थी वह उसे खटकती थी। गांधीजी के सन्देश से प्रेरणा पाकर गुजराती लेखक सेवा और त्याग, दरिद्रनारायण के उद्धार के प्रयत्न, गाँवों के पुनरुत्थान तथा दलितोद्धार इत्यादि कार्यक्रमों में रुचि लेने लगे और इस प्रकार से धनिक-वर्ग की ओर से उनकी दृष्टि हटकर गरीब और अशिक्षित देहाती जनता की ओर मुड़ गई।

गद्य-साहित्य के रचनात्मक पक्ष में गद्य-युग के लेखक अपनी रचनाओं में कला पक्ष के प्रति अधिक जागरूक हो गए। इस युग के उपन्यास पिछले युगों की अपेक्षा विषय-वस्तु और शैली दोनों में भिन्न हैं। साहित्य की स्वतन्त्र विधा होने के नाते कहानी इसी युग में आगे बढ़ी और लघु-निबन्ध, एकांकी, स्वगत-भाषण तथा डायरियाँ इत्यादि लिखी जाने लगीं। लोक-साहित्य एवं लोक-गाथा में शोध-कार्य हुए, बच्चों के लिए साहित्य लिखा गया और इसी युग में विज्ञान, अर्थशास्त्र, कृषि इत्यादि विषयों पर बहुत-सी पुस्तकें निर्मित हुईं। इस प्रकार विषय-वस्तु का क्षेत्र व्यापक बना और शैली तथा अभिव्यंजना भी पूरी तरह बदल गई। इस युग के पूर्ववर्ती गोवर्धन युग में साहित्य ऐसी शैली में लिखा जाता था जो कि अलंकारमयी और कृत्रिम थी। ऐसा साहित्य केवल ऊँची अभिरुचि वाले विद्वानों के लिए लिखा जाता था। गांधी युग में भाषा के सब अतिरंजन और शब्द-बहुलता को दूर किया गया तथा गद्य-शैली

सरल, सीधी, स्वाभाविक और प्रत्येक अर्थच्छटा को व्यक्त करके अस्तित्व में आई। गांधी युग में साहित्य केवल ऊँचे वर्ग के लिए नहीं, किन्तु जन-साधारण के लिए भी लिखा जाने लगा।

कविता के क्षेत्र में रास, गरबी, खण्ड-काव्य, सानेट, प्रतिकाव्य (पैरोडी), विलापिका में पद्य-संवाद और मुक्तक इत्यादि विधाएँ जन्मीं और इसी काल में वे परिपक्व भी हुईं। इन सब रूपों में आख्यान-शैली की अलग कविताओं का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहिए।

गांधी युग का कवि केवल प्रेम, प्रकृति और परमात्मा के विषय में ही कविता नहीं लिखता था। उसने विश्व-प्रेम और विश्व-बन्धुत्व के गीत भी गाए। जीवन के ताने-बाने में मृत्यु का भी एक विशेष स्थान उसे दिखाई देने लगा। उसने यह भी देखा कि सौन्दर्य की भांति करुणा और व्यथा का भी इस वस्तु-जगत् में अपना विशेष स्थान है।

१९१८ तक साधारणतया यह माना जाता था कि कविता के उच्च विषय केवल चांद, पर्वत, नारी, कमल तथा यौवन-जैसी परिचित सुन्दर या भव्य चीज ही हो सकती हैं। इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि कविताएँ अब खण्डहर, मक्खी, कागजी फूल, शौचालय की मटकी, गोबर का ढेर, फूली हुई लाश की गुड्डी, बूट पालिश करने वाला लड़का और ऐसे विषयों पर भी लिखी जाने लगीं। इसका कारण यह था कि कवि अब यह पहचानने लगा कि कविता की महत्ता या श्रेष्ठता विषय की महत्ता या श्रेष्ठता पर ही अवलम्बित नहीं है, परन्तु कवि का उस विषय के प्रति क्या रुख है इस पर भी वह अवलम्बित है। फिर भी कुछ समय तक लोग नवीनता के लिए नवीनता के पीछे दौड़ते रहे। मानवीय मनो-वृत्ति के चिर स्थायी और सर्वव्यापी अंशों को ध्यान में रखकर कुछ हद तक यह अनिवार्य था। अब यथार्थवाद—कभी-कभी अश्लीलता और जुगुप्सा—इस कारण से काव्य की स्थिति में एक असाधारण तत्त्व नहीं रहे।

स्वतंत्रता और उसके बाद

१५ अगस्त १९४७ ने भारत के लम्बे और विषम इतिहास में एक नया गौरवशाली अध्याय आरम्भ किया। गुजराती साहित्य में स्वतंत्रता के पूर्व का और स्वतंत्रता के बाद का अन्तर इतना तीखा नहीं है कि इस स्वातंत्र्योत्तर स्थिति को नया युग माना जाय। जो कवि, उपन्यासकार, कहानी-लेखक, नाटककार और निबन्धकार १९४७ से पहले आगे आए हुए थे वे ही इस क्षेत्र में अभी भी सक्रिय और प्रभावशाली हैं।

स्वतंत्रता से पूर्व के युग में कविता में राष्ट्रीयता की भावना प्रधान थी। यों कहा जा सकता है कि गुजराती कवि ने अपने-आपको पूरी तरह से इस राष्ट्रीय आन्दोलन में समर्पित कर दिया था। उसकी कविता का मुख्य स्वर स्वतंत्रता था। उसके गीत, गाने, वीर-काव्य, लम्बी वर्णनात्मक या विचारात्मक कविताएँ इत्यादि सभी किसी-न-किसी तरह इसी भावना से आप्लावित थीं। इतिहास और पुराण-गाथाओं में से उसने केवल वे घटनाएँ और विषय चुने जो कि उसकी इच्छाओं और उमंगों को व्यक्त करते थे। उसके लिए उद्देश्य स्पष्ट था; मनुष्य की शक्ति निश्चित रूप से उसी दिशा में लगी हुई थी।

स्वातन्त्र्योत्तर युग में राष्ट्रीयता के संघर्ष की प्रेरणा नहीं रही और अब लिखने के ऐसे कोई उद्देश्य सामने नहीं रहे जो कि उसका पूरा ध्यान खींच लेते। आज देश में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की कई विराट् योजनाएँ चल रही हैं। पर कुछ भी कहिये, लेखक को उनसे स्पष्ट रूप से दर्शनीय मात्रा में स्फूर्ति नहीं मिल रही है। यह स्थान इस सर्व-साधारण अ-सहानुभूति के कारणों की मीमांसा करने का नहीं है। परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि समकालीन गुजराती कवि ने अब तक उसी उत्कटता के साथ इन आन्दोलनों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की जितनी कि उसके पूर्ववर्ती कवियों ने २५ वर्ष पहले विदेशी जूए से स्वतंत्रता की ललकार लिखी थी।

जहाँ तक विषय-वस्तु का सम्बन्ध है, गुजराती कविता समूची दुनिया को अपने घेरे में ले आना चाहती है। वह जहाँ भी जो कुछ भी सुन्दर और भव्य है उन तत्त्वों को अपना लेना और सौन्दर्य के उत्तम भावों को ग्रहण करना चाहती है। गांधी युग के गुजराती कवि के लिए, आज के कवि के लिए भी, जीवन की सभी व्यंजनाएँ एक-सी पवित्र और एक-सी आदरणीय हैं।

लगभग २५ वर्ष पहले ऐसा समय था जब कि कविता और संगीत के सम्बन्ध करीब-करीब टूटने को थे, क्योंकि संगीत कुछ क्षेत्रों में कविता की सजीवता के लिए आवश्यक नहीं माना जाता था। सौभाग्य से कवियों ने इस भ्रम से अपने-आपको बहुत जल्दी मुक्त कर लिया और वे सुन्दर गीत लिखने लगे, साथ ही शुद्ध संस्कृत छन्दों में कविताएँ भी लिखने लगे। आज के गुजराती कवियों ने अधिक मात्रा में गीत लिखने में सफलता प्राप्त की है। इस प्रकार से समकालीन कविता संगीत और लय की ओर अधिक झुकी है, प्राचीन संस्कृत छन्दों की ओर कम।

यह स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में लम्बी वर्णनात्मक या विचारात्मक कविताएँ कवि को अधिक अदम्य रूप से आकर्षित नहीं कर सकतीं। परन्तु गीत में अधिक-से-अधिक एक मूड या भाव-दशा ही व्यक्त होती है; सूक्ष्म और अमूर्त विचारों को व्यक्त करने का वह सहज साधन नहीं हो सकता। गुजराती कवि ने कुछ समय के लिए कम-से-कम महाकाव्य लिखने का प्रयत्न तो मानो छोड़ दिया है। मैं यह नहीं मानता कि मुक्त छन्द-जैसे किसी उचित छन्द के अभाव में यह हुआ है। इसमें अधिक सचाई यह है कि सच्ची महाकाव्योचित प्रतिभा या बड़ा कवि हमने अभी निर्मित ही नहीं किया है।

कविता के क्षेत्र में पुराने बड़े नामों में उमाशंकर जोशी, सुन्दरम् और सुन्दरजी बेटाई अभी भी सक्रिय हैं। आज की पीढ़ी के सबसे बहुमुखी प्रतिभाशाली लेखक उमाशंकर ने कुछ महीने पहले अपना

पाँचवाँ काव्य-संग्रह 'वसन्त वर्षा' नाम से प्रकाशित किया है। इस संग्रह के कुछ गीतों में प्रकृति की विविध मनोदशाओं का चित्रण हुआ है और महान् भावगीतात्मक स्वर में प्रकृति के सुख-दुःख गाए गए हैं। सुन्दरम् का 'यात्रा' नामक कविता-संग्रह कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था, कवि के भाव-लोक में प्रवास का यह कलात्मक लेखा-जोखा है। सुन्दरम् अब 'वसुधा' का कवि नहीं रहा। अब वह उन रहस्यवादी अनुभवों के विश्व का यात्री है जो कि अत्यन्त व्यक्तिगत हैं। उमाशंकर धरती माता के आकर्षक सौंदर्य के दर्शन-मात्र से गीतमय हो उठते हैं तो सुन्दरम् भीतर के सौंदर्य के दर्शन से दर्शन के ऊँचे विश्व में उड़ने लगते हैं। दोनों अन्तिम सत्य चाहते हैं, परन्तु एक की इच्छा सौंदर्य के रूप में उसे पाने की है, दूसरा उसे प्रेम के माध्यम से पाना चाहता है।

बेटाई की 'विशेषांजलि' गम्भीरता और भव्य संयम में कवि के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है।

नई पीढ़ी के कवियों में निम्न कवियों का उल्लेख करना आवश्यक है : राजेन्द्र शाह, निरंजन भगत, बालमुकुन्द दवे, वेणीभाई पुरोहित और उशनस्। राजेन्द्र अपनी प्रतिमाओं की समृद्धता और दृष्टि की स्पष्टता के लिए, निरञ्जन अपनी लय की असाधारण भावना और वस्तु तथा शैली के प्रति मुक्त साहसिक भुकाव के लिए, बालमुकुन्द अपनी मधुरता के लिए, वेणीभाई संगीतमय प्रवाह के लिए और उशनस् अपनी चित्रोपमता के लिए कविता के नवयुग के प्रतिनिधि कवि हैं।

आज का तरुण गुजराती कवि, ऐसा कोई विषय न पाकर कि जिसमें वह अपना पूरा हार्दिक उत्साह लगा सके, फिर प्रेम और प्रकृति के पुराने विषयों की ओर मुड़ गया है। उसका प्रेम यौवन से भरा है, अतः बहुत उत्कट, मधुर और ताजा है। इस प्रेम को किसी प्रकार का दुःख अनुत्तरित या अपूर्ण प्रेम की वेदना ज्ञात नहीं है। उसे अभी भी मानवीय हृदय की अन्तरतम गहराई में डुबकी लगानी है।

आज के कवि ने छन्द और लय पर विशेष रूप से अपना अधिकार व्यक्त किया है। उसकी गुजराती समृद्ध और प्राणों की रचना ओर है। संस्कृत-तत्सम शब्दों के प्रयोग में वह कई बार लड़खड़ाता है; या अधूरे तथा अर्थहीन शब्दों का प्रयोग करता है। कभी-कभी वह केवल उक्ति-चमत्कार दिखलाता है और उसकी कविता शब्दों का खिलवाड़ बनकर रह जाती है। कभी-कभी उसकी कविता निरी मदमाती होने से परिनिष्ठित और पुष्ट नहीं होती। कभी-कभी उसकी काव्य-दृष्टि सहसा समाप्त हो जाती है, और वह अपनी पूरी परिणति पर नहीं पहुँच पाती। कभी-कभी उसके लिए एक मुक्तक से परे जाना भी कठिन जान पड़ता है। अच्छी सुगठित कविता, जिसमें विचार, कल्पनाचित्र और दृष्टि भरी हुई हो, ऐसी वस्तु है जो कि साहित्य में प्रतिदिन निर्मित नहीं होती। इसलिए समकालीन गुजराती कविता में उसके अभाव पर हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। परन्तु इस बात पर ध्यान दिये बिना नहीं रहा जा सकता कि वर्तमान कविता अधिकतर संक्षिप्त, मधुर, मनोरममयी और प्रवाहपूर्ण होती जा रही है। आज की कविता को गहराई, चौड़ाई और लम्बाई यह तीनों आयाम अभी प्राप्त करने हैं। जहाँ तक दार्शनिक दृष्टि का सम्बन्ध है, इस पीढ़ी ने कोई नई जमीन नहीं छुई है।

आजकल जो नई साहित्य-विधाएँ विकसित हो रही हैं उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है 'नाट्य-रूपक'। नाट्य-रूपक न तो नाटक है, और न केवल लम्बी कविता। उसमें सार्थक और जीवन की रहस्यमयता से गर्भित एक नाटकीय स्थिति मुख्य विषय रहती है और पद्य-संवादों के रूप में उसे व्यक्त किया जाता है। उमाशंकर जोशी ने अपने 'प्राचीना' में इस विधा

कविता बहुत सुन्दर नमूने दिए हैं।

उपेन्द्रजी ब एक दूसरी विधा है नृत्य-रूपक। गुजराती में इसे इसी नाम से

प्रतिभाशा जाता है। यह भी एक नवीनतम साहित्य-रूप है। इसमें

न या अनुष्टुप-जैसे छन्दों से जोड़ा जाता है। ऐसे

'बैले' के लिए जो विषय चुने जाते हैं वे अधिकतर पौराणिक, ऐतिहासिक या लोक-गाथा के रूप में होते हैं। गीत इस तरह से रचे जाते हैं कि उनमें विविध मानसिक वृत्तियाँ या कथानक के विकास की महत्त्वपूर्ण अवस्थाएँ व्यक्त की जाती हैं। ऐसे 'बैले' की सफलता उनके भीतर में निहित काव्य-गुणों पर इतनी आश्रित नहीं होती जितनी कि मानवीय रूपों और संगीत के लय-सौन्दर्य पर। आजकल सांस्कृतिक समाजों और शिक्षा-संस्थाओं के वार्षिकोत्सवों में नृत्य-रूपक खेलना एक साधारण फैशन बन गया है। उनका सीधा उद्देश्य जन-मनरंजन होता है, इसी कारण उनमें से बहुत कम ऐसे होते हैं, जिनमें नृत्य या संगीत का कलात्मक रूप व्यक्त किया जाता हो।

'कवि-सम्मेलन' और 'मुशायरे' भी अभी तक बहुत लोकप्रिय बने हुए हैं। क्लासिक संस्कृत छन्दों में या मात्रा-वृत्तों में लिखी हुई कविताएँ कवि-सम्मेलनों में पढ़ी जाती हैं, उर्दू गजल की शैली में लिखी हुई कविताएँ मुशायरों में पढ़ी जाती हैं। इन सम्मेलनों से निःसंदेह जनसाधारण के मन में काव्य के प्रति अधिक अभिरुचि व्यापक रूप से उत्पन्न होती है, परन्तु इस बात में सन्देह है कि श्रोताओं में ऊँची कविता को समझने या उसका रस ग्रहण करने की शक्ति बढ़ाने में ये सम्मेलन वहाँ तक सफल होते हैं। चूँकि इनका उद्देश्य प्रासंगिक 'वाह-वाह' प्राप्त करना ही होता है, ऐसे सम्मेलनों में प्रस्तुत की हुई कविताएँ स्वाभाविक रूप से भाषा की वह सूक्ष्म अर्थ-छटाएँ नहीं व्यक्त कर सकतीं, जो कि उनका सही रस ग्रहण करने के लिए गहरा ध्यान और आवृत्ति-पठन चाहती हैं। ऐसे सम्मेलनों की कविताओं की बहुत-कुछ सफलता पढ़ने की कला और शब्दों की चतुर खिलवाड़ में सन्निहित है। इसलिए ऐसा भी हो जाता है कि किसी कवि सम्मेलन या मुशायरे में तालियों की गड़गड़ाहट पाने वाली कविता जब छपकर कागज पर आती है तब सुयोग्य और विवेकी पाठक के लिए वह उतनी ग्राह्य नहीं जान पड़ती।

उपन्यास

उपन्यास की विधा में कोई नया विकास नहीं हुआ है, गुजराती साहित्य में यह शायद सबसे लोकप्रिय साहित्य-विधा है। गुजराती उपन्यास एक ऐसा रूप है जिसे कि इस तथ्य का उदाहरण कहा जा सकता है कि लोकप्रियता और गुण ये दोनों साथ-साथ जाते ही हों, यह आवश्यक नहीं। पुरानी पीढ़ी के सर्वश्री मुंशी, रमणलाल देसाई, भवेरचंद मेघाणी, गुणवन्तराय आचार्य, धूमकेतु और चुनीलाल वी० शाह इत्यादि तथा नई पीढ़ी के सर्वश्री पन्नालाल पटेल, दर्शक, ईश्वर पेटलीकर, चुनीलाल मडिया, गोपाल, पितांबर पटेल और सारंग बारोट इत्यादि गुजराती में कई गणनीय उपन्यासकार हैं। उनमें से सब काफी लोकप्रिय भी हैं और कुछ लेखकों की रचनाएँ बहुत अधिक बिकी भी हैं। फिर भी विश्व-साहित्य के मापदण्ड को यदि छोड़ दिया जाय, तो उच्चकोटि के उपन्यास गुजराती साहित्य में बहुत ही कम हैं। रमणलाल देसाई और भवेरचंद मेघाणी अब नहीं रहे। मुंशी किशोरावस्था से ऊपर नहीं उठ पाए। पन्नालाल पटेल और 'दर्शक' (मनुभाई पंचोली) ऐसे दो लेखक हैं जिनकी गुजराती उपन्यास को महत्त्वपूर्ण देन है। पन्नालाल ने गुजराती गाँव को अपनी पूर्णता में व्यक्त किया है। वे अपने गाँव को उसके अन्तरतम तक जानते हैं, वहाँ की सरल महानता लिये उनका प्रेम, राग और द्वेष, महत्ता और क्षुद्रता, हार्दिकता और निर्ममता, सचाई और छल-बल सब मिलकर एक अपनी ही अलग दुनिया है, जिसमें कि करुणा और तीखापन भरा हुआ है। उसके दो उपन्यास 'मळेला जीव'* (जीवो) और 'मानवीनी भवाइ' (मानवीयों का नाटक) गुजराती साहित्य के सर्वोत्तम उपन्यास हैं, ये जल्दी भुलाये नहीं जा सकेंगे। परन्तु यही लेखक जब शहर की जिन्दगी के बारे में लिखता है तो वहाँ वह अजनबी जान पड़ता है।

* इसका हिन्दी अनुवाद अकादेमी की ओर से शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है।

व्यापार को कोई साम्राज्यवादी संरक्षण नहीं मिला, मानवीय सम्बन्धों के वे अच्छे जानकार हैं और कैसी भी परिस्थिति हो अपने-आपको उसमें बड़ी खूबी से निभा लेते हैं, उनमें घुल-मिल जाने की बड़ी शक्ति है। फिर भी उनमें से बहुत थोड़े लोगों ने गुजरात के बाहर के व्यक्तियों के बारे में बहुत कम कहानियाँ लिखी हैं। मैं यहाँ इस बहस में नहीं पड़ना चाहता कि यह अच्छा है या बुरा, और न मैं यह कहता हूँ कि यह गुजरात का ही विशेष स्वभाव है। मैं तो केवल यह नोट करना चाहता हूँ कि आज की स्थिति जो है, वह ऐसी है। इस पर कोई टिप्पणी मैं नहीं देना चाहता।

नाटक

उपन्यास और कहानी की तरह आधुनिक नाटक का उद्भव और विकास भी ब्रिटिश प्रभाव के कारण हुआ। गुजराती नाटक प्रारम्भ से ही अंग्रेजी और संस्कृत-नाटकों के विशेष गुणों का मिश्रण थे। अंग्रेजी नाटक का, विशेषतया शेक्सपीयर का प्रभाव संस्कृत-नाटकों से कहीं अधिक गुजराती नाटकों पर दिखाई देता है।

प्रारम्भ में कुछ वर्षों तक प्रमुख साहित्यिक रंगमंच के लिए नाटक लिखते थे। बाद में बहुत अर्से तक साहित्यिक नाटक और अभिनय योग्य नाटक के बीच में पूरा विच्छेद पैदा हो गया। महत्त्वपूर्ण विख्यात साहित्यिकों का रंगमंच की ओर ध्यान नहीं था; और रंगमंच के लिए लिखने वाले पेशेवर नाटककारों को साहित्य से प्रेम नहीं था। प्रख्यात पेशेवर कलाकारों द्वारा २५ वर्षों के बीच में कठिनाई से एक-दो ही साहित्यिक नाटक मंच पर खेले गए। परन्तु यह दोनों पक्षों के झुकने और मिलने का सवाल था। साहित्य और रंगमंच दोनों ही एक-दूसरे से बिलकुल कटे हुए दो ध्रुवों की तरह बने रहे।

समय बहुत जल्दी से बदलता गया और सिनेमा तथा अन्य मनोरंजन के साधनों का आकर्षण होने के बाद पेशेवर रंगमंच अपनी जान बचाने

सबसे बड़ी बाधा है अच्छे नाटकों का अभाव। स्कूल और कालेज की संस्थाएँ अधिकतर प्रहसन और बहुत साधारण कोटि के हास्य के नाटक पसन्द करती हैं। अन्य संस्थाएँ दूसरी भाषाओं से अनुवाद और रूपान्तर पर अधिक निर्भर रहती हैं। मूलत गुजराती में लिखे हुए उच्च-कोटि के नाटकों का प्राय अभाव है और जो अनुवाद तथा रूपान्तर भी होते हैं वे साहित्य की श्रेष्ठ रचनाओं के नहीं होते। गुजरात में व्यावसायिक रंगमंच की प्रतिभा और साधन-सम्पन्नता देखते हुए उन्हें अधिक अच्छे नाटक मिलने चाहिएँ।

साहित्यिक नाटकों में, अब लम्बे नाटक का लिखना प्रायः समाप्त हो गया है। १९१४ में प्रकाशित 'राईनो पर्वत' (राई का पर्वत) नामक नाटक के बाद सचमुच ऊँचे साहित्यिक गुणों का एक भी नाटक गुजरात ने पैदा नहीं किया। गीति-नाट्य, जिसे कि नानालाल ने शुरू किया, गुजरात की जमीन में नहीं पनप सका। पद्य में भी नाटक लिखने के कुछ अच्छे प्रयत्न अवश्य हुए, लेकिन गुजरात में नाट्य-साहित्य का सबसे समृद्ध अंग है एकांकी। बटुभाई उमरवाडिया, यशवंत पण्ड्या और प्राण-जीवन पाठक ने सबसे पहले गुजराती साहित्य में जब एकांकी लिखना शुरू किया, तब से अब तक इस विशिष्ट विधा ने बड़ी मात्रा में सफलता प्राप्त की है। रूप-शिल्प और विषय-वस्तु में एकांकी अब बहुत समृद्ध विविधता प्रदर्शित करता है। उमाशंकर जोशी ने 'सापना भारा' नामक एकांकी में समूचे गुजराती गाँव को उसकी पूरी छाया और प्रकाश के साथ व्यक्त किया है और नारी के जीवन की शोकान्तिका दिखलाई है। आज की सभ्यता दीप्तिपन और करुणता उन्होंने अपनी 'शहीद अने बीजाँ नाटक' (शहीद और अन्य नाटक) पुस्तक में व्यक्त की है। गुलाबदास ब्रोकर ने मनोविश्लेषणात्मक ढंग से मानव-मन की रहस्या-त्मकता को खोलकर दिखाया है। जयन्ती दलाल ने विशिष्ट व्यंग्यमयी शैली में समकालीन सामाजिक, राजनैतिक खोखलेपन को व्यक्त किया है। चुनीलाल मडिया ने भाषा पर सशक्त अधिकार करने के साथ-

को रोमान्स के क्षेत्र में और कभी नग्न यथार्थवाद के
' काम किया है। इस प्रकार से गुजराती के एकाकी
ोर करुणा के सभी रूप पूरी तरह अभिव्यक्त हुए हैं।

' जीवनी

ाद के गुजराती साहित्य म आत्म-कथा का रूप बहुत
स भाषा के सभी ज्येष्ठ लेखकों–जैसे मुशी, रमणलाल
नसुखलाल महेता—ने आत्म-कथाएँ लिखी हैं। चन्द्र-
ांपशी उदेशी ने भी अपने बारे में बहुत विस्तार से
मब आत्मकथाएँ बडी मनोरंजक हैं। उनमें से कुछ
ः कारण और कुछ उनकी अभिव्यंजना-पद्धति के कारण
तीन बहुत ही अच्छी आत्मकथाएँ हैं। नानाभाई के
' मर्मस्पर्शिता, सादगी,स्पष्टवादिता और प्रामाणिकता

जो-कुछ भी लिखा है, वह बहुत ही विनम्रता से लिखा है। प्रकृति के सशक्त और विनोदपूर्ण वर्णन तथा मनुष्य स्वभाव का बहुत गहरा अध्ययन इस पुस्तक में दिखाई देता है। यह इतनी अच्छी तरह लिखी गई है कि इसे किसी भी प्रतिभाशाली लेखक की श्रेष्ठ कृति के समकक्ष रखा जा सकता है।

जीवनी-साहित्य भी अब गुजरात में विकसित होने लगा है। गांधी जी की जीवनी पर बहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं। नरहरि परीख का 'सरदार वल्लभभाई', कान्तीलाल शाह की 'ठक्कर बापा', और बबलभाई महेता की 'रविशंकर महाराज' आदि पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय हैं।

समकालीन साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण भाग डायरियाँ भी हैं। नरसिंहराव दिवेटिया की डायरी उस जीवन की कुछ झलक हमें देती है जो कि एक दृष्टि से घटनाहीन होते हुए भी दूसरी दृष्टि से निर्मम नियति के आघातों की निरन्तरता के विरुद्ध वीरतापूर्ण प्रतिकार व्यक्त करता था। मनुबेन गांधी ने अपनी डायरी लिखी है, जो कि आगा खाँ महल और नोआखाली में गांधी जी के प्रतिदिन के कार्यक्रम का लेखा देती है। डायरी-विषयक इन सब पुस्तकों में 'महादेव भाईनी डायरी'* गुजराती में सबसे प्रसिद्ध है। यह पाँच खण्डों में है और यह एक भव्य पुस्तक है, क्योंकि इसमें एक साथ तीन व्यक्तित्वों का सजीव चित्रण है। गांधी जी का साक्षात्कारी व्यक्तित्व, सरदार पटेल का निष्ठापूर्ण बेपरवाह और हँसोड़ व्यक्तित्व तथा लेखक का मितभाषी विनम्र, अत्यन्त सुसंस्कृत व्यक्तित्व।

निबन्ध और पत्रकारिता

गुजरात के रचनात्मक साहित्य में आत्म-निबन्ध सबसे कमजोर अंग है। काका कालेलकर और अन्य कुछ लेखकों के बाद यह साहित्य-रूप

* स्वतंत्रता के पश्चात् गुजराती साहित्य में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ के नाते १९५२ में साहित्य अकादेमी ने इसे पुरस्कृत किया।

प्रायः उपेक्षित रहा है। वर्तमान पीढ़ी ने एक भी ऐसा लेखक निर्मित नहीं किया, जिसने कि उच्च कोटि के व्यक्तिगत निबन्ध लिखे हों।

हास्यरसात्मक निबंधों के बारे में यह बात सच नहीं है। यह सच है कि गुजरात में हास्य रस के बहुत अधिक लेखक नहीं हैं, पर जो भी थोड़े बहुत हैं, उनमें काफी ऊँची प्रतिभा है। पुराने लेखकों में ज्योतीन्द्र दवे का नाम लिया जा सकता है और अपेक्षया नवीन लेखकों में बकुल त्रिपाठी और नवनीत सेवक विशेष उल्लेखनीय हैं। इधर ज्योतीन्द्र दवे अपने को दोहरा रहे हैं और निखर रहे हैं; फिर भी वे निश्चित रूप से गुजराती में अब तक पैदा किये हुए हास्य-रस के लेखकों में श्रेष्ठ हैं। वे सौम्य, सहिष्णु, बहुमुखी प्रतिभा वाले और किसी प्रकार का दुराग्रह न रखने वाले लेखक हैं। हास्य, व्यंग्य और विच्छित्ति (विट) के लिए उनकी विशेष पैनी दृष्टि है। वे सबसे निचले से सबसे ऊँचे ढग के हास्य के स्तर पर लिख सकते हैं। बकुल त्रिपाठी के हास्य में ताजगी और किसी वस्तु या स्थिति को गलत दृष्टिकोण से देखने से पैदा होने वाली विचित्रता है। 'नवनीत के सप्ततंत्री वातो' नामक पुस्तक एक उत्तम व्यंग्य रचना है, जो कि समकालीन समाज-स्थिति पर एक गम्भीर हास्य है।

गुजराती में पत्रकारिता भी साहित्य को अप्रत्यक्ष रूप से बड़ी मूल्यवान् सहायता दे रही है। प्रायः उत्तरदायी दैनिक और साप्ताहिक बड़े अर्से से साहित्य वाद-विवाद और साहित्य-समालोचना के लिए नियमित पृष्ठ देते रहे हैं। इन नियमित प्रकाशनों से पाठकों में साहित्य के प्रति उत्साह जागा है। मासिक पत्रिकाओं और त्रैमासिकों ने भी बड़ी सेवा की है, उनकी अपनी-अपनी स्वतंत्र नीतियाँ हैं। आज की पत्रिकाओं में 'संस्कृति' सबसे सांस्कृतिक और साहित्यिक पत्रिका है। 'कुमार' केवल मासिक पत्रिका ही नहीं, परन्तु एक शैक्षणिक संस्था भी है। गत ३० वर्ष से पाठकों की एक पीढ़ी के मन और चरित्र को उसने आकार दिया है। 'अखण्ड आनन्द' का भी उल्लेख उचित रूप से किया जा

सकता है, क्योंकि दस वर्ष पूर्व जो उसका प्रसार था, उससे अब उसके पाठकों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है। साथ ही एक दैनिक 'जन्म-भूमि' का भी उल्लेख करना चाहिए, जिसमें कि विवेकपूर्ण और गंभीर नीति के कारण गुजरात को आज की राजनैतिक चेतना और समझदारी विकसित हुई है।

प्रमुख गुजराती पत्रिकाओं का एक विशेष अंग है व्यंग-कविता। १९४२ के 'भारत छोड़ो' से यह विधा शुरू हुई। जब पत्र पत्रिकाओं और व्याख्यानों पर कई तरह के प्रतिबन्ध थे, तब सरकार की नीतियों की आलोचना असम्भव थी। ऐसे समय में हास्य और व्यंग के सहारे उस नीति का हास्यास्पद रूप अच्छी तरह व्यक्त किया जाता था। करसन-दास माणेक ने गुजरात में यह प्रयोग पहली बार शुरू किया और मध्य-युग के आख्यान नामक पद्य-प्रकार को वे इस काम में लाये। यह कुछ हास्यपूर्ण और कुछ वीरतापूर्ण कविता होती है, जिसमें खूब व्यंग और परिहास भरा रहता है। उनकी 'वैशम्पायननी वाणी' में बड़ी सफलता पूर्वक और सच्ची पत्रकारिता के ढंग से उन्होंने ब्रिटिश सरकार और उसके उस समय के समर्थकों के ढोंगों, विसंगतियों और धूर्तताओं का पर्दा-फाश किया। इस काल में माणेक के कई अनुयायी हो गए हैं। आज भी 'जन्मभूमि', 'गुजरात समाचार', 'सन्देश' और 'लोकसत्ता' इत्यादि दैनिक पत्रों के स्तम्भों में ऐसी व्यंग रचनाएँ नियमित रूप से प्रकाशित होती रहती हैं।

पारसी लेखक

गुजराती लेखकों के अतिरिक्त साहित्यिक क्षेत्र में पारसियों ने भी अपना विशेष योगदान दिया है। कुछ पारसियों ने साहित्यिक गुजराती कविता और कहानियाँ लिखीं तथा उन्हें उन गुणों के कारण गुजराती लेखक माना गया। दूसरे लेखकों ने अलग रहना पसन्द किया। उन्होंने भाषा की शुद्धता या उसके बामुहावरा होने की ओर इतना ध्यान नहीं

दिया। उनके अपने विशेष पाठक हैं। फिर भी उनकी भाषा गुजराती ही है और गुजराती में ही वे कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, कविताएँ, निबन्ध और सम्पादकीय लेख लिखते रहे हैं, जिसके कारण उनके पाठकों का प्रेम और प्रशंसा उन्हें मिलती है।

लेखिकाएँ

समकालीन गुजराती साहित्य को जिन स्त्रियों ने भी मनोरंजक योगदान दिया है उनमें से विनोदिनी नीलकंठ का उल्लेख पहले हो चुका है। उनके अतिरिक्त लाभुबेन महेता, कुन्दनिका कापड़िया, धीरुबेन पटेल और गीता परीख आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अनुवाद

समकालीन गुजराती साहित्य का बहुत बड़ा भाग अनुवाद और रूपान्तर है। विदेशी लेखकों में शेक्सपीयर, इब्सन, टाल्सटाय, विक्टर ह्यूगो, मोपासां, चेखव, गोर्की, इमर्सन, प्लेटो, रूसो और भारतीय लेखकों में रवीन्द्रनाथ टाकुर, बंकिमचन्द्र, शरत् चटर्जी, प्रेमचन्द, खांडेकर, साने गुरुजी, मर्ढेकर तथा कई अन्य लेखक अनुवादों द्वारा गुजराती पाठकों को परिचित कराये गए हैं।

टालस्टाय के सब महत्त्वपूर्ण ग्रंथ गुजराती में अनुवादित हुए हैं, कई वर्ष पूर्व विश्वनाथ भट्ट ने इनका अनुवाद किया था। इधर जयन्ती दलाल ने 'युद्ध और शान्ति' का बहुत बड़ा अनुवाद प्रस्तुत किया है। टालस्टाय को छोड़कर और कोई दूसरा विश्व प्रसिद्ध लेखक पूरी तरह और अच्छी तरह गुजराती में अनूदित नहीं हुआ। होमर, वर्जिल, दांते, मिल्टन, गेटे और यूनान के क्लासिकल नाटकों का अनुवाद होना अभी भी बाकी है।

मुख्यतः उपन्यास और कहानियाँ ही इधर गुजराती में अब तक अनूदित होती रही हैं। इसका अर्थ यह है कि व्यावसायिकता ही इस

अनुवादों के पीछे प्रेरणा रही है, विशुद्ध साहित्य-प्रेम नहीं।

ज्ञान-विज्ञान का साहित्य

प्रतिभायुक्त रचनात्मक साहित्य से हम अपना ध्यान जब ज्ञान-विज्ञान के साहित्य की ओर मोड़ते हैं तो गुजरात में कुछ महत्त्वपूर्ण आन्दोलन दिखाई देते हैं। गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद; महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा; चुनीलाल गांधी रिसर्च इंस्टीच्यूट, सूरत, भारतीय विद्या भवन, तथा फार्बस गुजराती सभा, बम्बई आदि संस्थाओं ने प्राचीन पुस्तकों के अधिकृत पाठ प्रकाशित किये हैं। गुजराती भाषा-शास्त्र और इतिहास के अध्ययन में इन ग्रंथों से बड़ी उपयोगी सहायता मिली है। सुन्दरम् की 'अर्वाचीन कविता', जो कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी और रामनारायण पाठक का 'बृहत् पिंगल'* ऐसे ग्रंथ हैं, जिनके पीछे बड़ा परिश्रम, गहरा अध्ययन, परिपक्व दृष्टि और स्वतंत्र विचार दिखाई देते हैं। ये ग्रंथ किसी भी भाषा के साहित्य के लिए गौरवपूर्ण कहे जायेंगे।

साहित्य-समालोचना, व्याकरण, इतिहास और भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में विष्णुप्रसाद त्रिवेदी, भोगीलाल सां डेसरा और हरीवल्लभ भायाणी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। परन्तु अधिकतर यह काम विद्वत्ता-पूर्ण पत्रिकाओं में प्रकाशित फुटकर लेखों के रूप में ही है। आलोचना के सैद्धांतिक पक्ष पर किसी सुयोग्य विद्वान् ने एक भी ऐसी पुस्तक नहीं लिखी कि जिसमें इस विषय का पूरा विवेचन हो। संस्कृत या अंग्रेजी व्याकरणों पर आधारित न होकर इस भाषा के प्रयोगों के अध्ययन पर आधारित स्वतंत्र सर्वव्यापी व्याकरण भी अभी तक गुजराती में नहीं लिखा गया। नरसिंहराव दिवेटिया के दो भागों में प्रकाशित 'गुजराती भाषा और साहित्य' पुस्तक के पहले अब तक ऐसी एक भी

* साहित्य अकादेमी ने १९५६ में गुजराती में १९५३-५५ के सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक ग्रंथ के नाते इसे पुरस्कार दिया।

पुस्तक नहीं लिखी गई, जिसमें इस विषय की आधुनिकतम और पूरी वैज्ञानिक छान-बीन का सार हो। दिवेटिया की पुस्तक कई वर्ष पूर्व लिखी गई थी और अब इस क्षेत्र में बहुत-सी नई खोजें हुई हैं, इसलिए पुस्तक का पुनर्लेखन आवश्यक है। गुजराती साहित्य का एक प्रामाणिक विवरण या इतिहास, जैसा कि अंग्रेजी में सेंट्सबरी या लेगुई और केजामिया का है, लिखा जाना चाहिए।

वस्तुत. स्वतन्त्रता के बाद के युग में ही साहित्य के विकास और निर्माण के लिए समुचित वातावरण पैदा हुआ है। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारें उत्तम साहित्यिक गुणों की पहचान के चिह्न-स्वरूप इनाम या पुरस्कार देने लगी हैं। प्रादेशिक विश्वविद्यालय भी स्थापित हुए हैं, जिसमें भाषा और साहित्य का व्यवस्थित वैज्ञानिक अध्ययन बढ़ने लगा है। विविध भाषा के क्षेत्रों में—राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय—सम्पर्क बढ़ते जा रहे हैं, गुजरात के साहित्यिक वातावरण पर उसका प्रभाव दिखाई दे रहा है। आज का औसत गुजराती लेखक केवल गुजराती और गुजराती साहित्य की भाषा में अब नहीं सोचता, उसके सामने अब नए और व्यापक क्षितिज खुलते जा रहे हैं।

... की एक कठिनाई है,

तमिल

ति॰पो॰ मीनाक्षिसुन्दरम् पिल्लै

पार्श्वभूमि

दक्षिण भारत में वर्तमान मद्रास राज्य और श्री लंका के उत्तरी तथा पूर्वी हिस्सों की प्रमुख भाषा तमिळ है। यह भाषा उन व्यक्तियों की भी है, जो ऊपर के प्रदेशों से दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका, बर्मा, मलाया तथा सुदूर पूर्व में चले गए हैं। भाषाओं के द्राविड़-समूह में तमिळ सबसे पुरानी भाषा है और उस समूह की अन्य महत्त्वपूर्ण भाषाएँ हैं—तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम। इसी परिवार की अन्य विभाषाओं या बोलियों में दक्षिण भारत में 'तुलु', 'कोडगु', 'टोडा' और 'कोटा', मध्य प्रदेश एवं उड़ीसा में 'गोंडी', 'श्रोरांव', 'मालती', 'राज महल', 'कुई' और 'कोरकु' तथा सुदूर बिलोचिस्तान में 'ब्राहुई' हैं। यदि कदाचित् फादर हेरास का अनुमान सही हो, तो भाषाओं के द्राविड़-परिवार का सुदूर संबंध मोहनजोदारो-सभ्यता से माना जा सकता है।

विद्वानों का मत है कि तमिळ का सबसे पुराना ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' नामक व्याकरण का ग्रंथ है। परम्परा के अनुसार यह ग्रंथ अगस्त्य ऋषि के किसी शिष्य का लिखा हुआ है। इसमें तमिळ में उधार लिये हुए संस्कृत-शब्दों का विचार है। संस्कृत-ग्रंथों से पता चलता है कि तमिळ-संस्कृत-संबंध कम-से-कम चौथी शती ईस्वी पूर्व-जितना प्राचीन रहा होगा। एक

समय तमिळ-प्रदेश में जैन और बौद्ध प्रभाव बहुत अधिक था। ध व्यापार और उद्योग के कारण उत्तर और दक्षिण एक-दूसरे के परस्प हितकारी संपर्क में आये होंगे। दो संस्कृतियों के परस्पर सहवास भी परस्पर-फलन का परिणाम दक्षिण में ब्राह्मी लिपि में लिखा गय तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व का, तमिळ-प्राकृत-मिश्रित भाषा में गुफा-लेख है। इस पर सिंहली प्रभाव भी है।

जहाँ तक तमिळ साहित्य की प्राचीनता का संबंध है, संगम-साहित्य में यवनों और रोमनों के उल्लेख, तथा अरिकमेडु-उत्खननों से जो साक्ष्य प्राप्त हुए हैं उनसे यह जाना जा सकता है कि संगम-साहित्य की निर्मिति कभी ईस्वी सन् के आरंभ में हुई होगी। संगम-युग के विशाल साहित्य में भाव-गीतों के संग्रह, लंबी कविताएँ, प्रेम और कीर्ति से प्रेरित नाटकीय स्वगत-भाषण इत्यादि हैं। इनके अतिरिक्त 'सिलप्पदि-कारम्' (मंजीर की कथा) और 'मणिमेखलै' (एक बौद्ध-कृति) नामक दो और महाकाव्य थे। यह कदाचित् संगम-काल के अन्त में या अगले युग के आरंभ में लिखे गए। यह अगला युग नैतिक सूक्तियों का युग था। इसमें अन्य कई कृतियों के साथ-साथ अमर 'कुरळ' रचा गया। यह युग पल्लव-काल तक चला। हिन्दुओं का धार्मिक जागरण, जो कि संगम-युग के अन्त में आरंभ हुआ, जैन और बौद्ध-विजय की क्षणिक प्रति-क्रिया थी। यह युग शैव नायनमार और वैष्णव आळवारों की रहस्यवादी गीतियों से उच्चतम सफल कृतियों तक पहुँचा। इनकी ईश्वर-भक्ति से प्रेमोन्मत्त कविताओं ने अपनी शाब्दी व्यंजना से वही चमत्कार घटित किया जो कि दक्षिण के महान् हिन्दू-मंदिरों के स्थपतियों और शिल्पकारों ने अपने स्वर्गोन्मुख 'गोपुरम्' से किया। नायनमारों (मुख्यतः माणिक्कवाच-गर और अप्पर ने) और आळवारों ने (मुख्यतः नम्मालवार और आन्डाल) जनता को भक्ति-मार्ग का उपदेश दिया। इसके बाद साहित्यिक पुराणों के लेखक आये; जिनमें से बहुत-से चोल-साम्राज्य के समय प्रसिद्ध हुए। कम्बन की रामायण इस साहित्य-विधा की सर्वश्रेष्ठ

उपलब्धि थी, और वह आज भी तमिळ के प्राचीन श्रेष्ठ ग्रंथों में सबसे अधिक प्रशंसित है। उसकी यह प्रशंसा उचित ही है।

इनके बाद दार्शनिक पद्धतियों का युग आया। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शंकर और रामानुज, उस समय जो तमिळ-प्रदेश था, उसमें से आये, और वे तमिळ जानते थे। वेदान्त, शैव-सिद्धान्त और श्रीवैष्णव मत को सूत्रबद्ध करके उन्हें सुसंगत दर्शनों का रूप दिया गया। निस्सन्देह इनमें से बहुत-सा साहित्य संस्कृत में था; परन्तु तमिळ में भी धीरे-धीरे बहुत-सा दार्शनिक साहित्य निर्मित हुआ। इस संदर्भ में मेयकण्डार, उमापति, पिल्लै लोकाचार्य, वेदान्त देशिकर और मनवाळ महामुनि का विशेष उल्लेख करना चाहिए। जबकि प्राचीन कविता इस भाष्य और टीका के युग में जीवित शक्ति की भाँति प्रचलित थी, मणिप्रवाल-शैली (रीतिबद्ध रचना के लिए संस्कृत-तमिळ-मिश्रित सचेष्ट रचना) दार्शनिक विवरण के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। इसका एक उत्तम उदाहरण वेदान्त देशिकर का 'रहस्य-त्रय-सार' है। आगे चलकर तमिळ-कविता उदारता और अप्रामाण्य प्रयोगों का विशेष उपयोग करने लगी। ऐसा संस्कृत के प्रयोग के कारण हुआ। इस प्रकार संस्कृत और तमिळ की धाराएँ सहज गति से मिश्रित हो गईं। इन दो भाषाओं के विवाह में से संगीतमय कीर्तनों का उदय हुआ। आधुनिक कर्नाटक-संगीत भी इन्हीं धाराओं का विकास है। बाद के सन्तों की कविता में, सार्वभौम समन्वय मिलता है। पोलिगार या छोटे सामन्त अश्लील कविता से आनन्द उठाते रहे। स्थलपुराण विशेष लोकप्रिय हुए। दलित कुरवा, पल्ला और अन्य पिछड़े हुए वर्गों के जीवन को चित्रित करने वाले लोक-नाट्य में कविता, संगीत और अभिनय का अभूतपूर्व मिश्रण घटित हुआ।

आधुनिक काल

जब ईसाई मिशनरी आये, तो बच्चों और दलितों से बोलने की

सैनिक साम्राज्यवादी स्वर (जो अंग्रेजी में जिंगोइज्म कहलाता है) मिलता है।

आधुनिक धारा आदर्श को रूपायत्त करने की है। उसका प्रधान लक्ष्य जनता है। 'सोया खड़ा तमिळ दीर्घजीवी हो, अच्छे तमिळभाषी दीर्घ आयु वाले हों' कवि गाता है। ऐसा समाज, जो सुखी हो, दरिद्रता, अज्ञान और रोगों से मुक्त हो, यही आदर्श है। एक प्रसिद्ध गीत की टेक है: 'ऐसा समाज दीर्घजीवी हो', कवि चिल्लाता है—"यदि एक भी व्यक्ति के लिए अन्न नहीं है तो ऐसी दुनिया को हम नष्ट कर दें।" अब भाग्यवाद की पुरानी बात नहीं की जाती। लोक-कल्याण-राज्य के निर्माण में यह आत्म-विश्वास इतना पुराना है, जितना कि तिरुवल्लुवर नामक संत कवि का था। अब यह कोरा शेखचिल्ली का सपना नहीं है, या तमिळ पुराणों में सुन्दरता से वर्णित स्वर्ग का चित्रण भी नहीं है। यह एक ऐसी वस्तु है, जिसे कि हमारी राजनैतिक व्यवस्था और सामाजिक सुधार उपलब्ध करना चाहते हैं। इनमें से साधारण जनता का युग जन्म ले रहा है, राजाओं का जमाना बीत गया। यह सच्चा लोक-राज्य है; यह सच्ची स्वतंत्रता और समानता है, यहाँ समानता का स्वरूप बधुता है। अब केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता की आकांक्षा नहीं की जाती, बल्कि सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता पर भी उतना ही बल दिया जाता है। अब सब जातियों तथा धर्मों के स्त्री-पुरुषों के बीच में स्वतन्त्रता और समानता का आग्रह बढ़ा ही है। कविता ने एक स्वतंत्र समाज के निर्माण की जिम्मेदारी स्वीकार कर ली है, परन्तु कभी-कभी उसमें सिर्फ विषैला प्रचार, सस्ते भाषण और नारेबाजी ही दिखाई देते हैं। आत्म-सम्मान का महत्त्व बढ़ा है, परन्तु कभी-कभी इसमें औरों के लिए जुभाऊ असम्मान भी व्यक्त होता है। कदाचित् यह मनोदोष अनिवार्य माना जाय, क्योंकि सारी दुनिया एक नई व्यवस्था के निर्माण में लगी है।

कारण नहीं; परन्तु इसलिए कि वे लोकप्रिय हैं या वे नारों से भरी हुई लोक-प्रचलित विचारों की वाहिका हैं। जनसाधारण को कविता के वेश में सस्ती भावुकता और नाटकीयता बहुत अच्छी लगती है, परन्तु जन-साधारण में श्रद्धा और प्रचलित वस्तुओं पर कविता लिखने का अर्थ यह नहीं है कि हम सस्तेपन और निम्न वासनाओं का अधिक प्रचार करें, उन्हें महत्त्व दें। सस्ते अखबारों के जमाने में अब यह खतरा इतना बढ़ गया है कि ऐसा लगता है, मानो अच्छा साहित्य अब बाजार से उठ जायगा।

बोल-चाल की भाषा का पहले उल्लेख किया जा चुका है। बड़े जोर की माँग है कि जैसा हम बोलें, वैसा ही हम लिखें। पण्डिताऊ भाषा आप-से-आप मर जायगी। दूसरी ओर नाटक के पात्रों की भाषा छोड़ दें तो प्रादेशिक और सामाजिक उपभाषाओं में इतनी विविधता है कि हम किसी दूसरी भाषा का 'बेबल' न पैदा कर दें। रेडियो, अखबार, राज-नैतिक भाषण और शिक्षा का प्रसार इत्यादि धीरे-धीरे एक स्टैण्डर्ड भाषा बनते जा रहे हैं। इसीलिए आधुनिक तमिल-कविता की भाषा न तो प्राचीन साहित्यिक भाषा है और न प्रचलित बोलियों की ही भाषा है। यद्यपि कभी-कभी कहानियाँ बोलियों में गाई जाती हैं और प्राचीन लोक-गीतों की नकल में पद्य भी रचे जाते हैं। कदाचित् यह भी अल्लि अरसाणि मालइ और देशिङ्गु राजन् कदै की पुरानी परम्परा का ही निर्वाह हो। यह कुछ हद तक लोकप्रिय है; परन्तु तमिलनाडु में बोल-चाल की भाषा का आन्दोलन उतना जोर पर नहीं है, जितना कि आन्ध्र प्रदेश में है। कदाचित् पश्चिम के प्रभाव के कारण मुक्त-छन्द और गद्य-काव्य भी लिखा जाता है।

साहित्यिक पुनर्जागरण जहाँ निकट के भूतकाल के विरुद्ध विद्रोह है, वहाँ दूर के भूतकाल के गौरव का पुनर्जीवन भी। पांचाली, विक्रम और बुद्ध की पुरानी कहानियाँ इस तरह से फिर से लिखी जाती हैं कि उनमें वर्तमान काल के लिए सन्देश हो। यह कहानियाँ इस प्रकार से वर्णित की जाती हैं कि आधुनिक युग में नए विचारों पर बल दिया

जाय। स्वतन्त्रता और देश-भक्ति, वीरतापूर्ण नारीत्व और सजीव धर्म के आदर्श पर इनमें जोर है।

साहित्य का दूसरा समकालीन रुझान है हास्य रस की ओर। पुराने साहित्य में नाटक के विदूषक को छोड़कर अधिकतर गम्भीर थे। आधुनिक ढंग का हास्य समाचार-पत्रों के कारण निर्मित हुआ है। प्रचलित घटनाओं और व्यक्तियों पर उनमें मनोरंजक टिप्पणियाँ होती हैं। वर्तमान साहित्य पर उनका प्रभाव कम नहीं है। कहानियों, पद्यों और निबन्धों सभीमें हास्य का पुट रहता है। निःस्वार्थ तटस्थता की भावना से अभिभूत सच्चे महान् लेखक ही सच्चा हास्य लिख सकते हैं। वे चाहे दुःख में हों, फिर भी हँसते रहते हैं। रोग से ग्रस्त होते हुए भी कविमणि ने एक द्रष्टा की वस्तुनिष्ठ दृष्टि विकसित की और उन्होंने अपने ढंग का हास्य विकसित किया। उन्होंने लिखा है कि उनके शरीर पर जो फोड़े हो गए हैं वे उनके प्रतिनिधि रोग—राजा से प्राप्त हुए मणि और मोती के उपहार हैं।

इस शताब्दी में बच्चों के लिए ममता बढ़ी। उनकी शिक्षा की माँग जोरों से बढ़ती गई—यह शिक्षा उनकी ऐसी मातृ-भाषा में उन्हें चाहिए थी, जिसमें काम और खेल मिला हो, जिसमें सृजनात्मक कार्य और प्रत्यक्ष ज्ञान भरा हो। पाठ्य-ग्रंथों से भाषा की इस नई प्रमुख शक्ति का पता चलता है। ऐसी पाठ्य-पुस्तकें लिखी गईं जो कि बच्चों के शारीरिक और मानसिक स्तर के अनुसार हों—इसकी भाषा प्राचीन शिशु-परम्परा की कविता में थी। बच्चों के लिए लिखे गए गीत और कविता सच्चे साहित्यिक सौंदर्य से भरे हुए रत्न हैं। इनमें भी भारती और कविमणि ने ही पथ-प्रदर्शन किया।

पत्रकारिता का प्रभाव

साहित्य पर पत्रकारिता का प्रभाव उपेक्षित नहीं किया जा सकता। दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र भी यद्यपि ऐसे साहित्य न हों,

परन्तु वे एक से अधिक अर्थ में सब प्रकार के साहित्य और आधुनिक विचारों के माध्यम के कारखाने हैं। इनमें कई आधुनिक लेखकों को पहली साहित्यिक उम्मीदवारी मिल सकेगी। तमिळ दैनिकों को रोज की घटनाओं और आविष्कारों, जो कि प्रकाशन के कुछ मिनट पहले ही तार द्वारा प्राप्त होती हैं, का अनुवाद जनसाधारण की भाषा में व्यक्त करने का कठिन कार्य करना पड़ता है।

प्रसिद्ध उपन्यासकार 'कल्कि' ने लिखा है कि स्वर्गीय टी०वी० कल्याणसुन्दर मुदलियार राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए पत्रकारिता के क्षेत्र में आए। उनसे पहले समाचार-पत्र संस्कृत-बहुल सामासिक पाण्डित्य-पूर्ण शैली में रस लेते थे; परन्तु मुदलियार के प्रभाव के कारण इन पत्रों की भाषा तमिळ के सच्चे मूल रूप के निकट पहुँच गई। एक ओर तमिळ में से सब विदेशी शब्दों को निकाल फेंकने के लिए, जिसमें संस्कृत भी शामिल है, शुद्धिवादियों का आन्दोलन है। यह दूसरे अतिवादियों की स्वाभाविक और अनिवार्य प्रतिक्रिया है। इससे एक यह लाभ हुआ है कि अब तक अज्ञात भाषा के मूल स्रोतों का पता चला है और उनमें से नये-नये शब्द गढ़े जा रहे हैं। इसलिए इस आन्दोलन को केवल जातीयतावादी या संस्कृत-विरोधी कहना उचित नहीं है। यह नकारात्मक आन्दोलन नहीं है, भाषा के विधायक सुधार की ओर भी इसका ध्यान है। परन्तु अन्य भाषाओं की भाँति इसमें भी स्वर्ण मध्य अधिक उचित होगा। हम अखबारी भाषा पर बोल-चाल की सस्ती भाषा का आक्रमण होते देखते हैं, परन्तु उसका कोई स्थायी प्रभाव मन पर नहीं रहता। फिर भी अभी से यह नहीं कहा जा सकता कि तमिळ-पत्रकारिता ने यह मध्यम मार्ग पाया है या नहीं।

साहित्य एक व्यवसाय

इससे बीसवीं सदी के तमिळ-साहित्य की दूसरी महत्त्वपूर्ण धारा . . है। अब साहित्य एक व्यवसाय बन गया है—अब वह केवल

कारों का आदर्श विज्ञान ही बन गया है। कांस्टेबल ने कहा था, "चित्र-कला एक विज्ञान है और उसका अनुसरण उसी प्रकार करना चाहिए, जैसे कि हम प्रकृति के नियमों की जाँच करते हैं। तो फिर दृश्य-चित्रण को प्राकृतिक दर्शन की ही एक शाखा क्यों न माना जाय, चित्र तो निरे इसी दर्शन के प्रयोग हैं?" यदि यह सच है तो आश्चर्य होता है कि कुछ कहानियाँ और पद्य भी क्या केवल प्रयोग नहीं हैं। यद्यपि विज्ञान की साधारण पाठ्य-पुस्तकें साहित्य से बिलकुल अलग हैं फिर भी हैल्डेन, हक्सले, या रसेल के जनप्रिय भाष्य साहित्यिक ऊँचाइयों पर पहुँचे हैं। ऐसे ग्रंथ तमिळ में बहुत थोड़े हैं; लेकिन बिलकुल ही नहीं हों, ऐसी बात नहीं है। श्री राजगोपालाचार्य की 'वनस्पति जगत् में प्रेम' और 'पवन रसायन' आदि बहुत अच्छी पुस्तकें हैं, परन्तु यह बड़े भारी विज्ञान-जगत् की भूमिकाएँ-मात्र हैं। स्वर्गीय प्रोफेसर राजेश्वरी ने 'परमाणु पुराणम्' में अणु का विज्ञान और इतिहास इस तरह से लिखा है कि वह बिलकुल पुराण की तरह जान पड़ता है। डॉ० के० एम० कृष्णन् की भी इस पुस्तक के बारे में यही सम्मति है। दूसरे आधुनिक विषयों पर भी कई लोकप्रिय ग्रंथ लिखे गए हैं। उन्हें विश्वविद्यालयों और राज्य-सरकारों की ओर से पुरस्कार भी मिले हैं। तमिळ भाषा पर्याप्त मात्रा में लचीली है। वैज्ञानिक रचना की आवश्यकता के लिए उसके पास उचित शब्द-भण्डार है। हमारे इस कथन की पुष्टि आजकल प्रकाशित होने वाले 'तमिळ विश्व-कोश' से हो जाती है।

यह वैज्ञानिक रुचि आधुनिक बुद्धिवाद की व्यापक धारा का केवल एक पहलू है। दूसरा पहलू है रूढ़ियों और धर्महीन उत्सवों, जातीय अभिमान तथा धार्मिक असहिष्णुता पर व्यापक आक्रमण। दुर्भाग्य से कुछ सुधारक हर चीज पर आक्रमण करते हुए साहित्य को भी उसमें लिपटा लेते हैं, बल्कि उनके विरोधी अपनी इच्छानुसार प्राचीन तमिळ साहित्य के उद्धरण देते हैं और उनका मनमाना अर्थ लगाते हैं। इस [illegible] दूर है [illegible] यह वैज्ञानिक तथ्य और साहित्यिक

बारों का आदर्श विज्ञान ही बन गया है। कॉन्स्टेबल ने कहा था "चित्र-कला एक विज्ञान है और उसका अनुसरण उसी प्रकार करना चाहिए, जैसे कि हम प्रकृति के नियमों की जाँच करते हैं। तो फिर दर्शन-चित्रण को प्राकृतिक दर्शन की ही एक शाखा क्यों न माना जाय चित्र तो निरे इसी दर्शन के प्रयोग हैं ?" यदि यह सच है तो आश्चर्य होता है कि कुछ कहानियाँ और पद्य भी क्या केवल प्रयोग नहीं हैं। यद्यपि विज्ञान की साधारण पाठ्य-पुस्तकें साहित्य से बिलकुल उल्टी हैं फिर भी बंडले, हक्सले, या रसेल के जनप्रिय भाष्य साहित्यिक ऊँचाइयों पर पहुँचे हैं। ऐसे ग्रंथ तमिळ में बहुत थोड़े हैं; लेकिन बिलकुल ही नहीं हों, ऐसी बात नहीं है। श्री राजगोपालाचार्य की 'वनस्पति जगत् में प्रेम' और 'पचल रसायन' आदि बहुत अच्छी पुस्तकें हैं, परन्तु यह बड़े भारी विज्ञान-जगत् की भूमिकाएँ-मात्र हैं। स्वर्गीय प्रोफ़ेसर राजेश्वरी ने 'परमाणु पुराणम्' में अणु का विज्ञान और इतिहास इस तरह से लिखा है कि वह बिलकुल पुराण की तरह जान पड़ता है। डॉ० के० एस० कृष्णन् की भी इस पुस्तक के बारे में यही सम्मति है। दूसरे आधुनिक विषयों पर भी कई लोकप्रिय ग्रंथ लिखे गए हैं। उन्हें विश्वविद्यालयों और राज्य-सरकारों की ओर से पुरस्कार भी मिले हैं। तमिळ भाषा पर्याप्त मात्रा में लचीली है। वैज्ञानिक रचना की आवश्यकता के लिए उसके पास उचित शब्द-भण्डार है। हमारे इस कथन की पुष्टि आजकल प्रकाशित होने वाले 'तमिळ विश्व-कोष' से हो जाती है।

यह वैज्ञानिक रुचि आधुनिक बुद्धिवाद की व्यापक धारा का केवल एक पहलू है। दूसरा पहलू है रूढ़ियों और अर्थहीन उत्सवों, जातीय अभिमान तथा धार्मिक असहिष्णुता पर व्यापक आक्रमण। दुर्भाग्य से कुछ सुधारक हर चीज पर आक्रमण करते हुए साहित्य को भी उसमें मिला लेते हैं, जबकि उनके विरोधी अपनी इच्छानुसार प्राचीन तमिळ-साहित्य के उद्धरण देते हैं और उनका मनमाना अर्थ लगाते हैं। होता यह है कि साधारणतः वैज्ञानिक या ऐतिहासिक तथ्य और साहित्यिक

दूषित है। परन्तु उनका लेखन साहित्य का उत्तम नमूना है, यद्यपि उसमें उनके व्यक्तित्व की झाँकी विशेष है।

साहित्य में निबन्ध का अपना एक अलग वर्ग है, यद्यपि वह जीवन की भाँति विविधतापूर्ण है। पहले पत्रों में निबन्ध बहुत हुआ करते थे, अब कहानियाँ अधिक चल पड़ी हैं। इधर निबन्ध का स्थान रेडियो-भाषण ने ले लिया है। रेडियो ने लेखक को एक बड़ा व्यास-पीठ दिया है। जहाँ तक भी तमिलभाषी लोग बसते हैं वहाँ तक रेडियो की ध्वनि पहुँचती है। संगीत-रूपक, भाषण, परिसंवाद, वाद-विवाद, कवि-सम्मेलन और नाटक इत्यादि सब एक विशेष समय व सारिणी के अनुसार चलते रहते हैं और उन लेखकों के लिए यह एक नया अनुभव है, जो कि अब तक ऐसे बंधनों में नहीं चलते थे। उनकी कला का श्रोताओं पर क्या प्रभाव पड़ा यह जानने का अवसर भी उन्हें नहीं मिलता; क्योंकि उनके सामने कोई दर्शक या श्रोता तो होता नहीं। एक बन्द कमरे के अन्दर एक बेजान मशीन के सामने अकेले बोलना सारे उत्साह को ठंडा कर देता है। वक्ता को पूर्णतः अपनी कल्पना पर ही विश्वास करना पड़ता है। सम्भव है सुनने वाले अपने घर-परिवार में बैठे हों और इसलिए बोलने का ढंग बातचीत की तरह से होना चाहिए—परिचित, किन्तु उदात्त; लोकप्रिय, लेकिन सस्ता नहीं। यह साहित्य ज्यों-ज्यों सुना जाय, त्यों-त्यों समझ में आना चाहिए। केवल कंठ-स्वर या शब्द ही प्रधान है, इसलिए रेडियो-नाटक में पात्रों का व्यक्तित्व और आवाज अलग-अलग होनी चाहिए, विविध दर्शन और भावनाएँ, अंग-भंगिमा और घटनाएँ, दर्शन और वातावरण, आरम्भ और अन्त, पात्रों का प्रवेश तथा बाहर जाना, यह सब-कुछ स्वर से ही सुनाना पड़ता है। ये स्वर, संकेतवार से बोले हुए शब्द की यह बड़ी शक्ति और उसका सूक्ष्म उतार-चढ़ाव, बदलती हुई शैली और वाक्य-रचना, संगीत का रहस्य, ध्वनि तथा-प्रभाव इत्यादि सब नए ढंग से आविष्कृत और उपयोजित हो रहे हैं। तमिल भाषा की सुप्त शक्ति का इस प्रकार्य में पता चलता

वर्तमान के दर्शकों का मनोरंजन करने की भावना कुछ कम कर सके तो किसी भी दिन यह नाटक शॉ और इब्सन के नाटकों से जरूर टक्कर लेंगे। भयानक विषमता, घृणित प्रचार, गन्दी अश्लीलता और भद्दे परिहास, कहीं-कहीं स्वस्थ व्यंग, उत्तम संकेत, काव्य-संवेदना और सूक्ष्म परिहास का स्थान लेते जा रहे हैं।

समय के अनुसार अब नाटकों में जनसाधारण को नायक बनाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। बच्चों की नट-मंडली की पुरानी परम्परा अभी नष्ट नहीं हुई है। संगीत और नृत्य हमारे नाटक का अभी भी एक महत्त्वपूर्ण भाग है। भाषण की कला बड़ी प्रभावशाली होती है, लेकिन कभी-कभी नाटक अतिनाटकीय हो जाता है। दर्शकों का दोष न होकर यह उन लोगों का दोष है जो कि इन नाटक-मण्डलियों के कर्त्ता-धर्त्ता हैं। जनता उस सेक्स और भयानकता की माँग नहीं करती जो कि अव्वै नामक तमिळ-कवयित्री और राज-राज नामक चोल-सम्राट् पर लिखे गए नाटकों में दिखाये जाते हैं। वस्तुतः तमिळ-कविता और तमिळ जनता के सच्चे आदर्श उसमें दिखाये जाने चाहिएँ, मगर कई बार वर्तमान काल का प्रक्षेपण भूत काल में ही मिलता है।

सिनेमा ने नाटकों को मारा तो नहीं, लेकिन सिनेमा का प्रभाव अधिक शक्तिमान और व्यापक है। कैमरे की युक्ति और प्रक्षेपण के जादू ने योगियों की अष्टसिद्धि का भी स्पष्ट प्रदर्शन सम्भव बना दिया है। फिर भी नाटक में अलौकिकता दिखाई देती है। ऐसा लगता है कि संबन्द मुदलियार की 'मनोहरा' कहानी रजत-पट पर दिखाई जाती है, जिसमें सब-कुछ सम्भव है। अब सामाजिक नाटकों के बदले पौराणिक और प्राचीन कहानियाँ अधिक लिखी जाती हैं। उधर एक ऐसी नई धारा चल पड़ी है जो कि आधुनिक चित्र-कला की तरह अमूर्त है। उनमें उत। ...ी चोक-क ... के नायक और नायिकाएँ, अच्छी बहन नात तंगल स्थूल तकिया ... हैं और उसका यह परिणाम है कि सारी कहानियाँ ...हैं। तो ... न या माता के आदर्श और अमूर्त सम्बन्धों पर

उपन्यास उच्चकोटि के साहित्य तक पहुँच सकते हैं। तमिळ में विदेशी उपन्यासों के बहुत अनुवाद और रूपान्तर प्रचलित हैं। इनमें से कुछ तो विदेशी श्रेष्ठ लेखकों के—जैसे टालस्टाय या हार्डी के उपन्यास और कई भारतीय भाषाओं के उपन्यासों के अनुवाद हुए हैं। बंगाली उपन्यास 'आनन्द मठ' बहुत पुराना है, उतना जितनी कि यह शताब्दी। दुर्भाग्य से सभी अनुवाद या रूपान्तर अच्छी पुस्तकों के नहीं होते। मरई मलाई अडिगल-जैसे विख्यात लेखक भी अपने ढंग से 'दि सोलजर्स वाईफ' की कहानी का रूपान्तर करते हैं। शेरलोक होमज तमिळ-चरित्र के रूप में आ गए हैं, और जासूसी कहानियाँ, मौलिक तथा अनूदित दोनों बहुत लोकप्रिय हैं।

कुल मिलाकर जो नाटक और कहानी के लिए सच है वही उपन्यास के लिए भी सही है। कुछ ऐतिहासिक उपन्यास हैं, विशेषतः 'कल्की' के; जिनमें पल्लव तथा चोल राज्यों के और उनके लोगों के विवरणयुक्त वर्णन और रोमांटिक कहानी मिलती हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यास, कदाचित् सबको सन्तोष नहीं देते, जिसमें सदा ही पाप की चेतना का भय बना रहता है, कला में भी प्रयोगशील दृष्टिकोण का उदाहरण हैं। स्वतंत्रता के आन्दोलन ने कुछ और उपन्यास निर्मित किये, जो कि ऐतिहासिक उपन्यासों से अधिक अर्थपूर्ण और महत्त्व के हैं। कदाचित् यहाँ उन उपन्यासों का भी उल्लेख कर दिया जाय जो यूटोपिया या 'भविष्य काल की समाज-रचना के रूप में हैं।' भारती की कल्पना ने अपने मनोरथ पर चढ़कर जो उड़ान भरी है, उसका भी उल्लेख कर दूँ।

कहानियाँ गद्य में सानेटों की तरह हैं। इनमें भी रवीन्द्रनाथ टैगोर और अन्य भारतीय तथा विदेशी लेखकों के अनुवाद प्रचुर मात्रा में हैं। तमिळ की कई कहानियाँ अनूदित हो रही हैं और अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पढ़ी जाती हैं। मरई मलाई अडिगल तथा अन्य लेखकों ने कहानियाँ, और बच्चों के लिए कहानियाँ भी लिखी हैं। भारती ने 'नवतंत्र कर्कैयिक्कि' लिखा, जो कि पुराने ढंग पर ही था। उसका

तेलुगु

के० रामकोटीश्वर राव

पार्श्वभूमि

दक्षिण भारत में तीन करोड़ से ऊपर जनता तेलुगु बोलती है। भारत संघराज्य में तेलुगु बोलने वालों की संख्या दूसरे नम्बर पर है। तेलुगु तथा 'आन्ध्र' पर्यायवाची शब्द हैं। भाषा का नाम है 'तेलुगु भाषा' या 'आन्ध्र भाषा' और देश का नाम है 'तेलुगु देशम्' अथवा 'आन्ध्र देशम्'। पादरी काल्डवेल के जमाने से, जिसने कि १०० वर्ष पूर्व द्राविड़ भाषा का तुलनात्मक व्याकरण लिखा, विद्वानों की प्रवृत्ति, भारत की भाषाओं को 'आर्य' और 'द्राविड' दो विभागों में बाँटने की रही है; और तेलुगु को कन्नड, तमिळ और मलयालम के साथ-साथ द्राविड़-कुल की भाषाओं में गिना जाता है। इस पृथक्करण के सिद्धान्त में से भिन्नता निर्मित हुई।

परन्तु स्व० डॉ० सी० नारायण राव और अन्य विद्वानों के अनुसार आन्ध्र प्राकृतों में से एक थी—पैशाची; जिसमें गुणाढ्य ने 'बृहत्-कथा' लिखी और आन्ध्र देश के सातवाहन सम्राट् हाल ने 'गाथा सप्तशती' की रचना की। संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द लिखित और वाचित तेलुगु में कई शताब्दियों से इतनी मात्रा में चले आ रहे हैं कि यदि कोई ऐसा प्रयत्न करे कि केवल 'शुद्ध द्राविड़' शब्द ही प्रयुक्त किया जाय तो उसका परिणाम होगा सम्पूर्ण अर्थ-शून्यता। यह बात कन्नड के लिए भी सही

भाषा-माधुर्य और संगीत के लिए बहुत उपयुक्त है।

संस्कृत के द्वारा आन्ध्र की देन बहुत उल्लेखनीय है। काव्य-शास्त्र के लेखक—विद्यानाथ और जगन्नाथ पंडितराज भाष्यकार कोण्डवीडु के राजकुमार काटयवेम और मल्लिनाथ सूरि, और उनके शिष्य लीलाशुक और नारायण तीर्थ, अखिल भारतीय संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण भाग लेते रहे हैं। तेलुगु-रचनाकार क्षेत्रय्य अन्नमाचार्य और त्यागराज, कूचिपूडि नृत्य-नाटक के प्रवर्तक रहे हैं और उन्हें अन्य भाषिक क्षेत्रों में भी बड़ा यश मिला है।

अग्रदूत

गोदावरी के किनारे पूर्व चालुक्य-सम्राट् राज-राज अथवा राज-महेन्द्र* के दरबार में तेलुगु का पहला महान् श्रेष्ठ ग्रंथ नन्नय्य का 'आन्ध्र महाभारतम्' लिखा गया। यह एक हज़ार वर्ष पहले की बात थी। यह विचित्र संयोग की बात है कि उसी प्रिय स्थान पर तेलुगु साहित्य का नव-निर्माण विगत शताब्दी के अन्त में हुआ। वीरेशलिंगम्, चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम् और वसुराय कवि ने फिर चूड़ प्रज्वलित किया। ब्रिटिश राज्य के विस्तार के कारण परम्परित संस्कृति को पूर्ण ग्रहण लग गया। लेकिन कालेजों और विश्वविद्यालयों की स्थापना ने एक भिन्न प्रकार की सभ्यता से सफल सम्पर्क बढ़ाया। पश्चिम के साहित्य और विज्ञान ने आन्ध्र के बुद्धिजीवियों को भारत के अन्य भाषिक समूहों की भाँति एक नई दृष्टि दी। इस सम्पर्क के प्रथम आघात के बाद तेलुगु विद्वान् और कवि, जो कि नए वातावरण में बढ़े थे, अपनी मातृभाषा के साहित्य को समृद्ध बनाते गए।

वीरेशलिंगम् को कई तरह से इस समृद्धि का अग्रदूत कहा जायगा। सबसे पहले वे एक समाज-सुधारक और वर्षों से चली आ रही रूढ़ियों के प्रति बागी थे। उन्होंने प्रवाहपूर्ण गद्य-शैली के अपने अस्त्र को

*राजमहेन्द्रवरम् अथवा राजमहेन्द्री।

रवीन्द्रनाथ के रूप में बंगाली साहित्य का प्रभाव दक्षिण भारत में किसी भी अन्य भाषाभाषी समूहों से अधिक पहले तेलुगु पर पड़ा। इस प्रकार से जबकि वीरेशलिंगम् की पीढ़ी सत्रहवीं से उन्नीसवीं शती के अंग्रेजी साहित्य से मोह रखती थी और कभी-कभी संस्कृत के प्राचीन साहित्य की ओर प्रेरणा के लिए मुड़ती थी; कृष्णा शास्त्री की पीढ़ी पर उन्नीसवीं और प्रारम्भिक बीसवीं शती के यूरोपीय साहित्य और समकालीन बंगाली साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ा है।

प्रथम महायुद्ध में जो युवक कालेजों में पढ़ते थे उन्होंने १६१५ और १६३५ के बीच में अपना सर्वोत्तम साहित्य रचा। हमारे साहित्यिक इतिहास में ये दो दशाब्दियाँ अथेन्स में पेरिक्लिज, इंग्लैंड में एलिज़ाबेथ या भारत में भोज अथवा कृष्णदेवराय के युग से तुलनीय हैं। भाव-गीतात्मक कविता, रोमांटिक संगीत, उपन्यास, कहानी, नाटक इत्यादि साहित्य-शाखाओं को इन लेखकों ने स्मरणीय बनाया। विशेष रूप से उनका प्रिय अभिव्यंजना-माध्यम भाव-कविता था। प्राचीन भारतीय कविता में कवि का व्यक्तित्व कभी भी पाठक के ध्यान में बाधा के रूप में नहीं आता। भक्तों की भगवान् के प्रति समर्पण या श्रद्धा की भावना, जैसी कि महाकाव्यों या 'शतकों' में पाई जाती है, कुछ-कुछ आत्मनिष्ठ कविता के निकट की वस्तु थी। अब हमारे साहित्य में कवि के व्यक्तिगत सुख-दुःखों का प्रकटीकरण और उसके आस-पास के विचारों तथा भावनाओं के आन्दोलनों के प्रति प्रतिक्रिया एक नया दौर उपस्थित करती है।

प्रेयसी की खोज, जो कि एक साथ सौंदर्य की पूर्ण प्रतिमा और प्रेम के मन्दिर को दिशा-निर्देशिका तारिका है, इन भाव-कवियों का प्रमुख विषय है। उनकी दृष्टि में स्त्री एक अरूप व्यक्तित्व है; वह बिजली की कौंध, शबनम-भरी सुबह और महा सागर की तरंगों पर नाचने वाले सफ़ेद फेन की तरह है। प्रेम विषय के आदर्शीकरण और मन में गूंजते रहने वाले वर्णनों के साथ-साथ उन्होंने तेलुगु-कविता को अव्यता के क्षेत्र

आन्दोलन शुरू किया, परन्तु साहिती-समिति ने इस माध्यम को प्रयश उपयोग में लाकर, इस आन्दोलन को सफल बनाया। जो कुछ भी पद्य, गीत या गद्य में स्मरणीय कृति साहित्य में मिलती है, वह समिति के प्रतिभाशाली साहित्य और उनके प्रशंसकों तथा अनुयायियों के कारण ही है, इसका श्रेय समिति को ही देना चाहिए।

गीतकार

कुछ कवि ऐसे भी थे जो पद्य लिखने की सामर्थ्य होने पर भी गीत लिखते थे। यह भी कल की बात जान पड़ती है। परन्तु वस्तुतः ४० वर्ष पूर्व की यह घटना है कि बसवराजु अप्पाराव और नंडूरि सुब्बाराव ये दोनों चचेरे भाई मद्रास के लॉ कालेज और क्रिश्चियन कालेज में पढ़ते थे। वे गुरजाड अप्पाराव के गीतों और पद्य-गीतों से बहुत प्रेम करते थे और बड़ी भावना के साथ उन्हें गाया करते थे। धीरे-धीरे उत्सुक सहपाठियों के सामने उन्होंने अपने गीत भी गाने शुरू किये। वे इतने मार्मिक थे कि सुनने वालों की आँखों में आँसू आ जाते थे। 'सेलियेंटि गानमु' (निर्झर का संगीत) बसवराजु अप्पाराव की रचना थी और नंडूरि सुब्बाराव की 'यंकिपाटलु'। इन रचनाओं ने जनता को झकझोर दिया। आज ये गाने प्रायः प्रत्येक आन्ध्रभाषी के होंठों पर हैं। अप्पाराव ने कहा कि हृदय को सुकुमार बनाने के लिए दुःख में से गुजरना चाहिए और अहंकार पूरी तरह निकाल देना चाहिए। सुब्बाराव के ग्रामीण प्रेमी 'यंकी' और 'नायडु बावा' सुकोमल और भले होने के साथ ही किसी राजसी रोमांस के नायक-नायिकाओं की भाँति एक-दूसरे से उत्कट प्रेम भी करते हैं। जब कि प्रेमी प्रेयसी से एक सरस प्रश्न पूछता है :

"ओ प्रकाश कुमारी, तुम कहाँ रहती हो ?"

तो वह भोली लड़की उत्तर देती है :

"तेरी छाया में मैं अपना महल बनाऊँगी।"

देविदि कारिणायु * चित्रकार, कवि और गीतकार थे। बाद में

* इनकी मृत्यु १९४९ में हुई।

की थी। छोटी आयु में जो प्रतिभा उन्होंने दिखाई उसका विकास उनके 'सौन्दरनन्दम्' नामक उस लम्बे दीर्घ काव्य में मिलता है, जिसमें बुद्ध के समय की पुनः याद की गई है। रूप की पूर्णता और भावना की भव्यता से 'सौन्दरनन्दम्' एक उत्कृष्ट तथा सफल महाकाव्य बन गया है।

इस युग के कवियों के मुख्य विषय प्रेम और प्रकृति थे। परन्तु राष्ट्रीयता, विशेषतः विदेशी राज्य के विरुद्ध संघर्ष, के दिनों में, उनकी भावनात्मक मनोघटना का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व थी। ये कवि स्वप्नदर्शी थे और उनकी दृष्टि विश्वात्मक और व्यापक थी। उनकी सहानुभूति जनसाधारण तक पहुँची थी, यद्यपि वे सारी जनता-जैसा जीवन प्रत्यक्षतः नहीं बिताते थे। गद्य-शैली और छन्द-विन्यास में उन्होंने क्लासिकल और लोकप्रिय दोनों शैलियों के बीच का अन्तर कम करने का प्रयत्न किया। तेलुगु में इन शैलियों को 'मार्गी' और 'देशी' कहते हैं।

वामपक्ष की ओर झुकाव

१९३५ के बाद तेलुगु-कविता में वामपक्षी विचारों की ओर झुकाव हुआ। श्रीरगम् श्रीनिवास राव ('श्री श्री') ने रोमांटिक आन्दोलन के विरुद्ध विद्रोह शुरू किया, जिसका आरम्भ रायप्रोलु सुब्बा राव से हुआ था। श्रीनिवास राव अपनी कविता में लिखते हैं कि अब ऐसी नई दुनिया बन रही है, जिसमें पसीने और मेहनत का फल यह होना चाहिए कि किसानों और मजदूरों के अधिकार उन्हें पूरी तरह प्राप्त हो जायें। ताजमहल की सुन्दरता के गुण गाने में कोई अर्थ नहीं है; जरा इस बात को तो सोचो कि ताजमहल बनाने में कितने मजदूरों से बेगार ली गई। कोमल भावना और प्रकृति का उत्फुल्ल पूजन उसके विविध रूपों में अब काव्य के विषय नहीं रहे। यह नये कवियों का दल पश्चिम के इम्प्रेशनिस्ट और सुर्रियलिस्ट दल के प्रभाव में आगे बढ़ा। उन्होंने इस

कविता का कार्य राजनैतिक और आर्थिक क्रान्ति की दासी बनना ही है? ये प्रश्न आज पूछे जा रहे हैं। नव्य क्लासिकवादी कविता के लिए उसकी पूर्व महत्ता प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं। कविता विशेषतः सौंदर्य और सत्य के सर्वोत्तम सार का संकेत है। विश्वनाथ सत्यनारायण ने राम चरित को आधार बनाकर एक महाकाव्य लिखकर एक प्रकार से महाकाव्यों की ओर लौटने का महत्त्व प्रतिपादित किया है और गड़िया-रम शेष शास्त्री 'शिव भारतम्' ने काव्य में शिवाजी को अपना नायक बनाया है।

कहानी

५० वर्ष से अधिक समय हुआ गुरजाड अप्पाराव ने समकालीन समाज-स्थिति के चित्रपट के नाते कहानी लिखना आरम्भ किया। परन्तु उसके आगे के वर्षों में विकास और साहित्य में इस ऊँचे स्थान पर उसका पहुँचना चिन्ता दीक्षितुलु और उनके अनुयायी लेखकों के दल के कारण है। दीक्षितुलु की कहानियाँ जनसाधारण के सहानुभूति-पूर्ण चित्र व्यक्त करती हैं, उनमें सूक्ष्म उदार परिहास भी होता है। वे कर्नाटक के मास्ती वेंकटेश अयंगार की कहानियों की भाँति हैं। यद्यपि ये पड़ोस के देशों की कहानियाँ हैं, फिर भी एक भाषा-भाषी दूसरे भाषा-भाषी की कहानियों को बहुत कम जानते हैं। दोनों कहानी-लेखक उस कला में दक्ष हैं, जिसे कि ऐसी कला माना जाता है, जिसमें कला छिपी रहे। उनके वर्णन सरल होते हैं, मानो कहानी अपनी कहानी खुद कहती जाती है और फिर भी अन्त अनिवार्य जान पड़ता है। मुनिमाणिक्यम् नरसिंह राव ऐसे ढंग की कहानी के सूत्रधार हैं जिसमें मध्यमवर्गीय परिवारों के घरेलू जीवन का चित्र हो। वे विशिष्ट स्त्रियों में हास्य रस के वर्णन में बहुत सफल होते हैं। उनकी नायिका कान्तम् मधुरया, स्नेहमयी गृहिणी है, जिसमें कि अपना विशेष हठ भी है। वह कई बार ˆ है कि वह जितनी होशियार है उसका पति शायद ही उतना

होशियार हो। गुडिपाटी वेंकटाचलम् स्त्रियों द्वारा सहे जाने वाले कष्टों की कहानी बड़े ही जोरों से व्यक्त करते हैं। वे घोर यथार्थवाद में विश्वास करते हैं। विशेषतया सेक्स के वर्णनों के सम्बन्ध में वे कभी-कभी यथार्थवाद के बदले प्रत्यक्षवाद का अनुसरण करते हैं और कहानियों में इतना विवरण भर देते हैं कि उनके कलात्मक भाव नष्ट हो जाते हैं। तेलुगु में सफल कहानी-लेखकों की संख्या बहुत बड़ी है और वह बढ़ती ही जा रही है। लेखिकाओं में कनुपर्ती वरलक्ष्मम्मा, इल्लिन्दला सरस्वती देवी और मालती चन्दूर महत्त्वपूर्ण हैं। तेलुगु के कहानी-क्षेत्र की ऊँची सफलता का एक प्रमाण यह है कि तीन वर्ष पूर्व एक विश्व-कहानी-प्रतियोगिता में दूसरा इनाम पी०पद्मराजु को मिला। अडिवि बापिराजु की कहानियाँ साधारणतया कलाकार और उनके सौंदर्य-पुष्पों के आस-पास मँडराती रहती हैं। 'शिला प्रतिमा' एक नर्तकी के प्रति प्रेम के स्वप्न की कहानी है और वह सहज ही एक श्रेष्ठ कृति बन गई है।

उपन्यास

वीरेशलिंगम् तेलुगु के पहले उपन्यास-लेखक थे। उनका 'राजशेखर चरित्रम्' गत शताब्दी के अष्टम दशक में प्रकाशित हुआ। वह मध्यवर्गी ब्राह्मण-परिवार का चित्र है। एक घर के मुखिया कई प्रकार की ऊँच-नीच में से जाते हैं, परन्तु अन्त में वे ही विजयी होते हैं। इस उपन्यास का एक अंग्रेज ने अंग्रेजी में तर्जुमा किया था। वीरेशलिंगम् के बाद इस क्षेत्र में चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् हैं, जिनके ऐतिहासिक उपन्यास बहुत लोकप्रिय बने। उनकी कीर्ति समकालीन आन्ध्र जीवन पर लिखे हुए 'रामचन्द्र विजयम्' नामक उपन्यास पर आधारित है। रमेश दत्त के 'लेक ऑफ पाम' के उत्तम अनुवाद से आन्ध्र की उस पीढ़ी को बंगाली जीवन और आकांक्षाओं का परिचय मिला। यह उत्तम कार्य आगे वेंकट पर्वतीश्वर कवुलु करते रहे, जिन्होंने कई बंगाली उपन्यासों का अनुवाद किया; जिनमें बंकिमचन्द्र के उत्तम ग्रंथ भी हैं।

इसके बाद बहुत-से जासूसी उपन्यास लिखे गए, जिसका कोई साहित्यिक मूल्य नहीं है। १९२१ में मुन्नव लक्ष्मीनारायण ने 'माल पल्ली'* नामक उपन्यास लिखा, जो कि गांधी-युग का उत्तम उपन्यास है।

विश्वनाथ सत्यनारायण और अडिवि बापिराजु आज के दो श्रेष्ठ उपन्यासकार कहे जा सकते हैं। दोनों को आन्ध्र की ओर से बड़ी लोकप्रियता मिली है। १९३४ में आन्ध्र-विश्वविद्यालय ने इन दोनों लेखकों में अपने श्रेष्ठ पुरस्कार बाँटे। विश्वनाथ के 'वेयि पडगलु' (सहस्रफण) और बापिराजु का 'नारायणराव'* यह दो उपन्यास थे। विश्वनाथ पुराने ढंग के जीवन के प्रेमी हैं और उनके उपन्यासों–विशेषतया 'सहस्र फण' में ऐसी जिन्दगी का वर्णन है, जो अब बहुत-कुछ मिटती जा रही है। अगली पीढ़ियों के लाभ के लिए समाज के विविध स्तरों की विचार-पद्धतियाँ और भावनाएँ, रीति-रिवाज और कई चीजें उन्होंने इस उपन्यास में चित्रित की हैं। बहुत विस्तृत पट पर कार्य करते हुए विश्व-कोश जैसा ज्ञान प्रदर्शित करते हुए विश्वनाथ में कहीं कहीं पूरे विषबन्ध की अभिव्यक्ति नहीं मिल पाती विविध तत्त्व अच्छी तरह से समन्वित नहीं हो पाते। बापिराजु सौन्दर्य प्रेमी और आशावादी हैं। उनके उपन्यासों का मन्द गुण और मस्तृति म होता है। कलात्मक दृष्टि से उनका कार्य अधिक सफल और सफल है।

दूसरे महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं नोरि नरसिंह शास्त्री। उनके 'नारायण भट्टु' और 'रुद्रम देवी'* पूर्व आन्ध्र-काकतीय-काल का जीवन व्यक्त करते हैं और सामाजिक-ऐतिहासिक उपन्यासों के नाते बहुत सफल हैं। नवल लेखकों में सबसे प्रसिद्ध हैं 'बुच्चि बाबु'। उनका 'चिवरकु मिगिलेदि' (जो कुछ बचा रहे) आधुनिक मानसिक युग में मानव का अध्ययन करता है। उपन्यासों के संबन्ध में जो छोटी-छोटी कहानियाँ और [illegible] [illegible]

*इन उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित हो रहे हैं।
*[illegible]

चलती है, उनका वह चित्र है। विशेष रूप से स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में जो विचित्र उलझनें पैदा हुई हैं वे भी इसमें चित्रित हैं। चरित्र, संवाद, वर्णन-शैली इत्यादि में बुच्चिबाबू की रचनाएँ एक प्रकार से विशेष प्रगति व्यक्त करती हैं, यद्यपि उनके भीतर कहीं-कहीं अविश्वास और शंका की धारा विद्यमान है।

यूरोपीय भाषाओं और बंगाली तथा हिन्दी से शरच्चन्द्र एवं प्रेमचन्द के उपन्यास बड़ी संख्या में अनूदित हुए हैं। तेलुगु-गद्य के नाते यह अनुवाद उच्चकोटि के नहीं हैं।

नाटककार

पुरानी सदियों के खुले रंगमंच पर नृत्य-नाटकों की तुलना में आधुनिक मंच के नाटक बड़े-बड़े शहरों में कुछ अव्यावसायिक अभिनेता सामने लाए। गद्य, पद्य और गीत बड़ी मात्रा में उपयोग में लाए गए और उनके विषय भी पौराणिक, ऐतिहासिक या सामाजिक थे। आन्ध्र देश में हरिप्रसाद राव, टी० राघवाचारी और स्थानम् नरसिंह राव-जैसे बड़े अभिनेता पैदा हुए। परन्तु डी० कृष्णमाचार्लु, वेदम् वेंकटराय शास्त्री, पानुगंटि नरसिंह राव और गुरजाड अप्पाराव-जैसे प्रसिद्ध नाटककारों की मृत्यु के बाद कोई सफल सच्चा नाटक नहीं लिखा गया। हर नाटक के अन्त में ऐसा लगता है कि मानो कोई कहता हो—"कितना सुन्दर अभिनय है, परन्तु नाटक निम्न श्रेणी का है!" 'विश्वनाथ की नर्तन शाला' और वेलूरि चन्द्रशेखरम् की 'कंचनमाला' उत्तम साहित्यिक कृतियाँ हैं। परन्तु वे सब अभिनेताओं और जनता दोनों को ही प्रिय नहीं लगीं।

एकांकी नाटक, कार्य की क्षिप्रता और विशेषतया सामाजिक और साहित्यिक समारोहों में मनोरंजन के मूल्य के कारण लम्बे नाटकों का स्थान ले रहे हैं, और अब एकांकी नाटकों से भी ज्यादा, लोगों को सिनेमा प्रिय है। फिर भी एकांकी के बड़े अच्छे प्रसिद्ध लेखक हैं—मुख्य न्यायाधीश राजमन्नार, नार्ल वेंकटेश्वर राव, मुद्दु कृष्ण और आचार्य

आत्रेय। इनका आधुनिक नाटकों के मंच को बहुत मूल्यवान दान है। उन्होंने हमें ऐसे नाटक दिए हैं जो कि साहित्य की तरह पढ़े जाने के साथ-साथ मंच पर अभिनेय भी हैं।

ज्ञान-विज्ञान का साहित्य

गद्य और पद्य में रचनात्मक साहित्य की तुलना में, ज्ञान-विज्ञान का साहित्य तेलुगु में काफी प्रगति कर चुका है। राजनीति, विज्ञान, समाज-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र और इतिहास आदि पर उच्च स्तर की पुस्तकें लिखी गई हैं। इतिहास पर के० वी० लक्ष्मण राव, सी० वीरभद्र राव, भाव-राजु कृष्णा राव और सोमशेखर शर्मा की पुस्तकें साहित्य की कोटि में मानी जाती हैं।

श्री टी० प्रकाशम् की आत्म-जीवनी एक मार्मिक मानवीय लेखा है, एक महान् व्यक्तित्व का आत्म प्रकटीकरण है। इसकी शैली सरल, सशक्त और आकर्षक है। तेलुगु में नए लेखकों के लिए ऊँची पत्रकारिता प्रोत्साहन का बड़ा स्रोत रही है। कई पत्रों में रचनात्मक साहित्य प्रकाशित होता रहता है, जो कि बाद में पद्य, कहानी या गीत के संकलनों के रूप में प्रकाशित होता है। आन्ध्र पत्रकारों में सबसे बड़े 'कृष्णा पत्रिका' के स्वर्गीय श्री कृष्णा राव हैं, जिन्होंने बड़ा उत्तम गद्य लिखा। उनके 'समीक्षा' नामक ग्रंथ में साहित्य, दर्शन और कला-सम्बन्धी निबन्ध संकलित हैं।

परवर्ती लेखक

मैं अन्त में आज की साहित्यिक स्थिति का एक सर्वेक्षण प्रस्तुत करता हूँ। अच्छी कविताएँ अभी भी लिखी जा रही हैं। बाल गंगाधर तिलक ने 'आ रोजुलु' (वे दिन) नामक एक कविता लिखी है, जिसमें बचपन के जीवन और स्वप्नों के प्रति सौहार्द व्यक्त किया है। इस कविता के अन्त में यह सार्थक विचार है कि वर्तमान जीवन जीने योग्य

है तो केवल इसीलिए कि उन दिनों की सुगन्धित याद बराबर आती है। पतुल श्रीराम शास्त्री, अच्छी कहानी और रेडियो-नाटकों के प्रभाव-शाली लेखक है, उन्होंने 'मानवुडु' नामक एक पद्य-गाथा लिखी है। इसमें एक चोर के मन की स्थिति दिखलाई है। एक घंटे के भीतर उसके मन में कितनी भावनाएँ उठती हैं और गिरती हैं, उनका यह सबल वर्णन है, और यह चोर अनिच्छा से उस घर की मुख्य स्त्री का रक्षक बन जाता है, चूँकि वह स्त्री आत्म-हत्या करने जा रही थी। विद्वान् विश्वम् की लम्बी कविता 'पेन्नेटिपाट' रायल सीमा के ग्रामीण जीवन का चित्र है। एक ऐसे गाँव का वातावरण इस कविता में है, जहाँ कि गरीबी और अभाव के प्रति निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। उस गाँव की बोली की पुट इस कविता में है और तेलुगु-कविता को यह एक महत्त्वपूर्ण देन है। परन्तु अन्त में कवि उपदेशक बन जाता है और अमीरों को कोसता है कि वे बिना हृदय तथा आत्मा के लोग हैं, वे अपनी समृद्धि की इमारत, गरीबों की हड्डियों और खून पर बना रहे हैं।

पी० श्री रामुलु रेड्डी ने तमिल के प्राचीन ग्रंथ 'कंब रामायण' और 'शिलप्पदिकारम्' को प्रवाही तेलुगु-पद्य में व्यक्त किया है और यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। वे तमिल और तेलुगु को एकत्र लाने में सहायक है।

तेलगाना से दो प्रकाशन हुए हैं, जिनका बड़ा महत्त्व है। सी० नारा-यण रेड्डी ने अपने 'गेय-काव्य', 'नागार्जुन सागर' इत्यादि ग्रन्थों में सौन्दर्य और सत्य के पुरातन संघर्ष को सुन्दर काव्य-वाणी दी है। यह संघर्ष वस्तुतः प्रेम और कर्त्तव्य के बीच का संघर्ष है। शान्तिश्री का हृदय एक ओर पद्मदेव नामक कलाकार के प्रति प्रेम और दूसरी ओर धर्म के प्रति कर्तव्य के बीच में बँटा हुआ है। इस संघर्ष का कोई फल नहीं निकलता। पद्म देव विजयपुरी छोड़कर चला जाता है और फिर स्वप्न में एक स्वप्न की तरह, शान्तिश्री नागार्जुन सागर का कल्पना-चित्र देखते हैं। संकेत स्पष्टतः यह है कि प्रेमी का अमूर्त्त प्रेम फैलकर एक बाढ़ का रूप लेता है और वह अन्त में आकर सागर बन जाता है।

यह एक महान् कविता है। दाशरथी का 'महांध्रोदयम्' कविता-संग्रह राष्ट्रीयता की भावना से भरा हुआ है। तरुण दाशरथी को वह कवि मानना चाहिए जिसने विशाल आन्ध्र का स्वप्न लिया था और इस राज्य के प्रत्यक्ष सम्मिलन से बहुत पहले उसके हृदय का सम्मिलन घटित किया था। राष्ट्रीय कविता के अतिरिक्त इस संग्रह में मंजीरा, माधुरी और पोगलक्ष्मी-जैसे भाव-गीत भी हैं।

तेलुगु के मंच के नाटकों को धीरे-धीरे सिनेमा के कारण जो कुछ वर्षों के लिए ग्रहण लग गया था, अब वे इस संकट से बाहर निकल रहे हैं। अव्यावसायिक नाटक-मण्डलियाँ, जिनमें कि विद्यार्थी और दूसरे नाटक-प्रेमी भाग लेते हैं, सांस्कृतिक समारोहों में एकांकियों का अभिनय प्रस्तुत करती हैं। पुराने नाटक, जिनमें कि पद्य और संगीत भी बहुत मात्रा में होते थे, प्राय दर्शकों को आकर्षित करते रहते हैं। नए ढंग के पौराणिक या ऐतिहासिक नाटक अब नहीं लिखे जा रहे हैं। कविता और कथा-कथा में आज के नाटकों में भी विषय की पुनरावृत्ति और एक-रसता है। वही गरीब किसान, वही कम वेतन वाला क्लर्क, वही वेश्यालयों में जाने वाली स्त्री और वही विवश बाला। कहानी व [illegible] यद्यपि मंचा में हमें युवक-युवती मिलन का दृश्य मिलता है उतना नाटक में नहीं। कुछ आधुनिक नाटककार यह सोचते हैं कि कुछ विशेष [illegible] या दृष्टिकोण से उसका प्रचार अवश्य करना चाहिए। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि नाटकों की मौलिकता पर आक्रमण करने या [illegible] [illegible] [illegible] विचार [illegible] और [illegible] की रचना के द्वारा [illegible] [illegible] [illegible] है। इधर रेडियो-नाटक और मंच के नाटक भी कुछ [illegible] [illegible] [illegible] हैं। एक पुराने लेखक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नाटक लिखा है। इस नाटक में [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible], जो कि नई [illegible] [illegible] और [illegible] के [illegible] [illegible] है। यह नई [illegible] की [illegible] भी है। पर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नाटक [illegible]

वाला' एक उच्चकोटि का नाटक है। इसमें एक रिक्शा वाला एक छोटी-सी लड़की के प्रति आकृष्ट होता है, जो कि अन्त में उसीकी मालिन निकलती है। यह करुण कथा अच्छी तरह व्यक्त की गई है। दो परिवारों के पुनर्मिलन की बात बहुत देर से ध्यान में आती है। आत्रेय के 'शालभंजिका' में यह दिखाया गया है कि कहानी अपने-आप कैसे विकसित नहीं होने दी जाती, परन्तु हर मोड़ पर अभिनेता, गायक, कवि और डिरेक्टर उसे बदलते-बदलते आते हैं। दूसरा सफल नाटक है 'प्रतिधि', इसके लेखक हैं वेल्लयकोडा रामदास। इसके संवाद और घटनाएँ बहुत ही सौम्य हैं। यह नाटक बहुत अच्छी तरह अन्तिम परिणिति पर पहुँचता है। यह नाटक सूक्ष्मतः व्यंग्यपूर्ण है, क्योंकि नायक, जो कि एक आदर्शवादी है, उन्हीं लोगों द्वारा मारा जाता है, जिनसे कि वह मित्रता करना चाहता है।

कहानी ऐसा साहित्य-रूप है जो कि आजकल बहुत ही लोकप्रिय है। दैनिक, साप्ताहिक, उच्चकोटि के मासिक पत्र सैकड़ों की संख्या में कहानी प्रकाशित करते हैं, परन्तु साहित्यिक गुणों की दृष्टि से वे इतनी ऊँची नहीं होतीं। विषय-वस्तु की पुनरावृत्ति तो है ही, परन्तु हमारे आधुनिक कहानी-लेखकों का तेलुगु गद्य भी बहुत ही असंतोषजनक होता है। रूप, शिल्प और साहित्यिक टेकनीक की ओर यह उपेक्षा शायद कहानी को नष्ट कर देगी। कभी-कभी साहित्यिक स्पर्धाओं में से बहुत ऊँची कहानियाँ ऊपर आती हैं और प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में एक ऊँचा स्तर स्थापित किया जाता है। तेन्नेटि सूरि की 'भारती', कोम्मूरि वेणुगोपाल राव का 'सूर्योदयम्', बुच्चि बाबू का 'निरन्तरात्रयम्', डिग्मर्ति रामा राव का 'मेमु मुग्गुरम्', और बी० सीता देवी का 'मारिपोयिन मनिषि' शैली और टेकनीक दोनों ही दृष्टि से उच्चकोटि की कहानियाँ हैं। डॉक्टर बी० एन० शर्मा ने स्टीफेन ज्वाइग की मूल जर्मन से एक कला-प्रेमी की कहानी का अनुवाद किया है, उसकी ओर विशेष ध्यान जाता है। मुनिमाणिक्यम् ने अपनी बाद की कहानियों

की नायिका कान्तम् को वृद्धा प्रौढ़ा के रूप में पुनः प्रस्तुत किया है।

साहित्य और कला-समालोचना के क्षेत्र में, जो कि तेलुगु साहित्य का सर्वोत्तम अंश कहा जाता है, प्राचीन और समकालीन साहित्य तथा कला का सुगठित सुन्दर समीक्षण मिलता है, साहित्यिक और कलात्मक रचना के सिद्धांतों का मूल्यांकन हमारी उच्चकोटि की मासिक पत्रिकाओं और साप्ताहिकों में पाया जाता है, दैनिकों के साप्ताहिक संस्करणों में भी यह आलोचना पाई जाती है। यह पुराने विद्वानों की उस पीढ़ी के काम का ही विकसित रूप है जिस पीढ़ी में डॉक्टर सी० आर० रेड्डी, रा० अनंत कृष्ण शर्मा और पी० लक्ष्मीकान्तम् लिखते थे। वी० वी० एल० नरसिंह राव तेलुगु और अंग्रेजी उपन्यास की समीक्षा बड़ी गहराई से करते हैं। पोतुकूचि सुब्रह्मण्य शास्त्री काव्य-शास्त्र पर बड़े ही अच्छे लेखों के प्रणेता हैं। उन्होंने रसास्वाद के स्वभाव पर भी उत्तम लेख लिखे हैं। पी० जगन्नाथ स्वामी 'कलोपासना' नामक पुस्तक में रचनात्मक कला के सिद्धान्तों की विवेचना करते हैं। तीन छोटी पुस्तकें, डॉ० सी० सत्यनारायण की 'भारतीय कला', वी० वेंकटेश्वर राव की 'गृहालंकरण', और डॉ० एम० रामा राव का 'नागार्जुन कोंडा' भारतीय शिल्प और चित्र-कला के अध्ययन के लिए उत्तम पुस्तकें हैं। ये सब बड़ी सरल और प्रसादयुक्त गद्य-शैली में लिखी गई हैं। चित्रों का मुद्रण और प्रकाशन नयनाभिराम है।

अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य पर व्याख्यात्मक आलोचना का विकास स्वागत करने योग्य बात है। कर्ण राजशेषगिरि राव का निबन्ध जयशंकर प्रसाद की हिन्दी 'कामायनी' पर और रहमान के निबन्ध बंगाली कवि नज़रुल इस्लाम पर विशेष उल्लेखनीय हैं। यदि उच्च साहित्य रचा जाता है और उसकी विवेकयुक्त समीक्षा होनी है तो रचनात्मक आलोचना के सिद्धान्त हमें ग्रहण करने चाहिएँ। उस पर जिनका उल्लेख हुआ है, उन लेखकों के छोटे-से दल के प्रति हम आभारी हैं, उन्होंने यह अमूल्य आलोचना हमें दी है।

तेलुगु का साहित्य महान् और विकसनशील है। संस्कृत और तेलुगु का सम्पूर्ण समन्वय उस मधुरता और सौंदर्य से साहित्य को भर देता है, जिससे कि त्यागराजु के गीत विश्व-विख्यात हुए। प्रमुख भारतीय भाषाओं के साहित्यों का इतिहास कई शतियों के बीच जब लिखा जायगा तब तेलुगु को सम्मानयुक्त स्थान मिलेगा। नन्नय्य के युग से आज तक साहित्यिक परम्परा की निरन्तरता अखण्डित रही है।

५

पंजाबी

सुखबन्तसिंह

पंजाबी दो करोड़ से अधिक हिन्दू, मुस्लिम और सिखों की भाषा है। इसके बोलने वाले भारत और पाकिस्तान दोनों में हैं। इसलिए इसकी साहित्यिक परम्परा में तीन अलग-अलग धर्मों के लोगों की रचनाएँ आती हैं, ये तीन अलग-अलग लिपियों में हैं—अरबी, देवनागरी और गुरुमुखी। फलतः पंजाबी की साहित्यिक परम्परा को, उन दूसरी भाषाओं की रचनाओं में प्रचलित विचारों ने भी समृद्ध किया है, जो कि उन-उन लिपियों में लिखी गई हैं। उदाहरणार्थ : अरबी, फारसी और संस्कृत की विविध शाखाएँ। यह मजेदार पचमेल खिचड़ी पंजाबी की अलग-अलग बोलियों के मिश्रण से और भी स्वादिष्ट बनी है। इन बोलियों ने पंजाबी भाषा को एक खास किस्म का अक्खड़पन और पहपता दी है।

किसी भी भाषा के प्रारम्भ की तारीख कायम करना आसान नहीं है। खास तौर से पंजाबी-जैसी भाषा की तो और भी कठिन है; क्योंकि इसकी पूर्व परम्परा के बारे में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान् उसे १२ वीं सदी तक ले जाते हैं, कुछ उससे भी पहले। जब कि कोई प्राधिकारिक लेखा नहीं है, तब बेहतर यही है कि उन लेखकों से शुरू

किया जाय जिनकी तारीखों का निश्चित पता है। जिनकी रचनाएँ हमारे साहित्य की अभिन्न अंग बन गई हैं और समकालीन लेखकों को प्रभावित करती हैं। इनमें दो मुख्य दल हैं, एक तो मुस्लिम सूफी और दूसरे सिख गुरु। दोनों १५ वीं शती से शुरू होते हैं। ये दोनों धाराएँ बहुत पहले एक हो गईं; मानो यही हमारी भाषा की जनक-जननी रही हों।

सूफी

भारत में मुसलमानों के आक्रमण के पीछे-पीछे सूफी आये। भारतीय जीवन और साहित्य पर उनका प्रभाव तब तक नहीं हुआ जब तक कि उन्होंने यहाँ की भाषा और यहाँ के लोगों के रिवाज नहीं अपनाये। जब तक वे यह सब करने लगे तब तक उनका धार्मिक उत्साह बहुत कुछ ठण्डा हो गया था और वे अपने से भिन्न दूसरे धर्मों को मानने और उनके प्रति आदर भी व्यक्त करने लगे थे। सूफियों का पंजाब में मुख्य स्थान था, मुल्तान के पास 'पाकपट्टन'। इस प्रदेश में धार्मिक विचारों पर उनका प्रभाव सबसे अधिक है। सिख गुरु, विशेषतया सिख-धर्म के संस्थापक गुरु नानक ने उतनी ही भक्ति से सूफियों को पढ़ा, जितनी भक्ति से भक्ति-आन्दोलन के भक्तों और सन्तों को।

सूफियों की दृष्टि में परमात्मा और भक्त का वही सम्बन्ध है, जो कि एक प्रेयसी और प्रेमी का। दोनों के बीच में माया का पर्दा है; इसी कारण से विरह है। यह वियोग गहरी लगन और प्रेम से ही दूर हो सकता है। बुल्लेशाह के लोकप्रिय गीतों में व्यक्त यही भावना प्रायः इन सब कवियों में है:

> "प्रेम की सदा एक नई बहार होती है।
> मैं वेद के शब्दों से थक गया,
> कुरान पढ़ने से थक गया।
> प्रार्थना में मैं थक गया।

सिजदे से मेरा माथा घिस गया।
न मैंने हिंदुओं के तीर्थों में भगवान् पाया
और न मक्का को हज पर जाने से।
केवल जिसे प्रेम मिला उसे ही प्रकाश मिला।"

यह विचार सिख-गुरुओं के लेखन में बार-बार आता है, और पंजाब के तीन महाकाव्यों के पीछे यह भावना बराबर काम करती है। ये तीन महाकाव्य हैं : 'हीर रांझा', 'ससि-पुन्नू' और 'सोहनी माहीवाल'। इन सबमें जीवन-भर वियोग और विरह सहने के बाद प्रेमी मिलते हैं तो मृत्यु में। इसी भावना की गूँज आज के सबसे बड़े कवि भाई वीरसिंह की कविता में भी हमें मिलती है।

सूफी लोग गाँवों में रहते थे और उनकी शब्दावली में बड़ी सादगी और देहाती रंग है। किसानों के प्रतिदिन के काम, हल चलाना, बुनना, साग पकना, संयुक्त परिवार के कारण रिश्तेदारों की बड़ी संख्या में चलने वाली तकरार, बहनों का भाइयों के लिए प्रेम और भौजाइयों से ननद की लड़ाई, सास के अत्याचार, लड़की का पीहर की याद में तड़पना इत्यादि बातों से उन्होंने अपनी आवश्यक उपमाएँ और रूपक ग्रहण किए। सिख गुरुओं, विशेषतया गुरु नानक ने इन लोकप्रिय बातों और घटनाओं का बड़ा सदुपयोग किया और उन्हीं के द्वारा अपना संदेश दिया।

सूफियों की पंजाबी साहित्य को दूसरी महत्त्वपूर्ण देन है कुछ छन्दों को विशेष लोकप्रिय बनाना। सूफी साहित्य में बहुत छन्द बहुत मिलते हैं जैसे 'काफी', 'बारह माह', और 'सिहरफ़ी'। 'काफी' फारसी में [illegible]

[illegible] तरह मालूम थी और आज भी यह उर्दू-कविता में प्रचलित
[illegible] कि वर्ष के बारह महीनों का वर्णन ऐसा किया जाता था,
[illegible] पूर्वक ऋतुओं का सौन्दर्य वर्णित करते थे। इस
[illegible]
[illegible]

'बारह-माह' की रचना-पद्धति में मिलता है। हाशिम शाह ने एक सुन्दर 'बारह-माह' अपने 'हीर-रांझा' में दिया है और 'आदि ग्रंथ' में गुरु नानक का 'बारह-माह', जो कि पंजाबी भाषा में एक अत्यन्त सुन्दर ग्रंथ है (यह दुःख की बात है कि समकालीन लेखक इस पद्धति को छोड़ते जा रहे हैं)। 'सिहरफी' यानी अक्षरबन्ध, जिसमें एक छन्द का अन्तिम अक्षर अगले छन्द का प्रारम्भिक अक्षर होता है, पंजाबी का अपना विशेष काव्य-रूप है। सिख गुरुओं ने इस रूप में लिखा, पर उनके बाद इसे छोड़ दिया गया और इसे पुनर्जन्म कभी नहीं मिला।

सिख गुरु

अधिकतर सिख गुरु कवि थे और 'ग्रंथ साहिब' में नानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुन और तेगबहादुर की रचनाएँ सुरक्षित हैं। दो सिख धर्म-ग्रंथों के सबसे प्रमुख रचयिता हैं, प्रथम गुरु नानक और पाँचवें गुरु अर्जुन देव।

गुरु नानक (१४६६-१५३६) ने कविता द्वारा उपदेश दिए। फलतः उनकी रचनाओं में उनके जीवन-दर्शन को व्यक्त करने वाली उपदेशात्मकता है। उनमें दूसरों को एक खास ढंग का जीवन बिताने के लिए सीख और नसीहत है। अधिकतर ऐसी उपदेशपरक नीति-प्रधान कविता संकीर्ण होती है, क्योंकि उसका उद्देश्य संकुचित होता है, परन्तु गुरु नानक की कविता में वाणी की स्वतन्त्रता विशेष रूप से है। देहाती पंजाब का सौंदर्य—लहलहाते गेहूँ के खेत, उषा-काल और पक्षियों का जागना, जंगल में हिरनों के झुंडों का भागना, वर्षाकालीन घटाओं की मधुरता और पावस का संगीत—इन सबसे उनमें एक धार्मिक और काव्यमय उन्माद जागता था। सर्वसाधारण विषयों में भी नैतिक अर्थ की संकेत-योजना गर्भित थी।

"जैसे बैलों की जोड़ी हाँकी जाए
हलवाहे द्वारा, वैसे ही हमारे लिए हमारा गुरु है।

जिस तरह खेत में लकीरें बनती जाती हैं,
इस धरती के कागज़ पर हमारे कर्म लिखे जाते हैं।
यह पसीने की बूंदें, जो मणियों की तरह हैं,
इस तरह गिरती हैं जैसे किसान के हाथों से बीज।
जैसे हम बोते हैं, वैसा ही हम काटते हैं,
कुछ अपने लिए रख लेते हैं, कुछ औरों को दे देते हैं।
ओ नानक, यही सच्चे जीवन का रास्ता है।"

गुरु नानक का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है 'जप साहब'। यह सवेरे क प्रार्थना है। निम्नलिखित पद्य उस धार्मिक उमंग का एक नमूना है जिससे उनकी सारी रचनाएँ भरी हुई हैं :

"एक के बदले मुझे लाख जिह्वाएँ दी होतीं,
और हर लाख बीस गुना होता,
सौ लाख बार मैं कहता, और फिर कहता हूँ,
सारी दुनिया का स्वामी एक है।
यही रास्ता है जो मंज़िल पर पहुँचाता है,
यही सीढ़ियाँ हैं जो ऊपर ले जाती हैं,
इसी तरह स्वामी के महल में चढ़,
और उससे जाकर मिल जा, एक हो जा।
स्वर्ग के संगीत की ध्वनि स्पन्दित होती है
उन सबके लिए एक-सी, जो रेंग रही है, ऊपर उड़ना चाहती है।
ओ नानक, उसीकी कृपा यहाँ-वहाँ सब ओर फैली है,
बाकी सब बकवास है, और झूठ है।"

गुरु अर्जुन (१५६३-१६०६) ने वही गहरा भाव अपनी कविता में व्यक्त किया है, जैसा गुरु नानक का है। उनकी कविता में रत्नों-जैसे शब्द और वाक्यांश भरे हैं। अनुप्रास और शब्दानुवृत्ति के कारण उनकी कविता में मार्मिक संगीत पैदा हुआ है। 'सुखमनी' गुरु अर्जुन देव

की बहुत लोकप्रिय रचना है और हमारी भाषा में सबसे अधिक गाये जाने वाले कवियों में वे हैं।

पंजाबी साहित्य की सबसे महान् कृति 'ग्रंथ साहब' है। इसे संकलित करने में सबसे अधिक श्रम गुरुअर्जुन देव और उनके समकालीन लेखक भाई गुरुदास ने किया। यह बहुत बड़ा ग्रंथ है, कई हजार छन्द इसमें हैं। ऊपर जिन छः गुरुओं का नाम आया है उनके अलावा कई सन्त कवियों के पद भी इसमें जुड़े हैं। ये सत भक्ति-आन्दोलन से सम्बद्ध थे। भाषा कई बार उस प्रदेश की नहीं है, जिस प्रदेश के ये संत माने जाते हैं।

गुरु गोविन्द सिंह (१६६६-१७०८) सब सिख-गुरुओं में सबसे सुपठित और विद्वान् थे। हिन्दू पुराण ग्रंथ और इस्लाम के धर्मशास्त्र से वे सुपरिचित थे। वे कला और साहित्य के प्रेमी थे, उनके दरबार में ५२ कवि थे। उन्होंने संस्कृत, फारसी, पंजाबी तीनों भाषाओं में लिखा है। अपने पूर्वजों से भिन्न उन्होंने अपनी रचनाएँ केवल पद्य में परमात्मा की स्तुति के लिए ही नहीं लिखीं। गुरु गोविन्द सिंह की रचनाओं में नैतिक और राजनैतिक अर्थ है। उन्होंने अपने अनुयायियों में जो वीरता की भावना फूंकी वह उनके प्रसिद्ध 'जफर नामा' नामक विजय के गीत-जैसी सबल कविता में व्यक्त है, यह कविता सम्राट् औरंगजेब को सम्बोधित है। उनका 'जप साहब' उनके अनुयायियों के लिए आज भी एक प्रेरणा-स्रोत है। गुरु गोविन्द सिंह की कृतियाँ उनके समकालीन मणीसिंह ने संकलित और सम्पादित कीं।

गोविन्द सिंह की रचना की शक्ति का एक नमूना निम्न लिखित है :

"अनन्त ईश्वर, तू हमारी ढाल है,
कटार चाकू, तलवार तू ही है।
हमारी रक्षा के लिए दिया हुआ
अजर अमर स्वर्ग का स्वामी तू है,
हमारे लिए पूरे इस्पात की अपराजित शक्ति,

हमारे लिए विश्राम की परवाह नहीं,
सिर न दो है, ये हमारे वीर रक्षा-कर्ता,
पूरे इन्सान के बने, क्या इस दाग को नहीं बचाओगे !"

इन गुरुओं की मृत्यु के बाद इन पुरुषों की जीवनियों पर समकालीन और अन्य लेखकों ने इतना लिखा कि मानो एक बाढ़ आ गई और इस विषय पर जो जानकारी मिली वह सब जमा की गई। इन जीवनियों का नाम 'जनम साखी' है और वह मूल्यवान ऐतिहासिक वर्णन है। इस काम के अच्छे जानने वाले इतिहासकार थे सेवाराम, राम कौर, संतोख सिंह, रतन सिंह भंगु और ग्यान सिंह।

समकालीन पंजाबी लेखक

सत्ता के लिए संघर्ष के समय सिक्खों ने कोई साहित्य नहीं रचा और न सिख राज्य के उस छोटे-से काल में, जबकि फारसी का ज्यादा मान था, और पंजाबी का कम; कुछ लिखा गया। परन्तु जब वे विजय करने और अपने राज्य को संघटित करने में लगे हुए थे तब दो मुसलमानों ने, बुल्ले शाह (१६८०-१७५८) और वारिस शाह (१७३५-१७९८) ने ऐसी कविता लिखी जो कि रोमांटिक और रहस्यवादी पंजाबी काव्य का उत्कृष्ट नमूना है। बुल्ले शाह की 'काफी' और वारिस शाह का महाकाव्य 'हीर-रांझा' बहुत ही लोकप्रिय है और इस प्रदेश के हर गाँव में ये पढ़े जाते हैं। उन्होंने पंजाबी-लेखकों की आगे आने वाली पीढ़ियों को भी प्रभावित किया।

अंग्रेजों के कब्जा करने के आधी शताब्दी बाद तक भारत में बहुत-सा साहित्य पैदा हुआ। राजनैतिक भावना के परिणामों से उबरने ... साल लगे, पश्चिम के मूल्यों को समझने में बहुत समय लगा। ... अंग्रेजी शासक यह मानते थे कि सारी पूर्वी संस्कृति बेकार है ... भारतीयों के लिए सबसे अच्छा सही मार्ग यही है कि वे यूरोपियन संस्कृति को अपना लें। भारत की एक पीढ़ी इस राय से सहमत थी

और उन्होंने अपने-आपको इतनी अधंविश्वास में डुबो लिया कि उनका भारतीय परम्परा और मूल से सम्बन्ध जैसे छूट ही गया। अगली पीढ़ी ने इस मूर्खता को समझ लिया और प्राचीन भारत की उपलब्धियों को जिन अपहासियों से रखा था, उसने उन पर से धूल साफ़ करनी शुरू की। यही प्रक्रिया सारे देश में चलती रही। चूंकि पंजाब में इन पश्चिमी प्रभावों का असर सबसे अन्त में आया, अत. उस प्रभाव को दूर करने में भी वह सबसे पीछे रहे। इसी कारण से पंजाबी साहित्य का पुन-र्जागरण शेष देश की अपेक्षा बहुत देर से घटित हुआ।

अंग्रेजों के आने के बाद, पहले सिंह सभा के आन्दोलन और बाद में अकालियों व कम्युनिस्टों के प्रभाव से जो सामाजिक और राजनैतिक भावनाएँ घटित हुईं, उन्हीं को पंजाबी साहित्य प्रतिबिम्बित करता रहा। प्रत्येक समय की साहित्यिक रचनाओं पर उन समस्याओं का प्रभाव है, जो कि इन आन्दोलनों के प्रवर्तकों के सामने थीं। फिर भी कुछ लेखक ऐसे थे जो सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं से बेफ़िक्र रहते थे और मानो लिखने के लिए ही लिखते थे।

सिंह सभा के लेखक

सिंह सभा के आन्दोलन का साहित्यिक कृतित्व सिख धर्म को उसके योग दान का ही महत्त्वपूर्ण अंग है। जिस व्यक्ति ने इस दिशा में सबसे अधिक काम किया, वे थे भाई वीरसिंह। उन्होंने पंजाबी भाषा में लोगों की दिलचस्पी फिर से पैदा की। इस भाषा के इतिहास में उनका नाम हमेशा एक पथ-चिह्न की तरह माना जायगा। वीरसिंह (जन्म : १८७२; मृत्यु : १९५७) ने ८५ वर्ष के जीवन में इतना लिखा, जितना कि शायद किसी भी जीवित या मृत भारतीय लेखक ने न लिखा होगा। उनकी रचनाएँ इतनी अधिक हैं कि 'एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका' के २४ खण्डों के बराबर उनका स्थान है—और अपने जीवन के अन्त तक भी उनका लिखना बन्द नहीं हुआ था। उन्होंने उपन्यास, कहानी, धर्म-

ग्रंथों की टीकाएँ सब-कुछ लिखी हैं।

जब उन्होंने लिखना शुरू किया तब १६ वीं शताब्दी के अन्त में जो सामाजिक और राजनैतिक स्थिति थी उसी परिपार्श्व में वीरसिंह के लेखन को देखना होगा। उनके उपन्यास, जिनसे कि उनका नाम लाखों घरों में जाना गया, ऐसे समय लिखे गए थे जब कि पंजाबी लोग अपने पुरखों की उपलब्धियों पर शंका करना शुरू कर रहे थे। अंग्रेज इतिहासकार स्थूल और अनैतिक सिख-राज्य की निन्दा करते थे और कहते थे कि अंग्रेजों ने उसके बदले अधिक सुसभ्य राज्य कायम किया। संस्कृत के विद्वान् सिखों के धर्म का मज़ाक उड़ाते थे कि यह तो वेदों का ही बहुत दरिद्र अनुकरण है और सिख धर्म के बाह्य रूपों तथा संकेतों को जंगली करार दे रहे थे। भाई वीरसिंह के सुन्दरी, 'विजयसिंह, सतवत कौर और बाबा नौधसिंह उपन्यासों में सिक्खों की वीरता और बहादुरी का मुख्य विषय मिलेगा। सिख धर्म की नैतिक श्रेष्ठता ही उनके उपन्यासों का मुख्य विषय है। सिखों की अच्छाई से उलटे जनसाधारण की दासता, पठान और मुगल राजाओं के अत्याचार भी वर्णित किये गए। सिखों ने वीरसिंह के उपन्यास बड़े उत्साह और श्रद्धा से पढ़े। लेकिन धीरे-धीरे वह विशेष मन स्थिति बदल गई और उनके उपन्यासों की लोकप्रियता भी कम हो गई। आज के पाठक के लिए यह उपन्यास बहुत नीरस लगते हैं। उनका स्थान साहित्य में नहीं, इतिहास में है।

वीरसिंह ने उपन्यास लिखना छोड़ दिया और धर्म-ग्रंथों पर टीका और उनके अनुवाद कई छोटी-छोटी पुस्तिकाओं में तथा 'खालसा समाचार' नामी अपने साप्ताहिक पत्र में लिखने शुरू किये। इसीमें उनकी कविता भी प्रकाशित होनी शुरू हुई, जिसके कारण उन्हें पंजाबी कवियों में बहुत बड़े सम्मान का स्थान मिला।

वीरसिंह ने पहले मुक्तछन्द के प्रयोग किए। एक लम्बी कविता 'राणा सूरत सिंह' नाम से प्रकाशित हुई। इसका विषय भी वही हमेशा की तरह धार्मिक था। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था और दोनों

बड़ी प्रभावशाली थी। पंजाबी में पहले किसी ने सफलतापूर्वक मुक्तक नहीं लिखा था। वीरसिंह ने एक लम्बी कविता ऐसी सफलता से लिखी कि उसमें अनुप्रास और शब्द-संगीत, लय और आवृत्ति से ऐसा आनन्द निर्मित हुआ कि मानो उसमें किसी ग्रीष्म की दोपहरी का सालस सरस वातावरण हो। इसके बाद वीरसिंह ने नानक और गुरु गोविन्द-सिंह दो सिख गुरुओं की जीवनियाँ लिखीं। पहले 'कलगीधर चमत्कार' नाम से गुरु गोविन्द सिंह की जीवनी प्रकाशित हुई और इसके तीन वर्ष बाद 'गुरु नानक चमत्कार' निकली।

इन जीवनियों के बीच में वीरसिंह ने कई कविता-संग्रह प्रकाशित किए, जिनमें उन्होंने ऐसा छोटा छन्द प्रयुक्त किया जो आज तक पंजाबी कवियों ने प्रयुक्त नहीं किया था। इनमें से अधिक लोकप्रिय थी 'रुबाइयाँ' (उमर खय्याम के पाठक इन्हें जानते हैं)। इनमें उन्होंने अपने दर्शन और रहस्यवाद को व्यक्त किया। उनकी रुबाइयों में ईश्वर और मनुष्य जाति का प्रेम, आध्यात्मिक और ऐंद्रिक, नैतिक तथा दैवी धाराओं का रंगीन मिश्रण मिलता है। इन्हें पढ़कर सौंदर्य और आश्चर्य दोनों का बोध होता है। इन सबमें विनम्रता का और कभी-कभी आत्म-पीड़न का अन्तःस्वर भी दिखाई देता है :

"तुमने मुझे डाल से तोड़कर अलग किया,
मुझे हाथ में लेकर सुगन्ध सूँघी,
और मुझे फेंक दिया।
इस तरह फेंका हुआ, उपेक्षित, पद्दलित, धूलि-धूसरित मैं हूँ।
मुझे केवल इतनी ही याद है—और मैं उसके लिए कृतज्ञ हूँ,
तुम्हारे स्पर्श की स्मृति का।"

और यह उनकी कविता बहुत अधिक उद्धृत हुई है :

"सपने में तुम मेरे पास आए,
मैंने उछलकर अपनी बाँहों में भर लेना चाहा,
पर वह केवल आभास था, जिसे कि मैं पकड़ न सका।

मेरी बाँहें गाप में तुमसी रहीं।
फिर मैंने समझकर तुम्हारे पैर पकड़ने चाहे
कि मैं उन पर अपना सिर टेक दूँ।
वहाँ तक भी मैं न पहुँच सका
क्योंकि तुम बहुत ऊँचे थे और मैं नीचा था।"

एक और कविता में वीरसिंह ने बुद्धि पर श्रद्धा की विजय और महत्ता व्यक्त की है :

"मैंने अपने मन को एक भिखारी का कटोरा बना दिया।
मैं दर-दर ज्ञान की रोटी माँगता फिरा।
ज्ञान के घरों से जो टुकड़े गिरते रहे
उन्हें अपने कटोरे में ठूँस-ठूँस कर भर लिया।
अब वह भारी था,
मुझे अहंकार हुआ,
कि अब मैं पण्डित हूँ।
मन में बादलों में घूमने की कोशिश करने लगा,
मगर सचाई यह थी कि ज़मीन पर भी मैं ठोकर खा रहा था।
एक दिन मैं अपने गुरु के पास गया
और यह कटोरा उसके सामने मैंने उपहार के रूप में रख दिया।
'मिट्टी है', उसने कहा, 'मिट्टी'।
उसने उसे उलट दिया।
उसने मेरे टुकड़े फेंक दिए,
कटोरे को रेती से माँजा,
उसे पानी से धोया,
उसमें से ज्ञान का मैल निकाल दिया।"

अधिकतर लोगों की क्रियात्मक शक्ति ६० वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते

समाप्त हो जाती है। परन्तु वीरसिंह की बात ऐसी नहीं थी। वे कभी भी उन सात्त्विक कवियों के दल में नहीं थे, जो कि अपनी ही रचनाओं की लपटों में जल जाते हैं। जिस तरह का जीवन वह जीते थे और जैसी कविता वह लिखते थे, दोनों ही शुद्धतावादी परम्परा में रहे— भाषा साफ, विचार पवित्र, व्यंजना हार्दिक। आशा है कि वही ज्यादा दिन टिकने वाली चीज़ है। यह उचित ही हुआ कि उनकी 'मेरे सैंया जिग्रो'* नामक ग्रंथ को देश के सर्वोत्तम साहित्यिक पुरस्कार का सम्मान मिला। इससे कम-से-कम यह लाभ तो हुआ कि पंजाबी भाषा के बाहर के दूसरे लोगों को वीरसिंह के नाम का पता लग गया। अब किसी उत्तम अनुवादक की बड़ी जरूरत है।

भाई वीरसिंह के चार समकालीन कवि जो अब जीवित नहीं हैं उल्लेखनीय हैं। काहनसिंह ने सिख धर्म का सबसे प्रसिद्ध विश्व-कोश बनाया। चरणसिंह 'शौजी' के संपादक थे, उन्होंने पंजाबी गद्य पद्य में परिहास शुरू किया। पूरणसिंह ने कुछ उत्तम रचनाएँ मुक्त छंद में दी और बड़ी ही परंपरा-रहित शैली में और वह भी अपरिचित विषयों पर। और धनीराम चात्रिक, जिनकी कीर्ति जब तक वे जीवित थे भाई वीरसिंह से दूसरे नंबर पर थी। उनके काव्य-संग्रह विशेषतः 'चानन वारी', 'केसर क्यारी', 'नवाँ जहान', और 'सूफीखाना' में कुछ बहुत सुंदर भावगीत हैं। जिनमें पंजाबी बोलियों की मुहावरेदारी भी है।

तरुण पीढ़ी में भी कविता ही साहित्यिक व्यंजना का सबसे लोकप्रिय रूप बना हुआ है। ऐसा कोई महीना नहीं बीतता कि जिसमें एक नया कवि प्राग न आता हो। अखबारों और पत्रिकाओं में बहुत-सी जगह कविताओं के लिए दी जाती है और किसी राजनैतिक या धार्मिक सभा से अधिक जनता पंजाबी कवि दरबार में जमा होती है। बहुत-सी नई कविताएँ ऐसी हैं कि उनमें गुण बहुत कम है। इस सर्व

* साहित्य अकादेमी ने स्वतंत्रता के बाद प्रकाशित पंजाबी की श्रेष्ठ रचना का पुरस्कार इस ग्रंथ को दिया।

साधारण नियम के दो अपवाद हैं, मोहनसिंह और अमृता प्रीतम। मोहनसिंह साहित्यिक पत्रिका 'पंज दरिया' के सम्पादक हैं, उन्होंने 'सावे पत्तर' 'कुसुम्बा' और 'अधवाटे' नामक तीन पुस्तकों से बड़ा ही उत्तम आरम्भ किया है। वे तरुण कवियों में सबसे अच्छे माने जाते हैं, इसमें कोई शंका नहीं। उनकी बाद की रचनाएँ विशेषतया—'कच्च-सच', जो कि देश के विभाजन के बाद प्रकाशित हुईं, ऐसी है कि उसमें वाम पक्ष की ओर जबरदस्त झुकाव है। इसमें राजनैतिक भावनाओं को काव्य-रूप से भी अधिक महत्त्व दिया गया है और यह बीमारी ऐसे बहुत-से नौजवान लेखकों को लग गई है, जो कि अपने-आपको 'प्रगतिवादी' कहते हैं। मोहनसिंह के मामले में मार्क्सवाद के प्रति पहला उत्साह जल्दी ही ठण्डा हो गया, और अब उनमें दलितों का नेतृत्व करने की इच्छा और कर्म के लिए प्रेरणा के रूप में ही यह मार्क्सवाद बाकी है। वे अपने पहले के लेखन की सहज सुन्दरता को फिर से पकड़ सके हैं और अगर वे इसी रफ़्तार से लिखते रहे तो वे हमारी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि जरूर बन जायेंगे, क्योंकि उनके आगे बड़ी उम्र बाकी है। एक नवीन किन्तु अनुल्लेखित गज़ल में उन्होंने अपनी क्रान्तिकारी भावना इस प्रकार से व्यक्त की है :

"घड़े के अन्दर का अँधेरा फूट पड़ा,
चाँदनी का दूधिया सफेद रंग फैल गया;
समय हो गया है कि हम सवेरे की बात करें,
और रात के बारे में गप्प लड़ाना छोड़ दें।
मैं मानता हूँ कि शिशिर के स्पर्श से
कुछ पत्ते पीले पड़ते जा रहे हैं।
जो कुछ खोया और बीत गया उसके लिए दुःख मत करो
अपनी ओर नई आशाओं से भर लो!
कब तक स्वर्ग के प्राचीन पनघट पर
बेकार कल्पनाएँ खींचोगे और उन्हें प्रिय मानोगे ?

चलो इस धरती के बालों को चूमें
चलो कुछ नजदीकी चीजों के बारे में बात करें।"

दोनों पंजाबों में—यानी पाकिस्तान और भारत में—अमृता प्रीतम साहित्यिकों में बहुत लोकप्रिय हैं। वह कोई 'प्रगतिशील' कवयित्री नहीं हैं, न उन्हें कोई संदेश ही देना है। वे किसी और कारण से कविता नहीं लिखतीं, केवल इसलिए लिखती हैं कि लिखे बिना उनसे रहा नहीं जाता। वह विद्वान् नहीं हैं, लेकिन उनकी कविता की सादगी और ताज़गी उस विद्वत्ता के अभाव को भर देती है। उनकी सभी रचनाओं में लोक-गाथा और वीर-काव्य की मधुर धुन समाई रहती है। कभी-कभी सुन्दर उक्तियों या शब्दों का माधुर्य उन्हें अपने मूल विषय से दूर ले जाता है और उससे कविता का मुख्य विषय धुँधला हो जाता है। एक कविता में जो कि उनकी प्रिय कविता है, प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहता है :

"जागो, प्रिय !
तुम्हारी पलकें स्वप्नों से भारी हैं,
बीते हुए दिनों के स्वप्नों से,
जब हवाएँ सुगन्धि से गुँथी हुई थीं
(क्या उस कारण से तुम आह भर रही हो ?)
अमावस्या की अँधेरी रात में
अनगिनत तारे तुम्हारे बालों को चमका दें।"

जिस कविता ने अमृता प्रीतम की कीर्ति को पाकिस्तान की सीमा को पार कर फैलाया और विजयी बनाया वह 'वारिस शाह के प्रति' है। वारिस शाहविभाजन के पूर्व के उन अच्छे दिनों का प्रतीक है जब हिन्दू, मुसलमान और सिख भाई-भाई की तरह रहते थे। अमृता की कविता इस प्रदेश के विभाजन पर एक मर्सिया है। विभाजन के बाद जो खून-खराबा हुआ उस पर उसमें शोक व्यक्त किया गया है। वह वारिस शाह से पूछती है कि अब तू कब्र में से क्यों नहीं जागता और अपनी मातृभूमि में

जो नाश हो रहा है उसे क्यों नहीं देखता :

> "ओ दुःख को शान्त करने वाले उठ, और अपना पंजाब देख,
> उसके खेतों में लाशें फैली हैं, चिनाब में खून बह रहा है।
> हमारी पाँचों नदियाँ उसी हाथ ने जहरीली बना दीं,
> जो कि इस जहरीले पानी को जमीन की सिंचाई के लिए
> काम में लाता है।"

अमृता की कविता की लोकप्रियता कुछ सहज ढंग से मिल गई और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि काव्यात्मक गुण छोड़कर वह लोक-प्रशंसा का रास्ता अपनाती है। (उनकी कविता की शुरू की पंक्तियाँ सबसे अच्छी होती हैं; उनके बाद करुण अन्त सबमें प्रायः पाया जाता है।) परन्तु वह अभी आयु में छोटी हैं और उस कवयित्री के आगे बड़ा अच्छा भविष्य है। पंजाब को उनसे बहुत बड़ी आशाएँ हैं।

दूसरी भाषाओं की तरह से पंजाबी में भी कविता में ऐसी आधुनिक धाराएँ हैं जो कि रूप-छन्द-तुक आदि को न मानने का आग्रह रखती हैं और इस कारण से वे साधारण पाठक के लिए बहुत अर्थहीन हो जाती हैं। इस तरह का बहुत-सा लिखना उनके दिन चुक जाने पर खत्म हो जाता है; सिर्फ जो अच्छा है वही बचता है। जो बचने लायक थोड़ा-सा है उसका एक उदाहरण वकील प्रीतमसिंह 'सफीर' की कविता है। इधर बहुत दिनों से वे भी प्रायः मौन हैं।

चलें, अब हम गद्य की ओर मुड़ें। पंजाबी गद्य में सबसे बड़ा नाम गुरबख्शसिंह का है। गुरबख्शसिंह ने अपना जीवन इंजीनियर के नाते शुरू किया और अध्ययन के लिए वह अमरीका पहुँचे। वहाँ से लौटने पर उन्होंने इंजीनियरी छोड़ दी और आधुनिक विचारों का प्रचार करने लगे। 'प्रीत लड़ी' नाम से उन्होंने एक अखबार चालू किया और उस मासिक के द्वारा अपने विचारों का प्रचार करने लगे। उन्होंने एक सामूहिक केन्द्र स्थापित किया, जिसे प्रीतनगर कहते हैं और जो भारत तथा पाकिस्तान की सीमा पर है। प्रीतनगर ऐसी शिक्षा का केन्द्र बन गया।

गुरबख्शसिंह का 'सांवी पधरी जिन्दगी' निबन्ध-संग्रह ऐसा था कि उसने उन्हें पंजाब का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार और गद्यकार बना दिया। सामाजिक प्रवृत्ति के जिन कई लेखकों के पीछे उनकी प्रेरणा प्रधान है, उसमें उनके पुत्र नवतेजसिंह भी हैं। पिता-पुत्र दोनों चीन, पूर्वी यूरोप, सोवियत रूस इत्यादि स्थानों पर 'शान्ति-सम्मेलनों' में जाते रहते हैं। यद्यपि उनका बहुत-कुछ लेखन बसभिया प्रचारात्मक है, फिर भी यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि यह अच्छे स्तर का है, क्योंकि वह बाहर की दुनिया के अनुभव से समृद्ध है और विदेशी साहित्य की आधुनिक धाराओं का उसमें प्रतिबिम्ब है।

पंजाबी उपन्यास में बहुत कम गणनीय हैं। वैसे तो कई उपन्यास लिखे जा रहे हैं और हर मास प्रकाशित हो रहे हैं। भाई वीरसिंह, जिनकी कविता में श्रेष्ठता इतनी उच्चकोटि की थी एक उपन्यास के आवश्यक गुण नहीं पैदा कर सके और दुग्गल-जैसे तरुण लेखक लम्बी कहानियाँ लिखते हैं, और उन्हीं से सन्तुष्ट रहते हैं। दुग्गल की कहानियों के सिलसिलों में कहीं चरित्र होते हैं, और शायद यों सोच लिया जाता है कि इसी का नाम उपन्यास है। सबसे अधिक लोकप्रिय उपन्यासकार नानकसिंह हैं, जिन्होंने करीब चालीस उपन्यास लिखे हैं। जिनमें 'चिट्टा लहू' और 'आदमखोर'* दो सर्वोत्तम हैं। नानकसिंह अपनी रचनाओं द्वारा सामाजिक सुधार का सन्देश फैलाना चाहते हैं। उनकी कहानियाँ दिलचस्प होती हैं, परन्तु उनकी भाषा अंग्रेजी शब्दों से विकृत है, जबकि उन्हीं शब्दों के लिए अच्छे खासे पंजाबी शब्द मौजूद हैं। दो तरुण लेखक, जो यदि सुधरते जायें तो आगे बहुत अच्छा लिखेंगे, सुरिन्दरसिंह नरूला और जसवन्तसिंह 'कंवल' हैं। 'कंवल' की 'पूरनमासी' बहुत आशापूर्ण रचना है।

रचनात्मक साहित्य की एक और विधा, जिसमें पंजाबी लेखकों ने विशेष सफलता प्राप्त की है, लघुकथा या कहानियाँ हैं। पंजाबी पत्रिकाओं

* आदमखोर का अनुवाद दक्षिण भारतीय अन्य अनेक भाषाओं में हो रहा है।

में जो कहानियाँ प्रकाशित होती हैं उनका साधारण स्तर बहुत ऊँचा है। इसका कारण यह है कि इस क्षेत्र के प्रमुख अगुवा संतसिंह सेखों ने युरोपीय और अमरीकी कहानी-लेखकों की टेकनीक का अनुसरण किया है। सीधा-सच्चा घटना-वर्णन छोड़कर संदर्भ-संकेत, नाटकीय वस्तु, मनोविश्लेषण और अवकथन आदि युक्तियों का कुशलता पूर्वक उपयोग किया गया। करतार सिंह दुग्गल ने, जो सबसे प्रमुख कहानी-लेखक हैं, सेखों से यह कला सीखी। दुग्गल की विशेषता है रावलपिंडी जिले की बोलियों का उनका ज्ञान, जिसे वे बहुत मजे से उपयोजित करते हैं। उन्होंने करीब सौ कहानियाँ प्रकाशित की हैं, जिनमें से 'सवेरे सार' और 'नवाँ घर' प्रसिद्ध हैं। उन्होंने विभाजन की मुश्किलात पर उपन्यास भी लिखे हैं, मगर वे जैसा कि ऊपर कहा गया है, निरे कहानियों के गुम्फन-मात्र हैं। उनका 'नहूँ ते मास' पंजाबी उपन्यासों में आने वाले बर्षों में एक पथ-चिन्ह की तरह रहेगा। उसमें किसान-चरित्रों का बड़ा ही साधिकार चित्रण हुआ है और ऐसी वस्तु का कुशल वर्णन है, जिसमें कि गाँव, देहात की शान्ति बहुत जल्दी साम्प्रदायिक दंगों के कारण अन्त तक पहुँच जाती है। यह कहानियाँ साम्प्रदायिक पक्षपात से बिलकुल दूर हैं। 'लड़ाई नहीं' नामक बाद की रचना में भी उन्होंने वस्तुनिष्ठता का स्तर रखा है। दुग्गल ने कुछ कविताएँ भी लिखी हैं जो विशेष प्रसिद्ध नहीं हैं, और यह अच्छा ही है। उनके नाटक स्टेज पर कभी नहीं खेले गए, परन्तु कुछ प्रकाशित हुए हैं। इनके नाटक किसी भी और पंजाबी नाटककार से अधिक प्रकाशित हुए हैं।

दूसरे मशहूर कहानी-लेखक कुलवन्तसिंह विर्क हैं। दुग्गल ने जो कमाल उत्तरी पंजाब की बोली से हासिल किया है, विर्क लाहौर की आसपास की बोली से वही काम लेते हैं। यद्यपि दुग्गल का प्रभाव इन पर स्पष्ट है, फिर भी विर्क के पात्र और विषय इस प्रदेश के अधिक भीतरी हिस्से से आते हैं, और इस कारण इनका लेखन अधिक सरल है और इसमें बेकार ऐंचा-पेंचा तथा [illegible] नहीं है।

पंजाबी लेखन का सबसे उपेक्षित अंग है नाटक। इसका सीधा कारण यह है कि वहाँ कोई संगठित स्टेज नहीं है। नाटककार नाटक लिखकर सिर्फ यह आशा भर कर सकते हैं कि उनके नाटक कोई पढ़ेगा और अधिक-से-अधिक प्रसारित करेगा। नाट्य-कला के लिए न केवल पठन और प्रसारण पूरा न्याय करता है—अव्यावसायिक अभिनेता स्कूल-कालेजों से कहीं से चुन लेने से कभी नाट्य-कला नहीं बनती। फिर भी प्रोफेसर ईश्वरचन्द्र नन्दा के सुखान्त नाटकों ने कुछ थोड़ी-सी शाब्दिक हेर-फेर युक्ति-प्रयुक्ति से हँसी पैदा की थी। अभी भी पंजाबी साहित्यिकों में उनके बारे में बातचीत होती है। कुछ कमजोर कोशिश एक-आध नए नाटक को स्टेज पर दिखाने के बारे में की जाती है। गुरदयाल सिंह खोसला ने बच्चों के लिए नाटक लिखने में विशेषता हासिल की है और छोटी-छोटी पाठशालाओं से वे किसी तरह अभिनेता पैदा कर लेते हैं। बलवन्त गार्गी, जिनका नाम नाटककार के नाते अधिक प्रसिद्ध है, बहुत अर्से से वामपक्षी राजनीति से सम्बद्ध हैं, और अभी हाल में वे रूस और यूरोप के स्टेज का बहुत समय तक अध्ययन करके लौटे हैं। उनके अनेक नाटक उस भावना से भरे हुए हैं और उनमें एक राजनैतिक प्रयोजन होता है, उनका व्यंग्य तीखा और उनका हास्य कड़ुवा है, जिससे कि उनका संदेश अच्छी तरह व्यक्त होता है। उनका पटियाला में बोली जाने वाली बोली का उपयोग ऐसा है कि इससे उनके नाटक जानदार जान पड़ते हैं। उनकी देहाती कहानियों के लिए वह भाषा उपयुक्त है। यह दुःख की बात है कि गार्गी के नाटक समझने के लिए उन्हें पढ़ना पड़ता है, और जो मंच पर खेले जाते हैं वे राजनैतिक दलों द्वारा खेले जाते हैं और इनमें से बहुत थोड़े ऐसे हैं कि जो रेडियो पर खेले जा सकें। अब उन्होंने उपन्यास लिखना भी शुरू किया है।

भविष्य

यह विचित्र बात है कि अधिकतर सिख राजनीतिक नेताओं ने कभी-न-कभी लिखने की या कविता रचने की कोशिश की है। गुरमुख सिंह 'मुसाफिर' (जो प्रादेशिक कांग्रेस पार्टी के प्रमुख हैं) काफी प्रभावशाली कवि हैं। मास्टर तारासिंह ने कुछ उपन्यास लिखे हैं, पश्चिम के जंगल-उपन्यासों के ढंग पर। सिर्फ 'बिल कोडी' और 'डेवी क्रोकेट' के बजाय सिख-चरित्र वे लाते हैं; और आप विश्वास करें या न करें कम्युनिस्ट नेता सोहनसिंह 'जोश' धर्म ग्रंथों के बहुत अच्छे टीकाकार के नाते प्रसिद्ध थे। साहित्यिक शक्ति पर राजनीतिज्ञों द्वारा यों बल देने का सुखद परिणाम यह हुआ कि पंजाबी को सरकारी भाषा बनाने की संयुक्त माँग को अधिक शक्ति मिली। इसी कारण एक पंजाबी-भाषी प्रदेश और एक पंजाबी साहित्य अकादेमी स्थापित हुई। अब जब कि यह सब बातें हो चुकी हैं, कोई पूछ सकता है कि भविष्य क्या है?

सरकारी मान्यता से साहित्य नहीं पैदा होता। कुछ हद तक विभाजन के कारण और पाकिस्तान में उर्दू को राज-मान्यता और भारत में हिन्दी को राजाश्रय मिलने से पंजाबी भाषा को जो ठेस पहुँची शायद कुछ दिनों बाद उसकी क्षति-पूर्ति हो जाय। परन्तु अभी तो कुछ वर्षों के लिए पंजाबी में साहित्यिक रचना उन सिख-लेखकों पर अधिक अवलम्बित रहेगी जो केवल गुरुमुखी का प्रयोग करते हैं। पंजाबी भाषी प्रदेश की भाषा और शैली ज्यों-ज्यों स्टैण्डर्ड प्राप्त करती जायगी, बोली का महत्त्व कम होगा और उतनी ही मात्रा में उसकी देहाती शक्ति भी कम होगी। यह बाधक प्रभाव इस तरह से दूर किया जा सकता है कि दूसरी भाषा के श्रेष्ठ ग्रंथों के अनुवाद पंजाबी में हों, उन्हीं को प्रथम महत्त्व दिया जाय, वह दूसरे दर्जे का साधारण लेखन, जो कि केवल पंजाबी में होने से स्कूल-कालेजों के पाठ्य-ग्रंथों में लिया जाता है कम करना होगा। इससे साहित्य का स्तर गिरता है, इस तरह कल्पना-

हीन लेखन को बढ़ावा मिलता है। जिन पंजाबियों ने ऊँचे पारिश्रमिक के अभाव में दूसरी भाषा में लिखना शुरू किया उन्हें अपनी मातृभाषा की ओर लौटने के लिए प्रेरित करना होगा (उदाहरणार्थ राजेन्द्रसिंह बेदी, जिनकी उर्दू कहानियाँ बहुत ही उच्चकोटि की होती हैं)। पंजाबी मासिक पत्रिकाओं को उस खराब असर से मुक्त होना होगा, जिनके कारण वे केवल परीक्षार्थियों के लिए सामग्री देते हैं। ऊपर जिनका उल्लेख आ चुका है, उनके अलावा कुछ अच्छे पत्र भी हैं। पंजाब सरकार ऐसी योजनाओं को शुरू कर रही है, और हरी किशन का 'पंजाबी साहित्य', जो जालन्धर से निकलता है, बहुत वर्षों से उच्च साहित्यिक स्तर कायम रखे हुए है। अन्त में पंजाबी में प्रमुख समालोचकों का ऐसा दल पैदा होना चाहिए जो कि रचनात्मक लेखन की सहायता कर सके और बेचारे भोले पाठकों को रद्दी किताबों से बचा सके। अब तक पंजाबी साहित्य-जगत् बहुत संकीर्ण रहा है, इसमें 'परस्पर भावयन्तः' और 'अहो रूप अहो ध्वनि' बहुत होता रहा है। अब उसे अच्छे और बुरे के बीच में विवेक करना होगा और अपने बहुत दिनों से प्रतीक्षित पुनर्जागरण की ओर बढ़ना होगा।

बँगला

काज़ी अब्दुल वदूद

परम्परा

सुयोग्य विद्वानों के अनुसार बंगला भाषा का प्रारम्भ, असमिया, उड़िया और मैथिली की ही भांति पूर्व-प्राकृत में हुआ, जो कि भारोपीय भाषाओं के बड़े परिवार की एक शाखा है। ज्यों-ज्यों इस भाषा का विकास होता गया, उसने अपने भीतर कई अनार्य तत्त्वों को समो लिया। न केवल शब्दावली, अपितु कल्पना-चित्र और विचारों में भी बहुत-सी अनार्य बातें घुल-मिलकर एक होने लगीं।

जहाँ तक पता चलता है, इसके साहित्य का सबसे पुराना नमूना, 'चर्या'-गीत है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री बड़े प्रसिद्ध प्राच्य विद्याविद् थे। उन्होंने नेपाल के सरकारी पुस्तकालय में से इनका पता लगाया और १९१६ में उन्हें प्रकाशित किया। 'चर्या'-गीतों का समय १०००-१२०० ई० माना जाता है यद्यपि कुछ विद्वान् उन्हें ८ वीं शती ई० तक पीछे ठेलना चाहते हैं। सच कहा जाय तो ये गीत साहित्यिक रचनाएँ न होकर महायान बौद्ध-धर्म की शाखा के आचार्यों के संकेतात्मक उपदेश हैं। जो लोग योग-विद्या सीखना चाहते थे, उनके दिशा-निर्देश के लिए ये उपदेश हैं। इन गीतों और बंगाल के १९वीं शती के बाउल नामक रहस्यवादी घुमक्कड़ों के गानों में बड़ी विचित्र समानता है। रवीन्द्रनाथ

ठाकुर ने मानव धर्म नामक 'हिब्बर्ट लेक्चर्स' में इन बाउलों का उल्लेख किया था।

सेन राजाओं (१०००-१२०० ई०) के राज्य-काल में बंगाल, जो कि पहले एक बौद्ध देश था, प्रमुख रूप से हिन्दू देश बन गया। एक हमारे प्राचीन महाकाव्य 'शून्य पुराण' में ऐसा उल्लेख आता है कि बौद्धों का ब्राह्मण्य-पुनर्जीवनवादियों ने उत्पीड़न किया और इसके कारण बौद्ध लोग उस समय के तुर्की विजेताओं को अपना मुक्तिदाता मानने लगे। बंगाल की व्यापक मुस्लिम जन-संख्या, इसी कारण से, हिन्दुओं की तरह ही पुराने बौद्ध लोगों से भी निर्मित हुई होगी, ऐसा माना जाता है।

प्राचीन बँगला की लम्बी कविताओं में मुकुन्दराव चक्रवर्ती का 'चंडी मंगल' प्रसिद्ध है।* यह करीब १६ वीं शती या उसके आस-पास के कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में स्त्री पुरुषों के लिए तत्कालीन रीति-रिवाजों और घटनाओं के बड़े ही प्रामाणिक और स्पष्ट चित्र दिए हैं। जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इस रचना में फैलाव अधिक और आकर्षण कम है। इसमें चण्डीदेवी की पूजा पृथ्वी पर कैसे प्रचलित हुई, इसकी कहानी है। इन सब दोषों के होते हुए भी उनमें जैसी मानवीय सम्बन्धों की विविधता प्रतिबिम्बित है, उसके कारण वह सचमुच महाकाव्य की कोटि की रचना है।

'चण्डी-मंगल' के बाद या उसके साथ-साथ वैष्णव भाव-गीतों का उल्लेख करना चाहिए। ये राधा-कृष्ण-सम्बन्धी गीत हैं, जो विद्यापति, चण्डीदास, ज्ञानदास और गोविन्ददास ने रचे हुए हैं। इनमें से कुछ गीत तो बहुत सुन्दर हैं। केवल बँगाली पाठकों के लिए ही नहीं, परन्तु उन सब लोगों के लिए, जो कि सच्चे, प्रभावशाली शब्दों का मूल्य जानते हैं। इनमें से कुछ अच्छे गीत प्रेम और भक्ति के दिव्य क्षणों की झाँकी देते

* यह कवि 'कविकंकण' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है।

पौरुष और सन्तुलन तीनों गुण थे, परन्तु वे अपने समय के बहुत आगे के लेखक थे। परिणाम यह हुआ कि उन्हें अपनी महत्ता का दण्ड इस रूप में देना पड़ा कि उनके ही लोगों ने उनकी उपेक्षा की। केवल उन्नीसवीं शताब्दी के कुछ प्रतिभाशाली बंगालियों को छोड़कर, जिन्होंने कि उनके आदर्श और विद्वत्ता से लाभ उठाया और अपने ढंग से देश के विकास में सहायता की, राममोहन राय की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वस्तुतः राममोहन राय की कल्पना और प्रयत्नों से ही बंगाल में उन्नीसवीं शती में पुनर्जागरण आ सका। हमारे देश के ब्रिटिश काल के इतिहास में यह अद्भुत घटना थी। आधुनिक संस्कृति के सबसे बड़े उद्गाता रवीन्द्रनाथ राममोहन राय के अत्यधिक ऋणी हैं।

राममोहन राय पूरे सुधारक थे। वे देश की शिक्षा-पद्धति में दूरदर्शी परिवर्तन करने के पक्ष में थे। उस समय का हिन्दू कालेज (स्थापित १८१७), जो कि अंग्रेजी भाषा और साहित्य तथा कुछ आधुनिक विज्ञान पढ़ाता था, एक आदर्श विद्यालय नहीं था; क्योंकि वहाँ पर नैतिक शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। भारतीय भाषाएँ और दर्शन भी वहाँ नहीं पढ़ाये जाते थे। फिर भी हिन्दू कालेज अपने तरीके से बहुत प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य करता था। वहाँ से तरुण विचारकों का एक दल शिक्षित हुआ, जिन्हें 'तरुण बंगाल' कहते थे। राममोहन-वादियों के जीवन में जो समाज-सुधार उन दिनों आया था, वह इन तरुण बंगालियों की दृष्टि में असन्तोषजनक और बहुत धीमा था। वे चाहते थे कि समाज में जल्दी-से-जल्दी क्रान्ति हो और सारी पुरानी वस्तुओं के स्थान पर पश्चिमी चीजें अपना ली जायें। इन दोनों दलों के जो अच्छे-अच्छे लोग थे वे बहुत ऊँचे दिल के, चरित्र के मजबूत और सच्चे देश-भक्त थे। उनके अपने अलग-अलग तरीके थे। बल्कि यह है कि थोड़े ही समय में 'तत्त्वबोधिनी' सभा* के राममोहनवादियों के हाथों ... [illegible]

*[illegible] ... [illegible]

और भी अधिक प्रगति की; परन्तु रूप तथा आशय की दृष्टि से आधुनिक बंगाली साहित्य इस तरुण बंगाली दल से शुरू हुआ। माइकेल मधुसूदन दत्त अपने समय के अग्रगामी तरुण बंगाली थे। वे अंग्रेजी पद्य लिखकर कीर्ति कमाने का स्वप्न देखते थे। वे ईसाई बने और उन्होंने कई यूरोपीय भाषाओं पर अधिकार प्राप्त किया। इनमें प्राचीन और आधुनिक दोनों प्रकार की भाषाएँ थीं। (मानो वे यह चाहते थे कि प्रगति के पथ में कोई बाधा या रोक न हो)—आधुनिक बंगाली साहित्य के वे सबसे बड़े पहले महाकवि बनकर रहे। वस्तुतः वे ही आधुनिक बंगाली काव्य के प्रमुख संस्थापक हैं। हमारे देश को यूरोप से दूर करने वाली जो खाई पैदा हुई थी, उस पर माइकेल ने मानो एक पुल बनाया; जिसमें दोनों के संबंध घनिष्ठ हो गए। यूरोप हमारे लिए अब विदेश नहीं रह गया था। माइकेल की प्रतिभा ने यूरोप को मानो हमारे मनोलोक का एक भाग बना दिया। अब तक यह हिस्सा जैसे अज्ञात था। बंगाल की पुनः उठती हुई आत्मा के लिए यह सचमुच बहुत बड़ा लाभ था। इसके अपने खतरे भी थे, उन लोगों के लिए, जो इस बात के लिए मानसिक तौर पर तैयार नहीं थे। कुछ दिनों के बाद के दूसरे तरुण बंगाली बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ में 'राजमोहन्स वाइफ' नामक अंग्रेजी उपन्यास लिखा। लेकिन बाद में वे बँगला की ओर मुड़े और एक के बाद एक बड़ी शक्तिशाली रचनाएँ उपन्यास के रूप में उन्होंने बंगाल को दीं। इस प्रकार कुछ ही वर्षों में वे अपने समय के प्रमुख साहित्यकार बन गए। आधुनिक बंगाली गद्य के वे पहले बड़े लेखक थे।

बाद के दिनों में बंकिमचन्द्र राष्ट्रीय पुनर्संगठन की समस्याओं की ओर मुड़े। वह हिन्दू-जातिवाद का युग था। यह कई प्रकार की प्रतिक्रियाओं के कारण उत्पन्न हुआ था। जिनमें कुछ मुख्य कारण ये थे: ब्रिटिश शासक अपनी हठधर्मी नहीं छोड़ रहे थे, शिक्षित हिन्दुओं को बढ़ती हुई आकांक्षाओं को पहचानना अस्वीकार कर रहे थे, फलतः

हिन्दुओं के स्वाभिमान को चोट लगी और उसके साथ-साथ आत्म-निर्भरता की भावना उनमें सोती होकर जागी; टाड की रोमांटिक 'राजस्थान की गाथाओं' ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। उनका देश-प्रेम का भाव जैसे जाग उठा। राष्ट्रीय नाटकों के साथ-साथ मुख्यतः बड़े ही अतिनाटकीय प्रसंग, वृथा-भावुक देश-भक्ति के प्रदर्शन के साथ-साथ दिखाये जाने लगे। प्राचीन हिन्दू धर्म के अध्यात्म में मादाम ब्लैवट्स्की नामक थियोसोफिस्ट ने श्रद्धा प्रकट की। कई अन्य यूरोपीय विद्वानों ने भी प्राचीनता के गुण-गान किये। बंकिमचन्द्र, वैसे और बातों को देखें तो, कोई कम बुद्धि वाले विचारक नहीं थे, परन्तु कुछ भी कहिए, वे रोमांटिक देश-भक्ति के आकर्षण के शिकार हो गए, या यों कहिए कि उस युग के रोमांटिक जातीयतावाद की लपेट में आ गए। देश-भक्ति और हिन्दू-जातिवाद के नाते उन्हें जो सफलता मिली वह बहुत अधिक थी। परन्तु सच कहा जाय तो उनमें जो-कुछ उत्तम था, उसका अधिकांश व्यर्थ हुआ। जीवन के अंतिम दिनों में जो उपन्यास उन्होंने लिखे हैं उनमें गंभीर दोष हैं। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि वे बिलकुल गुण-विहीन हैं और अपने दिनों में इस देश की उलझी हुई राष्ट्रीय समस्याओं का सामना करने की उनकी तैयारी नहीं थी। इससे पता चलेगा कि उनकी स्थिति कैसी विचित्र थी।* यद्यपि बंकिमचन्द्र के विचारों में कुछ गड़बड़ी है, फिर भी उनकी मातृभूमि के प्रति आस्था और देश की दुर्दशा के प्रति पीड़ा अत्यन्त तीव्र थी; और कम-से-कम कुछ समय के लिए वे हमारे राष्ट्रीय जीवन में बड़ी विधायक शक्ति के रूप में काम करते रहे। उन दिनों बंकिमचन्द्र के जातीय पुनर्जागरण के विचारों से प्रेरित हेमचन्द्र और नवीनचन्द्र-जैसे कवि
जा।

सच्चे* 'धर्म-तत्त्व' पुस्तक में बंगाल के मुसलमानों पर बंकिमचन्द्र के विचार देखिये। शेरे हीं कृषक' में विशेष रूप से उन्होंने किसानों की दुर्दशा का विश्लेषण किया, ...ई उपाय नहीं सुझा सके, क्योंकि वे राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन नहीं
वे की...त्वय 3
थे। ...ध्यान

ऊँचे कीर्ति-शिखर तक पहुँचे, मगर बाद में वे मानो पिछड़ गए। प्रसिद्ध आई० सी० एस० रमेशचन्द्र दत्त बंकिमचन्द्र के दूसरे श्रेष्ठ अनुयायी थे। उन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के कई बंगाली उपन्यास लिखे, परन्तु अब वे एक अर्थशास्त्री के नाते अधिक याद किये जाते हैं। उसी युग के दो कवि बिहारीलाल चक्रवर्ती और सुरेन्द्रनाथ मजूमदार, उनके अपने समय में इतने प्रसिद्ध नहीं थे, परन्तु अपनी मूलभूत साहित्यिक शक्तियों के कारण वे धीरे-धीरे ऊपर उठते गए। बिहारीलाल प्रकृति और अपने देशवासियों के बड़े प्रेमी तथा अपने रहन-सहन में बहुत ही सादे थे। उनका प्रभाव तरुण रवीन्द्रनाथ पर गहरे रूप में पड़ा।

इस हिन्दू-जातिवाद के वातावरण में रवीन्द्रनाथ का विकास हुआ। परन्तु उनके ऊपर इसका को उतना प्रभाव नहीं पड़ा, इसके दो प्रमुख कारण हैं; एक तो बचपन से वे कविता के भक्त थे—वे कालिदास की कृतियों, जयदेव और अन्य वैष्णव कवियों एवं दूसरी ओर बाइरन, शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और ब्राउनिंग की कृतियों के प्रेमी थे। दूसरा कारण यह है कि जिस बड़े परिवार में वे पले, वह स्वाभिमानी, गंभीर जाति-वादी और कट्टरता से मुक्त उदार परिवार था। तरुण कवि के यह संस्कार कवि बिहारीलाल चक्रवर्ती द्वारा और भी गहरे बने।

रवीन्द्रनाथ प्रधान रूप से प्रकृति के कवि के नाते विकसित हुए, उनमें बौद्धिक तीक्ष्णता और सहृदयता प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी। वे २६ वर्ष की छोटी-सी उम्र में 'कला के लिए कला' मतवाद के पूर्ण विकसित कवि बने। अपनी कला पर उन्हें सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया था। प्रायः आठ वर्ष तक उन्होंने जोरों से हृदयस्पर्शी भाव-गीत, अच्छे नाटक, कहानियाँ और निबन्ध लिखे। इसके बाद उनके मन में और भी गहरे पैठने, जीवन के सत्य के और भी निकट पहुँचने तथा अपने प्रति और भी अधिक प्रामाणिक होने की भावना जगी। इसका परिणाम

यह हुआ कि उनके प्रकृति के प्रति गहरे प्रेम में ईश्वर के प्रति गहरी लगन जुड़ गई। दूसरे शब्दों में कहें तो उनकी सत् तथा कल्याण-चेतना और भी प्रदीप्त हो गई। अब उनके लिए देश-प्रेम और राष्ट्र-भक्ति का एक नया अर्थ सामने आया। वे आत्म-विस्मृत हिन्दू के प्रति चिन्ता रखने के कारण लगभग एक हिन्दूजातिवादी बन गए। अन्तर केवल इतना था कि बंकिमचन्द्र और उनकी शाखा के लेखक जहाँ हिन्दुओं के प्रचलित व्यवहार और रूढ़ियों को महत्त्व देते थे, वहाँ रवीन्द्रनाथ ने उपनिषद् और बुद्ध के जीवन-दर्शन से प्रेरणा पाई। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि उनके देशवासी फिर वैसा ही उच्च आदर्श ग्रहण करें, यूरोप की भोगवादिता और शक्ति के प्रति आकर्षण उन पर हावी न हो। सन् १९०० में रवीन्द्रनाथ ४० वर्ष के थे और उनकी विचार-धारा यह थी। इस समय तक वे हर प्रकार से महाकवि की ऊँचाई तक पहुँच चुके थे, और उनकी साधना यह बतलाती थी कि उन्हें आगे और भी महानता मिलने वाली है। तब अपने प्रदेश में ही वे इतने अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाए थे; बंगाल के बाहर तो शायद ही उन्हें कोई जानता हो।

बीसवीं सदी

हमारे साहित्य में बीसवीं सदी का उदय रवीन्द्रनाथ के 'नैवेद्य'* से हुआ। १०० कविताओं के इस संग्रह में सबसे अधिक संख्या सुगठित और सुन्दर सॉनेटों की है। परमात्म तत्त्व की व्यापक चेतना, प्रतिदिन के जीवन-व्यवहार की पवित्रता और अभागी मातृभूमि के प्रति समर्पण की प्रेरणा इन कविताओं में है। कवि की दृष्टि में हमारी मातृभूमि दो प्रकार की दासताओं में आबद्ध थी, एक ओर तो यह दासी विदेशी विजेता का और दूसरी ओर उसीके पुत्रों का अविवेक तथा प्रमाद।

* संग्रह में एक शक्तिशाली पुस्तक है। देश और मानव धर्म को [illegible] की जो देन है, उसमें इस पुस्तक का स्थान बहुत बड़ा है। [illegible] में उन्होंने उस [illegible] संकट का इंगित किया, जो [illegible]

राष्ट्रवादी परिश्रम के सम्मुख था। * यह भी विचारणीय है कि इसकी धारा में उन्होंने जो कविताएँ लिखीं, उनसे उन्हें १९१३ में विश्व-ख्याति प्राप्त हुई।

लार्ड कर्ज़न ने १९०५ में बंग-भंग किया और बंगाल इसे बिलकुल मानने के लिए तैयार नहीं था। इस सुदृढ़ विरोध का आध्यात्मिक पक्ष अपनी पूरी दिव्यता के साथ रवीन्द्रनाथ में प्रतिबिम्बित हुआ। उनके गीतों और भाषणों ने बंगाल की जनता को अभूतपूर्व रूप से उत्प्रेरित किया। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पक्ष में उन्होंने आत्मनिर्भरता की बात को महत्व दिया और फिर भी अंग्रेजों के प्रति घृणा का एक स्वर भी व्यक्त नहीं किया। आज भी उन गीतों और भाषणों का रस कम नहीं हुआ है। इसका एक प्रधान कारण यह है कि वे केवल देश-भक्ति से प्रेरित रचनाएँ नहीं थीं, परन्तु वहाँ देश-भक्ति परमात्म-भावना से ऊर्जित थी। दूसरे शब्दों में हम यों भी कह सकते हैं कि देश-भक्ति की भावना के साथ सत्य और मानव-मात्र के प्रति उत्तरदायित्व की परम भावना भी संलग्न थी। दूसरे बड़े कलाकारों की भाँति रवीन्द्रनाथ ने भी स्त्री-पुरुषों के मनोरंजक और रमणीय चित्र खींचे हैं, परन्तु उनकी सबसे बड़ी सफलता यह है कि वे अपनी कृतियों में अपने-आपको चित्रित और उद्घाटित कर सके हैं। एक के बाद एक उनकी रचनाओं में आश्चर्यजनक संवेदनशील सत्य और जीवनानन्द की प्रेरणा से निरंतर विकसित होने वाली चेतना व्यक्त हुई है।

बहिष्कार और स्वदेशी-आन्दोलन 'बंग-भंग' के बाद देश-व्यापी बने; परन्तु उनके भीतर उतनी महत्ता नहीं रही कि जिनसे रवीन्द्रनाथ के

* इस सानेट की अन्तिम पंक्तियाँ थीं :
छुटि चाहे जानि प्रेम मृत्युर सभाने ।
बाहि स्वार्थ तरी गुप्त पर्वतेर पाने ॥
देखो स्वार्थपरता अब नाश की ओर आ रही है, अहंकार और लोभ का सामान इसमें लदा है और वह छिपी हुई चट्टानों से जाकर किसी समय टकरायगी।

हृदय को प्रसन्नता प्राप्त होती। इसके विपरीत, आन्दोलन आतंकवाद की उस दिशा में मुड़ गया, जिसे रवीन्द्रनाथ कभी सहन न कर सके। यह स्वाभाविक था कि उन आन्दोलनों से उनका सम्बन्ध टूट गया। राष्ट्रवाद की यह परिणति उनके हृदय को भीतर-ही-भीतर कचोटती रही। इसका एक परिणाम यह हुआ कि उनकी आध्यात्मिक चेतना और भी गहरी हो गई। अब उनका हिन्दू या भारतीय राष्ट्रवाद सीमित न रहकर स्वदेशी-आन्दोलन के निकट सम्पर्क में आने के बाद व्यापक बन गया। रवीन्द्रनाथ बहुत जल्दी यह समझ गए कि सब तरह की अहं-ग्रंथि और आत्म-समर्थन की भावना, कितनी ही भोली और अच्छी क्यों न जान पड़े, अंततः वह मानवीय चरित्र और कृति को खराब कर देती है। इस दुःख में से एक ऐसी भावना जगी कि सब-कुछ स्वच्छ किया जाय। उनका राष्ट्रवाद इस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रवाद का पर्यायवाची बन गया। लोगों ने उसे ठीक तरह से नहीं समझा। उनकी बातों का गलत मतलब लगाया गया। पर उन्हें इस बात का पूर्ण विश्वास था कि उनके लिए ईश्वर ने कोई दूसरा मार्ग खुला नहीं छोड़ा है। केवल यही एक रास्ता है। सच्चा अन्तर्राष्ट्रवाद प्रामाणिक राष्ट्रीय आकांक्षाओं का शत्रु नहीं, बल्कि यही एक-मात्र आधार है, जिससे कि वे अपना सही दृष्टिकोण कायम कर सकते हैं। उनके विश्वासों का बल कुछ वर्ष बाद दुनिया ने उस समय जान लिया जब कि उन्होंने जापान और अमरीका में राष्ट्रीयता पर भाषण दिए। इसके बाद विश्व में जो भी घटनाएँ घटित हुईं उनसे यह सिद्ध होता है कि वे एक सच्चे व्यक्ति थे और उन्होंने अपने युग के विशिष्ट रोगों को समझने में कोई गलती नहीं की थी।

जैसा कि हम देख चुके हैं, बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में रवीन्द्रनाथ [illegible] थे और वे बहुत-कुछ लिख चुके थे, परन्तु उस [illegible] नहीं जानते थे। यद्यपि वे इतने लोकप्रिय [illegible] की एक मित्र-मंडली और अनुयायियों का एक ऐसा [illegible] गहरी प्रशंसा करता था और यह जानता था कि

उनमें एक दुर्लभ कवित्व-शक्ति है। स्वदेशी-आन्दोलन में उनका सक्रिय सहयोग सब लोग जानते थे। इसी कारण साहित्य-जगत् में उनके बहुत-से अनुयायी बने। बंगाल के जीवन के अभावों को यह दूसरे लेखक आदर्शवादी दृष्टि से देखते थे। वे कहते थे कि चाहे भौतिक साधनों में बंगाल पिछड़ा हुआ हो, परन्तु उनकी दृष्टि से आध्यात्मिक मामलों में बंगाल किसी से कम नहीं है। इन लेखकों में विचारों और भावनाओं की गहराई कमी थी और इसी कारण रवीन्द्रनाथ के शब्द-शिल्प का बहुत-सा अनुकरण करने पर भी वे ऐसी बहुत थोड़ी कविताएँ लिख पाए जो कि सामान्य स्तर से ऊँची हों। रवीन्द्रनाथ के समकालीन कवियों में देवेन्द्रनाथ सेन, अक्षयकुमार बड़ाल और द्विजेन्द्रलाल राय स्मरणीय हैं। उनके शिष्यों में सत्येन्द्रनाथ दत्त सबसे प्रमुख थे, क्योंकि उनकी सहानुभूति व्यापक थी और बंगाली भाषा का प्रयोग उन्होंने बहुत ही नैपुण्य के साथ किया था। करुणानिधान बैनर्जी, जितेन्द्रनाथ सेनगुप्त और मोहितलाल मजूमदार भी प्रसिद्ध हुए। करुणानिधान प्रकृति-प्रेम और विगत वैभव के अच्छे वर्णन के लिए; और जतीन्द्रनाथ तथा मोहितलाल अपने बौद्धिक निराशावाद के लिए विख्यात थे। उसी युग के कुमुदरंजन मल्लिक और कालिदास राय व्यापक रूप से लोकप्रिय हैं।

कथा-साहित्य के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ के आरम्भिक अनुयायियों में प्रभात कुमार मुखर्जी प्रमुख थे। उनकी हास्यरसपूर्ण कहानियाँ बहुत अधिक पढ़ी गईं। चारुचन्द्र बैनर्जी और सौरीन्द्र मोहन मुखर्जी को भी कुछ लोकप्रियता मिली। मगर इन सबसे आगे बढ़कर शरत्चन्द्र चटर्जी अत्यधिक लोकप्रिय बने। रवीन्द्रनाथ के मानववाद और कला ने उन्हें गम्भीरता से स्पर्श किया। यद्यपि उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में लिखना शुरू किया था, परन्तु १९१३ के पहले उनकी रचनाएँ प्रकाश में नहीं आईं। उनकी सफलता असाधारण हुई और १९३८ में उनकी मृत्यु के समय तक उनका यश बढ़ता ही गया।

आरम्भ में शरत्चन्द्र एक शक्तिशाली यथार्थवादी लेखक माने

कुछ लोगों की दृष्टि में शरत्‌चन्द्र का यह दृष्टिकोण भी निरी भावुकता है। लेकिन वास्तव में ही इसमें भावुकता से अधिक कुछ मज-बूत और जानदार तत्त्व है। यह उनका विश्वास ही है जो कि मनुष्य के अन्दर सबसे अधिक स्थायी वस्तु है। हाँ, कई गलतियाँ या बुरे विश्वास भी हैं; परन्तु अच्छे हों या बुरे, उनका विचार तो हमें करना ही होगा। यह सौभाग्य की बात है कि शरत्‌चन्द्र का विश्वास दिव्य था। उनकी कला जो इतनी निखरी, वह इसी दिव्य आस्था के कारण। यद्यपि उनमें कई दुर्बलताएँ भी थीं। साहित्यिक मूल्यांकन अथवा किसी भी प्रकार के मूल्यांकन में यथार्थ गुणों का महत्त्व उसके अनेक दोषों से कहीं अधिक है।

शरत्‌चन्द्र के आगमन के कुछ वर्ष बाद बंगाली पाठकों को डॉ० नरेशचन्द्र सेनगुप्त नामक दूसरे यथार्थवादी लेखक कानून विशारद के रूप में मिले। वे भी बहुत पढ़े गए। मगर अब उनकी लोकप्रियता बहुत कम हो गई है। उन्होंने जनता का ध्यान अपने उपन्यासों में विविध प्रकार की जानकारी देकर आकर्षित किया। उनके चरित्र विचारों के प्रतीक थे और इस कारण वे जल्दी ही भुला दिए गए।

काज़ी नज़रुल इस्लाम कलकत्ता के साहित्यिक क्षेत्र में विशेषतया एक भावुक कहानी-लेखक के नाते १६१६ में उतरे। उस समय उनकी उम्र २० वर्ष की थी, और विद्वान् होने का भी कोई दावा उनका नहीं था। परन्तु उनकी कहानियाँ ऐसी थीं कि वे तरुण पाठकों और लेखकों को आकर्षित करती थीं। उनकी आश्चर्यजनक सप्राणता बच्चों तथा बूढ़ों सभी को अपनी ओर खींचती थी। वह युग राजनैतिक उत्साह से आन्दोलित था। खिलाफ़त और कांग्रेस दोनों ज़ोरों पर थे, और नज़रुल ने दोनों स्रोतों से सूत्र ग्रहण किया। बंगाल के स्वदेशी-आन्दोलन, और विशेषतया आतंकवादियों के कारनामों से वे बहुत अधिक प्रभावित हुए। नये वातावरण ने उनकी कल्पना-शक्ति को प्रज्वलित किया। उन्होंने वीर-काव्य और गीत लिखे, जो बहुत जल्दी लोकप्रिय

अब्दुल लतीफ खान बहादुर और उत्तर प्रदेश के सर सैयद अहमद खाँ ने इस मुसीबत को दूर करने की बहुत-कुछ कोशिश की। उन्होंने मुसलमानों में अंग्रेजी शिक्षा फैलाई और उनकी आमदनी के जरिये बढ़ाये। लेकिन यह सब काम दरिया में खस-खस के बराबर था; क्योंकि मुस्लिम जाति को बौद्धिक और आध्यात्मिक पुनर्वास की बहुत जरूरत थी। तेजी से बदलने वाले दुनिया के हालात से बंगाल के मुसलमानों ने यह पुनर्वास के पाठ ग्रहण किए, विशेषतः बंगाल के स्वदेशी आंदोलन से। हमारे उन्नीसवीं शती के पुनर्जागरण ने आकर्षक और विवेकपूर्ण रूप में इस स्वदेशी-आंदोलन को बढ़ावा दिया। इस प्रकार से बंगाल के मुसलमानों में भी सुयोग्य साहित्यिक पैदा हुए, जैसे बेगम रुकैया, (जिन्हें साधारणतया मिसिज् आर० एस० हुसैन के नाम से जाना जाता है), काज़ी इम्दादुल हक और लुत्फररहमान, लगभग बीसवीं शती के प्रथम दशक में हुए। यद्यपि उन्होंने ज्यादा नहीं लिखा है मगर उनके साहित्य के गुण स्मरणीय हैं; वे सच्चे मानवतावादी थे और उनकी शैली अत्यन्त प्रभावशाली थी।

नज़रुल इस्लाम के बारे में तो हम पहले ही लिख चुके हैं। उनके अवतरण के कुछ ही वर्षों बाद ढाका (पूर्वी बंगाल) यूनिवर्सिटी परिमंडल में एक साहित्यिक संगठन निर्मित हुआ, जिसका नाम था 'मुस्लिम साहित्य समाज'। उनका मूल मंत्र था 'बुद्धि की मुक्ति'। तुर्की में कमाल अतातुर्क के सुधार से उन्होंने स्फूर्ति ली थी; और राममोहन राय तथा उनके बाद के अनुयायियों, जैसे रवीन्द्रनाथ और प्रमथ चौधरी से, प्रसिद्ध सूफी कविगण और हजरत मुहम्मद से उन्होंने स्फूर्ति ग्रहण की थी। ढाका के मुस्लिम कालेज और विश्वविद्यालय से उन्हें बड़ा अच्छा समर्थन मिला। विद्यार्थियों को उनके बौद्धिक और सांस्कृतिक सम्पर्क से बड़ा लाभ हुआ (ऐसा उस समय के ढाका यूनिवर्सिटी के अधिकारी स... रूते हैं)। सारे प्रदेश में सुशिक्षित मुसलमानों के एक बहुत बड़े पूरे-पूरे ने उसे अच्छी तरह ग्रहण किया। परन्तु थोड़े ही दिनों में इस

जाति के रूढ़िवादी हिस्से ने उनका बड़ा विरोध किया, यहाँ तक कि ढाका यूनिवर्सिटी के मुस्लिम-हॉल में इसके तीसरे अधिवेशन के बाद इस समाज के सम्मेलन को अनुमति नहीं मिल सकी। बाकी की कहानी छोटी नहीं है, मगर संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि वह दिन ऐसे थे जब कि साम्प्रदायिक तनातनी शुरू हुई थी और जिससे कि अन्तत: हमारे देश का विभाजन हुआ। उस दल के कुछ सदस्य आज भी लेखक के नाते क्रियाशील हैं।

ढाका के मुस्लिम बुद्धिवादियों का जागरण जिन दिनों में हुआ, उन्हीं दिनों में अपने-आपको अति-आधुनिक कहने वाले तरुण प्रभावशाली लेखकों का एक दल आगे आया। इस दल के प्रमुख लेखक थे गोकुल नाग, प्रेमेन्द्र मित्र, जीवनानन्द दास* बुद्धदेव बसु और अचिन्त्य सेन गुप्त। प्रेमेन्द्र मित्र ने अपने दल का घोषणा-पत्र इस प्रकार लिखा ·

आमि कवि जत कामारेर
आर कासारीर आर छुतारेर
मुटे मजूरेर
आमि कवि जत इतरेर

(मैं लुहारों, पीतल का काम करने वालों, बढ़इयों और रोज़नदारी मज़दूरों का कवि हूँ, मैं दलितों का कवि हूँ।)

बुद्धदेव बसु और अचिन्त्य सेनगुप्त उस समय प्रसिद्ध फ्रायडवादी थे। इतनी छोटी उम्र में भी वे बहुत लिखने वाले लेखक थे और वे यह बात बड़े जोर से कहते थे कि उनका अपना एक अलग रास्ता है। रवीन्द्रनाथ इन अति-आधुनिकों से विचलित हो गए और उन्होंने एक-दूसरे को भला-बुरा कहा। मगर इसका भी कोई प्रभाव उन पर नहीं हुआ। रवीन्द्रनाथ ने अपनी शालीनता और सर्वत्र गुण ग्रहण करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण इस वाद-विवाद को आगे नहीं बढ़ने दिया।

*दुर्भाग्य से इनका जीवन अकाल मृत्यु के कारण समाप्त हुआ। इनकी पुस्तक 'श्रेष्ठ कविता' को १९५५ में साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला है।

कवि-गुरु ने जो नए उपन्यास और कहानियाँ लिखीं उनमें इन अति आधु-निकों ने अपना प्रभाव देखकर विजय की प्रसन्नता प्रकट की। परन्तु प्रवीण कवि ने इन अति-आधुनिकों को यह दिखलाया कि जिन नवीन विषयों की ओर वे आकर्षित हुए हैं, उन पर कैसे लिखा जाय। अब तक तो अति-आधुनिक लेखक रवीन्द्रनाथ की कलात्मक सुरुचि से कहीं दूर थे।

वे फिर भी विकसित हुए। उनमें जीवनानन्द दास का सन्तुलन और प्रकृति के प्रति प्रेम, प्रेमेन्द्र मित्र का ओजस्विल रोमांटिकवाद और बुद्धदेव बसु का काव्य-गुण-प्रतिभा के कारण आनन्द-बोध उल्लेखनीय है। अजित दत्त इस दल के भिन्न होने के अतिरिक्त स्वभाव से कुछ भिन्न हैं। उन्होंने यौवन, प्रेम और प्रकृति पर शक्ति के साथ लिखा। उनके बाद सुधीन्द्रनाथ दत्त, विष्णु दे और अमिय चक्रवर्ती आए। इनमें सुधीन्द्रनाथ दत्त, अपनी शक्तिशाली शैली और बौद्धिकता के लिए महत्व विशिष्ट हैं। इन आधुनिकों में (सम्भवतः प्रेमेन्द्र मित्र को छोड़कर) जब उनकी श्रेष्ठ रचनाओं को पढ़ा जाय तो रवीन्द्रनाथ अथवा अन्य बंगाली कवियों से ये इतने अधिक प्रेरित नहीं जान पड़ते, जितने कि आधुनिक अंग्रेजी और यूरोपीय कवियों से। इन काव्यों में आज की दुनिया की हालत के लिए इतना अधिक दुःख, तिरस्कार, कड़ुवाहट और अहंकार है कि यह यूरोपीय कविता के समान लगती है। रवीन्द्रनाथ के साथ इनका मौलिक मतभेद यही है। रवीन्द्रनाथ कभी निराशावादी नहीं हो सकते थे, अतः वे कभी नहीं हारी ढौर की 'मीनार' में नहीं रहे; और वे सचमुच आत्म-केन्द्रित भी नहीं थे। इसीसे बंगाली जीवन और साहित्य में इन आधुनिक लेखकों के प्रभाव की विशेषता दीख पड़ती है। उनकी रचना के ढंग भी रवीन्द्रनाथ से बहुत-कुछ भिन्न हैं। इन नये लेखकों के अनुयायी भी कम नहीं हैं। भविष्य में इनकी क्या स्थिति होगी इसके सम्बन्ध में कुछ भी कहना कठिन है, और शायद असामयिक भी होगा। निस्सन्देह ये शक्तिशाली लेखक हैं। इनका व्यक्तित्व, जो कि उनकी कृतियों में है—व्यावर्तन-शक्ति रखता है। परन्तु यह भी देखना होगा कि उनमें यह

शक्ति कहाँ तक है जो कि मानवीय हृदयों में चिरस्मरणीय स्थान पा ले। वह गुण कहीं भी उनमें है या नहीं। हमारे तरुण कवियों में नरेश गुहा, दिनेश दास और गोविंद चक्रवर्ती उल्लेखनीय हैं।

हमारे अति-आधुनिक कवियों में प्रमुख रूप से आधुनिक युग की बेचैनी व्यक्त हुई है। परन्तु यही बात आज के उपन्यास और कहानी-लेखकों के विषय में नहीं कही जा सकती। कम-से-कम, उनमें अधिकांश कवियों के विषय में तो यह बात सही है। वे बनी-बंधी आधुनिक बँगला-कथा साहित्य की परंपरा, विशेषत. रवीन्द्रनाथ और शरत्चन्द्र की परंपरा का निर्वाह कर रहे हैं। शरत्चन्द्र के पश्चात् विभूतिभूषण बनर्जी ने बँगला-कथा-साहित्य को अपनी कहानियों और उपन्यासों से विशेष देन दी। विशेषतः उनकी कथा-कृति 'पथेर पाचाली' फिल्म-रूप में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है। विभूतिभूषण प्रकृति के बड़े प्रेमी और हमारे उस सरल सहृदयतापूर्ण ग्राम-जीवन के चाहने वाले थे, जो जीवन अब बहुत जल्दी मिटता जा रहा है। जीवन और चरित्र का संघर्ष आधुनिक उपन्यासकारों का प्रिय विषय रहा है, किन्तु विभूतिभूषण के लिए उनमें कोई आकर्षण नहीं था। इसलिए उन्हें उन आधुनिकों में भी नहीं माना जा सकता। चाहे वे 'आधुनिक' न हों, परन्तु कलाकार के नाते वे महान् हैं। वे महान् इसलिए हैं कि प्रकृति के साथ मनुष्य के दैनिक सम्बन्ध की समझ और उसकी अभिव्यंजना के मामले में उनकी रचनाओं में बड़ी हार्दिकता मिलती है।

विभूतिभूषण को छोड़कर शरत्चन्द्रोत्तर उपन्यासकारों और कहानी-कारों में तीन वर्ग के लोग हैं : एक तो वे जिन्होंने रवीन्द्रनाथ और शरत्चन्द्र की परंपरा का कम या अधिक अनुसरण किया, जो कविता में अति-आधुनिक और अपनी कहानियों में भी उस मनोवृत्ति से भिन्न नहीं हैं; और जो वामपक्षी हैं। पहले दल में प्रसिद्ध नाम हैं शैलजानन्द मुखर्जी, प्रेमेन्द्र मित्र, मेहबूबुल आलम (चित्तगांव के), बनफूल, अन्नदा शंकर राय, ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, सरोज रायचौधुरी, विभूतिभूषण

मुखोपाध्याय, सुबोध घोष, नारायण गंगोपाध्याय, सतीनाथ भादुरी नरेन्द्र मित्र और आशापूर्णा देवी। मानिक बन्दोपाध्याय भी परम्परा-वादी के नाते प्रसिद्ध हुए, परन्तु बाद में वे वामपंथी आग्रह से प्रभावि हो गए। शैलजानन्द एक उत्तम कलाकार हैं; बंगाली जीवन से उनक बहुत व्यापक और निकट परिचय है। आदिवासी जनता के उनके चि सर्वोत्तम माने जाते हैं। निम्न माने जाने वाले लोगों के जीवन से प्रेमे मित्र का उत्कट परिचय है। परन्तु उनकी प्रतिभा कहानियों में अधि अच्छी तरह व्यक्त हुई है। शायद वह इस कारण से कि सुन्दरता क उनकी कल्पना अत्यन्त रोमांटिक है। वे विस्मयशील सौंदर्य बनाता हैं। महबूबल आलम की सर्वोत्तम कृति है 'मोमिनेर जबानबन्दी' (ईमानदार की आत्म-स्वीकृति)। जीवन जैसा है, उसे ज्यों-का-त्यों देख में वे आनन्द लेते हैं, किसी रंगीन चश्मे का सहारा वे नहीं चाहते उनके भीतर आदिम ओज है। परन्तु उन्होंने लिखा बहुत थोड़ा है बनफूल का झुकाव भी आदिम ओज की ओर है। किन्तु वे अप कहानियों में अधिक अच्छे कलाकार हैं। अन्नदाशंकर राय आधुनि लेखकों में सबसे अधिक महत्त्वाकांक्षी उपन्यासकार हैं। उन्होंने छः भा में एक उपन्यास लिखा है और उतना ही बड़ा एक दूसरा उपन्या लिखना शुरू किया है। फिर भी उनकी 'मन-पावन' कृति सर्वोत्तम है कि कहानियों का एक संकलन है और जिसमें सुन्दर सूक्ष्म चरित्र-चित्र मिलता है। ताराशंकर बन्दोपाध्याय आज के उपन्यासकारों में स अधिक लोकप्रिय हैं। वे प्रादेशिक जीवन बड़े परिमाण में चित्रित क हैं और इस काम में उन्हें अच्छी सफलता मिली है। शायद इसी का वे लोकप्रिय हुए हैं और शायद इसलिए भी कि उनकी कथा प्रवच में चोरीदारक-जैसी है। इधर वे सूक्ष्म सूक्ष्म चरित्र-चित्रण करने

रायचौधुरी ने हमारे लिए एक नया ... का पीढ़ियों तक चलने वाला चरित्र प्रधान उपन्यास) ... मुखोपाध्याय हल्का-फुल्का के भी चर्चे ... है।

घोष सशक्त तूलिका से 'टिपिकल' चरित्र व्यक्त करते हैं; नारायण गंगोपाध्याय विशेषत विपन्न मनुष्यता का, तीव्रता से चित्रण करते हैं, सतीनाथ भादुड़ी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में आनन्द लेते हैं; नरेन्द्र मित्र बंगाल के दैनिक जीवन का प्रेम से समझ-बूझकर चित्रण करते हैं; और आशापूर्णा देवी जीवन की छोटी-छोटी विडंबनात्मक घटनाओं और विशेषत बंगाल के मध्यवर्गीय जीवन को चित्रित करती हैं; और नारी की आस्था के वे क्षण चित्रित करती हैं जिनमें वह निपुण और एकांत पसंद करती है, किन्तु भोंडेपन को महत्व नहीं करती। हमारे रोमांटिक लेखकों में प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव बसु, अचिंत्य सेनगुप्त, सौरीन्द्रपाल बसु, मनोज बसु और प्रबोधकुमार सान्याल आदि प्रमुख लेखक हैं। इनमें प्रेमेन्द्र मित्र, विशेषत अपनी कहानियों में, सचमुच सबसे श्रेष्ठ हैं। रवीन्द्रनाथ और शरत्चन्द्र के बाद कहानियों के वे ही कदाचित् सर्वश्रेष्ठ लेखक हैं। असीम राय एक तरुण उदीयमान रोमांटिक लेखक हैं।

माणिक बन्दोपाध्याय वामपक्षियों के प्रसिद्ध नेता हैं। अपनी 'पुतुलनाचेर इतिकथा' (कठपुतली के नाच की कहानी) से उन्हें बड़ी कीर्ति मिली। इसमें उन्होंने अपने-आपको एक ऐसे पक्के कलाकार की भाँति दिखलाया है जिसका जीवन के प्रति अनन्य दृष्टिकोण है। उनके द्वारा चित्रित स्त्री-पुरुष प्रेम करते हैं और उसमें सन्तोष भी पाते हैं। अपने वामपक्षी धारा के लेखन में उन्होंने नई ऊँचाइयाँ नहीं छुईं। केवल उनकी कड़ुवाहट अधिक स्पष्ट होकर सामने आई है। हमारे वामपक्षी लेखक कथा-साहित्य में कुछ बहुत अधिक उपलब्ध न कर सके। माणिक बन्दोपाध्याय के बाद अमरेंद्र घोष का नाम लिया जा सकता है। उनकी 'चार काशेम' हमारे समय की स्मरणीय कृति है, जैसे कि यूरोप में 'ग्रेप्स आफ दि राथ्स'। परन्तु घोष वामपक्षी से अधिक मानवतावादी हैं; और इस तरह से और कुछ तरुण वामपक्षी भी दिखाई देते हैं, जिनमें समरेश बसु और गुलाम कुद्दूस उल्लेखनीय हैं—जिनका आज के जीवन के कुछ पक्षों से घनिष्ठ परिचय है। गोपाल हालदार की

उपन्यासत्रयी—'एकदा', 'अन्य दिन', 'और एक दिन'—विचारणीय कथाएँ हैं। यह वामपक्षी रचनाओं में उल्लेख-योग्य है।

कविता में भी, वामपंथियों को, सिवाय सुकान्त भट्टाचार्य के, अब तक कोई बड़ी सफलता नहीं मिली, जिनकी अकाल मृत्यु हो गई। वे भी वामपक्षी से अधिक मानवतावादी थे, हमारे कुछ तरुण वामपक्षी कवि, जिनमें सुभाष मुखोपाध्याय, मणीन्द्रराय और पूर्णेन्दु पत्री अलग से उल्लेख्य हैं, अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठावान् हैं और शायद आगे चलकर वे और भी सफल हों।

हमारी जिन स्त्रियों ने आधुनिक साहित्य को बड़ी सार्थक देन दी है उनमें स्वर्ण कुमारी देवी, गिरीन्द्र मोहिनी दासी, मानकुमारी देवी, कामिनी राय, प्रियम्वदा देवी, बेगम रुकैया, निरुपमा देवी, अनुरूपा देवी, सीता देवी, शान्ता देवी, लीला मजूमदार, मैत्रेयी देवी, प्रतिभा बसु, बेगम सूफिया कमाल, प्रभावती देवी, बेगम शम्स-उन्-नाहर, महमूदा खातून सिद्दीकी, राधारानी देवी, आशापूर्णा देवी और वाणी राय उल्लेखनीय हैं।

हमारे बाल-साहित्य का विशेष रूप से उल्लेख होना चाहिए। प्राचीन रामायण, महाभारत और हमारे लोक-साहित्य में बच्चों के लिए बड़ी आकर्षक बातें थीं। परन्तु हमारे आधुनिक लेखकों ने उसे और भी विशिष्ट बनाया। रवीन्द्रनाथ के शिशु-गीत विश्व में विख्यात हैं। उनके बाद अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम लिया जा सकता है, जो कि भारत के कलात्मक पुनर्जीवन के नेता थे। इनके अतिरिक्त दक्षिणा-रंजन मित्र मजूमदार, उपेन्द्रकिशोर रायचौधुरी, योगीन्द्रनाथ बसु, सुकुमार राय, सुखलता राव और सुनिर्मल बसु उल्लेख्य हैं।

हमने यह देखा कि आधुनिक बंगाली साहित्य कविता और उपन्यास में समृद्ध है, परन्तु नाटक में स्थिति ऐसी नहीं है। नाटक का प्रारम्भ दीनबन्धु मित्र के 'नील दर्पण' से १८६० के बाद बड़ी अच्छी तरह से हुआ; परन्तु अतिनाटकीयता ने उसके विकास के पथ को रोक दिया

और अभी तक वह साफ नहीं हुआ है। गिरीशचंद्र घोष और द्विजेन्द्र-लाल राय, जो कि हमारे दो प्रसिद्ध नाटककार हैं, वे भी मुख्यतः प्रति-नाटकीयता के लेखक हैं। रवीन्द्रनाथ के नाटक तो अपने ढंग के अलग ही हैं। उनमें से कई साहित्यिक रत्न हैं, परन्तु उनमें से थोड़े-से अप-वादों को छोड़कर, जनता के लिए नाटकों में वे स्थान नहीं ले सकते।

निबन्ध में बयान उच्च स्तर पर पहुँच चुका है। रवीन्द्रनाथ और प्रमथ चौधरी इस क्षेत्र में हमारे सबसे बड़े नाम हैं। अन्य प्रसिद्ध नामों में भूदेव मुखोपाध्याय, विपिनचंद्र पाल, रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी, शशांक-मोहन सेन, मोहितलाल मजूमदार, अतुलचंद्र गुप्त, गोपाल हालदार, धूर्जटीप्रसाद मुखोपाध्याय, अन्नदाशंकर राय, हुमायूँ कबीर, श्रीकुमार बनर्जी, प्रमथनाथ बिशी, अबु सैयद अयूब, बुद्धदेव बसु, काजी मोतहर हुसैन, संजय भट्टाचार्य, सैयद मोतहर हुसैन चौधरी और विनय घोष का उल्लेख किया जा सकता है। कुछ सचमुच अच्छी जीवनियाँ भी लिखी गई हैं, परन्तु वे बहुत थोड़ी हैं। वर्णनात्मक-संस्मरणात्मक ललित-साहित्य में हमारे दो आधुनिक लेखक बहुत लोकप्रिय हैं—यायावर और सैयद मुजतबा अली। परशुराम, बहुत दूर-दूर तक प्रसिद्ध हास्य-लेखक हैं, उनकी कोटि विशिष्ट है।

डॉ० दिनेशचंद्र सेन, डॉ० सुकुमार सेन और सजनीकांत दास ने साहित्य के इतिहासकार के नाते नाम अर्जित किया है, और डॉ० सुनीति-कुमार चटर्जी और डॉ० मुहम्मद शहीदुल्लाह हमारे भाषा-वैज्ञानिक हैं।

प्रो० क्षितिमोहन सेन और प्रो० रेज़ाउल करीम हमारे हिंदू-मुस्लिम-एकता के बड़े सांस्कृतिक कार्यकर्ता हैं।

आधुनिक बंगाली में विशिष्ट धार्मिक साहित्य भी है। इस क्षेत्र में सबसे बड़े नाम सर्व श्री महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ब्रह्मानंद, केशवचंद्र सेन, श्री रामकृष्ण, मौलाना गिरीशचंद्र सेन, अश्विनीकुमार दत्त और रवीन्द्र-नाथ आदि के हैं।

अनुवाद में हम सचमुच गरीब हैं—हमारी भाषा में दुनिया की

श्रेष्ठ ग्रंथों में से बहुत थोड़े मिलते हैं। परन्तु इधर हमारे कुछ तरुण लेखकों ने इस काम को बड़ी गम्भीरता से लिया है। रवीन्द्रनाथ ने जीवन के उत्तरार्ध में हमारे गद्य में और भी उत्कर्ष किया था और उनकी परम्परा अब हमारे गद्य-लेखकों को बड़ी उपयोगी सिद्ध हो रही है। सभी क्षेत्रों में शुद्ध साहित्य के साथ-साथ बँगला में दर्शन, इतिहास इत्यादि विषयों की जो उत्तम पुस्तकें हैं, वे बहुत थोड़ी हैं।

समाज-विज्ञान और अन्य विज्ञानों में इधर हमने कुछ अच्छी रचनाएँ शुरू की हैं। सार्वजनिक ग्रंथालय और वाचनालय भी बढ़ने जा रहे हैं और गम्भीर साहित्य के सृजन में सहायता मिल रही है।

हमारे प्राचीन 'विश्व कोष' के रूप में एक उत्तम विश्व-कोष हमारी भाषा में है, परन्तु नये विश्व-कोष अवश्य बनने चाहिएँ। कुछ अच्छे भाषा-कोष भी हमारी भाषा में हैं।

पूर्व पाकिस्तान के बंगालियों में सबसे उल्लेखनीय है तरुण लेखकों का विकास, जो सच्चे देश-भक्त और प्रामाणिक बुद्धिवादी हैं। वे मूलतः वहाबी विचार-धारा से बहुत भिन्न हैं।

शान्ति और उत्तम शासन के साथ-साथ बंगाली अपनी सुगठित सुन्दर भाषा और साहित्य-परम्पराओं को और भी आगे बढ़ाकर ले जायेंगे। निकट भूतकाल बहुत प्रेरणाप्रद था और साहित्य के क्षेत्र में भविष्य में भी अधिक उज्ज्वल सम्भावनाएँ हैं।

मराठी

मंगेश विट्ठल राजाध्यक्ष

प्रास्ताविक

मराठी भाषा एक हजार वर्ष से कुछ अधिक पुरानी है। मराठी साहित्य मराठी भाषा से वय में करीब दो सौ वर्ष छोटा है। इस अर्से में एक नवजात भाषा साहित्य के माध्यम के रूप में पक्की बनती गई। यह प्रक्रिया सामाजिक प्रेरणा के कारण अधिक गतिमान हुई। एक आध्यात्मिक जनतंत्र मानो जागी चाह रहा था। उसे अब रूढ़ि-ग्रस्त पुरोहित की कोई आवश्यकता नहीं थी; अत उसे संस्कृत की भी उतनी आवश्यकता नहीं थी। उसे मनुष्य और ईश्वर के बीच में कोई कृत्रिम बाधा स्वीकार्य नहीं थी। संत-कवियों की एक उदात्त मालिका—ज्ञानेश्वर (१२७१-१२९६), नामदेव (१२७०-१३५०), एकनाथ (१५३३-१५९९), तुकाराम (१६०८-१६४९) और रामदास (१६०८-१६८१) की परम्परा ने जनता से उसकी अपनी भाषा में बोलना शुरू किया। उन्होंने जनता में राष्ट्रीयता की भावना जागृत की। उन्होंने भाषा को ओजस्वी बनाया। ज्ञानेश्वर की शैली समृद्ध थी, सहज-निर्मित थी उसमें विद्वत्ता जैसे छनकर रच गई थी। तुकाराम की शैली धरती के प्रसादपूर्ण मुहावरे से भरी थी। वह मृदु और कठोर, दोनों रूप ग्रहण कर सकती थी। इनसे भी पहले बारहवीं और तेरहवीं शती

में वैदिक कर्मकांड से विद्रोह करने वाले मुकुंदराज और महानुभावों ने अपने-अपने ढंग से भाषा का साधिकार आत्म-विश्वासपूर्ण उपयोग किया।

परन्तु अधिक असाम्प्रदायिक प्रेरणा बहुत समय तक दबाई न जा सकी। पुराणों को पुनः वर्णित करने में उसने अभिव्यंजना पाई : उदाहरणार्थ एकनाथ ने उपदेश के लिए रामायण और भागवत का आधार लिया। उसके प्रपौत्र मुक्तेश्वर (१५७४-१६४६) ने प्राचीन महाकाव्यों का उपयोग अधिक साहित्यिक उद्देश्य से किया। उन्होंने स्पष्ट शब्द-चित्र निर्मित किये, संस्कृत से सीखी हुई रीतियों का उन्होंने बहुत सावधानी से उपयोग किया। परन्तु अनिवार्य रूप से संस्कृत 'रीति' मराठी-कविता की जकड़बंदी में आकर और भी मजबूत बनती गई। इसके बाद की दो शताब्दियों में एक से बढ़कर एक पंडित कवि काव्य-रचना करने लगे और काव्य-कला को पांडित्य-प्रदर्शन का क्षेत्र समझने लगे। १७ वीं शती के वामन और रघुनाथ, और १८ वीं के मोरो पंत, पंडित कवियों में से कुछ प्रमुख व्यक्ति थे। परन्तु उनकी कविता थोड़े-से ही लोगों की समझ में आ सकती थी; जन-साधारण ने अपनी कविता की प्यास वीररसपूर्ण 'पोवाड़ों' और शृङ्गारिक 'लावणियों' से बुझाई। फिर भी संत-कवियों की परम्परा बराबर चलती रही और वह आज तक चली आ रही है। वह आर्तों को आशा और शान्ति देती रही।

गद्य बहुत बाद में विकसित हुआ। महानुभावों ने उसका उपयोग किया था, परन्तु उन्होंने उसे संकेत-लिपि और गुह्य-भाषा में बंद कर रखा था। मराठों के दरबारों में, वृत्तांत-लेखकों, डायरी और पत्र-लेखकों ने कुछ प्रासंगिक गद्य-रचना की। परन्तु १९ वीं शताब्दी में, मुद्रणालय के आने के बाद और सरकार तथा शिक्षा-क्षेत्र में एक नई व्यवस्था स्थापित होने पर, गद्य को एक नया महत्त्व और उपयोगिता मिली। और परिमाण में वह बहुत जल्दी पद्य से आगे बढ़ गया। कई पत्र-... ँ शुरू हुईं। उनका उद्देश्य मुख्यतः नवप्राप्त पाश्चात्य विद्या का

प्रसार था। पुरानी मान्यताओं पर नये विचारों के प्रभाव के कारण जो मनोरंजक वाद-विवाद चल पड़े, ये पत्र उनके उत्तम माध्यम बने। गो० ह० देशमुख (लोकहितवादी) और जोतिराव फुले-जैसे व्यक्तियों ने हमारे सामाजिक पतन के बारे में बड़ी खरी-खरी सुनाई, प्रामाणिक, सावेश, वक्तृतापूर्ण शैली में। मराठी का पहला उपन्यास बाबा पदमनजी का 'यमुना-पर्यटन' १८५७ में लिखा गया। वह समाज-सुधार-प्रधान उपन्यास था। बाद में इसमें रोमांसों की इस क्षेत्र में बाढ़ आ गई। इस काल में कविता बहुत क्षीणी हो गई। अधिकांश काव्य-रचना साधारण कोटि का छन्द-व्यायाम-मात्र थी। परन्तु वहाँ भी शान्त सतह के भीतर असंतोष जाग पड़ा था। पुरानी धरती में नूतन ने जड़ें जमा ली थीं।

१८८५-१९२०: कविता

१८८५ में 'केशवसुत' (१८६६-१९०५) की पहली कविता के और हरिनारायण आपटे (१८६४-१९१९) के पहले उपन्यास के प्रकाशन के साथ आधुनिक मराठी साहित्य का प्रारम्भ हुआ। यह दोनों रचनाएँ काव्य और उपन्यास के क्षेत्र में आधुनिकता की अग्रदूत थीं। पुनर्जागरण की पार्श्वभूमि विविध तत्त्वों से मिली हुई थी। साहित्य में इसी पुनर्जागरण की व्यंजना आधुनिकता के रूप में हुई। इसमें कई परस्पर-विरुद्ध तत्त्व मिले हुए थे: पश्चिमी विचारों का प्रभाव, विशेषत. उदारमतवाद (लिबरलिज्म) का प्रभाव; अंग्रेजी साहित्य की दी हुई प्रेरणा, विशेषतः रोमांटिकों की प्रेरणा; यूरोपीय राष्ट्रवाद का प्रभाव; अतीत के गौरव-गान की प्रवृत्ति, विशेषत महाराष्ट्र के भूतकाल की प्रतिष्ठा-प्रशस्ति, अंग्रेजों और सामान्यतः सभी पश्चिम वालों की चिढ़ाने वाली अहंता की युयुत्सु प्रतिक्रिया थी। बंगाल में ऐसे ही किन्तु सरलतर पुनर्जागरण का अंग था ब्रह्म-समाज। उसका भी प्रभाव शायद महाराष्ट्र में पड़ा।

केशवसुत का विद्रोह केवल साहित्यिक नहीं था। वह केवल रूप-शिल्प और शैली में प्रयोग-मात्र नहीं था, और केवल काव्य में आत्म-निष्ठता का प्रतिष्ठापन भी नहीं था। केशवसुत के लिए कविता का आन्दोलनात्मक प्रयोजन था। उन्होंने हमारे जीवन की कई बुराइयों की निंदा करने के लिए कविता का प्रभावशाली उपयोग किया। उनके कुछ गीतों में कोई उच्चतर प्रशान्ति जैसे उन्हें प्रेरित करती रही है। इन गीतों में आत्मा के रहस्यमय आनन्द का उल्लेख है। यह 'कवियों का कवि' अपनी पीढ़ी और बाद की पीढ़ी के भी प्रमुख कवियों में से अधिकतर कवियों को स्फूर्ति देता रहा। केशवसुत ने किसी 'धारा' के बंधन में डालकर इन कवियों में से किसी के भी व्यक्तित्व को कुंठित नहीं किया। रेवरेंड नारायण वामन टिळक (१८६५-१९१९) ने अपने घर, परिवार और प्रकृति के कोमल सौंदर्य के विषय में भावनापूर्ण ढंग से लिखा, और उसीमें, बच्चे-जैसे विश्वास से, दिव्यता का साक्षात्कार किया। उनके विचार से वही दिव्यता आत्मिक शांति दे सकती है। विनायक (१८७२-१९०९) की पीड़ा व्यक्तित्व के विभाजन के कारण निर्मित हुई। रूढ़ नैतिकता और ऐंद्रियक आसक्ति के बीच में जो विरोध पैदा हुआ उसके कारण एक प्रकार की अपराध-ग्रंथि इस कवि में पैदा हुई; और पूर्वकाल की श्रेष्ठता के नाटकीय प्रतिरंजित चित्र प्रस्तुत करके उस ग्रंथि को अपनी कविता में ढाँकने की कोशिश करता रहा। उसी प्रकार का विरोध राम गणेश गडकरी (१८८५-१९१९) उर्फ कवि 'गोविंदाग्रज' में मिलता है। उनमें विरोध का समाधान नहीं है। उनकी कविता और नाटकों में इस विरोध ने और भी सार्थकता पैदा की। क्योंकि उस समय पढ़े-लिखे वर्ग के एक तबके में दो परस्पर-विरोधी और कभी भी समन्वित न हो सकने वाली प्रवृत्तियाँ का अनजान में सहअस्तित्व कराने की वृत्ति पल रही थी, वही उन रचनाओं में दिखाई देती है। एक थी प्रगतिशील प्रवृत्ति, जिसे कि आगरकर या केशवसुत ने चलाया; और दूसरी पुनरुज्जीवनवादी प्रवृत्ति,

जिसे टिळक या विपळूणकर ने बढ़ावा दिया। गडकरी के भरपूर हास्य से भरे व्यंग-लेखों ने सामाजिक रूढ़िवादिता को खूब दयनीय बनाया है। परन्तु रंगमंच पर उन्होंने उसी रूढ़ नैतिकता को उपयोगी पाया। उस रूढ़ नैतिकता को स्वीकार्य बनाने के लिए—स्वयं के लिए भी स्वीकार्य बनाने के लिए—अतिरंजित करके दिखाना आवश्यक था। अतः अतिनाटकीयता, जो कि उनके स्पृहणीय भाषा-प्रभुत्व के कारण और भी बढ़ती गई, उनके नाटकों में दोष के रूप में पाई जाती है। कवि और नाटककार के नाते गडकरी की विलक्षण लोकप्रियता, उसी अतिनाटकीयता, हास्य, और मुख्यतः उस भाषा-शैली के कारण है जो कि पाठकों पर अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहती। इस प्रकार से पाठक को जीवन की साधारण नीरसता से पलायन का एक मार्ग मिला। खंडित और निराश जीवन की पीड़ा से पलायन का एक मार्ग लेखकों को भी मिला। बालकवि (१८९०-१९१८) की शुद्ध गीत-रचना पाठक के लिए आनन्द का विषय है, किन्तु वे भी अपनी छोटी-सी उम्र में किसी निराशा की छाया से ग्रस्त हो गए थे। यह सपनों की और बाल-भाव भरी समर्पण की सुन्दर दुनिया, जिसमें से उनके सुन्दर गीत निर्मित हुए, धीरे-धीरे टूटने लगी थी कि क्रूर मृत्यु ने इस युवक कवि को हमसे छीन लिया। 'बी'-नारायण मुरलीधर गुप्ते (१८७२-१९४७) की भी केशवसुत के साथ घनिष्ठता थी, विशेषतः सामाजिक और साहित्यिक रूढ़ियों के अत्याचारों के विरुद्ध उत्कट अभियोग में। परन्तु 'बी' की थोड़ी-सी कविताएँ साठ वर्ष की आयु तक अज्ञातप्राय रहीं। उनसे उलटे भास्कर रामचन्द्र तांबे (१८७४-१९४१) ने बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की, और प्रायः सभी कवि उनका अनुकरण करने लगे, विशेषतः १९२० के बाद। यह सफलता उनकी गीतात्मकता और उनकी शैली की इन्द्रियगोचरता के कारण थी। उसमें परंपरित कल्पना-चित्रों का उपयोग तो था ही, साथ ही सहज रस-निष्पत्ति की संभावना भी थी। तांबे मध्यभारत के थे; उसके कारण उनकी कविता को एक सामंती—

रोमांटिक वातावरण मिला और सम्नमता भी प्राप्त हुई, जिसमें कि उनकी कविता में एक अलग ही आनन्द पैदा हुआ। केशवसुत और उनकी धारा के कवियों के बाद, यह एक प्रकार से पुनः पलायनवाद की ओर मुड़ना था। इसी युग के दूसरे बड़े कवि थे चन्द्रशेखर। उनकी चतुर शब्द-संयोजना संस्कृत-कवियों और पंडित कवियों के उक्ति-चमत्कार के सौंदर्य से संतुष्ट थी। इस कारण यह प्रत्यावर्तन और भी दृढ़ हुआ। आज तक ये दोनों काव्य-पद्धतियाँ अपने महत्ता-प्रस्थापन के लिए यत्नशील रही हैं। परन्तु इन्हें एक व्यापक संघर्ष का, साहित्यिक समतल पर, प्रक्षेपण समझना चाहिए।

नाटक

मराठी-रंगभूमि का जन्म १८४३ में हुआ। अलिखित नाटकों और पेटेण्ट पात्रों की सृष्टि वाले बाल्य-काल से वह शीघ्र ही आगे बढ़ी। बी० पी० किर्लोस्कर (१८४३—१८८५)-जैसे दिग्दर्शक-अभिनेता, नाटककार के रूप में उसने प्रथम सफल व्यंजना पाई। किर्लोस्कर का 'सौभद्र' (१८८२) इतने सारे वर्षों में बराबर लोकप्रिय नाटक बना रहा है, परन्तु मुख्यतः वह संगीत के कारण। गो० ब० देवल (१८५४—१९१६) किर्लोस्कर को अपना गुरु मानते थे, परन्तु उन्होंने अपना अलग रास्ता बनाया। देवल के सात नाटकों में छह संस्कृत और अंग्रेजी के शुद्ध अनुवाद थे। सातवाँ नाटक 'शारदा' आज भी दर्शकों को मोहित करता है, क्योंकि उसके चरित्र-चित्रण और संवादों में यथार्थवादिता है। यद्यपि उसकी विषय-वस्तु—एक वृद्ध का बाल-वधू को खरीदना—अब बासी हो चुकी। यदि देवल के नाटकों में और कृष्णाजी प्रभाकर खाडिल-कर (१८७२—१९४८) के आरम्भिक नाटकों में पाये जाने वाले नाट्य ने सुदृढ़ परम्परा कायम की होती तो मराठी रंगमंच इस शताब्दी के आरम्भिक दो दशकों में जिस प्रकार से व्यावसायिक रूप से सफल हुआ, उससे अधिक यशस्वी होता। खाडिलकर का 'कीचक-वध' (१९१०)

अपने राजनैतिक रूपकत्व में प्रभावशाली नाट्य-गुणों से युक्त था। टिळक और लार्ड कर्ज़न उसमें भीम और कीचक के रूप में दिखाये गए थे। यह नाटक ज़ब्त हुआ। उनके ऐतिहासिक नाटकों में भी वैसी ही शक्ति थी। कुछ तो शेक्सपीयर से वह शक्ति ली गई थी। परन्तु शेक्सपीयर के नाटकों के दोष, जैसे उलझे हुए कथानक और असबद्ध या थेगर की तरह चिपकाये गए विदूषकी हास्य आदि, जल्दी आ गए; और इन्होंने अच्छे गुणों का जैसे गला घोट दिया। खाडिलकर नाटककार के नाते गिरते गए, क्योंकि उन्होंने अपने नाटकों में पुराणों से चटपटे विषय लेकर उनमें आधुनिक, विशेषत. राजनैतिक सन्देश या निष्कर्ष जोड़ने का यत्न किया। रंगमंच पर ये नाटक संगीत के कारण किसी तरह से जिन्दा रहे। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर (१८७१—१९३४) ने व्यंग-प्रधान रोमांटिक कथानक वाले सुखान्त नाटक लिखने का प्रयत्न किया, पर इससे न तो व्यंग ही सधा और न रोमांस ही। उनका समाज-सुधार के लिए उत्साह उनके हास्यपूर्ण निबन्धों में अधिक दिखाई देता है। नाटकों में उतना नहीं। क्योंकि नाटकों ने परिहास में नाट्य-गुणों को कुण्ठित कर दिया। गडकरी, जो कि उन्हें अपना गुरु मानते थे, अधिक सफल हुए। जैसे कि ऊपर हम कह चुके हैं उनकी सफलता का रहस्य रोमांस, परिहास, चरित्र-चित्रण और ओजस्वी गद्य-शैली के उत्तम मिश्रण में है। गडकरी के नाटकों की असंगतियाँ और अतिरंजन हास्यास्पद जान पड़ते हैं; परन्तु उनकी चमक और सम्पूर्ण प्रभाव हँसने वालों को धोखा देते हैं। नरसिंह चिन्तामण केळकर (१८७२-१९४७) की प्रतिभा तुलना में कम थी। उन्होंने पाँच नाटक लिखे; जिनमें से तीन ऐतिहासिक हैं और दो पौराणिक। आधुनिक मराठी रंगमंच के प्रथम उत्थान के ये कुछ प्रसिद्ध नाटककार हैं। इन और कुछ अन्य नाटक-कारों ने—शेक्सपीयर के कुछ अच्छे अनुवादक इनमें हैं—रंगमंच को बहुत शक्ति दी; परन्तु यथार्थवाद इनमें से एक भी नाटककार में नहीं था, कम-से-कम उच्चकोटि का यथार्थवाद नहीं मिलता। रंगमंच

ज्यों-ज्यों अधिकाधिक 'संगीतमय' बनता गया, त्यों-त्यों यथार्थवाद अपने बचाव के लिए दबता गया। और यों उसकी पूर्ण समाप्ति होने से रह गई। साधारण दर्शक को यह अभाव नहीं खटका; उसका मनोरंजन तो होता ही था, पुराण, इतिहास के कथानक से कुछ व्यापक उपदेश उसे मिल ही जाता था। वासुदेव शास्त्री खरे, जो स्वयं एक अच्छे इतिहासकार थे, अपने ऐतिहासिक नाटकों में से रोमांस को दूर नहीं रख सके। यह रोमांटिक बनने की प्रवृत्ति किसी अन्य कारण से नहीं बढ़ी, किन्तु राज-नैतिक गौरव-गाथा की भावना इसके पीछे थी। इस प्रकार से महाराष्ट्र और भारत के ब्रिटिश इतिहासकारों ने जो लांछन लगाया था, उसका उत्तर रंगमंच से दिया जाता था। उपन्यास ने तो यह उत्तर और भी जोरों से दिया।

उपन्यास

उपन्यास बहुत शीघ्र परिपक्व हो गया। हरी नारायण आपटे (१८६४-१९१९) के रूप में, उन्होंने 'मधली स्थिति' (१८८५) से प्रारम्भ करके मध्य-वर्ग के जीवन में घटने वाले कुछ उपन्यास लिखे— जिनमें सबमें उत्तम था 'पण लक्षात कोण घेतो'? (१८९०-१८९३)। इस उपन्यास में एक बाल-विधवा की मार्मिक कहानी है। इसके बाद आपटे ने ऐतिहासिक रोमांस अधिक लिखे। इस प्रकार से लेखकों और पाठकों में भी रुचि-परिवर्तन दिखाई देता है। आपटे ने अपने विद्यार्थी-काल में आगरकर से समाज-सुधार का उत्साह ग्रहण किया था। बाद में वे रानडे की भाँति सुधार और परम्परा के बीच में समन्वय टटोलने लगे। मराठों और राजपूतों के इतिहास से कहानियाँ लेकर उनमें रोमांस भरने से इस समस्या समन्वय को और भी धुँधला करने में सहायता मिली। ये रोमांस उपदेश के लिए प्रयोजित थे; उपदेश राज-नैतिक और नैतिक दोनों ही प्रकार के थे। इस युग के अधिकतर लेखकों के बारे में यह सच है। बुद्धिवादी तथा राष्ट्रीयतावादी दोनों अन्य दृष्टि

और रूपकों के लिए रोमांस की ओर झुकते थे। साधारण पाठक भी उन्हींके साथ थे। उसे सामाजिक समस्याओं के प्रति धैर्य नहीं था, एक तो इस कारण से कि उसका विश्वास था कि ऐसी कोई समस्याएँ ही नहीं हैं, या कि इसलिए कि वह इन समस्याओं को टाल देना चाहता था। जब बाद में इतिहास से वह ऊबा गया, तब केवल सामाजिक समस्याओं की ओर, रुचि बदलने के लिए, वह देखने को तैयार था। तब ऐसे लेखकों ने उस पाठक से संतोष और प्रशंसा प्राप्त करने के लिए इन सामाजिक समस्याओं को नए रोमान्स में लपेटकर पेश किया! कलाकार के नाते आपटे असंतुलित हैं। उनके उपन्यासों के कथानक बहुत धीमे चलते हैं और उनमें पुनरावृत्ति बहुत है। शायद इसका एक कारण यह हुआ कि यह उपन्यास अधिकतर क्रमशः प्रकाशित होते थे। परन्तु उपन्यास-रचना के इन दोषों को, उनके विचारों की गहराई, पकड़ और चरित्रों के सुदृढ़ ज्ञान ने पूरा कर दिया है। आपटे की ख्याति के कारण कई लेखक इस विधा की ओर आकर्षित हुए, फिर भी बहुत समय तक उनकी समता का कोई उपन्यासकार नहीं हुआ। हरी नारायण आपटे १८०६ से उपन्यास लिखने रहे हैं, उन्होंने कुछ समय तक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, बाद में वे सीख सीखकर पारिवारिक सद्गुणों को प्रचारित करने लगे। 'नायमाधव'—डी० एम० पिताळे (१८८२-१९२८), दूसरी ओर, कुछ समकालीन जीवन पर साधारण कोटि की रचनाएँ लिखकर ऐतिहासिक उपन्यासों की ओर झुके। सशक्त वर्णन-शैली में प्राचीन काल को इतनी स्पष्टता से चित्रित किया गया था कि साधारण पाठक, इन कथानकों में जो आधुनिक रंग दिया जाता था, उसकी असंगति था कि उत्तम साहित्यिक गुणों के अभाव की ओर ध्यान नहीं दे पाए। बेचारा इतिहास वि० वि० वैद्य, शि० म० परांजपे और वि० गो० भानु जैसे विद्वान् उपन्यासकारों के हाथ में सुरक्षित था। परन्तु युग-धर्म कुछ ऐसा था कि उन्होंने भी अपने उपन्यासों में रोमांस और उपदेशात्मकता का पुट देकर ऐतिहासिकता को कुछ हल्का बना

दिया। इस प्रकार से अतीत का भार उन पर बढ़ता जा रहा था और रोमांस यथार्थवाद को उलझन में डाल रहा था, तब बँगला से बंकिमचन्द्र चटर्जी, शरत्चन्द्र चटर्जी, और प्रभातकुमार मुखर्जी के उपन्यास—गुर्जर, मित्र और भिसे ने अनूदित किये, जो कि एक बैसाखी की तरह काम में आए। जो गुण उपन्यासों में कम होते जा रहे थे वे कुछ मात्रा में बढ़े। उस बुद्धिवादी युग में उपन्यास, अधिकांश ललित साहित्य की भाँति, एक हल्की चीज़ माना जाता था; उससे भी बुरी बात यह थी कि उपन्यास युवकों को बिगाड़ने वाली वस्तु माना जाता था। फलतः उपन्यास को अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए पाठकों को सुधारना आवश्यक था। यह सुधार वे इस तरह कल्पित कर सकते थे कि प्राचीन काल की एक वस्तुपाठ की भाँति उपस्थित करते। यह पाठ अनिवार्यतः रूढ़िवादी था। वामन मल्हार जोशी ने 'रागिणी' (१९१५) में उपन्यास के इस उपदेशात्मक स्तर को ऊँचा उठाया और एक नया क्षेत्र खोला, जिसमें कि इसी उपन्यासकार ने आगे अधिक आत्म-विश्वास और परिपक्वता के साथ खोज की। यह कार्य उनके उपन्यासों में कुछ कृत्रिमता के साथ ऐसे चरित्रों द्वारा कराया गया जो कि पढ़े-लिखे और वाद-विवाद-प्रिय हैं और जो आचार तथा नीति-शास्त्र की समस्याओं पर बहस करते रहते हैं।

वादविवादात्मक गद्य

इस गम्भीर युग में साहित्य का सर्वोत्तम उद्देश्य वादविवादात्मक गद्य माना गया। बहुत ओजस्वी गद्य इस काल के आरम्भ में इस विषय को लेकर लिखा गया कि सुधार कैसे हों। गोपाळ गणेश आगरकर (१८५६—१८९५) और लोकमान्य बाळ गंगाधर टिळक (१८५६-१९२०) ने मिलकर 'केसरी' नामक साप्ताहिक स्थापित किया। टिळक के हाथों क्रान्तिकारी राष्ट्रीयता का यह पत्र प्रमुख अस्त्र और प्रतीक बना; परन्तु बहुत जल्दी टिळक और आगरकर एक-दूसरे से अलग हो गए।

आगरकर सामाजिक सुधारों को प्राथमिकता देते थे; टिळक राजनैतिक सुधारों को अधिक आवश्यक समझते थे। आगरकर के साप्ताहिक 'सुधारक' ने निर्भयता से समाज-सुधार का पक्ष लिया। उनकी राह में बहुत बाधाएँ आईं, क्योंकि वे एक ऐसे विषय के पहले प्रचारक थे जो कि लोकप्रिय नहीं था; परन्तु उन बाधाओं की परवाह उन्होंने नहीं की। आगरकर की वीरता, जो कि उनके उद्देश्य की ही भाँति विनयपूर्ण थी, समाज-सुधार के कार्य में अधिक बल और प्रतिष्ठा देने में उपयोगी सिद्ध हुई। उनकी शैली उनके उत्तम गुणों का दर्पण है। टिळक अधिक उत्साही थे, वे इस वाद-विवाद में रूढ़िवादी खेमे में ऐसी स्थिति में पहुँचे कि उनके समय से अब तक उनके विचार सामाजिक पुनर्जागरणवादी रहस्यमयता के पर्याय-वाची बन गए। इस वाद-विवाद की सार्थकता क्या थी और इसके प्रमुख योद्धाओं की सामाजिक महत्ता क्या थी, यह सब छोड़ भी दें, तो भी एक बात जरूर हुई कि इस बड़े प्रश्न पर दिन-प्रतिदिन पाठकों की बढ़ती हुई संख्या सुबुद्ध और विवेकशील बनती गई। यह स्वाभाविक ही था कि बहुसंख्यक पाठक प्रतिक्रियावादियों के साथ थे। परन्तु यह भी उतना ही अनिवार्य था कि नए विचार सामाजिक मन में घुसते जा रहे थे, चाहे बहुत धीमे-धीमे और सूक्ष्मता से ही क्यों न हो। समाज प्रामाणिक आत्म-परीक्षण की ओर उत्प्रेरित हो रहा था।

टिळक की राजनैतिक महत्ता ने गद्य-शैलीकार के नाते उनकी प्रसिद्धि को ढाँक लिया है। उनकी विद्वत्ता ने उनके गद्य को समृद्ध बनाया, किन्तु यह गद्य-शैली बोझिल नहीं हुई। टिळक की गद्य-शैली गौरवपूर्ण थी, शब्द-बहुल नहीं थी। वह आवश्यकता होने पर कठोर और व्यंग्यपूर्ण भी हो सकते थे। विष्णुशास्त्री चिपळूणकर (१८५०–१८८२) उनके आरम्भिक सहकर्मियों में से एक थे। सामाजिक सुधार के विरुद्ध संघर्ष, विरोध, खंडनात्मक आलोचना के लिए उन्होंने जो शैली अपनाई, उसके कारण उन्हें बड़ी ख्याति मिली। यह एक प्रकार से आत्मचेतन शैली थी, उसमें आलंकारिकता और उलझाव अधिक था;

वह शैली बहुत तीखी थी। इसीके कारण वे राष्ट्रीय भावना जगाने में सफल हुए। चिपळूणकर के निबन्ध बहुत दिन तक पुनरुज्जीवनवादियों के लिए पवित्रप्राय बने रहे। शिवराम महादेव परांजपे (१८६४—१९२९), जिनकी वक्रतापूर्ण शैली एक गाथा के रूप में याद की जाती है, भी एक पुनरुज्जीवनवादी थे। उन्होंने अपनी सारी शक्ति विदेशी सत्ता के विरोध में खर्च की। विदेशी सत्ता भी उनके व्यंग से इतनी मर्माहत हुई कि उनके निबन्ध जब्त किये गए। लोकमान्य टिळक के निकटतम न० चिं० केळकर थे, जो कि टिळक के बाद 'केसरी' के सम्पादक बने। केळकर बहुश्रुत, बहुमुखी प्रतिभा वाले पत्रकार थे, उनमें सारे गुणों का सुन्दर सम्मिश्रण था। गद्य की ऐसी कोई विधा नहीं थी, जिसमें उन्होंने न लिखा हो; उनका लेखन प्रसादपूर्ण और सभी शैलियों में मनोहर था। उनका बहुत-सा कृतित्व अगले काल-खण्ड में आता है, और कई रूपों में उसमें प्रथम दशक के गुण बने रहते हैं। कुछ-कुछ यही बात अच्युत बळवंत कोल्हटकर (१८७९-१९३१) के बारे में भी कही जा सकती है, जो कि केळकर से बहुत भिन्न थे और उनके कड़वे प्रतिद्वंदी भी थे। उन्हें नीतिवादी पाठकों का रोष सहना पड़ा; परन्तु निम्न सामाजिक स्तर से जो पाठकों की बड़ी संख्या आगे बढ़ रही थी, उसकी ओर से उन्हें प्रशंसा मिली; क्योंकि उनकी पत्रकारिता बड़ी चटपटी थी और उस समय की प्रचलित शान्त गम्भीर पत्रकार-शैली से वह एकदम भिन्न थी। उनकी शैली में एक किस्म का बाँकापन था; संयम बिलकुल नहीं था। उन्होंने जनसाधारण को अखबार पढ़ना सिखाया, लेकिन साथ ही उनकी अभिरुचि को बिगाड़ भी दिया।

ऐसे गम्भीर युग में जीवनी-साहित्य विकसित हुआ होगा ऐसी आशा की जाती है। परन्तु बहुत कम जीवनियाँ लिखी गईं; और जो भी लिखी गईं वे महत्त्वपूर्ण नहीं थीं। सहजता की दृष्टि से दो आत्म-कथाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं—एक श्रीमती रमाबाई रानडे द्वारा लिखित अपने प्रसिद्ध पति म० गो० रानडे का अत्यधिक प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करते

वाली पुस्तक है, इसमें लेखिका की त्यागमयी विनम्र शैली बहुत महत्त्व-पूर्ण है; दूसरी आत्म-कथा डाक्टर धो० के० कर्वे की है, जिसमें स्त्री-शिक्षा के लिए उनके कार्य में उन्हें कितना संघर्ष करना पड़ा, यह वृत्तान्त है।

१९२०–१९४५ कविता

१९२० का समय शमित-दमित काल का है। लोकमान्य टिळक के सामाजिक-राजनैतिक वारिस जल्दी ही संकीर्ण दृष्टिवाले प्रतिक्रियावादी बन गए; सामाजिक सुधार वाले छोटे-मोटे परिवर्तनों से सतोष मानने लगे। सतही समझौते से समाधान पाने की प्रवृत्ति बढ़ी; गहरे सामाजिक संघर्ष अनसुलझे ही रह गए। यह एक प्रकार से छोटे आदमियों का युग था। छोटे-छोटे स्वप्नों में से इस युग का रोमांस बुना गया, छोटी-छोटी शिकायतों ने अर्ध-करुण मुद्राएँ धारण की, हर चीज का साधारणी-करण किया जाने लगा। सुघर विभाजन करके उन पर अच्छे लेबल लगाना इस युग में चल पड़ा। थोड़ी-सी टेकनीक की नवीनता और शब्दों की रमणीयता के सहारे लेखक आलोचक को सन्तुष्ट करने लगा और दोनों ने मिलकर कच्चे पाठकों को बरगलाना शुरू किया।

मगर यह बात सभी लेखकों के लिए सही नहीं थी। बेहतर लेखक और बेहतर आलोचक इन ह्रासोन्मुख वृत्तियों का विरोध करते थे। यह विरोध बल पकड़ता गया और १९३० के करीब अन्य रूपों के साथ-साथ नवीन विषय और नवीन शिल्प की खोज के रूप में इस विरोध ने व्यंजना पाई। बीसवीं शती के दूसरे दशक के उत्तरार्ध की निराशा, मजदूर-आन्दोलन का उत्थान, और इससे भी अधिक १९३०-१९३१ में गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय संघर्ष ने ये अल्प-तुष्टि की दीवारें जड़ से हिला दी। और कम-से-कम कुछ लोगों में एक नवीन चेतना जाग पड़ी। मध्य वर्ग उस समय साहित्य का प्रमुख निर्माता और उपभोक्ता था। उसने बड़े-बड़े वाद-विवाद शुरू किये; बड़े समझौते भी किये और अन्त

में वे आलस्य में खो गए। आत्मा की सच्ची प्रेरणा के स्थान पर रूढ़ि-वादी बुद्धिवादिता काम करने लगी; और वही विवेक की दासी बनकर सब ओर दिखाई देने लगी। मध्य वर्ग का एक छोटा-सा हिस्सा बदलती हुई परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगा। प्रथम महायुद्ध के बाद के साहित्य का स्वप्न-भंग, नव-नाट्य और इंग्लैंड में तीसरे दशक के 'प्रगतिशील' कवि आदि इस छोटे-से दल पर अपना प्रभाव डाल गए। इस दल ने साहित्य को सार्वत्रिक ह्रासोन्मुखता से बचाने का यत्न किया। यह प्रयत्न आज तक चला आ रहा है, जिसमें कभी सफलता मिली है और कभी नहीं भी मिली है; चूँकि इस प्रयत्न की दिशा अनिश्चित है।

कविता में दूसरे दशक पर कवियों का एक दल हावी था, इसका नाम 'रविकिरण-मण्डळ' था। इसका प्रयत्न था कि कविता को सामान्य जीवन के निकट लाया जाय। 'गोविन्दाग्रज' के बाद कविता जिस अति-भावप्रियता में खो गई थी, उसमें से उसे उबारा जाय। उन्होंने इस काम को इतनी सचेतनता से किया कि वे उल्टे सनकी में पड़ गए। कविता को उन्होंने अति-सामान्य बना दिया। उत्कटता और भाव-मुक्ति के प्रति उनका अविश्वास उस समय की प्रवृत्तियों के साथ अच्छी तरह चलता था, क्योंकि समाज यह चाहता था कि हर चीज को, ललित कलाओं को भी अपनी संकीर्ण प्रतिष्ठा की भावना से बाँध दिया जाए। इनकी कविता व्यापक रूप से प्रचलित हुई। कवि-सम्मेलनों में कवियों द्वारा कविता-पाठ इसका प्रधान कारण था। इन कविताओं में एक सीधा निष्कर्ष टंगे की तरह लगा रहता था, और कभी-कभी उनका दूसरा पहलू यह भी होता था कि हल्का-सा समाज-सुधार उनमें घुसाया जाता था। उदाहरण के लिए प्रेम कुछ देर तक [illegible] चल सकता था, परन्तु अन्त में उसे पारिवारिक सुशीलता के रूप में ही विकसित होना आवश्यक था! ऐसा प्रेम देहाती स्वच्छ वातावरण में अधिक अच्छी तरह पुष्पित हो सकता था। इसलिए कुछ समय तक कविताओं और

उपन्यासों में भी ग्राम-वर्णन का सर्वसाधारण रसाभास पनपता रहा। कविता को गाकर पढ़ने के फैशन—जो कि तांबे-शैली के नेतृत्व में बढ़ते अतिरंजना तक पहुँच गया—ने कविता में गौण तत्वों को प्रधानता दी, जैसे शब्द-संगीत और पद-कौशल को। मढ़ेकर ने कविता के रूप और शिल्प में गैम्बस-सेमनकर काफी प्रयोग किये, इस कारण उस समय कविता में आवश्यक विविधता निर्मित हुई। इस दल के 'यशवन्त'—य० दि० पेंढरकर—सबसे अधिक लोकप्रिय हुए। उनकी कविताओं में छोटी-छोटी निराशाओं और निरापनों का चित्रण है, मगर सर्वसाधारण पाठक को उन्हीं में अपने दुःखों की प्रतिगूँज मिली। 'गिरीश'—शं० के० कानेटकर—शुद्ध विषयों पर सुकोमल साधारणीकरण लिखते रहे। 'माधव जूलियन'—मा० त्रि० पटवर्धन (१८९४—१९३९) ने भावपूर्ण, स्वच्छन्द स्वाद-भरे प्रेम-गीत लिखे (कुछ प्रेरणा उन्होंने फारसी गजलों से ली), लेकिन बहुत जल्दी वे भी एक परम्परावादी पंडित के रूप में परिणत हो गए और पुनः अपनी प्रेम-कविता की शैली की शुद्धता और भावना की शुद्धता में भी परिशोधन करने लगे!

प्र० के० अत्रे का 'झेंडूची फुलें' (गेंदे के फूल, १९२५) आज तक बराबर लोकप्रिय बना हुआ पैरोडी-संग्रह है, क्योंकि इस पुस्तक में उन सब कवियों की शैलियों का कुशल परिहास किया गया है। किन्तु इसका एक बुरा परिणाम यह भी हुआ कि पाठक, जिसमें कि इतना विवेक नहीं था, मूल व्यंग्य वस्तु को भूलकर कविता-मात्र पर हँसने लगा। फल यह हुआ कि तीसरे दशक के आरम्भ से मीडियाकर कवि और उनके मीडियाकर पैरोडीकार बढ़ते गए। उनकी कविता के प्रति एक विडम्बनात्मक प्रवृत्ति-मात्र बढ़ी। कुछ कवि कुंठित हो गए और अन्य कवि पाठकों पर और भी मधुमय पद्य उँडेलने लगे।

तांबे की कविता—उसका अधिक उत्तम अंश दूसरे दशक में लिखा गया—तीसरे दशक के लिए आदर्श बनी। उसके प्रभाव में कवियों ने किशोर, भावना को सन्तुष्ट करने वाले, मधुर-मधुर गीत रच डाले,

चाहे कवियों की उम्र कुछ भी रही हो। कविता का विषय चाहे जितना झीना हो, बस शैली बड़ी रोचक होनी चाहिए थी। गाने वालों को भी गीत बड़े उपयोगी जान पड़े और श्रोताओं के विशाल समूह तक ये गीत पहुँचे। तांबे की कविता में जो सूक्ष्मता या संवेदनशीलता थी वह उनका अनुकरण करने वाले प्रायः भूल गए; वे केवल ऐन्द्रियिक और नाद-मधुर-शैली में बनावटी सरल कल्पना-चित्र रचते थे। कविता एक तरह का हल्का नशा बन गई, जिससे कि पाठक जीवन से दूर, मधुर-स्वप्निल दुनिया में खो सके। शैली और भावना दोनों के कुछ सांचे बन गए, पाठक के लिए ऐसी कविता का भावन करने में किसी भी बौद्धिक प्रयत्न की आवश्यकता नहीं थी। कवि भी सुकुमार बनता गया, उसका स्वाभाविक विकास रुक गया। इस पीढ़ी के कुछ तरुण कवियों की यही शोक-कथा थी, उन्होंने आरंभ तो बड़ा अच्छा किया, लेकिन आगे जो अपेक्षित आशाएँ उनसे थीं, वे कभी पूरी नहीं हो सकीं। आलोचकों का विश्वास है कि बा० भ० बोरकर तांबे के सर्वोत्तम शिष्य हैं। वे उनमें भी कुछ अधिक हैं। वे अपने साथ एक व्यक्तिगत इन्द्रियगोचर प्रतिमानों का आनन्द, और प्रकृति के सौंदर्य के प्रति सूक्ष्म संवेदनशीलता लाये—विशेषतया जहाँ के वे हैं उस गोआ की प्रकृति का सौंदर्य उनकी कविता में निखरा है। तांबे की परम्परा में उन्होंने चार चाँद जोड़ दिए। अगर यही बोरकर ने अपने काव्य-चाप में एक दूसरी विमल डोरी, नैतिक आदर्शवादिता की, न जोड़ी होती, और अपनी प्रतिभा के मौलिक गुणों तक ही वे सीमित रहते, तो उन्हें और अधिक ख्याति और सफलता मिलती।

रविकिरण-मंडल और तांबे-शैली की सचेष्ट प्रतिक्रिया में आधुनिक युग की कुछ उत्तम कविता लिखी गई। अनन्त काणेकर ने अपने छोटे से काव्य-संग्रह 'चांदरात' (१९३३) के बाद कविता लिखना मानो छोड़ दिया; लेकिन उस संग्रह ने नई दिशा की छोटी-सी झाँकी जागरूक पाठकों के लिए प्रस्तुत की। उस संग्रह में चांदनी और कारखाने की चिमनी

ग्रौर व्यंग का अद्भुत मिश्रण था। कदाचित् यह एक संक्रान्तिकालीन अल्पजीवी नवीनता थी। 'अनिल' (आ० रा० देशपांडे) ने विशिष्ट सूक्ष्म और मोहंदार नवीनता का प्रवर्तन अपनी कविता में किया। कवि के नाते उनका कार्य बहुत अर्थों का और क्रान्तिकारी है। आरम्भ में उन्होंने स्वच्छेन्द्रिय सुकोमल प्रेम-गीत लिखे—'फुलवात' (१९३२) और बाद में 'भग्नमूर्ति' (१९४०) में, उन्होंने सांस्कृतिक गम्भीर उपदेश पद्य-बद्ध किया। 'पेर्तेवा' (१९४७) में विचार और भावना का संगम मिलता है। उन्होंने मराठी-कविता में मुक्त-छन्द का निर्माण और प्रचार किया। इनके द्वारा पुराने यांत्रिक और जड़ छन्द-बन्धन की जकड़न से कविता मुक्त हुई। ना० घ० देशपांडे की कविता में शुद्ध गीतात्मकता और ईमानदार जानपद तत्त्व मिलता है, और गु० ह० देशपांडे की कविता में आध्यात्मिक विरोधाभास सन्त-कवियों-जैसी गूढ़ात्मकता के साथ व्यक्त किया गया है। इस प्रकार से प्रचलित कविता की नीरसता में कुछ कवियों ने नयापन पैदा किया।

१९४२ के आन्दोलन का प्रभाव साहित्य पर इस प्रकार से पड़ा कि जो थोड़ा-सा नीम-हकीमपन चल रहा था, उससे साहित्य मुक्त हुआ। 'कुसुमाग्रज'—वि० वा० शिरवाडकर—अपने जिस कविता-संग्रह से लोकप्रियता के उत्तुंग शिखर पर पहुँचे, उसका नाम था 'विशाखा' (१९४२)। उनकी महान् साहित्यिक प्रतिभा उन्हें इस ख्याति-शिखर पर बनाए रखती, किन्तु साहित्य की और विधाओं की ओर वे आकृष्ट हुए और कविता की ओर से कुछ उदासीन हो गए। 'कुसुमाग्रज' साम्राज्यवाद-विरोधी कविता की मार्मिकता फिर उसी तरह से प्राप्त न कर सके, उनका मूल स्वर शान्त सौंदर्य के लिए दौर्हार्द की (नास्टेल्जिया) कविता का ही था। उनकी सफलता के कारण एक क्षणजीवी सम्प्रदाय चल पड़ा, कुछ समय तक रक्त और अश्रु वाले उफान कविता में आये; जो कि बहुत जल्दी समाप्त हो गए। यह भाव-धारा गद्य में भी फैल उठी। कविता अपने बंधनों से अधीर हो उठी थी, अत: यह

नया विद्रोह कविता के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ; उदाहरणार्थ 'मनमोहन' की कविता में यह विद्रोह अपनी प्रति पर पहुँचा—'मनमोहन' किसी के शिष्य नहीं हैं ! कुछ और तरुण कवि, जो पहले आ रहे थे, बदलती हुई परिस्थिति की माँग पूरी करने लगे और अपनी सीमाओं के भीतर चुपचाप परिपक्व हो गए।

नाटक

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में थियेटर का आधार था प्राचीन गौरव; कुछ अभिनेता बहुत लोकप्रिय थे—उनकी लोकप्रियता अभिनय के लिए उतनी नहीं थी, जितनी कि उनके गाने के लिए; वही उस गौरव का परम्परित रूप मान लिया गया। उस समय के कुछ अच्छे गायक, उस्ताद, संगीत-रचयिता और वादक—रंगमंच की ओर खिंच आए, उनके कारण कई अ-मराठी आश्रयदाता रंगमंच को मिले। उन सबके लिए संगीत-प्रधान आकर्षण था; मराठी दर्शकों के लिए भी रंगमंच पर संगीत का आकर्षण अधिक प्रिय था ! तीसरे दशक के आरम्भ तक सवाक् चित्रपट शुरू हो गए। ये बोलपट संगीत और मनोरंजन के क्षेत्र में नाटक के प्रतिस्पर्धी बने। तब रंगमंच ने दुःख से अपने कमजोर हाथ सूने आसमान में फैलाये, और फिर वह घबराकर निराशा के ढेर में मूर्छित होकर गिर पड़ा। रंगमंच तब लड़खड़ा ही रहा था, चित्रपट वैभव अपने आपको विजेता की तरह मानने लगा।

दूसरे दशक के छोटे नाटककार, जिन्हें कुछ समय तक थोड़ी ख्याति भी मिली—लोकप्रियता और जन-अभिरुचि के लिए, कुछ परिवर्तन के साथ, वही पुराने फार्मूले दोहराने लगे। इतिहास और पुराण के नायक और खल-नायक तथा सन्त-कवि उनके लिए उपयोगी सामग्री बने। यह सब नायक मानो एक ही चेहरे-मोहरे के थे, वैसे ही खल-नायक भी एक-से थे। पहले हम जिन प्रमुख नाटककारों का उल्लेख कर चुके हैं, उनमें से खाडिलकर और कोल्हटकर रंगमंच के पतन के

साथ-साथ गिरते गए; केळकर नाटककार से अधिक अन्य विषयों में रस लेने लगे। मामा वरेरकर, जिनका पहला नाटक १९१७ में खेला गया, अब आगे बढ़े। वरेरकर के जीवन-वृत्त में आधुनिक मराठी रंगमंच के विकास का बड़ा-सा भाग व्यापता है। पौराणिक नाटकों से शुरू करके विषय और टेकनीक के निरन्तर प्रयोगकर्त्ता के नाते मामा ने अपनी इच्छानुसार रंगमंच का उपयोग सामाजिक समस्याओं के निरूपण के लिए किया। नाटकीय संवाद के नाम पर अब तक जो कृत्रिम भाषा चल रही थी, उससे उलटे वरेरकर के नाटकों में सहज खड़ी और खुली भाषा का प्रयोग किया गया। वरेरकर ने करीब ४० नाटक लिखे हैं और इधर के 'स-पूर्व बंगाल' (१९५३) और 'भूमिकन्या सीता' (१९५५) यह दिखलाते हैं कि उनकी नाट्य-शक्ति अभी भी कम नहीं हुई है। मराठी-रंगमंच को उन्होंने यथार्थवाद दिया और उसके क्षितिज को व्यापक बनाया, इसलिए रंगमंच को उनका आभारी होना चाहिए।

रंगमंच को सजीव बनाने के लिए सबसे बड़ा प्रयत्न 'नाट्य-मन्वन्तर' ने किया, जो कि यूरोप के 'न्यू ड्रामा' आन्दोलन से प्रभावित था। उनका पहला नाटक और वही एक-मात्र सफल नाटक था, 'आन्ध-ळ्याची शाळा' ('अंधों की पाठशाला', १९३३) नार्वे के नाटककार ब्यौर्नसन् के नाटक का श्री० वी० वर्तक द्वारा किया हुआ रूपान्तर था। यह नाटक बहुत अच्छी तरह दिग्दर्शित किया गया था, परन्तु उसका प्रभाव बहुत सीमित था। साधारण दर्शक इस नाटक में कुछ विदेशीपन की बू पाता था। यह दल बहुत जल्दी टूट गया। लेकिन इसने अच्छे दर्शकों के मन में रंगमंच के सुधार और सच्चे आधुनिक नाटक के लिए प्यास जगाई। कुछ अन्य अविकसित लेखकों ने एकांकी नाटक लिखकर फिल्मों की चुनौती का जवाब देने की कोशिश की, पर वह ज्यादा दिन न चल सका। बालमोहन कम्पनी के पुराने ढंग के दिग्दर्शन के टेकनीक और प्र० के० अत्रे के अर्ध-आधुनिक नाटक कुछ व्यावसायिक सफलता पाते रहे। अत्रे ने विशेष प्रकार के प्रहसन लिखे। कथानक उनमें बहुत

थोड़े थे, चरित्र हास्यपूर्ण थे। परन्तु अत्रे की रुचि अतिरंजित मेलोड्रामा की ओर थी। इसमें उन्हें और भी सफलता मिली। उनके समान प्रसिद्ध हास्य-लेखक जब मेलोड्रामा लिखने हैं तो यह खतरा पैदा होता है कि गम्भीर बातों को भी लोग मज़ाक समझने लगते हैं! इन सफलताओं के साथ अत्रे हल्के व्यंग-नाटक की ओर झुके और विनोद, चरित्र-चित्रण और भाषा-शैली की जो-कुछ शक्ति उनमें थी, उसका उन्होंने बहुत दुखद ढंग से व्यय किया। इस दशक के अन्त में वे फिल्म और पत्र-कारिता की ओर झुके, और रंगमंच एकदम गिर पड़ा। चौथे दशक के आरम्भ में मो० ग० रांगणेकर नामक एक पत्रकार, जो कि नाटककार बने थे, ने रंगमंच को अपनी 'नाट्य-निकेतन' नामक संस्था से पुनर्जीवित किया। उनका उद्देश्य केवल लोकरंजन था, इसलिए उन्होंने ड्राइंग-रूम तक सीमित, चतुर, सुखान्त नाटक लिखे। उनके नाटकों में मध्य-वर्ग के जीवन की बड़ी यथार्थता थी, संवाद बहुत सजीव थे और दो-तीन गाने बीच-बीच में आ जाते थे। दर्शकों को यह नए नाटक बहुत अच्छे लगे। इन वर्षों में अव्यवसायी रंगमंच विदेशी नाटकों के रूपान्तर की ओर अधिक झुका था इस कारण वह फीका और कृत्रिम होता गया।

उपन्यास

व्यावसायिक रंगमंच के पतन के साथ-साथ उपन्यास मध्यम वर्ग का प्रमुख मनोरंजन करने वाला बनकर सामने आया। बाद में फिल्म के एक सशक्त प्रतिस्पर्धी की तरह जम जाने पर, बुद्धिवादियों ने उसे अपना प्रिय व्यंग-बिन्दु बनाया। उपन्यास ने बड़ी विविधता प्राप्त की और कुछ अच्छे लेखकों के हाथों वह उत्तम सोद्देश्यता भी पा सका। वा० म० जोशी (१८८२—१९४३) ने 'रागिणी' से जो आशा बंधाई थी, वह पाँच और उपन्यासों से पूरी की। इस सबमें सबसे अच्छा है, 'सुशीलेचा देव' (१९३०), एक पढ़ी-लिखी स्त्री के बौद्धिक दृष्टिकोण के विकास का वह गहरा अध्ययन है। 'इन्दु काळे आणि सरला भोळे' (१९३५)

कला और नीति के बीच संघर्ष को व्यक्त करता है। यह संघर्ष कुछ व्यक्तियों के जीवन को उलझाता है। जोशी के सामाजिक विश्लेषण में दार्शनिक तटस्थता के साथ-साथ समाजवाद का हल्का स्मिन मिलता है। डाक्टर श्री० व्य० केतकर (१८८४—१९३७) के उपन्यासों में तटस्थता बहुत कम है। रूप और शैली के सब प्रचलित नियमों को अस्वीकार करके उन्होंने बहुत ही साधारण सामग्री में से, असम्भव कथानकों में से अपने उपन्यास रचे। डाक्टर केतकर समाज-शास्त्री थे, और उपन्यासों का उपयोग उन्होंने अपनी समस्याओं के समाधान के लिए किया। सर्व-साधारण पाठक उनके उपन्यासों के बेढंगेपन से चौंक उठे और जो अच्छे पाठक थे वे इन उपन्यासों के आन्तरिक परस्पर-विरोध से चकित हुए। परन्तु उन्होंने उपन्यास में बौद्धिक साहसिकता शुरू की। केतकर और जोशी मिलकर उपन्यास को एक ऐसी ऊँचाई पर ले गए कि जिससे सस्ते कथा-लेखन की दुर्बलता और भी ज्यादा स्पष्ट होती गई। मामा वरेरकर ने नाटक से भी अधिक उपन्यास लिखे। अब तक उन्होंने ११५ उपन्यास लिखे हैं। इनमें से २८ जासूसी उपन्यास हैं और ५८ बंगला के अनुवाद हैं। इन अनुवादों में, विशेषतया शरत्चन्द्र चटर्जी के अनुवादों में, बड़ी सहजता है। उनके मौलिक उपन्यास दलितों के जीवन को लेकर लिखे गए हैं। उनके पात्र, जो कि शोषित वर्ग के हैं, दुर्विनीत हैं और उनके नारी-चरित्र कुछ आवश्यकता से अधिक मुखर हैं। परन्तु उस समय गरीबी के जो भावुकतापूर्ण चित्र खींचे जाते थे और स्त्रियों की जैसी पूजा उस युग में की जाती थी, उनसे ये चित्र सर्वथा भिन्न हैं।

१९२६ के बाद दो प्रसिद्ध उपन्यासकार, जो कि उनके प्रशंसकों की दृष्टि में कहानी-लेखक, निबन्धकार और आलोचक भी बनते गए थे, ना० सी० फड़के और वि० स० खांडेकर हैं। अति-सरल आलोचक इन लेखकों के अपने दावों को सच मानकर फड़के को 'कला के लिए कला' वाले सिद्धान्त का, और खांडेकर को 'जीवन के लिए कला' वाले सिद्धान्त का प्रतिपादक मानते हैं। दोनों के नाम से ये लेबल चलते रहे हैं।

फड़के के कुशलतापूर्ण उपन्यासों में बड़ी चतुराई से एक ही केन्द्रीय फार्मूले के विविध रूप मिलते हैं। उनमें उच्च मध्य-वर्गीय जीवन के प्रेम-प्रसंगों का अति-सरलीकरण है। फड़के बहुत ही कुशल शिल्पी हैं, वे अपने कथानक को प्रभावशाली ढंग से खोलते चले आते हैं। उनकी शैली बहुत रम्य है और जब से उनकी ख्याति बढ़ती गई तब से आलोचकों और लेखकों में शैली और टेक्नीक को अनावश्यक महत्व दिया जाने लगा। फड़के के लिए उनकी शैली उनके कला-कौशल का एक भाग बन गई और उन्होंने इस बात को छिपाकर नहीं रखा। बड़ी ईमानदारी के साथ और मधुर ढंग से उन्होंने यह सब-कुछ अपनी ऐसी पुस्तिकाओं में समझाया कि 'उपन्यास और कहानियाँ कैसे लिखें ?' खांडेकर, फड़के के कुछ वर्षों बाद इस क्षेत्र में आये। पहले कहानी लेखन के क्षेत्र में उन्होंने कुछ कीर्ति अर्जित की थी। फड़के के फार्मूले को उन्होंने अपने फार्मूले से चुनौती दी। खांडेकर के सिद्धान्तों में आदर्शवाद का गहरा पुट था। उनके युवक चरित्र सामाजिक और राजनैतिक सेवा के लिए कटिबद्ध थे। उसके लिए वे बड़े जोर से भाषण देते; और इसी सिलसिले में प्रेम करना शुरू कर देते। पाठकों को खांडेकर की प्रामाणिकता ने प्रभावित कर दिया और सुखवादी फड़के के दोनों के प्रति वे जागरूक हो उठे। फड़के ने भी जल्दी से अपने कथानक बदले और उनके युवक पात्र किसी दीवानखाने के बदले राजनैतिक सभाओं में मिलने लगे। ये दोनों लेखक एक-दूसरे से भिन्न रहे, परन्तु उनके प्रशंसक दूर न रह सके। यह विचित्र जान पड़ेगा, परन्तु यह सच है कि एक ही समय दोनों लेखक एक-दूसरे के गुरु अथवा एक दूसरे से प्रभावित के लिए आपस की तरह बदले जाने लगे, और दोनों में ही एक सा अन्तर प्राप्त होने लगा। अब तक दोनों लेखक कई विवादों में फंसते आ रहे हैं; परन्तु इन दोनों में कुछ [illegible] दिखाई पड़े हैं। परन्तु अब उनके

* [illegible]की के लिए [illegible] नहीं रहे, [illegible] फड़के के। म० मं०
[illegible] के उपन्यासों पर राजनैतिक कुछ आवश्यकता से अधिक

दर्द हुई थी और वह उपन्यास के कथानक में गहरा भी नहीं हो सकी थी। उनकी आलंकारिक शैली की तरह वह राजनीति भी एक बाह्य शोभा की तरह जान पड़ती थी। पु० य० देशपांडे में राजनीतिक दक्षिण थी, परन्तु भावुकता और शैली के आडंबर [illegible] वह वेग कुंठित हो गई। यदि विश्राम बेडेकर के एक-मात्र उपन्यास 'रणांगण' (१९३९) में विशिष्ट अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का विश्लेषण और प्रमुख पात्रों के जीवन पर उसका प्रभाव दर्शाकर ग्रहण किया जाता तो बाद के उपन्यासों में अर्ध-राजनैतिक रचनाएँ कम लिखी जातीं। यदि भूतकाल के इतिहास को पिछली पीढ़ियों के संघर्ष में कल्पनारम्य बनाया, तो इस पीढ़ी के उपन्यासकारों ने वर्तमान इतिहास को रोमांटिक रूप दिया, और अधिकतर पाठक इसीको यथार्थवाद और राजनीति मानकर ग्रहण करने लगे।

पाठकों और आलोचकों का एक दल,—यद्यपि वह बहुत छोटा था,—उस समय के प्रचलित उपन्यास-साहित्य के प्रति अपने विरोध का स्वर बराबर उठाता रहा। कुछ लेखकों को प्रेरणा मिली कि वे इस फैशन को तोड़कर नए रास्ते खोजें। जो लेखिकाएँ इस समय आगे बढ़ीं, उनमें कई बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। 'विभावरी शिरूरकर'—जिनका असली नाम श्रीमती मालती बेडेकर है, यह बात अब छिपी नहीं है—ने अपनी कहानियों और दो उपन्यासों से (१९३३-१९३४) तहलका मचा दिया। आधुनिक नारी के दुःखों का उत्कट मर्म इनकी रचनाओं में अभूतपूर्व ढंग से व्यक्त हुआ था। श्रीमती गीता साने ने बड़े साहस से लिखा, परन्तु उतनी प्रभावशालिता से नहीं। 'कृष्णाबाई'—श्रीमती मुक्ताबाई दीक्षित—और श्रीमती कमलाबाई टिळक मध्य-वर्ग के घरों की कहानियाँ उतनी चुनौती से नहीं, किन्तु अधिक सूक्ष्मता से लिखती रहीं। श्रीमती कुसुमावती देशपांडे के संवेदनशील रेखा-चित्र बहुत लोकप्रिय हुए, उनमें काव्य-गुण और आलोचनात्मक गुण बहुत अच्छी तरह संतुलित हैं। हाँ, कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी अवश्य थीं जो स्त्रियों के बारे में उसी तरह से

लिखती रहीं जैसे कि स्त्री-दाक्षिण्य-प्रदर्शक पुरुष प्राचीन काल से लिखते आ रहे थे। जिन लेखकों ने लीक-लीक छोड़कर नया रास्ता अपनाया, उनमें र० वि० दिघे का नाम प्रमुखतः लेना चाहिए। उन्होंने सह्याद्रि के आदिवासियों के बारे में घटना-बहुल उपन्यास लिखे, यद्यपि उन्होंने भी रोमांस का झीना आवरण अपने कथानक पर डाला। साने गुरुजी (१८९९-१९५०) की भावुकतापूर्ण, उपदेश-प्रधान कहानियाँ और उपन्यास १९४२ के बाद किशोरों पर बड़ा जादू कर गए। इससे एक लाभ हुआ कि उन दिनों जो खराब जासूसी उपन्यास प्रचलित हो गए थे, कम-से-कम तरुण पीढ़ी उनसे तो बच सकी।

कहानी

कहानी इस काल में एक विशेष साहित्यिक रूप के नाते विकसित हुई—पुराने काल के ह० ना० आपटे, श्री० कृ० कोल्हटकर, न० चिं० केळकर, वि० सी० गुर्जर तथा अन्य—इनकी कहानियाँ कोरे कथानक या संक्षिप्त उपन्यास के रूप में होती थीं, उनका लेखन भी ठीक वैसे ढंग से होता था जैसे उपन्यास का। दिवाकर-कृष्ण की 'समाधि और छः और कहानियाँ' (१९२३) से रचना की अन्विति और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मराठी-कहानी में शुरू हुआ। एक प्रकार से आधुनिक कहानियों का यह पहला संग्रह था। खांडेकर और फड़के ने अपने विशेष गुण कहानी को दिए और इस दशक के अन्त तक यह रूप सुनिश्चित हो गया। तीसरे दशक में कुछ और नई विविधता कहानी में शुरू हुई, जो कि खांडेकर और फड़के की शैलियों की प्रतिक्रिया के रूप में थी। य० गो० जोशी ने इन दोनों लोकप्रिय लेखकों की कृत्रिमता पर हँसते हुए घरेलू जीवन की भावुक कहानियाँ लिखीं। उनसे वे लोकप्रिय बने। वि० वि० बोकिल ने बड़ी अच्छी कहानियाँ लिखनी शुरू की थीं, निम्न मध्य-वर्ग की दयनीय दशा की झलक उनमें मिलती थी, यद्यपि कभी-कभी हास्य का पुट उनमें अधिक हो जाता, परन्तु इनकी कहानियों में न संयम था, न विविधता।

कोकिल ने हास्यप्रियता को उपन्यासों में बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया और उनके अच्छे गुणों का इस प्रकार से अन्त हो गया। अनन्त काणेकर की थोड़ी-सी कहानियाँ सयत व्यंग का अच्छा नमूना थीं, परन्तु लेखक ने स्वयं इस कला को बढ़ाया ही नहीं। श्री० म० माटे की सशक्त कहानियों ने उस समय की लोकप्रिय कहानियों की नकली मधुरता के विरोध में ग्राम-जीवन के चित्र प्रस्तुत किये। कुछ लोगों ने प्रादेशिक या आंचलिक कहानियाँ लिखने का यत्न भी किया। कुछ लेखक गोआ के प्राकृतिक सौंदर्य और महाराष्ट्र के प्राचीन जीवन की ओर झुके, परन्तु अधिकतर लेखकों ने अनैतिकता के चित्रण के लिए इसे एक सुविधाजनक पार्श्व-भूमि समझकर इसका उपयोग किया। चि० वि० जोशी, प्र० के० अत्रे और शामराव ओक-जैसे हास्य-लेखक कभी-कभी साहित्यिक व्यंग के साधन के रूप में कहानी का और भी चतुराई से उपयोग करते रहे।

व्यक्तिगत निबन्ध और दूसरा गद्य

अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा व्यक्तिगत निबंध अंग्रेजी से अधिक सीधा चल निकला। वह दूसरे दशक के अन्त में जम गया। फड़के और खांडेकर दोनों ने उसे पाठकों के लिए अधिक रोचक बनाया। फड़के के निबन्ध अधिक चुस्त-दुरुस्त और हल्के-फुल्के थे। खांडेकर के निबन्धों के अपने अलंकार थे, जिनमें कि भावुकता भी एक था और उन अलंकारों में सुघरता कम थी। फड़के ने अपने निबन्ध-लेखन का 'तन्त्र' समझा दिया, और हर कोई समझने लगा कि वह भी अच्छा निबन्ध-लेखक हो सकता है। ना० म० संत को छोड़कर शायद ही किसी ने अच्छे निबन्ध लिखे। अनंत काणेकर के निबन्धों में जनसाधारण के रूढ़ विश्वासों को उलट-पुलट कर, उनका हल्का ढंग से मज़ाक उड़ाकर, जीवन-परक भाष्य था। यह ढंग ऐसा था कि अनुकरण के लिए बहुत आसान था; काणेकर ने स्वयं की पुनरावृत्ति बहुत अधिक की; परन्तु उन्होंने इस साहित्यिक रूप को बहुत जल्दी छोड़ दिया। श्रीमती कुसुमावती

देशपांडे का अनुकरण करना अधिक कठिन था; क्योंकि उन की शैली में कोई सहज पहचानी जाय ऐसी विशिष्टता नहीं थी; और उनकी सुकुमारता और काव्यमय भावना सचमुच म व्यक्तिगत थी। इस विधा की लोकप्रियता और सफलता तथा उसका शीघ्र ह्रास, चूंकि उसकी छोटी-छोटी युक्तियाँ जल्दी ही चुक गईं, युग के स्वभाव का प्रतिबिंबन करता है।

विविध विधाओं में प्रयोग और कार्य से जीवनी-साहित्य को बल मिलना चाहिए था। परन्तु वह नहीं मिला; वह आजतक वैसा ही बना रहा। परन्तु एक बड़ी प्रसिद्ध आत्म-कथा इस काल में लिखी गई। इसका नाम है श्रीमती लक्ष्मीबाई टिळक की 'स्मृति-चित्रे' (१६३४-४६)। लक्ष्मीबाई रेवरेंड ना० वा० टिळक नामक कवि की पत्नी थी। इस स्त्री को अक्षर-ज्ञान नहीं था, वाक्य-रचना तो दूर की बात है! इस युग के अधिकतर लेखकों का ध्यान छोटी-छोटी बातों में उलझा रहा, फिर भी कुछ लेखकों ने गम्भीर गद्य की ओर ध्यान दिया। वा० म० जोशी, डा० केतकर, श्री० म० माटे, वि० दा० सावरकर (जिनकी कविता भी, संदेश देने की भावना से लिखी गई थी) और दां० दा० जावडेकर इन लेखकों में से कुछ प्रमुख नाम थे। कुल मिलाकर, पत्रकारिता जन-साधारण की रुचि से समझौता कर बैठी, और अच्छे साहित्यिक पत्र मुश्किल से चल सके। चतुर पत्रकार के लिए अत्यधिक सरलीकरण और जटिल सिद्धांतों को जनसाधारण के उपयोग के लिए पनियल बनाने से बढ़कर कोई बड़ा खतरा नहीं। केळकर उसी में अटक गए। फडके भी, पत्रकार न होकर, उसी जाल में फँसे। यह इस युग की ही विशेषता थी। बहुत-सा आलोचनात्मक साहित्य भी लिखा गया, जिसमें से बहुत-सा 'टेक्नीक' और 'तंत्र' के यांत्रिक विचार में अपनी शक्ति का अपव्यय करता रहा। कुछ और शक्ति का अपव्यय संस्कृत-काव्य-शास्त्र की बासी कढ़ी में उबाल देने में किया गया। साहित्यिक जमात का एक हिस्सा, जो कि पश्चिम से प्रेरणा पाता रहा, मार्क्सवाद की विचार-धारा से आकर्षित हुआ। इसमें से अनिवार्य रूप

से एक दिलचस्प बहस शुरू हुई, और इसमें से कुछ पुनर्विचार पैदा हुआ।

१९४५-५५

पहले काल के अंत तक साहित्यिक विधाओं के प्रति बड़ा ही असंतोष आरम्भ हो गया था, जो साफ दिखाई देता था। १९४२ का आन्दोलन, दूसरा महायुद्ध और उसके बाद की राजनैतिक अस्थिरता तथा अंत में स्वतन्त्रता के आगमन ने साहित्य के प्रति एक 'नये दृष्टिकोण' के आरम्भ के लिए सार्थक पार्श्वभूमि का काम किया। जनसाधारण के जीवन से सुरक्षित रूप से तटस्थ रहने की वृत्ति साहित्य में ठहराव पा गई थी। इसकी अपनी आत्म-प्रवचनाएँ थी। उन्हें जैसे एक झकझोर मिली। हमारे खंडित जीवन की करुण बेतरतीबी इस सारे ऊपर से ढाँके हुए तथाकथित सुन्दर आवरण में से झाँक उठी। यह मुद्रा अधिक देर तक न टिक सकी। इस नई वृत्ति से जिन साहित्यरूपों को विशेष नवजीवन मिला, वे थे कविता और लघु-कथा। अब इन माध्यमों से लेखक जीवन की विविधता, उसकी अति-अज्ञात गूढ़ता को खोजता है। जिन पदों ने हमारी अनुभूतियों को नीरस और एक रूप बना दिया था, उन्हें अब तोड़ दिया गया है।

नई कविता पाठक को जगाती है और कवि की अनुभूति की सूक्ष्म धार को महसूस करने के लिए जैसे उसे भीतर से बाहर खींच लाती है। अब जल्दी से किये जाने वाले साधारणीकरण नहीं हैं, काव्य की वस्तु उत्कट और व्यक्तिगत है। विचार और भावना संश्लिष्ट हो गई है। काव्य के बाह्य रूप को उसका उचित स्थान दिया गया है, और अब वह कवि के लिए ग्रंथि के समान नहीं है। उसके कल्पना-चित्र बिलकुल नपे-तुले होते हैं; चूंकि वे सजीव अनुभव में से निकलते हैं। विज्ञान ने उसे बड़े ही प्रभावशाली रूपक दिये हैं। जीवन के सत्य का कोई भी अंग कवि के लिए पराया नहीं है। उदाहरणार्थ सेक्स को

कोमलता और सुन्दरता दोनों ही कवि मोपकर रख देता है। अर्द्ध-चेतन मन की अनिर्बंध गड्डमड्डियाँ जैसे बाहर फेंक दी गई हैं। शिक्षित या जोपशी संवेदना वाला पाठक इस नई कविता में जो दुस्सहता देखता है, उसका बहुत-कुछ कारण जिस प्रकार के अनुभव-विश्व में से वह अपनी कविता रचता है उसके स्वभाव में ही निहित है। भाषा की दृष्टि से नई कविता, काव्य-शैली की कृत्रिम अपनी भाषा की अपेक्षा बोल-चाल का गौरवगान पसन्द करती है।

बा०सी० मर्ढेकर (१९०७–१९५६) की 'काही कविता' (१९४७) के साथ नई कविता का पूरा प्रभाव सहसा पहली बार सबने अनुभव किया। यद्यपि पु०शि० रेगे की पूर्व रचना में नई कविता के कुछ विशिष्ट लक्षण पहले से दिखाई देने लगे थे। मर्ढेकर की कविता एक ऐसे गहरे संवेदनशील व्यक्ति की कविता है, जो कि वीरान जीवन की निराशाओं से मूलतः जुड़ा गया है। परन्तु इस कविता में शोक नहीं है, उसमें एक निजी सौंदर्य-स्वप्न और उसकी पूर्ति की आशा है। मर्ढेकर के कल्पना-चित्र ऐंद्रियिक कम और बौद्धिक अधिक हैं, जबकि रेगे की कविता अपने ऊष्म विवरणों सहित व्यक्तिगत उत्तेजना के अल्पजीवी क्षणों को पकड़ रखती है। रेगे की कविता में और लोगों की तथा अन्य विषयों की दुनिया जैसे जान-बूझकर अलग रखी गई है। उनका उपयोग केवल वहीं तक होता है, जहाँ तक कवि का अनुभव उससे सपुष्ट किया जाता है। मर्ढेकर और रेगे दोनों ऐसी गठित अभिव्यंजना का प्रयोग करते हैं कि उसमें अनावश्यक को बिलकुल कम कर दिया गया है। कवि अपनी कविताओं पर भाष्य नहीं करता। शरच्चंद्र मुक्तिबोध और विंदा करन्दीकर अपने आनन्द में शब्दों को कुछ अधिक ढील देते हैं—और अपने कल्पना-चित्रों को विकसित होने का अधिक अवकाश देते हैं—विशेषतः अपनी सामाजिक आन्दोलन-प्रधान कविताओं में। उसी तरह के कवि हैं मंगेश पाडगाँवकर, जिनके प्रारम्भिक उम्मीदवारी के दिन, जो कि बोरकर और तांबे-शैली के मधुर अनुकरण के दिन थे, अभी भी उनमें

मँडराते रहते हैं। वसन्त बापट भी नई शैली के विकसित कवि हैं, परन्तु उन्होंने अपने मूल कवि-स्वभाव के प्रति अन्याय नहीं होने दिया है। श्रीमती इंदिरा संत के काव्य में प्रौढ़ता और भी सहज ढंग से निर्मित हुई। क्योंकि उनके निवेदनात्मक (अप्रदर्शनात्मक) गीति-काव्य ने उन्हें अनावश्यक तत्त्वों से सदा दूर रखा। श० दि० भावे ने कुछ नये ढंग की सचेष्ट रचना अल्पकाल के लिए की, और बाद में वे जैसे चुप हो गए। इनमें से प्रत्येक कवि ने नई कविता में अपना व्यक्तिगत स्वर मिलाया और इस प्रकार से सबने मिलकर नई मराठी कविता को बड़ी विविधता तथा समृद्धि दी। इनमें से कुछ कवियों ने सार्वजनिक काव्य-वाचन किया, और इस प्रकार से पुराने आलोचकों एवं केवल दोषदर्शियों के द्वारा साधारण पाठक तथा आधुनिक कविता के बीच में जो खाई पैदा हो रही थी उसे कवियों ने पाटा। इस नये वातावरण ने कई युवक-युवतियों को उत्तम कविता लिखने के लिए प्रेरित किया। पुराने कवियों में 'अनिल' ने इस वातावरण के अनुकूल अपने-आपको ढाला और अन्य कवियों से अधिक उदारता से नवीन प्रभावों को ग्रहण किया। बहुत कम कवि इस नये प्रभाव से अप्रभावित रहे। यह नहीं कि पुरानी कविता से नई कविता की ओर सभी कवि मुड़ गए हों। ग० दि० माडगूळकर की झिलमिलाती हुई गीत-काव्य-सुन्दरता प्राचीन परम्परित संत-काव्य तथा लोक-गीतों की शैली और कल्पना-चित्रों पर आश्रित है; परन्तु रूप और वस्तु के बीच में पूरा समन्वय, और उनके अधिक अच्छे गीतों में कल्पना-चित्रों की सजीवता उन्हें उन अन्य कवियों से भिन्नतर और उच्चतर बनाती है, जो कि निरी नक़ल करते हैं। परन्तु पुरानी और नई कविता की गम्भीर बहस बिलकुल खोखली जान पड़ती है जब कि 'बहिणाईची गाणी' (बहिणाई के गाने, १९५२)-जैसे कविता-संग्रह द्वारा एक बे-पढ़ी-लिखी किसान स्त्री अपनी स्फूर्तिदायिनी प्राचीन समझदारी से पाठक को हिला देती है—इस कवयित्री का नाम है: श्रीमती बहिणाबाई चौधरी।

बीभत्सता और सुन्दरता दोनों ही कवि खोलकर रख देता है। अर्द्ध-चेतन मन की अनिर्बंध सहस्मृतियाँ जैसे बाहर फेंक दी गई हैं। शिथिल या मोथरी संवेदना वाला पाठक इस नई कविता में जो दुरसहता देखता है, उसका बहुत-कुछ कारण जिस प्रकार के अनुभव-विश्व में से वह अपनी कविता रचता है उसके स्वभाव में ही निहित है। भाषा की दृष्टि से नई कविता, काव्य-शैली की कृत्रिम नकली भाषा की अपेक्षा जीवन्त बोल-चाल का सीधापन पसंद करती है।

बा०सी० मर्ढेकर (१९०७–१९५६) की 'काही कविता' (१९४७) के साथ नई कविता का पूरा प्रभाव सहसा पहली बार सबने अनुभव किया। यद्यपि पु०शि० रेगे की पूर्व रचना में नई कविता के कुछ विशिष्ट लक्षण पहले से दिखाई देने लगे थे। मर्ढेकर की कविता एक ऐसे गहरे संवेदनशील व्यक्ति की कविता है, जो कि वीरान जीवन की निराशाओं से मूलतः कुतरा गया है। परन्तु इस कविता में शोक नहीं है, उसमें एक निजी सौंदर्य-स्वप्न और उसकी पूर्ति की आशा है। मर्ढेकर के कल्पना-चित्र ऐंद्रियिक कम और बौद्धिक अधिक हैं, जबकि रेगे की कविता अपने ऊष्म विवरणों सहित व्यक्तिगत उत्तेजना के अल्पजीवी क्षणों को पकड़ रखती है। रेगे की कविता में और लोगों की तथा अन्य विषयों की दुनिया जैसे जान-बूझकर अलग रखी गई है। उनका उपयोग केवल वहीं तक होता है, जहाँ तक कवि का अनुभव उससे समृद्ध किया जाता है। मर्ढेकर और रेगे दोनों ऐसी गठित अभिव्यंजना का प्रयोग करते हैं कि उसमें अनावश्यक को बिलकुल कम कर दिया गया है। कवि अपनी कविताओं पर भाष्य नहीं करता। शरच्चंद्र मुक्तिबोध और विंदा करन्दीकर अपने आनन्द में शब्दों को कुछ अधिक ढील देते हैं—और अपने कल्पना-चित्रों को विकसित होने का अधिक अवकाश देते हैं—विशेषतः अपनी सामाजिक आन्दोलन-प्रधान कविताओं में। उसी तरह के कवि हैं मंगेश पाडगांवकर, जिनके आरम्भिक उम्मीदवारी के दिन, जो कि बोरकर और तांबे-शैली के मधुर अनुकरण के दिन थे, अभी भी उनमें

मँडराते रहते हैं। वसन्त बापट भी नई शैली के विकसित कवि हैं, परन्तु उन्होंने अपने मूल कवि-स्वभाव के प्रति अन्याय नहीं होने दिया है। श्रीमती इंदिरा संत के काव्य में प्रौढ़ता और भी सहज ढंग से निर्मित हुई। क्योंकि उनके निवेदनात्मक (अप्रदर्शनात्मक) गीति-काव्य ने उन्हें अनावश्यक तत्त्वों से सदा दूर रखा। म० दि० मावे ने कुछ नये ढंग की सचेष्ट रचना अल्पकाल के लिए की, और बाद में वे जैसे चुप हो गए। इनमें प्रत्येक कवि ने नई कविता में अपना व्यक्तिगत स्वर मिलाया और इस प्रकार से सबने मिलकर नई मराठी कविता को बड़ी विविधता तथा समृद्धि दी। इनमें से कुछ कवियों ने सार्वजनिक काव्य-वाचन किया, और इस प्रकार से पुराने आलोचकों एवं केवल दोषदर्शियों के द्वारा साधारण पाठक तथा आधुनिक कविता के बीच में जो खाई पैदा हो रही थी उसे कवियों ने पाटा। इस नये वातावरण ने कई युवक-युवतियों को उत्तम कविता लिखने के लिए प्रेरित किया। पुराने कवियों में 'अनिल' ने इस वातावरण के अनुकूल अपने-आपको ढाला और अन्य कवियों से अधिक उदारता से नवीन प्रभावों को ग्रहण किया। बहुत कम कवि इस नये प्रभाव से अप्रभावित रहे। यह नहीं कि पुरानी कविता से नई कविता की ओर सभी कवि मुड़ गए हों। ग० दि० माडगूळकर की झिलमिलाती हुई गीत-काव्य-सुन्दरता प्राचीन परम्परित सन्त-काव्य तथा लोक-गीतों की शैली और कल्पना-चित्रों पर आश्रित है; परन्तु रूप और वस्तु के बीच में पूरा समन्वय, और उनके अधिक अच्छे गीतों में कल्पना-चित्रों की नवनवता उन्हें उन अन्य कवियों से भिन्नतर और उच्चतर बनाती है, जो कि निरी नकल करते हैं। परन्तु पुरानी और नई कविता की गम्भीर बहस बिलकुल खोखली जान पड़ती है जब कि 'बहीणाईची गाणी' (बहिणाई के गाने, १९५२)-जैसे कविता-संग्रह द्वारा एक बे-पढ़ी-लिखी किसान स्त्री अपनी स्फूर्तिदायिनी प्राचीन समझदारी से पाठक को हिला देती है—इस कवयित्री का नाम है: श्रीमती बहिणाबाई चौधरी।

नई कविता और नई कहानियों के बीच का घनिष्ठ सम्बन्ध गंगाधर गाडगिळ की कहानियों में बहुत अच्छी तरह से व्यक्त हुआ है। ये कहानियों के क्षेत्र में सबसे मार्मिक प्रयोगकर्ता हैं। गाडगिळ की अजीब कल्पना-शक्ति हमारे अनुभवों की गहराई में जाकर परस्पर अज्ञात विरोध व्यक्त करती है। मानो हमारे भीतर की झाँकी बाहर दिखाई गई है; जो छोटे-छोटे सपने हमने अपने आराम के लिए छाती से चिपटाये थे, उन्हें हमसे छीन लिया जाता है। अरविन्द गोखले व्यक्ति के भीतर परिस्थितियों के प्रति तनाव का वर्णन करते हैं। भावे व्यक्ति पर अधिक जोर देते हैं, परन्तु उनका स्फूर्ति-स्थान व्यक्ति और समाज दोनों से बाहर है; वह है परम्परित नीतिवाद। व्यंकटेश माडगूळकर की कहानियों में देहात के सही-सही चित्र मिलते हैं। झूठे सौंदर्य-वर्णन देहातों के बारे में सुप्रचलित थे, उन्हें तोड़कर देहात की सच्ची झाँकी इस कहानी-लेखक ने दी है। देहाती लोगों के वृथा-भावुक चित्र देकर उनके प्रति करुणा उपजाने की जो वृत्ति अन्य कहानी-लेखकों में थी, उसका पूरा दम्भस्फोट व्यंकटेश ने किया है। इनकी कहानियों में देहाती लोग व्यक्ति के नाते जीवित हैं; वे उन पर कोई जबरदस्ती के सिद्धान्त नहीं लटकाते। ये चार लेखक आधुनिक मराठी कहानियों के सच्चे निर्माता माने जाते हैं। इनके हाथों कहानी ने बड़ी गहराई और विविधता प्राप्त की है। दि० बा० मोकाशी और 'शान्ताराम' ने भी कहानियों में योगदान दिया है। इन सभी कहानियों में साधारणतः कथानक बहुत कम होते हैं, घटना के पीछे जो वृत्ति है वही कहानी को अधिक आकार देती है। आरम्भिक विरोध के बाद, जो कि नएपन के कारण अनिवार्य था, पाठक इस कहानी के प्रति अधिक उत्सुकता से खिंचने लगा है। कविता में भी बहुत-से तरुण लेखक रूप-शिल्प की ओर पहले खिंचे थे। बाद में उसका पूरा पता चल जाने पर नवप्राप्त स्वतंत्रता के लिए इनमें से हर कवि संघर्ष करने लगा और अपना अलग रास्ता बनाने लगा। माडगूळकर की तरह से रणजीत देसाई और डी०एम० मिरासदार भी गाँवों की

कहानियाँ लिखते हैं। सदानन्द रेगे भी माडगिल की तरह विक्षिप्त ढंग से लिखते हैं; पर उनका अपना एक तरीका है। पुराने ढंग की कहानियाँ अभी भी लिखी जाती हैं और उनमें कुछ तो महत्त्वपूर्ण भी हैं। महादेव शास्त्री जोशी की गोआ-सम्बन्धी कहानियाँ भावुकता से भरी हैं। वहाँ के सरल, ईश्वर से डरने वाले लोगों का वर्णन उनमें है। उनकी प्रामाणिकता पाठकों को मोह लेती है। यह वर्णन कदाचित् गाँव-सम्बन्धी पुराने अनैतिक प्रेम की लोकप्रिय प्रादेशिक कथा की प्रतिक्रिया में निर्मित हुए। मा० ग० गोरे के रेखा-चित्र भी, जो कि अधिकतर कोंकण के लोगों के विषय में हैं, भावुकतापूर्ण हैं, लेकिन कुछ कम मात्रा में। *उनका साहित्यिक गुण अधिक स्पष्ट है।*

यह एक विचित्र बात है कि कहानी की भाँति उपन्यास का विकास नहीं हो रहा है। युद्ध-पूर्व युग के उपन्यास में जो अवास्तवता, भुषा-भावुकता और 'तंत्र' के सौंदर्य पर अधिक बल था, अभी भी कुछ लेखकों के प्रयत्न में वही आग्रह बाधा की तरह पाता है। और इस कारण से, कुछ लेखक उपन्यास को पर्याप्त प्रौढ़ता नहीं दे पाते। कुछ अपवाद अवश्य हैं, जिनमें सबसे अधिक आशा-स्थान हैं श्री० ना० पेंडसे। इनके चार उपन्यास लेखक की शक्ति के विकास के परिचायक हैं। कोंकण के एक अपेक्षाकृत अज्ञात प्रदेश के बारे में ये उपन्यास हैं। इस प्रदेश के अनदय जीवन की सतह के नीचे जो संघर्ष चल रहा है उन्हें पेंडसे ने पकड़ा है। उनके कारण उनके उपन्यासों को एक नाटकीय गुण प्राप्त हुआ है। उनके चरित्रों में इस नाटकीयता को बनाये रखने वाली शक्ति है। एस० आर० विचलकर का प्रथम उपन्यास 'सुनीता' (१९४८)—विभाजन के समय पूर्वी बंगाल के दुःखों पर आधारित—बड़ा आशा-स्थान था, परन्तु उनका दूसरा और अन्तिम उपन्यास उस आशा को पूरा न कर सका। विभावरी शिरूरकर (श्रीमती मालती बेडेकर) के 'बळी' में जरायम पेशा आदिवासियों की बस्ती का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत है। वि० वा० शिरवाडकर (कवि 'कुसुमाग्रज') के उपन्यास पुराने और नए

का विचित्र मिश्रण प्रस्तुत करते हैं—नवीन सामाजिक परिस्थितियाँ और रोमांटिक के प्रति पुराने झुकाव दोनों उनमें मिलते हैं। यही बात दूसरे कवि बा० भ० बोरकर के विषय में कही जा सकती है, जिनके उपन्यास गोआ के बारे में होते हैं। बा० सी० मर्ढेकर ने कविता में जितना काम किया उतना उपन्यास में नहीं किया; उनकी विशेषता यही है कि उन्होंने 'संज्ञा-प्रवाह' (स्ट्रीम आफ कान्शसनेस) की शैली का पहला उपन्यास मराठी को दिया। अचेतन मन के चित्रण का इसी प्रकार का प्रयत्न वसन्त कानेटकर ने भी अपने उपन्यासों में किया, परन्तु उन्हें और भी कम सफलता मिली। गो० नी० दाण्डेकर काफी अधिक लिखते हैं और मानो उपन्यास को जहाँ साने गुरुजी ने छोड़ा था वहाँ से उसे आगे बढ़ाते हैं। परन्तु उनकी रचना एक-सी नहीं है, उसमें ऊबड़-खाबड़पन है; और भावुकतापूर्ण तथा सचमुच भावना-सम्पन्न के बीच में जो झीनी मर्यादा-रेखा है, उसे वे पूरी तरह निभा नहीं पाते। पुराने लेखकों में फड़के अभी भी लिख रहे हैं और अपने 'तंत्र' के उदाहरण पेश करते हैं, कहा जा सकता है कि उनके कुछ थोड़े अनुयायी भी हैं।

रंगमंच की हालत अच्छी नहीं है। बड़े शहरों में जो कुछ अव्यावसायिक हलचल दिखाई देती है, वह प्राय नाट्य-महोत्सवों के समय अधिक जोर पकड़ती है और बाद में अपनी शक्ति समाप्त हो जाती है। अच्छा अव्यावसायिक अभिनेता 'आधुनिक' नाटक खेलना चाहता है, परन्तु वह इतनी सहजता से नहीं मिलता। जो कुछ पुराना व्यावसायिक मंच बाकी है वह सस्ती मनोरंजन की युक्तियों से संतुष्ट है, परन्तु अब उसके भी पैर लड़खड़ा रहे हैं। बम्बई के मजदूर-जगत् में बहुत दिनों से नाटक खेलने का रिवाज चला आ रहा है, परन्तु ये नाटक उच्च वर्ग के नाटकों से बिलकुल अलग ढंग के होते हैं। उच्च वर्ग के नाटक तो 'साहित्यिक' होने का गौरव रखते हैं, जबकि मजदूरों के नाटक पुराने नाटकों की सभी बुराइयाँ लिये हुए रहते हैं, उनमें पुराने नाटक के गुण बहुत कम

हैं। मामा वरेरकर के अलावा कुछ और नाम हैं जिनसे इस दिशा में आशा की जा सकती है। नाना जोग ने नाटक को सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए प्रभावशाली रूप से प्रेरित किया है। श्रीमती मुक्ताबाई दीक्षित ने भी वही काम किया है, परन्तु उनके नाटकों की समस्याओं का क्षेत्र उतना व्यापक नहीं है। व्यंकटेश वकील के नाटकीय गुण, विशेषत संवाद लिखने के, दिग्दर्शन के अभाव में बेकार पड़े हुए हैं। प्रायः यही बात इन सभी नाटककारों और दूसरे कई लोगों के लिए कही जा सकती है। अव्यावसायिक रंगमंच के दो नए शोध हैं, वि० म० मराठे—जो कि ऐतिहासिक नाटक के पुनर्जागरण की आशा बँधाते हैं—और विजय तेंडुलकर, जो बहुत प्रभावशाली लेखक हैं और व्यंग उनका प्रधान गुण है। इधर कई वर्षों में सबसे अधिक सफल नाटक रहा है पी० एल० देशपांडे का 'अमलदार'; जो गोगोल के 'सरकारी इन्स्पेक्टर' का बहुत ही मनोरंजक रूपान्तर है। और भी कई लेखक हैं, जिन्होंने यूरोपीय नाटकों से रूपान्तर किये हैं, इनमें एक प्रमुख लेखक हैं अनन्त काणेकर। लोगों में नाटक देखने का सच्चा उत्साह और प्रेम है, परन्तु थियेटर का विकास जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हो सका है। उसके मार्ग में बहुत बाधाएँ हैं। फलतः रंगमंच का उपयोग वे लोग कर रहे हैं जो कि सस्ता मुनाफा या थोड़ी-सी कीर्ति चाहते हैं।

दूसरी विधाओं के बारे में कुछ कहने लायक नहीं है। व्यक्तिगत निबन्ध गई पीढ़ी के टेक्नीकवादियों ने जो बिगाड़ दिया सो अब तक नहीं पनपा। एक ऐसे ढंग का नया निबन्ध जो कि व्यक्तिगत और गप-शप के ढंग का नहीं है, फिर भी उसमें एक सूक्ष्म व्यक्तिगत रस और गम्भीर आशय है, बढ़ रहा है। श्रीमती इरावती कर्वे और कुमारी दुर्गा भागवत ने इस नए ढंग के निबन्ध को सफलता से प्रयुक्त किया है। रा० भि० जोशी के 'यात्रा रेखा-चित्रों' में सच्चे निबन्ध के गुण हैं। हास्य का विशेष रूप से अलग वर्णन करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि उसका जगह-जगह पर उल्लेख हो चुका है; विशेषतः नई कहानी के प्रसंग में। पु०

स० देशपांडे के व्यंग-रेखा-चित्र और हास-परिहासपूर्ण नाटक विशेष उल्लेख-योग्य हैं। साहित्यिक समालोचना में बा० सी० मर्ढेकर की कृतियाँ आज तक कला की गहराई में अन्य आलोचना जितनी नहीं पैठी थी उससे भी अधिक पैठती हैं। इस पर वाद-विवाद भी बहुत हुआ, परन्तु ये और अन्य वाद-विवाद उदाहरणार्थ कलाकार और समाज के सम्बन्धों पर बड़ा मनोरंजक वाद-विवाद हुआ—साहित्य में गम्भीर लेखन और स्वीकृत मान्यताओं तथा निष्ठाओं के पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न पेश करते हैं। इस प्रकार के पुनर्मूल्यांकन की ओर स्वस्थ दिशा-दर्शन देने वालों में श्रीमती कुसुमावती देशपांडे, वा० ल० कुलकर्णी और दि० के० बेडेकर-जैसे आलोचक हैं। जिस सतह पर यह वाद-विवाद चल रहा है, उनसे आशा बँधती है कि साहित्यिक अध्ययन का भविष्य उज्ज्वल है।

मलयालम

डॉ० कुञ्जन् राजा

प्रास्ताविक

मलयालम करीब एक करोड़ ४० लाख लोगों की भाषा है। मलयालम-भाषा-भाषी केरल नाम के छोटे-से सुन्दर देश के निवासी हैं, जो कि पश्चिमी घाट और अरबी समुद्र के बीच में दक्षिण के छोर तक फैला हुआ है। प्राचीन ग्रीकों को इस देश का पता था और अशोक के शिला-लेखों में भी इसका उल्लेख है। रामायण, महाभारत और कालिदास की कृतियों में भी केरल का सदर्भ आता है। परन्तु ९ वीं शताब्दी के पहले केरल का कोई साहित्य नहीं मिलता। इस समय का भी जो थोड़ा-सा साहित्य मिलता है, उसकी भी तिथियाँ अनिश्चित हैं। १४ वीं शती में मलयालम पूरी विकसित भाषा के रूप में और पर्याप्त साहित्य के साथ सामने आती है। 'लीलातिलकम्' नामक व्याकरण और भाषाशास्त्र के इस युग के ग्रंथ में कई उद्धरण इस भाषा से दिये गए हैं।

ऐसा भी प्रयत्न किया जाता है कि मलयालम को तमिळ भाषा से मध्यकाल की शाखा के नाते माना जाय। परन्तु इस मत के समर्थन में कोई सबूत नहीं मिलता। जब हम मलयालम को सर्वप्रथम एक साहित्यिक भाषा के रूप में देखते हैं, तब उसका अपना शब्द-संग्रह, व्याकरण, छन्द और काव्य-शैली आदि मिलते हैं। बाद में मलयालम संस्कृत से अधिक

प्रभावित हुई, कविता में संस्कृत-छन्दों का प्रयोग प्रचुरता से होने लगा। फिर भी इस भाषा के साहित्यिक कलाकारों ने मूल मलयालम छन्दों को अधिक अपनाया और केवल ऐसे संस्कृत-छन्दों का उपयोग किया जो कि उसकी शब्दावली का अंग बन गए थे। संस्कृत-छन्द और शब्दावली कुछ साहित्यिक प्रकारों को प्रभावित करती रही, साथ-ही-साथ सरल शुद्ध मलयालम-कविता मलयालम-छन्दों में भी लिखी जाती रही।

उन्नीसवीं शती

उन्नीसवीं शती के मध्य में नई शिक्षा का प्रभाव केरल में शुरू हो गया था। नए स्कूलों के लिए सब तरह के पाठ्य-ग्रंथ आवश्यक थे। फलतः संस्कृत के महान् ग्रंथों के अनुवाद करने की ओर जनता बढ़ी। मौलिक कविता भी प्राचीन लेखकों के जनप्रिय आधार से दूर होने लगी और संस्कृत की काव्य-शैली के अनुकरण में क्लासिकल ढंग की ओर अधिक मुड़ने लगी। रूपवाद के प्रति उनके आग्रह और भक्ति के बावजूद, जिन्होंने कुछ श्रेष्ठ काव्य-ग्रंथ लिखे वे केरल वर्मा (मृत्यु १९१४) इस धारा के अग्रणी थे। वे 'मयूर सन्देशम्' के रचयिता थे।

इसके साथ-ही-साथ एक नई धारा भी लोकप्रिय हो रही थी। उनका मुख्य गुण था साहित्यिक अभिव्यंजना के लिए जन-साधारण की भाषा का प्रयोग। इस आन्दोलन के नेता थे कोडुंगल्लूर के राजा और वेण्मणि नम्पूतिरिप्पाडु। कोडुंगल्लूर कुञ्ञिक्कुट्टन् तम्पुरान् और उनके भाई दोनों ही संस्कृत के प्रकांड पण्डित थे, परन्तु उन्होंने अपनी रचनाओं में (मलयालम) संस्कृत के व्याकरण-रूपों का प्रयोग करने का कोई प्रयत्न नहीं किया, जहाँ कि केरल वर्मा ने किया था। वेण्मणि कुछ आगे बढ़े और उन्होंने अपनी कविता ऐसी भाषा में लिखी जो जनता की बोल-चाल की भाषा थी, और मलयालम-साहित्य के इस प्रयोग को उन्होंने संचित और सौष्ठव दिया। यद्यपि उनके मूल लेखन के गुण बहुत उच्च नहीं थे, फिर भी वे मलयालम के पहले 'आधुनिक लेखक' माने जाते हैं।

~ गद्य में भी ऐसी ही प्रवृत्ति दिखाई देती थी। प्राचीन मलयालम-गद्य-परम्परा के कुछ अच्छे नमूने १५वीं और १६वीं शताब्दी में मिलते हैं। वे संस्कृत-रूपों से अधिक भरे हुए हैं; क्योंकि यह काल क्लासिक के पुनर्जागरण का था। यहाँ भी केरल वर्मा ने ही स्तर-निर्माण किया। उनकी आलंकारिक और अत्यन्त पंडित शैली के बहुत कम अनुयायी मिले, फिर भी तिरुअनन्तपुरम् या दक्षिण शैली संस्कृत की ओर अधिक झुकी हुई थी। इसमें न केवल संस्कृत से शब्द अधिक लिये जाते थे, परन्तु संस्कृत-शब्दों के साहित्यिक शुद्ध रूप को रखने पर भी आग्रह किया जाता था। एक बढ़ती हुई भाषा के लिए यह स्वाभाविक था।

यह शैली कभी भी लोकप्रिय न हो सकी। पत्र-पत्रिकाएँ, जो कि गद्य को आकार दे रही थीं, दैनिक प्रयोग के लिए ऐसी शैली को बहुत भारी और उलझी हुई समझती थीं। साथ ही लोकप्रिय गद्य के प्रयोग में एक नवीन महान् लेखक इस क्षेत्र में आये। चन्तु मेनन के प्रसिद्ध उपन्यास 'इन्दुलेखा' ने क्लासिकवादियों के सिद्धान्त को साहस पूर्वक चुनौती दी और प्रभावशाली ढंग से इस उपन्यास ने सिद्ध किया कि उच्चकोटि का साहित्यिक गद्य भी जन-साधारण की दैनिक बोल-चाल की भाषा में लिखा जा सकता है।

गद्य और पद्य दोनों में एक और प्रसिद्ध व्यक्ति ने मध्यम मार्ग खोज निकाला और मलयालम भाषा के लिए भावी विकास के अनुरूप धारा उन्होंने दी—वे थे ए० आर० राजराज वर्मा। वे वैयाकरणी, कवि और आलोचक थे। उन्होंने मलयालम भाषा का पहला अधिकृत व्याकरण 'केरल पाणिनीयम्' लिखा। उन्होंने भाषा को एकरूपता दी। केरल वर्मा के बाद जो संस्कृत-बहुलता चल पड़ी थी उसे दूर किया और वेण्मणी के बाद जो भाषा स्थानभ्रष्ट हुई थी, उस दोष को भी दूर किया। इस प्रकार से १९१५ तक का काल तैयारी का समय माना जा सकता है।

फिर भी यह नोट करना उचित होगा कि इस काल में मौलिक साहित्य चाहे कम लिखा गया हो, फिर भी प्रत्येक क्षेत्र में बड़ा कार्य

हुआ। संस्कृत और अंग्रेजी से अगणित अनुवाद मलयालम में किये गए। महाकाव्य और नाटक तथा 'कुमारसम्भव'-जैसे कुछ काव्यों में मूल के अनुसार उत्तम अनुवाद प्रस्तुत किये गए। अंग्रेजी क्लासिक ग्रंथों की भी उपेक्षा नहीं की गई, यद्यपि ये अनुवाद उच्च स्तर के नहीं थे। कुछ महत्वपूर्ण उपन्यास इसी युग में लिखे गए : चन्तु मेनन का 'इन्दुलेखा' और 'शारदा' और सी० वी० रामन पिल्लई का 'मार्तंड वर्मा'। नाटक के क्षेत्र में भी पुरानी शैलियों को अपनाया गया, परन्तु विषय नए होते थे; जैसे कोच्चुण्णित्तम्पुरान् का 'कल्याणी नाटकम्' में और मावेलिक्करा कोच्चीप्पन तरकन् के 'मरियाम्म नाटकम्' में, उस काल की सामाजिक दशा का चित्र मिलता है, विशेषतया ईसाई जमात का। साहित्य के नए रूप भी उपेक्षित नहीं रहे। छोटे हास्य-निबन्ध कुञ्जिरामन नायनार ने लिखे। वे 'केसरी' उपनाम से लिखते थे और इसीने साहित्य रूप को प्रतिष्ठा दी। प्राचीन और नवीन काव्यों का गम्भीर साहित्यिक आलोचन, पश्चिम के सिद्धान्तों का उपयोग करके सफलता पूर्वक पी० के० नारायण पिल्लई और अप्पन्पाई ने किया।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह युग तैयारी का युग था, जिसमें भाषा अधिक समृद्ध और लचीली बनी। इस युग में विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ निर्मित हुईं, नए रूप शुरू हुए, टेकनीक और विचारों में भी नवीनता आई, साहित्यिक कृति को बड़ी प्रेरणा मिली। इस युग के परिमाण में विपुल साहित्य में प्राचीन ग्रंथों के अनुवाद छोड़ दें तो बहुत कम ऐसा है जो कि स्थायी गुण वाला साहित्य हो। रघुवंश और नैषध के ढंग पर बड़ा महाकाव्य लिखा गया, जिसमें कि इस काल के बड़े कवियों ने अपनी विद्वत्ता और काव्य-कला-कौशल दिखलाया। वे भविष्य में अब कभी नहीं पढ़े जायेंगे। साहित्यिक विविधता के नाते ही उनका मूल्य है, किन्तु उन्होंने एक बहुत बड़ा काम अदा किया, और भाषा को बनाने में उनका बहुत बड़ा हाथ रहा।

आधुनिक काल

जनता की अभिरुचि में क्रान्तिकारी भावना की पहली सूचना कुमारन आशान् के 'नलिनि' के प्रकाशन में मिलती है। यह एक छोटी कविता थी, जिसका विषय प्रेम था, परन्तु यह एक भिन्न प्रकार का प्रेम था। कुमारन आशान् के प्रेम-विषयक लेखन में प्रेम उच्च जीवन में परिवर्तित हो जाता है। यह उत्तोलन बहुत कुशलता और सूक्ष्मता के साथ उन्होंने चित्रित किया है। प्राचीन काल के निष्फल शृंगार से टूटकर उन्होंने नए ढंग से प्रेम का वर्णन किया। यह प्राचीन परम्परा तो संस्कृत के शृंगारिक कवियों पर आश्रित थी और नायिका भेद में खो गई थी। आशान् ने केरल वर्मा की ललित भाषा-परम्परा को भी छोड़ दिया और इसके बदले एक सीधे, सुन्दर व्यंजन प्रारम्भ किए। इसमें बाह्य रूप के बदले विचारों की सूक्ष्मता पर अधिक बल दिया गया था।

नई भावना का पहला रूप 'नलिनि' में व्यक्त हुआ। फिर भी पुरानी परम्परा को जाते-जाते बहुत वर्ष लगे। मलयालम-साहित्य में काव्य की आधुनिक अवस्था आने में बहुत समय लगा। इस आन्दोलन के प्रमुख व्यक्ति हैं वल्लत्तोल। उन्होंने भी कविता की ओर अपना पग १६१५ में बढ़ाया, जबकि 'ओरु चित्रम्' नामक प्रकाशन उन्होंने प्रकाशित किया। वल्लत्तोल पुराने क्लासिक शैली के प्रसिद्ध कवि थे, जबकि नवयुग ने उन्हें परिवर्तित किया। उन्होंने पहले ही वाल्मीकि रामायण का समश्लोकी अनुवाद प्रकाशित किया था और उस युग के अनुशासन के अनुसार 'चित्रयोगम्' नामक १८ सर्गों का महाकाव्य भी लिखा था। महान् राष्ट्रीय आन्दोलन ने उन्हें पूरी तरह परिवर्तित किया। प्रथम महायुद्ध ने राष्ट्रीय पुनरुत्थान की शक्ति को मुक्त किया और सब ओर जनता नवजीवन के लिए छटपटा रही थी। इस नवजीवन की माँग के नए भाष्यकार वल्लत्तोल बने उनके स्वर में राष्ट्रीयता का तूर्य-नाद था। यह राष्ट्रीयता अलग कटी हुई संकीर्ण भावना नहीं थी, परन्तु रचनात्मक

रूप से एक राष्ट्रीय प्रतिमा भव्य, उदात्त और प्रादर्शवादी ढंग पर निमि की गई थी। उन्होंने परम्परित संस्कृत-छन्दों को छोड़ दिया, जिनमें वह पहले लिखते थे, और मलयालम महाकवियों की पुरानी शैली क अपनाया। १० वर्ष तक उनकी काव्य-प्रतिभा कविता का सृजन करत रही, जिसमें न केवल भावनाएँ भरी थीं, परन्तु वे साहित्यिक रूप में भ सम्पूर्ण थीं। उन्होंने राष्ट्रीय महत्त्व के प्रत्येक विषय पर लिखा, सामा जिक और आर्थिक अन्याय पर भी लिखा, भविष्य की पुकार पर भी लिखा। परन्तु इस समय में भी वल्लत्तोल केवल राष्ट्रीयता या सामा जिक संदेश के कवि नहीं थे। उनकी महान् कृति 'मगदलन मरियम' * इसी युग में लिखी गई। इस कृति में मेरी मगदलन के जीवन और मन परिवर्तन का चित्र है। ईसा की प्रतिमा के आस-पास उन्होंने दैवी शान्ति का बड़ा ही अद्भुत वातावरण निर्मित किया है।

नवीन आन्दोलन तीन व्यक्तियों के साथ बढ़ा, वल्लत्तोल स्वयं, उल्लूर परमेश्वर ऐय्यर और कुमारन् आशान्। उल्लूर प्रसिद्ध विद्वान् थे और उनके प्रारम्भिक दिनों में उन्होंने केरल वर्मा की साहित्यिक टेकनीक का अनुकरण किया और एक सामान्य गुण वाला महाकाव्य 'उमाकेरलम्' नाम से लिखा। यद्यपि इसमें पुराने ही सिद्धान्त का अधिक निरूपण था, फिर भी नए आन्दोलन की भावना से वे प्रेरित हुए। सामाजिक विषयों में वे पुनरुत्थानवादी थे, इस कारण वे युग की आत्मा को नहीं पकड़ सके। वे यद्यपि मुड़कर देखते थे और 'पिंगला' और 'कर्णभूषणम्'-जैसे उनके प्रमुख काव्यों में उनके विषय सदा प्राचीन काल से स्फूर्ति लिये हुए होते। 'पिंगला' भी मेरी मगदलन की तरह से एक गणिका की कहानी थी, जिसमें मुक्ति मिली। उनकी भाषा भी बहुत अलंकृत और कृत्रिम थी, उसमें संस्कृत ढंग के समास अधिक होते थे, इस कारण उनकी रचनाएँ कभी भी अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकीं।

* इसका अनुवाद साहित्य अकादेमी अन्य भारतीय भाषाओं में करा रही है।

कुमारन आशान् की बात दूसरी थी। वल्लत्तोल से भी अधिक नए आन्दोलन ने उनकी अभिव्यंजना में सहायता दी। उनके काव्य में बड़ी गहराई और शक्ति थी, इसके कारण मलयालम-साहित्य में उन्हें बहुत ऊँचा स्थान मिला। उनकी आरम्भिक कृतियाँ 'नलिनि' और 'लीला' असफल प्रेम पर आधारित हैं। इनमें बहुत उच्च प्रतिभा दिखाई देती है। परन्तु जब उन्होंने सामाजिक विषयों पर लिखना आरम्भ किया तब उनकी प्रतिभा पूर्ण पुष्पित हुई। 'दुरवस्था', 'चण्डाल भिक्षुकी' और 'करुणा' में कुमारन आशान् ने तीन हाहाकार पैदा किए। इनमें से पहली दो रचनाओं में ऐसी जाति का दर्द प्रतिगुंजित है, जिसे कि बहुत लम्बे समय तक सामाजिक अन्याय सहना पड़ा। दुरवस्था में एक ऐसी ब्राह्मण स्त्री की जीवनी है, जो कि मोपला-विद्रोह के दिनों में अपना घर-बार खो बैठी और उसे एक हरिजन की पत्नी होना पड़ा। इस कविता में बड़ा सौंदर्य है और यह उत्कट भावना तथा गहरी प्रामाणिकता से भरी रचना है। उनकी दूसरी कविता-पुस्तक 'चिन्ताविष्टयाय सीता' भी नारी-चरित्र का बड़ा अच्छा अध्ययन है। सनातन मतावलम्बी इसमें व्यक्त सीता की सच्ची मानवीय भावना के कारण इस ग्रंथ की बहुत आलोचना करते हैं। परन्तु कविता के नाते यह ग्रंथ सर्वथा श्रेष्ठ गुण-युक्त है।

इन तीन महान् लेखकों को लेकर मलयालम-कविता आज की उच्च अवस्था तक विकसित हुई। इस निबन्ध की सीमा में यह सम्भव नहीं है कि इस काल के और दूसरे सभी बड़े कवियों का उल्लेख किया जाय। नालप्पाट्टु नारायण मेनन ऐसे कवि नहीं हैं, जिन्होंने अधिक लिखा हो, परन्तु उनकी कुछ कृतियों में, विशेषतः 'कण्णुनीर तुल्ली' एक विलाप-कविता है, जिसमें पत्नी की मृत्यु पर शोक व्यक्त किया गया है, इसमें स्थायी साहित्य गुण है। इस रचना में भावना की प्रामाणिकता ऐसी है कि वह जीवन के कई तलस्पर्शी सत्यों को छूती है। उनकी सभी कविताओं में दार्शनिकता की पुट मिलती है—विशेषतः 'चक्रवालम्'

(क्षितिज) और 'ओरु मणल् तरि' (सिकता-कण) में। इसके कारण उनकी कविता जन-साधारण के लिए न रहकर मुट्ठी-भर लोगों के लिए ही सीमित रह गई।

आधुनिक लेखकों में सबसे अधिक बहुमुखी प्रतिभा वाले लेखक हैं सरदार का० मा० पणिक्कर। वस्तुतः वे इतने बहुमुखी हैं, और अपने प्रदेश के बाहर राजदूत के नाते, इतिहासकार और अंग्रेजी लेखक के नाते इतने प्रसिद्ध हैं कि केरल के बाहर बहुत थोड़े लोग यह जानते हैं कि वे मलयालम के प्रसिद्ध लेखकों में से एक हैं। कवि, नाटककार, उपन्यासकार और आलोचक के नाते वे प्रसिद्ध हैं। साहित्य की शायद कोई शाखा हो, जिसे उन्होंने समृद्ध न किया हो। उनकी काव्य-कृतियों में 'चित्रा तरंगिणी', 'पद्मीपरिणयम्' और 'अम्बापाली' विशेष उल्लेखनीय हैं। 'कुमार सम्भव', 'दशरूपकम्', और 'पठिञ्जारे मूरि' गद्य में कुछ अनुवाद हैं और उनकी नाटक की कृतियों में, जो कि प्राचीन नाटक शैलियों में लिखी गई हैं: 'भीष्मर', 'मण्डोदरी' और 'ध्रुवस्वामिनि' बहुत प्रसिद्ध हैं। उनकी शैली सरल और प्रसादमयी है, संस्कृत और द्राविड़ दोनों प्रकार के छन्दों में वे एक-सी आसानी से लिखते हैं। मलयालम में उनके गद्य-ग्रंथ विशेष प्रसिद्ध हैं, उनकी 'आत्मकथा' और ऐतिहासिक उपन्यास 'केरलसिंह'*। उनकी असाधारण बौद्धिकता, व्यापक अभिरुचि और ऐतिहासिक दृष्टिकोण उनकी सभी रचनाओं में प्रकट होते हैं।

इस काल में जो कवि अधिक प्रसिद्ध हुए, उनमें प्रमुख जी० शंकर कुरुप हैं। उन्होंने बाद में आने वाले युग में अपनी काव्य शक्ति की प्रेरणा पाई। बौद्धिकता के नाते और कवि के नाते वे महेन्द्रनाथ या प्रतीकवाद को अपनी प्रमुख शैली मानते हैं, उनके विचार इसी प्रकार से प्रकट होते हैं, नई पीढ़ी के वे निःसन्देह अग्रणी हैं, वे उनके विचारों

* साहित्य अकादेमी की ओर से इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित हो रहा है।

और कल्पनाओं को व्यक्त करते हैं। आधुनिक युग की सामाजिक और आर्थिक आकांक्षाओं से वे बहुत प्रभावित हुए हैं और तरुण पीढ़ी की प्रगतिशीलता उनकी कविता में व्यक्त हुई है। परन्तु वल्लत्तोल की तरह से इनमें भी परिवर्तनों का द्वंद्व है; कुछ मामलों में वे एकदम प्राचीन पंथी हैं, हमारी संस्कृति की भारतीयता पर वे बल देते हैं और परम्परा के निर्वाह पर वे बल देते हैं, साथ-ही-साथ वे कुछ मात्रा में वाम-पक्षियों के सामाजिक सिद्धान्तों से भी प्रभावित होते हैं।

एक दूसरे प्रसिद्ध कवि, जो बहुत छोटी आयु में ही मर गए, वे थे चङ्ङम्पुषा कृष्ण पिल्लई; जिन्होंने अपने जीवन काल में अपनी कविता की संगीतमयता के कारण बहुत ही लोकप्रियता हासिल की। उनकी कविता में करुण रस प्रधान है, निराशा का स्वर बहुत अधिक है। उनकी पहली बड़ी कृति एक ग्राम जीवन की विलापिका थी, इसका नाम है 'रमणन्'; यह कविता उन्होंने अपने मित्र इडप्पल्ली राघवन पिल्लई की शोकपूर्ण मृत्यु पर लिखी थी। 'रमणन्', जब कि कवि ने अपनी उम्र के बीस साल पूरे नहीं किये थे, तभी लिखी थी, यह कविता बार-बार आकर्षित करने वाले सौंदर्य से भरी है, इसका अलौकिक संगीत विषय से घुला-मिला है। इसके कारण कवि पाठकों में विरह की भावना बहुत अच्छी तरह जगा सके हैं और जो काम शब्द नहीं कर सकते थे उसे संगीत ने पूरा किया है। चङ्ङम्पुषा ने बहुत अधिक लिखा है और उनका प्रभाव भी तरुण पीढ़ी पर काफी मात्रा में है।

इसी पीढ़ी के कुछ और कवि व्यक्तिगत उल्लेख-योग्य हैं। कुण्डूर नारायण मेनन ने सफलता पूर्वक एक नए ढंग की वीर-गाथा-जैसी कविता शुरू की, जिसका कथानक लोकप्रिय गीतों से लिया गया था। उनकी विशेष देन यह थी कि उन्होंने सब संस्कृत शब्दों को दूर रखा और ऐसे शब्द, जिसे 'पच्चा' या शुद्ध अमिश्रित मलयालम भाषा कहा जाता है, उसीमें लिखा। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'कोमप्पन्' है, उन्हें उसमें अद्भुत सफलता मिली है। उन्होंने एक लम्बी वर्णनात्मक कविता एक भी संस्कृत का

शब्द प्रयुक्त न करते हुए लिखी, यह तो एक बहुत बड़ी बात थी ही। किन्तु इस शाब्दिक कसरत के अलावा कुण्डूर ने अपने पद्यों में ताजगी, ओज और साहित्यिक गुण ऐसे ढंग से व्यक्त किये हैं कि वे एक भार-वाद बन गए। कट्टक्कयत्तिल् चेरियान माप्पिला दूसरे पुरानी धारा के कवि थे, जिनका महाकाव्य 'श्री येशु विजयम्' (ईसा की विजय) ओल्ड टेस्टामेण्ट और ईसा की जीवनी की प्रमुख घटनाओं पर आधारित प्रबंध है। पुरानी शैली के लेखकों में और अभी भी जिनकी साहित्यिक कृतियाँ उतनी ही सजीव हैं, वडक्कुंकूर राजराज वर्मा हैं। उन्होंने बहुत-से महाकाव्य लिखे, जिनमें सबसे प्रसिद्ध है 'राघवाभ्युदयम्', जिसमें वे अपनी शक्ति के सर्वोच्च बिन्दु पर हैं।

सभी युगों में मलयालम की लेखिकाएँ बराबर योग देती रहीं। प्राचीन काल में १६१५ के पहले तोट्टक्काट्टर इक्काव्वम्मा थीं, जिनका नाटक 'सुभद्रार्जुनम्' गद्य-पद्य-मिश्रित चम्पू शैली में लिखा गया था, जिसके कारण वे प्रसिद्ध हुईं। इधर आधुनिक काल में कविता के क्षेत्र में, नालप्पाटु बालामणी अम्मा, ललिताम्बिका अन्तर्जनम्, मेरी जोन तोट्टम्, मुतुकुलं पार्वति अम्मा उल्लेखनीय हैं। बालामणी अम्मा वात्सल्य रस की कवयित्री हैं, उनकी कविता में माता की बच्चे के लिए भावना तो उच्च है ही, उनमें रूप-शिल्प और शैली भी बहुत गूढ़ है। ललिताम्बिका अन्त- का सामान्य ध्यान बहुत अच्छी तरह रखा गया है। ललिताम्बिका अन्तर्जनं कहानी-लेखिका के नाते अधिक प्रसिद्ध हैं, परन्तु वे भी एक प्रसिद्ध कवयित्री हैं। मेरी जोन् तोट्टम्, साहित्य-जगत् में थोड़ा कार्य करके बाद में ईसाई साध्वी बन गईं। उनकी रचनाओं में दार्शनिक और धार्मिक रुझान दिखाई देता है। उनकी कविता विशेषतः 'आत्मा का स्वप्न आरामं' यद्यपि शैली में कच्ची है, फिर भी यह रचना बहुत उच्चकोटि की विचारशील कवयित्री के नाते उन्हें अच्छी तरह स्थापित करती है।

नया मोड़

१९३५ के करीब मलयालम कविता ने नया मोड़ लिया। राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रेरणा कम हो गई थी और एक नई पीढ़ी सामने आ रही थी, जिसे साम्यवादी राजनीति से प्रधान प्रेरणा मिलती थी। इन कवियों में जो सशक्त आलोचक थे, उनके समर्थन से पुराने कवियों के रोमानी और झूठी भावुकता का बहिष्कार किया गया और इनके साथ वह नया 'प्रगतिवाद' शुरू हुआ, जिसे मलयालम में 'पुरोगमन साहित्य' कहते हैं। इस धारा के अगुवा लेखक आलोचना के क्षेत्र में जोसफ मुण्डश्शेरी, एम॰ पी॰ पॉल और ए॰ बालकृष्ण पिल्लै हैं। इस धारा में जो कविता लिखी गई वह बहुत उच्च नहीं थी, परन्तु कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में उसकी सफलता निःसन्देह बहुत है। परन्तु यह मानना चाहिए कि प्रायः सभी प्रमुख लेखकों पर इस 'वाद' का प्रभाव पड़ा। उन्होंने उसे एक नया दृष्टिकोण दिया। विशेषतः कथासाहित्य और नाटक दोनों पर 'प्रगतिवादी' विचारों का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। शुद्ध 'प्रगतिवादी' धारा ने हमें कुछ अच्छे कवि दिए, जिनमें ये नाम प्रमुख हैं: एन॰ वी॰ कृष्ण वारियर, अक्कित्तम, ओलप्पमण्णा, वयलार रामवर्मा, पी॰ भास्करन्, ओ॰ एन॰ वी॰ कुरुप्प, और पनुअन।

यद्यपि यह सही तौर पर कहा जा सकता है कि गत २० वर्षों में ऐसा कोई भी कवि नहीं है, जिसे कि 'प्रगतिवादी' विचारों ने, अनजाने रूप से ही क्यों न हो, प्रभावित न किया हो। फिर भी मलयालम कविता का मूल प्रवाह उसकी प्रमुख धारा से अलग नहीं हुआ। तरुण पीढ़ी के तीन प्रसिद्ध कवियों के नाम हम दे सकते हैं: वैलोप्पिल्ली श्रीधर मेनन, वेण्णिक्कुलम् गोपाल कुरुप्प और पालाई नारायणन नायर। ये मलयालम-कविता की सच्ची परम्परा में हैं, यद्यपि ये प्रगतिशील विचारों से अधिक प्रभावित हैं। पालाई की 'केरलम् वळरुन्नु' (केरल बढ़ता है) एक ऐसी कविता है जो कि आधुनिक केरल के विषय में एक महाकाव्य

की तरह है, एक ही कविता में लोक-गाथा, व्यक्तित्व और मलयालम-भाषी प्रदेश की सभी धारा उसमें मिली हुई हैं। यह एक बड़ी महत्त्वाकांक्षापूर्ण रचना है और इसमें अब तक जो-कुछ छपा है उससे जाना जा सकता है कि बहुत उच्चकोटि की उपलब्धि इस काव्य ने दी है। प्राचीन शैली भी बिलकुल मरी नहीं है। पी० कुञ्ञिरामन् नायर, के० के० राजा और अन्य इस परम्परा को कुछ अच्छी तरह से निभा रहे हैं।

गद्य

१९१९ के बाद का नया युग गद्य-साहित्य के लिए प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक उपन्यास अपनी प्रौढ़ता पर पहुँचे। सी०वी० रामन् पिल्लई ने 'रामराजाबहादुर' में टीपू के आक्रमण पर लिखा, अप्पन तम्पुरान् के 'भूतरायर' और का० मा० पणिक्कर के 'केरलसिंहम्' इसके अच्छे उदाहरण हैं। एक नए ढंग का सामाजिक उपन्यास निर्मित हुआ, जिसमें बदलते हुए समाज की स्थिति का निरीक्षण और वर्णन था। इन्दुलेखा और शारदा ने रोमांटिक लेखक की दृष्टि से उपन्यास कैसे लिखा जाता है, इसका आदर्श प्रस्तुत किया था, परन्तु नई धारा ने प्राचीन रोमांटिक दृष्टिकोण छोड़ दिया और वह नग्न यथार्थवाद की ओर मुड़ी। 'अफ़ाटे मकळ्' नम्पूतिरी-नायर-सम्बन्धों का एक अध्ययन था और इसे पहला यथार्थवादी उपन्यास कहा जा सकता है। बशीर का 'बाल्यकाल सखी' इस प्रकार का पहला महत्त्वपूर्ण उपन्यास था। परन्तु जिस लेखक ने यथार्थवादी और सामाजिक उपन्यास को महान् साहित्य के स्तर तक उठाया वह हैं: तकषी शिवशंकर पिल्लई। तकषी ने पहले कहानी-लेखक के नाते बड़ी ख्याति पाई। उसमें तो वे मलयालम के उस्तादों में से हैं। उनका पहला उपन्यास 'रण्टिटङ्ङषि' (दो सेर धान)* है। इस उपन्यास में अलेप्पी की दलदल या उसके नजदीक के भूमिहीन खेत-

*यह उपन्यास साहित्य अकादेमी द्वारा हिन्दी में अनूदित और प्रकाशित हो चुका है। भारतीय भाषाओं में भी यह अनूदित हो रहा है।

मजदूरों का एक सच्चा चित्र है। इसमें चरित्र-चित्रण इतनी अच्छी तरह से हुआ है और सामाजिक परिस्थितियों का ऐसा यथार्थ चित्र खींचा गया है कि यह रचना एक श्रेष्ठ कृति (क्लासिक) बन गई है। उनका नया उपन्यास 'चैम्मीन' * (एक विशेष प्रकार की मछली) अलेप्पी के करीब मछुओं की जिन्दगी का चित्र प्रस्तुत करता है। मलयालम में आज तक लिखित उपन्यासों में यह सर्वश्रेष्ठ है और अपने ढंग का एक ही है। आधुनिक मलयालम कहानी और उपन्यास में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले पुराने लेखकों में पी० केशवदेव का नाम उल्लेखनीय है। एस० के० पोंट्टेक्काट्ट की 'विषकन्यका' भी बड़ी अच्छी कृति है। एक दूसरे उपन्यासकार, जिनका उल्लेख यहाँ किया जा सकता है, वे हैं जोसेफ मुण्डश्शेरी। इनका उपन्यास,'कोन्तयु कुरिशु' ईसाइयों के गरीब वर्ग का चित्रण करता है और उन पर गिर्जे की संस्थाओं का प्रभाव चित्रित करता है।

मलयालम में कहानी बहुत जल्दी प्रौढ़ हो गई और साधारण स्तर बहुत उच्च है। इस क्षेत्र के प्रसिद्ध लेखक इतने हैं कि उनके नाम कहाँ तक गिनाएँ। परन्तु कहानी के क्षेत्र में निःसन्देह सबसे बड़े लेखक हैं तकषी, इनकी कहानियाँ आसानी से मोपासाँ या चेखव के तुल्य हैं। दूसरे उल्लेखनीय लेखक हैं . पोन् कुन्नं वर्की, के० टी० मुहम्मद, बशीर, पी० सी० कुट्टी कृष्णन्, पोटेक्काट, कोवूर, कारूर, सरस्वती अम्मा और ललिताम्बिका अन्तर्जनं। वर्की, बशीर, पोटेक्काट और कुट्टीकृष्ण ये सब वामपक्षी लेखक हैं, जिनके विषय मुख्यतः सामाजिक अन्यायों की समस्याओं के बारे में हैं। ललिताम्बिका अन्तर्जनं नम्पूतिरि समाज के सामाजिक अन्तर्विरोध को व्यक्त करती है। और इस कारण से उनकी कहानियाँ समाज के एक बन्द हिस्से की जिन्दगी पर प्रकाश डालती हैं।

नाटक

नाटक के क्षेत्र में बड़ा साहित्यिक कार्य हो रहा है। मलयालम में

* इस उपन्यास को साहित्य अकादेमी का १९५७ का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

नाटक को साहित्य समझने की परम्परा रही है। कालिदास और भवभूति तथा अन्य नाटककारों की शैलियों में नाटक को दृश्यकाव्य माना जाता है और यह परम्परा अभी तक भग्न नहीं है। नए विषयों में ज्यों-ज्यों रुचि बढ़ती गई, पश्चिमी नाटकों के ढंग के अभिनेय नाटक अधिक लोकप्रिय होने लगे, लेकिन बहुत-से नाटक मंच पर खेलने के लिए लिखे जाते हैं, उन्हें साहित्यिक गुणयुक्त शायद ही कहा जा सके।

इनमें सबसे प्रमुख हैं सी० वी० रामन पिल्लई का 'कुरुपिल्लाक्कलरी' (बिना मास्टर का स्कूल); इस नाटक में नायरों की सामाजिक अराजकता का चित्रण है। इस सामाजिक सुखान्त नाटक में संक्रान्तिकालीन अनिश्चित स्थिति का बड़ा अच्छा वर्णन मिलता है। ई० वी० कृष्ण पिल्लई दूसरे ऐसे लेखक थे, जिन्होंने ऐतिहासिक नाटक के द्वारा रंगमंच के विकास की सहायता की। केनिक्करा पद्मनाभ पिल्लई ने ईसा की इच्छा पर एक महत्त्वपूर्ण नाटक 'कालिवारियिले कल्पपादपं' लिखा। एन० कृष्ण पिल्लई और इडामेरी गोविन्दन नायर प्रसिद्ध नाटककार हैं, जिनकी कृतियों में पर्याप्त साहित्यिक गुण हैं। तरुण और सफल नाटक-लेखकों में चेल्लप्पन नायर, के० टी० मुहम्मद और टी० एन० गोपीनाथन नायर हैं।

आलोचना

इस युग में आलोचना-साहित्य में बड़ी प्रगति हुई। पुरानी आलोचना प्राचीन संस्कृत-साहित्य-शास्त्र से ही अधिक सम्बद्ध थी और उन्होंने स्वस्थ आलोचनात्मक परम्परा को विकसित करने में बड़ी मदद दी। परन्तु एम० पी० पॉल, मुण्डश्शेरी और ए० बालकृष्ण पिल्लई के साथ-साथ मलयालम-आलोचना में नई जान आ गई। एम० पी० पॉल ने उपन्यासों और कहानियों के रूप का जो अध्ययन प्रस्तुत किया वह तरुण लेखकों के लिए पथ-प्रदर्शक बना। जोसेफ मुण्डश्शेरी ने ...ीन साहित्य के विद्वत्तापूर्ण अध्ययन के साथ अत्याधुनिक दृष्टिकोण

का समन्वय किया और वे आधुनिक विचार-धारा के प्रमुख उद्गाता बने। ए० बालकृष्ण पिल्लई ने मलयालम में फ्रेंच साहित्य-रूप को प्रस्तुत किया और उनकी ही प्रेरणा से मोपासाँ का बहुत बड़ा प्रभाव केरल के साहित्य पर पड़ा। कुट्टी कृष्ण मरार और मूर्कोत्तु कुञ्ञप्पा गुप्तन् नायर और अन्य आलोचकों ने नए विचारों के विकास में मदद दी और मलयालम का आलोचनात्मक साहित्य यद्यपि बहुत-कुछ प्रगतिवाद की ओर झुका है, फिर भी उसे सुघटित, सुयोग्य और विश्व की विचार-धारा का उत्तम ज्ञान रखने वाला कहा जा सकता है।

जीवनी, यात्रा-साहित्य इत्यादि

आधुनिक काल में गद्य-साहित्य की एक और विधा ने बड़ी प्रगति की, वह है जीवनी-साहित्य। पी० के० परमेश्वरन् नायर की जीवनी पी० के० नारायण पिल्लई ने लिखी (उसके बाद उसी लेखक की जीवनी लेखक सी० वी० रामन पिल्लई ने लिखी)। इसने साहित्यिक क्षेत्र में एक स्तर कायम किया। केरल वर्मा, राजराज वर्मा और उल्लूर परमेश्वरा अय्यर-जैसे व्यक्तित्वों की पुरानी जीवनियाँ एक तरह से प्रशस्तियाँ और स्तुति-पाठ-जैसी ही थीं, उनमें कोई तटस्थता और गुण-दोष-विवेचन का प्रयत्न नहीं दिखाई देता था। परमेश्वरन् नायर ने जीवनी-लेखन की कला को गम्भीरतापूर्वक लिया और न केवल उसमें आलोचना और शोध की भावना वे लाए, परन्तु साहित्यिक कला-कौशल भी उसमें उन्होंने जोड़ा। आत्म-कथा-लेखन भी अब शुरू हुआ। इस क्षेत्र में महान् ग्रंथ है पी० के० नारायण पिल्लई का, 'स्मरण मण्डलम्'। यह लेखक आलोचक, कवि और विद्वान् है, जिन्होंने वकील और जज के नाते बड़ी उच्च ख्याति पाई। पी० के० की आत्म-जीवनी उनके बचपन में त्रावनकोर की सामाजिक दशा का पूरा विस्तृत चित्र व्यक्त करती है, इसमें एक महान् लेखक की मँजी हुई शैली का पता लगता है। दूसरे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के लेखक ई० वी० कृष्ण पिल्लई हैं, उनकी जीवनी में

अनिश्चितता थी और उससे यह आत्म-जीवनी अधिक रोचक बनी। साथ-ही-साथ यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कृष्ण पिल्लई इस शताब्दी के एक प्रसिद्ध हास्य-लेखक माने जाते हैं। हास्य-लेखन में दूसरा बड़ा नाम संजयन (एम० आर० नायर) का है। का० मा० पणिक्कर की 'आत्म कथा' का भी उल्लेख इस प्रसंग में आवश्यक है।

प्राचीन काल से ही मलयालम भाषा यात्रा-साहित्य के लिए प्रसिद्ध रही है। एक ईसाई पादरी ने यूरोप यात्रा का अपना वर्णन १८ वीं शती में लिखा था। १९ वीं शती में यह फैशन चल पड़ा कि यात्रा-वर्णन पद्य में लिखा जाय। आधुनिक काल में साहित्यिक गुणयुक्त यात्रा-ग्रंथ के०पी० केशव मेनन का 'बिलाति विशेष' है, जिसे एक प्रकार से इंग्लैंड की रिपोर्ट कहना चाहिए, जब वे विद्यार्थी के नाते वहाँ रहते थे। पोट्टेक्काट्टु ने इस तरह के साहित्य में विशेषता प्राप्त की। इनके यात्रा-साहित्य में दुनिया का बहुत बड़ा हिस्सा हमें मिलता है, एशिया, अफ्रीका और यूरोप के वर्णन इनके साहित्य में है। पोट्टेक्काट्टु की दृष्टि मनोरंजक वस्तुओं की ओर है और वे सरल प्रसादपूर्ण गद्य-शैली के उस्ताद हैं। इसी सम्बन्ध में और उल्लेखनीय ग्रंथ का० मा० पणिक्कर का 'आपत्करमाय यात्रा' (एक भयानक यात्रा) है। इसमें उनकी युद्ध-कालीन यात्रा का वर्णन है और 'चैनायिले ओरु यात्रा' (चीन की यात्रा) में चीन का विस्तृत वर्णन है।

साहित्यिक इतिहास

साहित्यिक इतिहास इधर कई वर्षों से विद्वत्तापूर्ण अध्ययन का विषय बना हुआ है। सबसे पहला प्रयत्न इस दिशा में पी० गोविन्द पिल्लई ने किया था। १९ वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में उनका मलयालम साहित्य का इतिहास प्रकाशित हुआ। तब से अब तक इस विषय में बराबर शोध-कार्य हो रहा है और प्राचीन कृतियों पर नया

विस्मृत लेखकों पर बहुत-सा प्रकाश डाला जा रहा है। इस दिशा में सबसे महत्त्वपूर्ण शोध 'लीलातिलक' नामक ग्रंथ की थी, जो कि मलयालम भाषा-शास्त्र और अलंकार-शास्त्र की रचना है, यह संस्कृत में १४ वीं शताब्दी में लिखी गई थी। 'लीलातिलक' प्राचीनतम मलयालम साहित्य का एक संकलन है, क्योंकि इसमें से उदाहरण के लिए प्राचीन लेखकों ने बहुत बार मसाला लिया है। ऐसे ग्रंथों में 'उण्णिनीलि सन्देश' नामक १४ वीं शती में 'दूतकाव्यम्' की शैली से लिखा हुआ 'मेघदूत'-जैसा ग्रंथ है। दूसरे और प्राचीन ग्रंथों में, जो इधर प्रकाश में आये हैं, 'उण्णियाटि चरितं' है। यह नोट करना मनोरंजक होगा कि 'उण्णिनीलि सन्देश' के पाँच संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। गए दस वर्षों में लीलातिलक' के भी कई समीक्षात्मक संस्करण लिखे गए हैं। इन सबमें महत्त्वपूर्ण है, इलकुल कुञ्जन् पिल्लई और सूरनाड कुञ्जन् पिल्लई; जिन्होंने मिलकर बड़े व्यापक क्षेत्र पर कार्य किया है।

साहित्यिक इतिहास के बड़े दो लेखक हैं : आर० नारायण पणिक्कर और उल्लूर परमेश्वर अय्यर। नारायण पणिक्कर का मलयालम भाषा और साहित्य का इतिहास ७ खण्डों में है। *इसमें कई मत ऐसे हैं, जिनके बारे में विवाद हो सकता है, फिर भी यह विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ है। परमेश्वर अय्यर के ग्रंथ का प्रकाशन ट्रावनकोर विश्वविद्यालय ने लेखक की मृत्यु के बाद अपने हाथ में ले लिया और अभी पूरा नहीं हो पाया है। यह विशेषतः मलयालम का साहित्य ही नहीं, परन्तु केरल का साहित्य है; क्योंकि इसमें संस्कृत में लिखने वाले केरलीय कवियों का वर्णन भी है। वडक्कुंकूर राजराज वर्मा का संस्कृत का साहित्य का इतिहास बहुत विस्तृत है और उसमें की तिथियाँ विश्वसनीय हैं, फिर भी वह महत्त्वपूर्ण प्रथम कार्य है।

*साहित्य अकादेमी ने १९५७ में मलयालम में १९४७ से प्रकाशित सर्वोत्तम ग्रंथ का पुरस्कार इसे दिया है।

भाषा-शास्त्र, इतिहास इत्यादि

भाषा-शास्त्र और मलयालम से सम्बद्ध अन्य शोध-कार्यों ने आधुनिक काल में बड़ी प्रगति की है। ए० आर० राजराज वर्मा और भट्टूर कृष्ण पिषारटि ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण जमीन तैयार की। डॉ० के० गोविन्दराम ने भाषा-शास्त्र का अध्ययन प्रस्तुत किया और प्राचीन शिला-लेखों पर उन्होंने बहुत-सा शोध-कार्य किया। इस दिशा में दूसरा महत्त्वपूर्ण योगदान डॉ० के० एम० जार्ज ने दिया, जिनके 'रामचरितम्' में शब्द-निर्माण का अध्ययन मलयालम भाषा के स्वतंत्र आत्म-विकास पर काफी प्रकाश डालता है। डॉ० एस० के० नायर ने केरल का लोक-नाट्य और वीर-गाथा-साहित्य एकत्रित किया और ये बोली हुई भाषा के अध्ययन और मध्य युग के सामाजिक जीवन के प्रतिबिम्ब के नाते बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

इतिहास मलयालम साहित्य का सबसे उपेक्षित अंग है। के० वी० पद्मनाभ मेनन के दो खण्डों के कोचीन के इतिहास को छोड़कर कोई भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक रचना इस भाषा में नहीं है। इलमकुलम कुञ्जन पिल्लई का 'केरल इतिहास के कुछ अँधेरे पन्ने' और डॉ० गोदवर्मा की 'आरम्भिक ताम्रपत्रों के अध्ययन' केवल यही उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ

मलयालम साहित्य की प्रगति में पत्र-पत्रिकाओं का विशेष महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। इस शताब्दी के आरम्भिक काल में 'मलयालममनोरमा' कण्डतिल वर्गीस ने शुरू की और उनके द्वारा साहित्य को प्रोत्साहन दिया गया। साहित्यिक रचनाओं के लिए स्तम्भ खुले थे और मनोरमा ने केरल में सबसे पहली साहित्यिक सभा बुलाई, जिसका नाम 'भाषा पोषिणी सभा' था। इस प्रकार से साहित्यिक आन्दोलन को बड़ा [illegible] मिला। उन्होंने 'भाषा पोषिणी सभा' नामक एक साहित्यिक [illegible] भी शुरू की, जो कि रचनात्मक साहित्य का माध्यम थी। 'रसिक

रंजनी' नामक दूसरा महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्र कुछ विद्वानों के दल ने त्रिचूर से शुरू किया। 'आत्म पोषिणी' के सम्पादक कुछ दिनों के लिए वल्लत्तोल थे। 'मंगलोदयम्' की प्रमुख आत्मा हैं अप्पन तम्पुरान्। ऐसी साहित्यिक मासिक पत्रिका का एक उत्तम प्रयोग, जो कि केवल कविता के लिए हो, करीब २५ वर्षों के लिए सी० के० कृष्ण वारियर के संपादन में चलता रहा। इस पत्रिका का नाम 'कवन कौमुदी' था। इस युग का ऐसा शायद ही कोई कवि हो, जिसने इसमें न लिखा हो। 'कौमुदी' के द्वारा बहुत-से तरुण लेखकों को प्रथम अनुभव मिला। वल्लत्तोल, उल्लूर, नकर कुरुप और अन्य लेखक इसमें बराबर लिखते रहे और 'कौमुदी' ने साहित्य में अपना स्थान बनाया; क्योंकि उसमें पहली बार कई उच्चकोटि की रचनाएँ प्रकाशित हुईं, उदाहरणार्थ वल्लतोल की 'विलास लतिका'; जो कि बाद में एक क्लासिक बन गई।

तीसरे दशक में न केवल मासिक पत्रिकाओं ने साहित्य को आकार दिया, परन्तु साहित्यिक साप्ताहिक भी शुरू हुए, जो कि दैनिक पत्रिकाओं के कार्यालय से निकलते थे। कोषीकोड का 'मातृभूमि' साप्ताहिक और कोल्लं का 'मलयाल राज्य' तरुण लेखकों का प्रमुख व्यासपीठ बन गया। इनका प्रचार अधिकाधिक संख्या में होने लगा और केवल साहित्यिक पत्रिकाओं की अपेक्षा पाठकों की बड़ी संख्या तक यह पहुँचने लगा।

इस समालोचना के अंत में अनूदित साहित्य का उल्लेख करना चाहिए। पहले अनुवाद संस्कृत से होते थे। वस्तुतः इस शताब्दी के प्रथम दशक तक मलयालम में संस्कृत सभी प्रमुख श्रेष्ठ ग्रंथ अनूदित हो चुके थे। आरम्भिक युग में अंग्रेजी से अनुवाद किया हुआ साहित्य प्रसिद्ध क्लासिकों का था। शुरू से ही बंगाली के जो अनुवाद मलयालम में होते थे और वे अंग्रेजी की मार्फ़त थे। बंकिमचन्द्र चटर्जी की कृतियाँ सब प्रकार के पाठकों को अच्छी लगती थीं। रवीन्द्रनाथ टाकुर को साहित्य के क्षेत्र में बड़ा गौरव मिला। उसका प्रतिबिम्ब बंगाली से अनुवाद की एक नई लहर में मिलता है।

प्रथम महायुद्ध के बाद जब कि लोगों की रुचि व्यापक होने लगी, फ्रेंच, रूसी और अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रंथों के अनुवाद मलयालम में छपने लगे। यद्यपि कई रचनाएँ सीधी मूल से अनूदित नहीं होती थीं, फिर भी तरुण लेखकों के मन को आकार देने में उनका प्रभाव कम नहीं मानना चाहिए। विशेषतः नालाप्पाट नारायण मेनन का 'ले मिज़राब्ल' का अनुवाद, गाय द मोपासाँ की कहानियों का ए० बालकृष्ण पिल्लई द्वारा किया गया अनुवाद, टाल्सटाय के 'पुनर्जीवन' का जी० गोविन्द कुरुप-कृत अनुवाद। राजनैतिक श्रेष्ठ ग्रंथ, जैसे महात्मा गांधी के 'सत्य के प्रयोग' और जवाहरलाल नेहरू की 'आत्मकथाएँ' मलयालम अनुवाद में एक क्लासिक बन गईं। दूसरे स्रोतों से मलयालम ने बड़ा बल पाया। फिट्ज़ जेराल्ड के 'उमर खय्याम' के मलयालम में सात अलग-अलग अनुवाद हुए, जिनमें एक जी० शंकर कुरुप का है और दूसरा का० मा० पणिक्कर का। पवित्र कुरान का मलयालम में अनुवाद एक प्रसिद्ध मुस्लिम अनुवादक ने किया है। वल्लत्तोल बड़े भारी अनुवादक रहे हैं। वाल्मीकि रामायण, पाँच पुराण, कालिदास का 'शाकुन्तल', वत्सराज के सब नाटक, भास के छह नाटक, हाल की गाथासप्तशती (प्राकृत से) और अन्त में समूची 'ऋग्वेद संहिता'* अकेले वल्लत्तोल ने मलयालम पद्य में अनूदित की है।

एक महत्त्व की बात पर अन्त में जोर देना चाहिए। इस शताब्दी के आरम्भ में साहित्य एक वर्ग-विशेष की वस्तु थी। उच्च वर्ग के लिए और राज-दरबारी सामन्त और अमीर वर्ग में ही साहित्य की रुचि थी और वहीं वह पनपता था। इस काल के आरम्भ में केरल वर्मा, राज- [illegible] कुञ्ञिकुट्टन् तम्पुरान् और अन्य महान् व्यक्तियों का सामन्- [illegible] सम्बन्ध था। धीरे-धीरे लेखकों का क्षेत्र विस्तृत होने [illegible] से १६३६ के बीच में साहित्य मध्यम वर्ग की वस्तु बन

[illegible] अकादेमी ने १५ हजार रुपए का अनुदान देकर इसके प्रकाशन में सहा-

गया, अधिकतर अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों, जिनकी सामाजिक इच्छाएँ और आर्थिक वृत्तियाँ साधारणतः आत्मसंतोष वाली थीं, तक ही साहित्य सीमित था। कुमारन् आशान् एक-मात्र अपवाद थे, जिन्होंने सामाजिक अन्याय के विरुद्ध विद्रोह किया। राजनीतिक स्वतन्त्रता के पक्ष में कुछ लेखकों ने आवाज उठाई। १९३० के करीब यह स्थिति आमूल बदल गई। अब साहित्य ने प्रतिभा के महलों से छुट्टी ले ली, विलासी मध्यम घरों से वह विदा हो गया और अब वह गरीब, दलित और शोषितों के बीच रहने लग गया। साहित्य जन-साधारण की वस्तु बन गया। केरल में, जहाँ कि प्रायः सब लोग पढ़े लिखे हैं, कम-से-कम छोटी उम्र में तो यह बात सही ही है कि भारत में सबसे अधिक साक्षरता का प्रमाण वहाँ है, अतः यह सही आशा की गई थी कि साहित्य जन साधारण की वस्तु बन जाता। आज सभी वर्गों और जातियों की प्रेरणा, मलयालम में सृजनात्मक लेखन में मिलती है। केरल वर्मा के साथ प्राचीन पाण्डित्यपूर्ण रीतिबद्ध शैली और उसका दरबारीपन विनष्ट हो गया और मदूर सदेशम् का सुमधुर संगीत अब हमें हर्षित नहीं करता, फिर भी उसके स्थान पर जो साहित्य आया है वह अधिक ओजस्वी, प्रामाणिक और जन-जीवन घनिष्ठता से पूर्वक सम्बद्ध है।

संस्कृत

वे० राघवन

प्रास्ताविक

संस्कृत भारत की प्राचीन श्रेष्ठ भाषा है। इसका इतिहास चार हज़ार वर्ष पुराना है। इसका प्रारम्भिक साहित्य 'ऋग्वेद' की ऋचाओं में मिलता है। भारतीय-यूरोपीय साहित्य के प्राचीनतम और सबसे विशाल अवशेष इन ऋचाओं में हैं। संस्कृत की प्राचीनता तो सर्वविदित है ही, परन्तु उसकी परम्परा और सरणि भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। जिस उच्चारण-पद्धति और जिन स्वराघातों से वैदिक ऋषियों ने मन्त्र-पाठ किया था, आज भी उसी उच्चारण और स्वर-पद्धति से मन्त्र-पाठ किया जाता है। जिस माधुर्यपूर्ण शैली में कालिदास और बाण ने साहित्य-रचना की, उसी शैली में आज का संस्कृत-रचनाकार गद्य या पद्य लिखता है। वैदिक उपभाषाएँ, लोकप्रिय पुराण-शैली की स्वतन्त्रता, पाणिनि के व्याकरण में वाङ्मय के लिए नियम, प्रारम्भिक नाटक की शैली आदि उस युग का संकेत करते हैं जब संस्कृत एक सजीव भाषा थी। जब उसकी उपभाषाओं में एक साहित्यिक मानदंड निश्चित हुआ और प्रारम्भिक प्राथमिक प्राकृत धीरे-धीरे अधिकाधिक साहित्यिक प्रयोग में आने लगी, संस्कृत अपना महत्त्वपूर्ण अधिकार बराबर कायम रख रही थी। जैसे कि इस भाषा पर एक अधुनातम विद्वान्

ने लिखा है, यद्यपि यह प्रथम दर्शन में विरोधाभासपूर्ण लगेगा। संस्कृत भाषा, संस्कृति और शासन की भाषा के नाते अपनी पूरी विकासावस्था में ऐसे समय पहुँची जब वह मातृभाषा नहीं बनी रही।* बौद्ध और जैन धर्मों ने जन-भाषा का उपयोग करना आरम्भ किया। पर वे भी संस्कृत की उपेक्षा न कर सके और उन्हें भी बाद में उसीमें रचना करनी पड़ी। संस्कृत एक अखिल भारतीय भाषा के नाते संगठित बनी, क्योंकि उसमें एक सामान्य संस्कृति और विचारों की व्यंजना थी। इस देश की अधिकतर मातृभाषाओं की जननी संस्कृत थी। यह भाषा देश की एकता का सबसे दृढ़ सूत्र थी और आज भी है।

पालि और अर्द्धमागधी में धार्मिक साहित्य के आरम्भिक विकास के बाद शौरसेनी-जैसी प्राचीन प्राकृतों में साहित्यिक सृजन अधिक हुआ। यही प्राकृत संस्कृत-नाटक में प्रयुक्त की गई और महाराष्ट्री में कविता भी विकसित हुई। इतना ही नहीं कि यह प्राकृत साहित्य संस्कृत के ही ढंग पर रचा गया और वह संस्कृत के साथ-साथ ही विकसित हुआ, परन्तु इन भाषाओं के व्याकरण भी संस्कृत में ही लिखे गए। जब यह प्राकृत भी, उनकी साहित्यिक रीतिबद्धता के कारण स्तरीकृत बनकर विजड़ित हो गई, तब दूसरी अधिक लोकप्रिय बोलियाँ उनके स्थान पर प्रचलित हुईं, पहले अपभ्रंश और बाद में उत्तर भारत की आधुनिक आर्य-भारतीय भाषाएँ।

प्राकृतों की भाँति ही, दक्षिण भारत की भाषाओं में भी संस्कृत के प्रभाव से साहित्यिक पुनर्जागरण घटित हुआ। शब्द, व्यंजना के रूप और विषय तथा साहित्यिक विधाएँ आदि संस्कृत से इन भाषाओं में परिव्याप्त होती गईं। इनमें से तीन भाषाओं ने संस्कृत के आधार पर अपनी वर्णमाला विकसित की। उन्होंने अपने-आपको संस्कृत से उतना ही प्रभावित होने दिया जितना कि एक भाषा किसी अन्य भाषा को प्रभावित करने दे सकती है। इन भाषाओं में, संस्कृत के पूरे उद्धरण,

* टी० बरो: 'संस्कृत भाषा', फेबर एंड फेबर, लंदन, १९५५, पृष्ठ ५७।

बीच-बीच में उन भाषाओं के बीच में शब्द या प्रत्यय-कृदन्त लगाकर उन भाषाओं की रचनाओं के नाते माने जाने लगे। और दो भाषाओं में जैसे जावानी भाषा में, ऐसी काव्य-रचना की शैली विकसित हुई, और ऐसे ही कुछ भाष्य भी गद्य में लिखे गए। इस शैली को 'मणि-प्रवाल' कहते थे। इसमें कवि ने संस्कृत और स्थानीय भाषाओं का सुन्दर कलात्मक सम्मिश्रण प्रस्तुत किया। स्थानीय भाषाओं के साथ संस्कृत ऐसी घनिष्टता से विकसित हुई कि संस्कृत ग्रंथ अभी-अभी तक, अधिकतर प्रादेशिक लिपियों में ही, ताम्रपत्रों पर या कागज़ की पाडुलिपियों में, सुरक्षित रखे जाते थे, या छपते भी थे।

संस्कृत ने अपनी भव्यता में दो और आयाम जोड़े। ईसा-पूर्व प्रथम शती के बाद, बौद्ध धर्म के द्वारा वह मध्येशिया और सुदूर पूर्व तक फैली; और ईसा की दूसरी शताब्दी के बाद वह उस हिंदू-संस्कृति का माध्यम बनी जो कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में फैली। संस्कृत-महाकाव्यों, नाटकों और कविताओं ने इन देशों को एक लिपि और साहित्य दिया, और नृत्य, नाटक, संगीत, और शिल्प-कलाएँ दीं। इस प्रकार से न केवल संस्कृत ने समूचे भारत प्रायद्वीप को एकसूत्रता में बाँधा, बल्कि उसने समूचे सुदूर पूर्व और दक्षिण पूर्वी एशिया को एक-जैसी सांस्कृतिक अखंडता से जोड़ दिया।

अपने इतिहास की लम्बी अवधि में, संस्कृत ने साहित्य, दर्शन, कला, विज्ञान आदि प्रत्येक क्षेत्र में बड़ा साहित्यिक कार्य कर दिखाया। यदि केवल परिमाण को ही लें तो यह महान् साहित्य, जिसका केवल एक अंश प्रकाशित हुआ है—चूँकि बहुत-सी पाण्डुलिपियाँ ग्रंथालयों में पड़ी हैं और बहुत-सा हिस्सा नष्ट हो चुका है—विश्व-साहित्य के एक विलक्षण भाग का प्रतिनिधित्व करता है। यदि उसकी विविधता पर ध्यान दें तो हमें उसमें मानवी क्रिया-कलापों की प्रत्येक कल्पनीय शाखा के विषय में रचनाएँ मिलेंगी। उसकी जिन दार्शनिक विचार-धाराओं, कविताओं और नाटकों के उद्धरण दिये जा सकते हैं; उनमें से कुछ

रचनाएं, जैसे उपनिषद् और गीता भारत की सांस्कृतिक परम्परा का एक मूल्यवान अंश हैं; और वे आज वस्तुतः विश्व-विचार-सम्पदा का भाग बन चुके हैं। दो संस्कृत-महाकाव्यों ने न केवल प्रादेशिक भाषाओं में बड़ा साहित्य निर्मित किया, बल्कि उसमें व्यक्त चरित्रों ने राष्ट्रीय आदर्श भी बनाया। कालिदास और शूद्रक की कविता तथा नाटक आज भी इन क्षेत्रों में भारत की श्रेष्ठतम उपलब्धियां मानी जाती हैं। बोल-चाल की भाषाओं में साहित्यिक कार्य कुछ विशेष क्षेत्रों में ही अधिक बढ़ा, जैसे धर्म, भाव-गीत और महाकाव्य में। साहित्यिक समालोचना, तर्क, अध्यात्म-विद्या, चिकित्सा, कला, न्याय, ज्योतिष, गणित इत्यादि विषयों पर, अधिकतर ग्रंथ संस्कृत में ही लिखे गए। यदि किसी प्रमुख प्रादेशिक भाषा में ही किसी लेखक या वक्ता की भाषा का विश्लेषण किया जाय, तो यह पता चलता है कि जहां भी वह विचार के उच्चतम स्तर को छूता है, वहीं उसकी शब्दावली संस्कृतमयी हो उठती है। कितना भी प्रादेशिक साहित्य विकसित हुआ हो और किसी भी लेखक की स्थानिक भाषा में जो भी महत्ता रही हो, न तो वह साहित्य और न वह लेखक ही संस्कृत की परम्परा की बिलकुल उपेक्षा करके चल सका। संस्कृत की परम्परा से वह निरन्तर स्फूर्ति प्राप्त करता रहा है। इधर सारे देश में जो आत्मिक जागरण हुआ और उसने नवजीवन की जो चेतना निर्मित की, उसका बहुत-सा श्रेय भारत के भूतकालीन वैभव के नवीन बोध को है। इस चैतन्य का मूल आशय संस्कृत की परम्परा के पुन: भान से सबद्ध है। इसलिए बहुत हद तक, नवीन रचनाओं के पीछे जो भावना रही है वह संस्कृत की ही है, चाहे उनका माध्यम स्थानीय भाषा ही रही हो।

प्राचीन संस्कृत-साहित्य अपनी विविधता और रूप-समृद्धि की दृष्टि से महान् है। यदि ललित साहित्य को ही ले लें, तो संस्कृत में महाकाव्य, खंड-काव्य और छोटी कविता का अच्छा विकास हुआ। उसमें जहां वीर-काव्य, वर्णनात्मक काव्य और गीतात्मक काव्य मिलता है;

वहाँ विचार-प्रधान, नीतिपरक, ऐतिहासिक और वर्णनात्मक रचनाएँ भी मिलती हैं। संस्कृत-कविताओं में छन्द-सौंदर्य की विलक्षण विविधता दृष्टिगोचर होती है। गद्य-खंडों के उत्थान-पतन में भाषा की संगीतमयी सम्भावनाओं तक वह भाषा पहुँची; इसमें गद्य और पद्य दोनों का मिश्रित चम्पू रूप भी विकसित हुआ। नाटकों में संस्कृत-कवियों ने कई प्रकार के रूपक दिये, नायक-प्रधान नाटक, सामाजिक प्रकरण, लम्बे नाटक और छोटे नाटक, एकांकी, प्रहसन, स्वगत-भाषण, ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक और पौराणिक रूपक इत्यादि। बाद के काल में, संस्कृत-रंगमंच भी विकसित हुआ और कई गौण प्रकार के नृत्य-नाटक भी उसके साथ-साथ लिखे तथा खेले गए। सबसे ऊपर, रस के सिद्धांत ने, जो कि भारतीय संस्कृति का धर्म की भाँति एक प्रधान अंग था, अपने ध्वनि और औचित्य के सिद्धान्तों के साथ, संस्कृत-अलंकार-शास्त्र को बड़ी देन दी। इन सिद्धांतों से बढ़कर प्रादेशिक भाषाओं में कोई सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया गया।

जीवित भाषा

हम सबको यह नहीं मानना चाहिए कि संस्कृत ने अपने-आपको एक ऊँचे अधिष्ठान पर प्रतिष्ठित कर लिया। उसने एक प्राचीन निश्चित मानदंड का अनुकरण किया और परंपरित साँचों में ही वह ढलती गई। संस्कृत-साहित्य के लंबे इतिहास और उसके समृद्ध तथा विविधतापूर्ण विकास का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि उसमें कितने परिवर्तन घटित हुए और देशी भाषाओं से उसने कौन से अनिवार्य ग्रहण किये। उच्चारण और शब्द-रचना में, शब्द-भंडार एवं वाक्य-रचना में, संस्कृत पर उससे निकली हुई प्राकृतों का प्रभाव पड़ा है, और संस्कृत-परिवार से भिन्न परिवारों की भाषाओं का भी असर पड़ा है। कविता के छन्दों और अलंकारों में, विषय और मूल कल्पनाओं में, रंगमंच और वर्णनों में, मन के नृत्य-नाट्यमय उत्सवों में जहाँ उसने विविध

प्रादेशिक भाषाओं से बहुत-सा प्रभाव ग्रहण किया, वहाँ प्रादेशिक परंपराओं और रूपों से उसका मिलन हुआ। संस्कृत ने अपने उदार दृष्टिकोण से अपना सर्वोत्तम अंश दूसरों को दिया और उनसे लिया भी। संस्कृत सदा पंचशील के 'जियो और जीने दो' के आदर्श में विश्वास करती रही। उसने अपने भीतर प्रादेशिक संस्कृतियों के सौंदर्य-तत्त्व आत्मसात् कर लिए। संस्कृत की विशेषता यह है कि उसका विकास भारत के सब हिस्सों में हुआ। अपनी विशेष प्रतिभा से वह वही कार्य चुपचाप करती रही, जो कि आज हमारे संविधान के अनुसार राष्ट्र-भाषा बनने के लिए हिंदी को करना चाहिए—यानी अपने-आपको विविध प्रदेशों द्वारा विकसित होने देना, और प्रादेशिक भाषाओं में जो मूल्यवान बातें हैं उन्हें ग्रहण करना।

संस्कृत के लेखक अपने-आपको समकालीन घटनाओं के घनिष्ठ सम्पर्क में रखते थे, और जो भी नई सामग्री उन्हें मिल जाती थी उसका पूरा उपयोग करते थे। प्रारम्भिक अवस्था में, यूनान और रोम का प्रभाव था, जैसे ज्योतिष में। दूसरे के काल-खंड में, मुगल काल में, संस्कृत के लेखकों ने फारसी सीखी, फारसी-संस्कृत के कोश भी बनाये और फारसी तथा अरबी से संस्कृत में अनुवाद भी किये। संस्कृत वाले कभी भी अलग दुनिया में नहीं रहते थे, परन्तु वे अन्य प्रभाव इस प्रकार से आत्मसात् करते थे कि अपनी विशेषता रखकर भी वे विभिन्न तत्त्वों को अपने भीतर समो लेते थे। यदि परवर्ती इस्लामी संपर्क उन प्रारंभिक मध्य-पूर्वी सपर्कों के ही पुरस्सरण थे, जो खुसरू नौशेरवान (५३१—५७६ ईस्वी) से शुरू हुए थे और खिलाफत के दिनों में और भी मजबूत बने, जब कि संस्कृत के ज्योतिष और गणित के ग्रंथ अनूदित होकर पश्चिम में ले जाए गए; तो आधुनिक काल के यूरोपीय संपर्कों को प्राचीन भारत के अथेन्स, अलेक्जेंड्रिया और रोम के साथ बौद्धिक सम्पर्क का पुनर्नवीकरण कहा जा सकता है।

आधुनिक काल में भारत और यूरोप का संपर्क दोनों भू-खंडों के

लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण रहा है। पश्चिम ने संस्कृत की खोज की, जो कि पुनर्जागरण के समय से यूरोपीय विचार-धारा में सबसे सार्थक घटना कही जा सकती है। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है संस्कृत की यह खोज दो प्रकार से प्रभावशाली सिद्ध हुई। एक ओर जहाँ आधुनिक शिक्षा-प्राप्त भारतीय अपनी सांस्कृतिक परम्परा के मूल्यों को नये सिरे से पहचानने लगे; और पश्चिम के प्राच्यविद्याविदों ने भारत में साहित्यिक तथा सांस्कृतिक पुनर्जागरण निर्मित किया; वहाँ दूसरी ओर पश्चिमी विचार और जीवन की पद्धतियों ने परंपरित संस्थाओं और ज्ञान में परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ की। संस्कृत की खोज आधुनिक तथा रूढ़िवादी दो पद्धतियों में बँट गई। इस प्रकार के अध्ययन की प्रथम पद्धति नये अंग्रेजी स्कूलों, कालिजों और यूनिवर्सिटियों में और दूसरी परंपरित टोलों, पाठशालाओं तथा कालेजों में विकसित करती रही। पश्चिम के साहित्य और विचार-धाराओं का प्रभाव शिक्षा एवं शासन के द्वारा स्पष्ट होने लगा। उसकी प्रतिक्रिया दोनों प्रकार के संस्कृतज्ञों पर पड़ी। फलतः आधुनिक यूरोपीय प्रभाव के साथ-साथ संस्कृत-साहित्य एक नई अवस्था में प्रवेश करने लगा।

पहला प्रभाव तो यह हुआ कि संस्कृत में जो रचनात्मक कार्य तब तक चल रहा था, उसे एक नई प्रेरणा मिली, परन्तु धीरे-धीरे, अंग्रेजी अखिल भारतीय माध्यम का स्थान लेने लगी; जो कि स्थान पहले संस्कृत का था, और संस्कृत सीखने का माध्यम पहले जो प्रादेशिक भाषाएँ थी, उनके बदले में अंग्रेजी माध्यम बनी। संस्कृत इस प्रकार से दैनिक जीवन और मातृभाषा से दूर होती गई; उसका अध्ययन अधिकाधिक पुरातत्त्व की भाँति होने लगा। अंग्रेजी प्रभाव के प्रथम आघात के समय, संस्कृत के पंडित जिस उत्साह से संस्कृत की पत्रिकाएँ प्रकाशित करते थे, विदेशी ग्रंथों के अनुवाद करते थे, उपन्यास और कहानियाँ लिखते थे, और उसकी तुलना आज जो शिथिलता और निस्सहायता की भावना उनमें आ गई है उसके साथ करते हैं, तो हम अधःपतन का

क्रमशः अध्ययन हम कर सकते हैं; और संस्कृत धीरे-धीरे सजीव अभिव्यंजना के माध्यम के नाते कैसे निखरी गई यह स्पष्ट होता जाता है। संस्कृत के आश्रयदाता भी, जो संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देने के लिए बड़े जोरों से तर्क करते थे, संस्कृत में मौलिक सृजन की उपेक्षा से देखने लगे। सौभाग्य से अब संस्कृत में साहित्य-रचना की ओर फिर ध्यान दिया जाने लगा है; और आधुनिक शिक्षा-प्राप्त संस्कृतज्ञों में भी इस भाषा को अपने विचारों का माध्यम बनाने और इस रूप में विकसित करने की इच्छा बढ़ती जा रही है। ब्रिटिश काल के आरम्भ में, संस्कृत शिक्षा बड़े जोरों पर थी, और पुराने संस्कृत पंडितों की परम्परा तब तक चालू थी। १९वीं शती में, संस्कृत के पंडित या उनके नवशिक्षित पुत्र या प्रपौत्र, बराबर संस्कृत में लिखते रहते थे। उनमें से जो विशेष अच्छा या अधिक लिखने वाला होता, वह अधिकाधिक ग्रंथों की रचना करता। जब साहित्य के प्रचार की सामान्य पद्धति मुद्रण द्वारा होने लगी, और संस्कृत-प्रकाशन का साधन अच्छी तरह विकसित नहीं हुआ, तब यह सब साहित्य हस्तलिखित रूप में अप्रकाशित पड़ा रहने लगा। आधुनिक संस्कृत-साहित्य का पूरा वर्णन तब तक नहीं दिया जा सकता, जब तक कि उसकी अधिकतर सामग्री अप्रकाशित हस्तलिखित पांडुलिपियों में और पहुँच के बाहर है। समकालीन संस्कृत-लेखकों में से अनेक ने ऐसी कविताएँ, नाटक और कहानियाँ लिखी हैं, जो सारे देश में जनता के व्यापक उपयोग के लिए प्रकाशित होने की आशा नहीं रखीं। परन्तु इस प्रकार के अभाव से कोई यह न समझ ले कि संस्कृत में रचनाएँ बराबर नहीं होती रही हैं; और आधुनिक काल में बहुत-सा आधुनिक साहित्य उस भाषा में लिखा गया है; और देश की अन्य भाषाओं की रचनाओं की तुलना में वह कम नहीं माना जाना चाहिए।

इस बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि संस्कृत-साहित्य के इतिहास के प्रसिद्ध ग्रंथ उनका विवरणयुक्त वर्णन बारहवीं शती तक लाते हैं, और बाद की शताब्दियों की कुछ फुटकर कृतियों का उल्लेख

करके समाप्त हो जाते हैं। यह दोष कम-से-कम एक लेखक में नहीं है जिसने भारत के विभिन्न प्रदेशों में आधुनिक संस्कृत-लेखकों और उन रचनाओं के विषय में बड़ी सामग्री एकत्रित की है। संस्कृत-लेखन के नमूने उन संस्कृत-पत्रों में प्रकाशित हुए जो अब अलभ्यप्राय हैं; जिनके पुराने अंक अब मुश्किल से ही पाए जाते हैं। प्रस्तुत लेख सर्वेक्षण और दो ऐसे ही सिंहावलोकन, जो प्रस्तुत लेखक ने किये हैं, भारतीय साहित्यिकों और सर्वसाधारण पाठकों को यह कल्पना देने उपयोगी होंगे कि इस साहित्य का स्वरूप और विस्तार कितना है। इस प्रकार से उसमें उनकी दिलचस्पी बढ़ेगी।

पश्चिम से संपर्क

संस्कृत-साहित्य में आधुनिक धाराएँ विशेष रूप से पश्चिमी साहित्य के संपर्क का परिणाम हैं। अब जिन प्रमुख रूपों में यह नया महत्व अभिव्यजित हुआ है, वे हैं संस्कृत-पत्रिकाओं का प्रकाशन, पश्चिमी श्रेष्ठ ग्रंथों का अनुवाद, कहानी, छोटी कविता और उपन्यास का विकास, वर्णनात्मक, कथात्मक और छोटे निबन्धों या लंबे प्रबंधों के लिए आलोचनात्मक रूप में, वाद-विवाद और उल्लेख के लिए गद्य का विशेष उपयोग, साहित्य-समीक्षा, रसास्वाद और ऐतिहासिक समालोचना की पश्चिमी ढंग पर अभिवृद्धि तथा आधुनिक वैज्ञानिक विचारों का प्रकटीकरण। देश के भीतर जो संस्कृतज्ञ प्रादेशिक भाषाओं में नवीनतम रचनाएँ पढ़ते हैं या स्वयं अपनी मातृभाषाओं में लिखते हैं, वे उन भाषाओं की अधिक महत्त्वपूर्ण पुरानी या नई कृतियों को संस्कृत में अनूदित करने लगे। इस प्रकार से वे संस्कृत और प्रादेशिक भाषाओं के सम्बन्ध पुनः घनिष्ठ बनाने लगे। तीसरी बात यह थी कि देश के सार्वजनिक जीवन में जो

*एम० कृष्णमाचारियर, 'हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर', मद्रास १९३७।

‡'माडर्न संस्कृत राइटिंग्ज', अड्यार लाइब्रेरी बुलेटिन, १९५६ ; संस्कृत लिटरेचर १७०६-१९३७, जर्नल आफ दि मद्रास यूनिवर्सिटी सेंटेनरी नंबर, १९५७।

नये सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलन हो रहे थे उन्होंने संस्कृत के लेखकों पर अपना प्रभाव डाला; और इस प्रकार से संस्कृतज्ञों ने नए रूप में जो साहित्य पैदा किया, उसमें संस्कृत पूरी तरह से जीवित दिखाई दी। 'जीवित' शब्द यहाँ पूरे अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, क्योंकि यहाँ संस्कृत समकालीन जीवन और विचारों की अभिव्यंजना का माध्यम बन गई है।

संस्कृत विद्या के परंपरित रूप चल ही रहे थे। प्राचीन पद्धति से प्रभीत पंडित लंबी और छोटी कविताएँ, भजन, नाटक, धार्मिक रचनाएँ, भाष्य और शास्त्रों पर या अन्य विशेष प्रकार की टीकाएँ पुरानी शैली में लिखते जा रहे थे। दक्षिण में अभी-अभी तक भट्ट श्री नारायण शास्त्री-जैसे लेखक हुए, जिन्होंने ६३ नाटक लिखे; राधामंगलम् नारायण शास्त्री १०८ ग्रंथों के रचयिता थे और काव्यकान्तम् गणपति शास्त्री ने विपुल रचना की है। उसी प्रकार से दूसरे लेखक अन्य विद्या-केन्द्रों में हुए। ऐसी रचनाएँ, जिनमें रचयिता की विद्वत्ता और कुशलता छन्द-रचना में व्यक्त होती है, (जैसे चित्रबंध काव्यों में,) अभी भी की जाती हैं।* मैसूर के सी०एन० राव शास्त्री ने १६०५ में एक 'सीता-रावण-संवाद-झरी' लिखा, जिसमें रावण जो छंद कहता है, उसका एक अक्षर कम कर देने से सीता का उत्तर उसी छंद में हो जाता है। प्राचीन ढंग पर काव्य और नाटकों पर असंख्य भाष्य लिखे गए हैं, विशेषतः जो विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रम में हैं, उन पर तो कई पुराने ढंग के पंडितों † ने और बहुत पढ़े-लिखे अंग्रेज़ी जानने वाले संस्कृतज्ञों ने ‡ भी टीकाएँ लिखी हैं। दर्शन की विविध शाखाओं में जिन्होंने सिद्धांत-स्पष्टीकरणादि रचनाएँ की हैं, उनमें म० म०

* उदाहरणार्थ देखिये टी० एन० श्रीनिवासदेशिकाचार्य, 'मैसूर संस्कृत कालेज पत्रिका', १६५१, मार्च—दिगम्बर मथुरानाथ शर्मा, जयपुर, 'जयपुर-वैभव' (१६४७)-चित्रचत्वर विभाग।

† उदाहरणार्थ महामहोपाध्याय लक्ष्मण सूरि, मद्रास।

‡ उदाहरणार्थ बंबई में काने और कलकत्ता में एस० आर० रे; प्रस्तुत लेखक की 'मालविका व्याख्या' और 'आनन्दरंगचंपूव्याख्या' भी उल्लेखनीय हैं।

अनन्तकृष्ण शास्त्री, जयपुर के मधुसूदन शर्मा और इसी प्रकार से बनारस, कलकत्ता, मिथिला और केरल के विद्वानों का उल्लेख किया जा सकता है। यहाँ यह सम्भव नहीं है कि प्राचीन परंपरित ढंग से जो विशाल परिमाण पर साहित्य आज भी रचा जाता है, उसका वर्णन विस्तार में दिया जा सके।

ब्रिटिश शासकों ने संस्कृत के पंडितों को, अपनी शासकीय आवश्यकताओं से प्रेरित होकर, न्याय और कानून के सार बनाने के लिए नौकरियाँ दीं। साथ ही ब्रिटिश सम्राटों के प्रति प्रशस्तियाँ लिखने के लिए पंडितों को प्रलोभन दिया गया। विक्टोरिया, एडवर्ड और जार्ज पंचम के प्रति भी ऐसी रचनाएँ लिखवाई गईं। पंडितों ने इन विषयों पर उसी ढंग से महाकाव्य लिखे, नाटक भी लिखे, जैसे कि इन कवियों के पूर्वजों ने परमार, चालुक्य या विजयनगर-वंशों के विषय में स्तुति-पाठ लिखे होंगे। अंग्रेजों के प्रति निष्ठा की ऐसी उमड़ती हुई बाढ़ को आज हम महत्त्व नहीं दे सकते; परन्तु यहाँ यह बात अत्यन्त उल्लेखनीय है कि किसी संस्कृत-काव्य या नाटक के लिए एक नया विषय इस प्रकार से प्राप्त हुआ। साथ ही, यों, अंग्रेजों का या भारत में उनकी विजय का इतिहास भी संस्कृत में लिखा गया। वस्तुतः कुछ रचनाएँ तो इतिहास के रूप में ही थीं। विनायक की 'अंग्रेज चंद्रिका' या अज्ञातनाम लेखक का 'इतिहास-तमोमणि' इतिहास के प्रारम्भिक उदाहरण हैं; तंजौर के रामस्वामी राजा का 'राजांग्ल-महोद्यान' (कुम्भकोणम् १८६४) अंग्रेजों के बारे में काव्य है, परन्तु इसमें प्रसिद्ध भारतीयों की जीवनी भी मिलती है। तिरुमल बुक्कपट्टनम् श्रीनिवासाचार्य ने प्रथम विश्व-युद्ध का वर्णन 'आंग्ल-जर्मन-युद्ध विवरण' में दिया है। संस्कृत की प्राचीन प्रेम-कविता में डूबे हुए कवि पर एडवर्ड अष्टम का अपनी प्रिया के लिए त्याग का प्रभाव बहुत गहरा पड़ा होगा; इसका उदाहरण 'मधुर-सौहार्द' नामक ए० गोपाल अय्यंगार (मद्रास, १६१०) की कविता है।

स्थानीय राजवंशों पर ऐतिहासिक काव्य-लेखन की परंपरा चल ही

रही थी, परन्तु यहाँ पर उन वर्णनों का क्रम हमें ध्यान में रखना चाहिए जो कि नई ऐतिहासिक भावना से लिखे गए थे और जो हमारे इतिहास को ब्रिटिश शासन-काल तक ले आते हैं। यह नये ऐतिहासिक वर्णन गद्य और पद्य दोनों में मिलते हैं और वे समूचे भारतीय इतिहास के क्षेत्र को या उसके विशिष्ट अंश को अपना लक्ष्य बनाते हैं। इतिहास दीपिका * पाँच अध्यायों में टीपू सुलतान के साथ मराठा साम्राज्य के युद्धों का वर्णन करती है। 'भारतेतिहास' (सं०सा०प०प० † १९४८–४९) भारतीय इतिहास का एक गद्य-लेख है। एम०एम०टी० गणपति शास्त्री ने 'भारतानुवर्णन' नाम से भारत का इतिहास लिखा है, और रामावतार शर्मा ने 'भारतीयम् इतिवृत्तम्' नामक उसी प्रकार का ग्रंथ लिखा है। 'भारतेतिवृत्तसार' जयपुर के लक्ष्मीनाथ शास्त्री ‡ की ऐतिहासिक कृति है। 'भारत संग्रह' में, काव्यकंठम् गणपति शास्त्री ने भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन * किया है। 'श्रिया साम्य' † के १६ छोटे सर्गों में, कवि

* प्रकाशन तिथि अज्ञात।

† निम्न संक्षिप्त चिह्न इस सर्वेक्षण में संस्कृत-पत्रिकाओं के लिए प्रयुक्त किये जायेंगे :

सं० सा० प० प०—'संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका', कलकत्ता
सं० र०—'संस्कृत रत्नाकर', जयपुर, बनारस,
सहृ०—'सहृदय', श्रीरंगम्
अ० वा०—'अमृत वाणी', बैंगलोर
म० वा०—'मधुर वाणी', गदग, धारवाड़
उ० प०—'उद्यान पत्रिका', तिरुवाय्यूर, तमिलनाडु
म० स० का० मै० मै०—'महाराजा संस्कृत कालेज मैगज़ीन' मैसूर
मंजू०—'मंजूषा', कलकत्ता
सं० च०—'संस्कृत चंद्रिका', कोल्हापुर

‡ देखिये पृ० ४०, 'जयपुर वैभव' की भूमिका, जयपुर, १९४७।

* देखिये पृ० ११, उनके 'उमामहस्र' की भूमिका, सिरसी, उत्तर कर्नाटक १९४३।

† लाहौर, १९३५।

कृष्णकोर ने हिन्दी का प्रारम्भिक इतिहास दिया है। श्रीपाद शास्त्री हसूरकर ने 'भारत-वीर-रत्नमाला' में ऐतिहासिक वर्णनों की एक कल-त्रिका बनाई थी, और हमें 'शिवगुरु चरितामृतम्' (इंदौर १९३३) दिया था। सहृ० ने चौथे खंड में महमूद गजनी पर एक ऐतिहासिक कविता छापी थी, जिसका शीर्षक था 'गजनीमहम्मद-चरित'। बाद में इसी पत्रिका में चन्द्रगुप्त, अशोक, संयोगिता आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के छोटे गद्य-वर्णन छपे थे। सहृ० में १९१४ में अलेक्जेंडर के भारत-आक्रमण का वर्णन भी मिलता है।

इतिहास और जीवनी

प्रसिद्ध व्यक्तियों की जो जीवनियाँ प्राचीन साहित्य में लिखी जाती थीं उनमें तथ्य और कपोल-कल्पना का मिश्रण होता था। महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का जीवन काव्यमय और प्रशस्तिपूर्ण शैली में लिखा जाता था, जिसमें वर्णनात्मक अंश अधिक होते थे; थोड़ा-बहुत जो ऐतिहासिक तथ्य-संग्रह रहता था वह उनके कारण अस्पष्टतर हो जाता था। नई जीवनियों में, ऊँची आलंकारिक शैली के बदले सरल वर्णनात्मक गद्य लिखा जाने लगा और लेखक घटनाओं पर अपना ध्यान अधिक केंद्रित करने लगे। वह चरितनायक के जीवन और काल के विवरणों पर अधिक बल देने लगे। ऐसे जीवन-वृत्त कई प्रकार के व्यक्तियों के बारे में लिखे गए हैं—भूतकालीन ऐतिहासिक व्यक्ति, प्राचीन, मध्ययुगीन और आधुनिक संत, विद्वान्, राजनैतिक नेता और वर्तमान समय के सार्वजनिक कार्यकर्त्ता। अन्तिम प्रकार के व्यक्तियों का विचार अलग परिच्छेद में होगा; अब हम दूसरे प्रकार की जीवनियों का विचार करेंगे। जयपुर के अंबिकादत्त व्यास ने 'शिवराज-विजय' नाम से शिवाजी पर एक ऐति[illegible] गद्य-ग्रंथ लिखा। यह ग्रंथ 'संस्कृत-चंद्रिका' के ७वें और ८वें [illegible]शित हुआ। श्रीपाद शास्त्री हसूरकर ने पृथ्वीराज, प्रतापसिंह पर गद्य में लिखा। ('भारत-वीर-रत्न-

माला', इन्दौर १६२०, १६२२)। सखाराम शास्त्री ने रानी अहल्याबाई पर एक महाकाव्य रचा (सातारा १६५१)। उसी काव्य-शैली में जयपुर (उड़ीसा) के रामनाथ नन्दा ने जयपुर-राज-वंशावली (जयपुर १६३८) लिखी। इससे भी अधिक मनोरंजक 'चालुक्य-चरित' (मद्रास १६३८) है, जिसमें परवस्तु लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री ने चालुक्य-शिला-लेखों को एक सुसूत्र ऐतिहासिक वंश-विवरण के रूप में एकत्रित और सुगुंफित किया है। 'भारत-रत्न' नाम के छोटे वर्णनों के क्रम में नागपुर के संस्कृत-पत्र 'भवितव्यम्' ने पाठकों को भारत की विभिन्न भाषाओं और प्रदेशों के प्रमुख व्यक्तियों का परिचय कराया है। कथा-उपन्यास की रचना के लिए ऐतिहासिक घटनाओं का उपयोग भी किया गया, जैसा कि प्रस्तुत लेख में निर्दिष्ट एक और विभाग से सिद्ध होगा।

गद्य और पद्य-जीवनियों में देश के विभिन्न विभागों के संतों के चरित्र अधिक रचे गए हैं। अलमेलम्मा मैसूर की एक भद्र महिला हैं, जिन्होंने 'बुद्धचरितामृत' (१६३२ में) रचा। हसूरकर ने 'भारत-साधु-रत्नमाला' नामक एक माला और चलाई थी, जिसमें वल्लभाचार्य और रामदास की गद्य-जीवनियाँ दी गई थीं। श्री चैतन्य और उनके बड़े समकालीन अद्वैत की जीवनी कालीहरदास बसु ने गद्य में लिखी है (स० सा० प०[प०, १६२८-२६ और १६३८-३६ खंड)। ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास और मीरा पर श्रीमती क्षमा राव ने कविताएँ लिखीं।* सत्य-नारायण पर स० सा० प० प० में 'सत्यानुभव' नाम से एक वर्णनात्मक लेख मिलता है (१६४६ खंड)। राजवल्लभ शास्त्री (मद्रास, १६३६) ने शृङ्गेरी के प्रसिद्ध स्वामी नृसिंह भारती पर एक महाकाव्य† लिखा है। कामकोटि के शंकराचार्य के जीवन और विजय-यात्राओं का वर्णन तीन ग्रंथों‡ में है। नये धार्मिक नेताओं में दयानंद पर

* १६४४, १६५० खंड, १६५३ खंड।

† मद्रास १६३६।

‡ उदाहरणार्थ 'श्री चन्द्रशेखर विजयमहाकाव्यम्', लेखक पी० रामसहेश्वर शास्त्री, १६३१।

अखिलानन्द शर्मा ने 'दयानन्द-दिग्विजय' (इलाहाबाद १६१०) लिखा है। ऐसे अन्य अनेक काव्य हैं। इधर 'आर्योदय काव्य' नाम से एक महाकाव्य २१ सर्गों में गंगाप्रसाद उपाध्याय (इलाहाबाद १६५२) ने प्रकाशित किया है। इसमें लेखक ने दयानंद के आविर्भाव की एक बड़ी ऐतिहासिक भूमिका दी है। इसमें हिंदुओं के पतन और पुनरुत्थान, भारत पर विदेशी अधिसत्ता और स्वतन्त्रता-प्राप्ति का वर्णन किया है। पी० पंचापकेश शास्त्री ने रामकृष्ण परमहंस की जीवनी गद्य में लिखी है (मद्रास १६३७) और बंगलौर के के० एन० नागराज ने 'विवेकानंद चरित'*। संगीतज्ञ कवियों में, कर्नाटक संगीत के दो प्रसिद्ध गायक, रचयिता त्यागराज और मुत्तुस्वामी दीक्षितार पर भी महाकाव्य रचे गए। उनमें इन संगीतज्ञों की जीवनी, काल तथा कृतियों का वर्णन है। प्रथम जीवनी सुन्दरेशन शर्मा (कुम्भकोणम् १६३७) ने छापी है; और दूसरी अभी प्रकाशित नहीं हुई है और वह इन पंक्तियों के लेखक की रचना है।

विद्वानों के जीवन और कृतियाँ भी लिखी गई हैं। चन्द्रभूषण शर्मा ने 'जीवित वृत्तांत' नाम से बनारस संस्कृत कालेज के पं० बेचन शर्मा की जीवनी लिखी है (बनारस, १८६०)। नारायण शास्त्री खिस्ते ने 'विद्वन्-चरित-पंचक' (बनारस, १६२८) लिखा; इस ग्रंथ में चम्पू के रूप में बनारस के जिन पाँच प्रमुख महामहोपाध्यायों की जीवनी दी गई हैं, उनके नाम हैं—सर्व श्री गंगाधर शास्त्री मनवल्ली, कैलासचन्द्र, दामोदर शास्त्री, शिवकुमार शास्त्री और रामकृष्ण (तात्या) शास्त्री। 'संस्कृत चन्द्रिका' में पुराने और नये विद्वानों के संस्कृत-गद्य चरित्र प्रकाशित हुए हैं। म० म० यज्ञस्वामी शास्त्री ने 'त्यागराज-विजयम्' नामक ग्रंथ में अपने नाना की जीवनी लिखी है। उनके नाना का नाम म० म० राजू (त्यागराज) शास्त्री था। वे मन्नारगुडी के थे। वह

* म० म० स्वच्छन्द का से, ११४७।

ग्रंथ तंजौर से १९०४ में प्रकाशित हुआ। क्षमा राव का 'शंकरजीवनाख्यान' (बम्बई १९३९) विदुषी के पिता, प्रसिद्ध संस्कृत-शोधक विद्वान् शंकर पांडुरंग पंडित की पद्यबद्ध जीवनी है। 'हरनामामृत काव्य' (बीकानेर १९५५) विद्याधर शास्त्री विरचित अपने पितामह का जीवन-वृत्तांत है, जिसमें उनके काल के संस्कृत-आन्दोलन का भी यथा प्रसंग वर्णन आ गया है। डॉ० वी० एम० कैंकिणी (बम्बई, १९५०) का 'शिवकैवल्य चरित' लेखक के एक पूर्वज की जीवनी पर आधारित है और उसमें पंडित-परिवारों की देशान्तर-यात्रा पर रोचक ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। लेविस राइस-जैसे यूरोपीय प्राच्यविद्याविद् की जीवनी भी संस्कृत में लिखी गई (पद्मराज पंडित, बंगलौर, १९०५)।

आत्म-कथा को आधुनिक साहित्य की एक विधा मानना चाहिए।* कारीड रामकृष्ण कवि ने एक स्वोदय काव्य लिखा है, जो अभी अप्रकाशित है। दुर्गानन्द स्वामी ने 'विद्योदय' में अपने जीवन पर प्रकाश डाला है। हाल में ही प्रकाशित कृतियों में 'ईश्वर-दर्शन या तपोवन-चरित' (त्रिचूर १९५०) है, जिसके लेखक मलाबार के स्वामी तपोवनम् हैं, जो आजकल हिमालय के एक आश्रम में रहते हैं। यह उत्तम गद्य शैली में लिखा हुआ ग्रंथ है।

जिनके राज्य-काल में राज्यों की सर्वांगीण प्रगति हुई उन सुविज्ञ भारतीय राजाओं में से कुछ लोगों को नहीं भुलाया जा सकता। इनमें प्रथम हैं मैसूर के महाराजा स्वर्गीय कृष्ण वोडायार; जिन पर कई कविताएँ म० स० श० मैं० मैं० में हैं †। इनमें की कुछ कविताओं में राज्य के कई आधुनिक सुधारों, जैसे बिजली, कावेरी-बाँध, जोग-जल-प्रपात, कोलार, गुफाएँ, हुलिकेरि सुरंग आदि के वर्णन हैं। कोचीन के हि० हा० रामवर्मा पर, जो कि वर्तमान राजा के चाचा और एक सुविख्यात संस्कृत-विद्वान्

* बाण और दण्डी के आत्म-वृत्तों को छोड़कर।

† १९२५ राजवल्ली अनंत कृष्ण शर्मा, नरसिंहाचार्य, मिर्लेरियांगार तथा अन्य।

भी थे, 'रामवर्मविजय'* नामक ग्रंथ लिखा गया। माला† कोचीन के वर्तमान राजा पर रची गई। ये भी संस्कृत के बहुत अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने परंपरित शैली में कई काव्य लिखे हैं। 'जयपुर वैभव'‡ मथुरानाथ शास्त्री की रचना है, जो कि आधुनिक जयपुर का वर्णन है। उसमें राजवंशो, संस्कृत के विद्वानो तथा जयपुर में रहने वाले विद्वानों के परिवारो का वर्णन है।

आलोचनात्मक परिप्रेक्षण

संस्कृत-पाठ्य-क्रम का एक अंग संस्कृत भाषा और साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन भी है। पुराने ढंग की संस्कृत-पाठशालाओं में भी अध्ययन के पाठ्य-क्रम में संस्कृत को रखा गया। पंडितों के दृष्टिकोण में ऐतिहासिक और आलोचनात्मक परिप्रेक्षण लाना और भी आवश्यक हो गया। इस प्रकार से तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के आधुनिक विज्ञान और विशेषतः भारोपीय भाषाओं पर संस्कृत में गद्य-ग्रंथ लिखे गए। संस्कृत-साहित्य के इतिहास भी रचे गए। राजराज वर्मा ने अपने 'लघु पाणिनीय'* में भारतीय भाषा-विज्ञान के सम्बन्ध में एक परिशिष्ट जोड़ा। आर० रामा शास्त्री ने म० म० म० म० म० में (१९२५-२६) 'भाषा-तन्त्र' लिखा; सहृ०(३) में 'आर्यभाषा-चरित्र' प्रकाशित हुआ और स० सा० प० प० में (१९३५) द्विजेन्द्रनाथ गुह चौधरी ने 'देवभाषा-देवनागर-अक्षरयोः उत्पत्तिः' लिखी। आर० एस० वेंकटराव शास्त्री ने 'भाषा-शास्त्र प्रकाशिनी'† पुस्तक लिखी, और एस० टी० जी० वरदाचारियर ने 'भाषा-शास्त्र संग्रह'‡ लिखा। उसी प्रकार संस्कृत-साहित्य के इतिहास के

* लेखक कुशल कलियर, प्रकाशन १९३०
† म० का० कृष्ण कवियर, त्रिचूर १९४८
‡ जयपुर १९४७।
* कृष्णा सम्प्रदाय, त्रिवेन्द्रम १९१९
† मद्रास १९३८, कला कलानिधि प्रेस
‡ १९३३, त्रिवेन्द्रम और मद्रास

वर्णन सब शास्त्रों में प्रकाशित किये। आर० श्रीनिवासराघव ने मद्रास (३) में 'गीर्वाणभाषाभ्युदय' लिखा और 'मित्र-गोष्ठी' में गिरिजाप्रसाद शर्मा ने संस्कृत-कवियों पर गद्य-निबंध लिखे। म० स० का० मं० मं० में राजगोपाल चक्रवर्ती ने 'कवि-काव्य-विचार' लिखा तथा उ० प० में क्रमशः 'संस्कृत ग्रंथचरित्रम्' छपा। पी० पी० एस० शास्त्री और के० एल० वी० शास्त्री* ने मैक्डोनाल के 'हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर' से वैदिक साहित्य का वृत्तान्त अनूदित किया और पंजाब विश्वविद्यालय के प्रो० हंसराज अग्रवाल ने हाल में ही उसी विषय पर† दो खंडों में एक बड़ा ग्रंथ लिखा है। अनेक पंडित और शोध-कार्य में निरत विद्वान् प्राचीन ग्रन्थों के शुद्ध पाठों के सम्पादन और भाष्य आदि में जुटे हैं। उन्होंने अपनी भूमिकाएँ और समीक्षा आदि अंग्रेजी के बजाय संस्कृत में ही प्रस्तुत की हैं। इस प्रकार से इन ग्रंथों का उपयोग करने वालों का क्षेत्र विस्तृत होता गया है। जयपुर के मधुसूदन शर्मा-जैसे पंडितों ने संस्कृत में इन्द्र, चातुर्वर्ण्य, अत्रि और यज्ञ‡-जैसे विषयों पर शोधपरक निबन्ध प्रस्तुत किये हैं।

जिस काल-खंड का हम पर्यवलोकन कर रहे हैं, वह सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक क्षेत्रों में नये आन्दोलनों का काल था। भारतीय जनता ज्यों-ज्यों पाश्चात्य जीवन-पद्धति को अधिकाधिक अपनाने लगी, समुद्र-पार की विदेश यात्राएँ ज्यों-ज्यों अधिक सामान्य बनती गईं, हिन्दू रूढ़ियों और रीतियों पर एक ओर पश्चिम के लोग और भारतीय सुधारक ज्यों-ज्यों आलोचना करने लगे (उदाहरणार्थ बाल-विवाह, वैधव्य, जाति-भेद, छुआछूत आदि पर) त्यों-त्यों सनातनी हिंदू रूढ़ पद्धतियों से चिपटने लगा। प्रारम्भ में पंडितों ने सुधारकों के आन्दोलन का बड़े साहसपूर्वक सामना किया और समुद्र-यात्रा, ऋतु-प्राप्ति के

* धारवाड़, १९२७।

† लुधियाना, १९५१।

‡ इन्द्रविजय १९३०, चातुर्वर्ण्य शिक्षा १९२७, अत्रिख्याति १९२९, यज्ञसरस्वती १९४६।

पश्चात् विवाह और विधवा-पुनर्विवाह आदि* के विरोध में बहुत लेख लिखे। सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र में आर्यसमाज का आन्दोलन था, जो वैदिक धर्म की सच्ची शुद्धि की ओर समाज को पीछे बुलाना चाहता था। उसने संस्कृत के अध्ययन में बड़ी सहायता दी, और उसके विस्तार के लिए बहुत-से पाठ्य-ग्रंथ तैयार किये। पंडितों ने जो सैद्धांतिक साहित्य रचा, उनमें दयानंद सरस्वती के विचारों की समीक्षा भी सम्मिलित है। सनातनियों की ओर से स्वतन्त्रता से पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल में भी सामाजिक-धार्मिक सुधारों का विरोध बराबर चलता रहा। ऐसी संस्कृत-पत्रिकाओं में, जिनका सम्पादन रूढ़िवादी सम्पादकों के हाथों में था, सुधारों का विरोध प्रकाशित होता रहा। इसका उदाहरण १९५१ के सं० १० में शिवनाथ उपाध्याय का एक छोटा-सा नाटक है, जिसमें दो स्त्रियाँ हिंदू कोड बिल पर वाद-विवाद करती हैं और यह सिद्ध करती हैं कि इस प्रकार से भारत के प्रत्येक घर में एक पाकिस्तान पैदा हो जायगा। कुछ संस्कृतज्ञ ऐसे भी थे जो सुधारों का स्वागत करते थे। इस युग में समाज-विज्ञान या धर्मशास्त्र के क्षेत्र में दो बड़े उल्लेखनीय ग्रंथ प्रकाशित हुए: डॉ० भगवान्दास का 'मानवधर्मसार' और जोधपुर के म० म० विश्वेश्वरनाथ रेऊ का 'आर्य-विधान या विश्वेश्वर-स्मृति'। प्रथम ग्रंथ में, जिसके कि लंबे और छोटे दो संस्करण मिलते हैं, और जो देश-भक्ति तथा सांस्कृतिक परंपरा के प्रति अगाध

* उदाहरणार्थ 'ऋतुमती-यान-मीमांसा' काशी, शेष वेंकटाचल शास्त्री कर्वी, १९०३; 'विवाह-समय-मीमांसा-आन्ध्रियान-विमर्श' एन०एस० अनन्तकृष्ण शास्त्री, १९१३; 'बाल-विवाह-हानि-प्रकाश', रामस्वरूप, इटावा, १९२२; 'ऋतुमती विवाह-विधि-निषेध प्रमाणानि', मद्रास १९१२; 'परिणय-मीमांसा', के० जी० नटेश शास्त्री, श्रीरंगम् १९१३; 'वय-निर्णय', पी० गजपति शास्त्री, कुम्भकोणम् १९१०। कुछ उदारमतवादी पण्डित भी थे, जो सुधारकों के साथ चलते थे, उदाहरणार्थ काशीचंद ने 'उद्धारक चंद्रिका' लिखी, जिसमें समुद्र-यात्रा से लौटे हुए व्यक्तियों को धर्म के घेरे में ले लेने का वर्णन था। (भार० के० मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर का बुलेटिन, जून १९५९, पृ० १३२)।

प्रेम से भरे अनुष्टुप छन्दों में लिखा गया है, लेखक ने अपने व्यापक ज्ञान के आधार पर भारतीय इतिहास, विभिन्न दार्शनिक विचार-धाराओं और ऐहिक तथा पारलौकिक हिंदू दृष्टिकोण का पूरा विश्लेषण करके जाति, स्त्री, मंदिर इत्यादि के विषय में शास्त्राज्ञाओं का सच्चा अर्थ प्रस्तुत किया है। उन्होंने हिंदू-धर्म की अन्य धर्मों से तुलना करके हिंदू राज्यों के उत्थान-पतन की मीमांसा की है और उसमें यह दिखलाया है कि इस संस्कृति का एक प्रधान दोष 'संघ-शक्ति' का अभाव है। विश्वेश्वरनाथ रेऊ की उतनी ही बड़ी स्मृति में नवीन वैज्ञानिक भूगोल और इतिहास, आधुनिक स्वच्छता-शास्त्र, संतति-निरोध आदि को अपनाया गया है।

बौद्ध और जैन धर्मों से हिन्दुत्व की रक्षा करने के लिए संस्कृत के दार्शनिकों ने विरोधी मतवादों के आध्यात्मिक तर्कों का पूरा अध्ययन किया और अपनी रचनाओं के द्वारा एक अविच्छिन्न दार्शनिक परम्परा निरन्तर बनाये रखी। बाद में, दुर्भाग्यवश पण्डित लोग आपसी लड़ाई में शक्ति का अपव्यय करने लगे : उदाहरणार्थ, अद्वैतवादी द्वैतवादियों से, भौतिकवादी अध्यात्मवादियों से, एकेश्वरवादी अनेकेश्वरवादियों से, आस्तिक नास्तिकों से; और आस्तिकों में भी विभिन्न दल आपस में खूब लड़ने लगे। जब कि आरम्भिक संस्कृतज्ञों ने अपने विरोधियों को भी यह भाषा, साहित्य और मत-धारा पढ़ने को बाध्य किया; और अपनी रचनाओं के पृष्ठों में वाद-विवाद में भाग लिया, बाद में पंडित लोग यह कार्य पूरी तरह से सिद्ध नहीं कर सके, जबकि हिंदुत्व को पहले इस्लाम से और बाद में ईसाईयत से चुनौती * मिली; इसलिए इस दिशा में कोई साहित्य विकसित नहीं हुआ। उस दृष्टि से भारतीय दार्शनिक साहित्य समय की मांग के साथ-साथ आगे बढ़ नहीं पाया। यही एक कारण था

* एकाध अपवाद इधर-उधर नजर आता है; जैसे 'ख्रिष्ट-धर्म-कौमुदी-समालोचना', लेखक : व्रजलाल मुखोपाध्याय (कलकत्ता, १८६४), जो कि डॉ० बैलैण्टाइन के ईसाई-दृष्टिकोण से हिंदुत्व की आलोचना का खंडन था।

कि ज्यों-ज्यों सामाजिक परिवर्तन होते जा रहे थे, संस्कृत पंडित उनके साथ निहत्था ही लड रहा था। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे वह उस युद्ध मे पराजित होता गया। उसी प्रकार से, पश्चिम की विचार-धारा का सामना न करके, वहाँ के इतिहास और विज्ञानवाद के सिद्धांतों को न मानकर पण्डित-सम्प्रदाय अपना ही नुकसान कर रहा था। कभी वह वैदिक या अन्य पंथों के गलत अर्थों का उत्तर देता, कभी विदेशी पश्चिमी प्राच्यविद्याविदों के द्वारा संस्कृत-साहित्य के सम्बन्ध में फैलाई गई मिथ्या धारणाओं से जूझता। हिंदू धर्म के भीतर भी, जो नई धार्मिक और दार्शनिक मतावलियाँ चल पड़ी थीं, उनकी ओर साहित्य ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया; क्योंकि विरोधियों द्वारा विचार-मंथन या साहित्य-सृजन पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता। आर्य समाज के विरोध में कुछ फुटकर आलोचनाएँ हैं, जिनका उल्लेख पहले आ चुका है। मद्रास के साधु-धर्म-मंडल ने २४ अध्याय वाली नई गीता के विरोध में एक संस्कृत-पुस्तिका छापी है। उसका नाम है 'नूतन गीता वैचित्र्यविलास'; लेखक हैं 'भगवद्गीता दास' (मद्रास १९१३)।

क्या इस काल में कुछ ऐसी भी धाराएँ थीं जिन पर अधिकारी पण्डितों ने अपने दार्शनिक मतवादों को प्रतिपादित किया? हाँ कुछ पण्डितों और विद्वानों ने साहसपूर्वक अपना जो मौलिक दृष्टिकोण व्यक्त किया वह उल्लेखनीय है। तिरुविशानल्लूर के रामसुब्बाशास्त्री नामक पण्डित ने, जो कि अपनी मौलिक टीकाओं के लिए प्रसिद्ध थे, अपनी मौलिक व्याख्याएँ लिखीं। कभी-कभी वे अपने विचारों को विचित्र स्थिति में ले आते, जैसा कि ब्रह्मसूत्र और शांकरभाष्य में द्वैत को दृढ़ बनाने के यत्न में उन्होंने किया है।† इधर हाल में बैंगलोर के वाई० सुब्बाराव ने अद्वैत में अविद्या के नये दृष्टिकोण को स्पष्ट

† [illegible] ने अपने '[illegible]' ([illegible]) में [illegible] ([illegible]) में किया है।

करना प्रारम्भ किया है, और शंकर को अद्वैतानुयायियों से, और बाद में यह दर्शन जिस प्रकार का निरा तर्क-जाल बन गया उससे उबारने का यत्न किया है। इसके लिए उन्होंने 'मूलविद्यानिरास' (बंगलोर १९२९) लिखा; जिसमें एक विधायक कारण-चैतन्य की संभावना का खण्डन है; और बाद में जब सच्चिदानंद सरस्वती के नाम से उन्होंने सन्यास ले लिया, तब उस पर शंकर के 'अध्यासभाष्य' पर सुगम नाम से एक नई टीका लिखी (होले नरसीपुर १९५५)। के० वेंकटरत्नम् पन्तुलु ने अपनी 'मार्गदायिनी' नामक कृति में अक्षरसाक्ष्य नाम से एक नया दर्शन स्थापित किया। गत शताब्दी के अन्त में अप्पाचार्य (मृत्यु १९०१) ने सांख्य-योग-समुच्चय या अनुभवाद्वैत नामक एक नया सर्वधर्म-सार स्थापित किया था और अपने विचारों के स्पष्टीकरणार्थ कई ग्रंथ भी लिखे थे।*

सहिष्णुता की भावना

संस्कृत-परम्परा का एक भाग है सहिष्णुता की भावना। जहाँ संस्कृत ने अपने तर्क और न्याय के ग्रंथों द्वारा विभिन्न मतों के विचारों के विकास की सहायता की, वहाँ वह इस मूल सत्य पर विशेष ध्यान देने से कभी भी नहीं चूकी कि विभिन्न पन्थों का ध्येय एक ही है। यह उच्चतम विवेक आधुनिक भारतीय विचार-धारा में विशेष अर्थ और महत्त्व पाने लगा है, और इस युग में जिन्होंने संस्कृत-भाष्य लिखे हैं उन पंडितों में यह भी भावना दिखाई देती है। यह विशेष संतोष की बात है। हम यहाँ कम-से-कम दो ऐसे ग्रंथों का उल्लेख करना चाहते हैं जिनमें यह भावना विशेष रूप से दिखाई देती है। पोल्हाहम राम शास्त्री ने 'चतुर्मत सामरस्य' (कुम्भकोणम् १९४४) लिखा, जिसमें वेदान्त की चार शाखाओं में समानता देखी गई थी। इसी ढंग का एक और महत्त्व-पूर्ण संस्कृत-ग्रंथ म० म० लक्ष्मीपुरम् श्रीनिवासाचार्य का 'दर्शनोदय' है।

* देखिये न्यू कैटेलोगस कैटेलागोरम, मद्रास वि. [illegible] २ पृष्ठ १९४९।

यह ग्रंथ केवल इसी उद्देश्य से लिखा गया था कि उससे संप्रदायवाद कम किया जाय और परस्पर सामञ्जस्य बढ़े।

नए आन्दोलन में आर्यसमाज का संस्कृत के पुनरुत्थान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस विचार-धारा के कारण कई संस्कृत-ग्रंथ लिखे गए। ऐसे लेखकों में अखिलानन्द शर्मा सबसे अधिक लिखने वाले प्रतिभाशाली कवि और लेखक हैं।* इस विचार-धारा के और नये लेखकों में हरिद्वार के ब्रह्ममुनि परिव्राजक हैं, जिन्होंने वेदान्त सूत्रों पर एक नया भाष्य लिखा है, जिसका नाम है 'वेदान्त दर्शन' (होशियारपुर, १९५४)। इसमें प्राचीन भाष्यकारों की पद्धति की आलोचना है। रामकृष्ण-विवेकानन्द-आन्दोलन ने अब तक केवल कुछ संस्कृत के स्तोत्र† निर्मित किये हैं। यद्यपि जैसा कि हम आगे बतायेंगे, इस आन्दोलन के दोनों संस्थापक कई साहित्यिक कृतियों के विषय बने हैं ‡ रमण महर्षि और अरविन्द के आश्रमों में संस्कृत की कई प्रसिद्ध रचनाएँ लिखी गईं। काव्यकण्ठगणि गणपति शास्त्री, जो कि बाद में वसिष्ठ मुनि कहलाए, एक बहुत अच्छे कवि थे। वे रमण के शिष्य हुए और उन्होंने 'रमण-गीता' लिखी। सद्-दर्शन में रमण के अद्वैत का सुन्दर छंदोबद्ध वर्णन उन्होंने किया है। जिस पर उनके शिष्य टी० वी० कपाली शास्त्री ने टीका लिखी है। बी० जगदीश्वर शास्त्री ने रमण पर काव्य लिखा, जिसका नाम 'रमण-स्तोत्र' (तिरुअण्णामलै) है। कपाली शास्त्री बाद में पांडिचेरी आश्रम में गए और वहाँ प्रमुख संस्कृतज्ञ बने। पांडिचेरी से शास्त्री ने 'साधना-साम्राज्य' (१९५२) नामक अरविन्द की योग-साधना के स्थान पर पच्चीस छन्द लिखे, 'आह्लिक स्तव' (१९५४) नामक प्रार्थना-संग्रह लिखा। उनका बृहत्तर ग्रंथ है ऋग्वेद संहिता पर अरविन्द भाष्य के अनुसार लिखी

* देखिये नया केटेलोगम केटेलागोरम, पृष्ठ १५-१६—उनकी कृतियों के लिए।

† देखिये रामकृष्णसहस्रनामस्तोत्र'–एस० रामकृष्ण भट, बेंगलौर १९५०।

‡ विवेकानन्द का 'संन्यासी का गीत' संस्कृत में नित्यानन्द भारती ने अनूदित किया।

सिद्धान्त टीका *। परम्परित सूत्र शैली में, उसी आश्रम के अध्यापक पुराणी ने अरविन्द योग को अपने 'पूर्णयोग सूत्राणि'† में सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया।

दूसरे संस्कृत-लेखकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से अन्य दार्शनिक ग्रंथ लिखे हैं। कुछ सामान्य संस्कृत निबंध और पुस्तिकाएँ धार्मिक दार्शनिक विषयों पर मिलती हैं। दर्शन के विश्वविद्यालयीन प्रोफेसरों में अमरावती के उमामहेश्वरप्रसाद ने अपने 'तत्त्व दर्शन'* में नई विचार-धारा व्यक्त की है, जो कि सूत्र शैली में रची गई है और जिसका मतलब नहीं है, कि भारतीय दर्शन को आधुनिक वैज्ञानिक विचारों के साथ मिलाया जाय। बड़ौदा के एम० ए० उपाध्याय ने, जो गांधीजी के अनुयायी हैं, अपने 'ईश्वर-स्वरूप'† में एक ऐसी विचार-पद्धति का विवेचन किया है जो ज्ञान शक्ति, अदृष्टपन और पुनर्जन्म इत्यादि में संदेह व्यक्त करती है। 'पूर्ण ज्योति' (१६२६) हृषीकेश के स्वामी पूर्णानंद [redacted] सर्वसाधारण असाम्प्रदायिक दर्शन-ग्रन्थ है, जो आधुनिक ढंग से जाति-पाँति से ऊपर रहकर सबके लिए लागू होता है। इसमें धर्म, वैराग्य, भक्ति, योग इत्यादि की मीमांसा है। यह गद्य और पद्य-मिश्रित पुस्तक है। डॉ० सम्पूर्णानंद उत्तर प्रदेश के प्रधान मंत्री और संस्कृत के बड़े ही समर्थक हैं। वे संस्कृत में बोलना और लिखना पसंद करते हैं। 'चिद्विलास'‡ उनके दार्शनिक निबंधों का संस्कृत अनुवाद है। रामकृष्ण मठ, कालड़ी के स्वामी आगमानंद ने हाल में ही धर्म पर* एक संस्कृत-प्रबन्ध लिखा है, जिसमें राजनीति और अर्थशास्त्र की अपेक्षा धर्म की मीमांसा की गई है।

* पांडिचेरी से, अब (१६५०-१६५१)
† पांडिचेरी' १६५५
*मूल और टीका, अमरावती, १६५०
†बड़ौदा, १६५१
‡बनारस, १६५०
*कालड़ी, १६५४

कालेज के पाठ्य-क्रम में यूरोपीय दर्शन का अध्ययन, जिसमें पश्चिमी लेखकों द्वारा लिखित तर्क-शास्त्र, मनोविज्ञान और नीति-शास्त्र आते हैं, वृद्ध लोगों के मन में यह इच्छा पैदा करने लगा कि संस्कृतज्ञों के क्षेत्रों में भी पश्चिम के इन विषयों का परिचय या ज्ञान कराया जाय। इस प्रकार के साहित्यिक कार्य के परिणाम स्वरूप विगत शताब्दी के मध्य तक बनारस की 'पंडित पत्रिका' ने बर्कले के 'प्रिंसिपल्स आफ ह्यूमन नालेज' † और लाक के 'एसे कन्सर्निंग ह्यूमन अंडरस्टैंडिंग' ‡ के संस्कृत-अनुवाद छापे, और विट्ठल ने बेकन के 'नोवम आर्गेनम' * का संस्कृत अनुवाद किया। डॉ० श्याम शास्त्री ने म० स० का० मैं० मैं० (१९२९) में आधुनिक पाश्चात्य तर्क और मनोविज्ञान का वर्णन 'पाश्चात्य प्रमाण-तत्त्व' और 'मानस-तत्त्व' के नाम से लिखा। इस प्रकार का नवीनतम उदाहरण पाश्चात्य-नीति-शास्त्र † पर वृन्दावन के विश्वेश्वर सिद्धांत शिरोमणि द्वारा लिखा हुआ प्रबंध है।

आधुनिक विज्ञान

प्रारम्भिक काल के संस्कृतज्ञों को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान को अंग्रेजी न जानने वालों तक पहुँचाने की आवश्यकता जान पड़ी थी। इस कार्य में संस्कृत-पत्रिकाओं, जैसे अप्पा शास्त्री राशिवडेकर की 'संस्कृत-चन्द्रिका', सहृ० इत्यादि, ने बड़ा अच्छा कार्य किया। 'विज्ञानकुसुम' शीर्षक से सं० चं० ने संस्कृत के वैज्ञानिक लेखन का लेखा दिया है। १८२३ और १८२८ जैसे प्रारम्भिक वर्षों में इसलूर राम स्वामी शास्त्री और योगध्यान मिश्र ने ज्यामिति पर 'क्षेत्र तत्त्व दीपिका' नामक दो पुस्तकें लिखी। सहृ० ने लेख छापे, जिनमें कुछ चित्र भी होते थे,

† 'ज्ञानसिद्धान्तचंद्रिका', पंडित ओ एस., ८, ९, १०

‡ विट्ठल-लोकमिद विरचित 'मानवीय ज्ञान विषयक शास्त्र' पंडित ओ एस, १०।

* बेकनीय सूत्र-व्याख्यान, बनारस १८५२। इस प्रकार की और रचनाओं के लिए देखें बुलेटिन, आर०के०एम० इंस्टिट्यूट आफ कल्चर, जून, १९५९, पृष्ठ १३३-४

† नीति-शास्त्र (पांडुलिपि में)।

और वे भौतिकी, रसायन, ज्योतिष, प्राणिशास्त्र आदि विज्ञानों पर थे (एन० एस० बा० २ फो०) इनका शीर्षक था 'पाश्चात्य शास्त्र सार'। अप्पा शास्त्री ने गणित ज्योतिष पर लिखा। मैसूर के सी० वेंकटरामैया ने प्राचीन भारतीय लेखकों के वैज्ञानिक ज्ञान का सार प्रस्तुत किया, सनातन-भौतिक-विज्ञान (मैसूर १९३१) नाम से। बंगलौर और मैसूर से 'प्रशुबोधिनीसार' नाम से भौतिकी पर भारद्वाज और अन्य ऋषियों के नाम से कहे जाने वाले भाष्य छपे। वैज्ञानिक विषयों पर लिखते समय 'मानवप्रजापतिम्' नामक १६० छन्दों की कविता का उल्लेख भी आवश्यक है (सं० सा० प० प०, फरवरी १९४७ फो०)।

इस कविता में रवीन्द्रकुमार शर्मा ने विज्ञान की अन्तिम पराजय का वर्णन किया है। एक प्रतिभाशाली तरुण भारतीय जर्मनी में जाता है। विज्ञान के विषय की शिक्षा प्राप्त करके जब वह वापस लौटता है तब एक ऐसी अजीब नारी कारखाने में निर्मित करना चाहता है जो कि उसकी आशाओं की पूर्ति करे। इस कार्य में वह कदम-कदम आगे बढ़ता है, अन्त में जब वह उसमें प्राण फूँकता है तो सहसा वह अत्यन्त दुखी हो जाता है। 'संस्कृतम्' नामक साप्ताहिक के (२०-३-५६ और १७-४-५६ के) अंकों में, ब्रजगोपाल शास्त्री (राजपूताना) ने दो वैज्ञानिक लघुकथाएँ लिखी हैं, जो कि बहुत सुन्दर शैली में हैं, 'चेतनम् वव अस्ति' और 'शुक्लोदयात्रा'। पहली कहानी में जीवन के गुह्य रहस्य का आविष्कार पाने में विज्ञान की पराजय वर्णित है। ज्योतिष-फलित तथा गणित और आयुर्वेद-सम्बन्धी ग्रंथ संस्कृत में कई प्रकाशित हुए। कविराज गणनाथ सेन ने 'प्रत्यक्ष शरीर', शरीर-विच्छेद पर (कलकत्ता १९१९) और 'सिद्धान्तनिदान' (१९२२) और भूदेव मुखर्जी ने 'रसजलनिधि' हिन्द्र-रसायन पर ग्रंथ लिखे। मालाबार के आयुर्वेद विशारदों ने भी ऐसे ही ग्रंथ लिखे हैं, उदाहरणार्थ पी० एस० वारियर, वी० एन० नायर ने 'अनुग्रह मीमांसा' (कालीकट १९३८); 'स्वास्थ्य वृत्त' (बंबई १९५४) मदंश्री के० एस० म्हैसकर और एन० एस० वाले ने स्वास्थ्य

और दीर्घायुष्य पर; और सी० जी० काशीकर पूना ने 'आयुर्वेद पदार्थविज्ञान' (१९५३) लिखा।

संस्कृत-पत्रिकाएँ

संस्कृतज्ञों को प्रथम उत्साह ने जिस प्रकार ऊर्जित किया, उस समय संस्कृत में पत्र-पत्रिकाएं आरम्भ करने की आवश्यकता उन्हें जान पड़ी। संस्कृत-पत्रिकाओं का उल्लेख बहुत ही मनोरंजक और नवीन बातों का पता देने वाला है। उस समय न केवल अगणित पत्र-पत्रिकाएं चलीं, परन्तु उनमें ऐसी विविध सामग्री मिलती है कि संस्कृत में नवचेतना फूंकने का महत्त्वपूर्ण कार्य इन पत्रिकाओं ने किया; ऐसा भी कहा जा सकता है। बनारस के 'पण्डित' के बाद इस दिशा में अग्रगामित्व का श्रेय 'संस्कृत चन्द्रिका' और 'सूनृतवादिनी' (कोल्हापुर) को दिया जा सकता है, जिनके साथ अप्पाशास्त्री राशिवडेकर का सक्रिय सम्बन्ध था। बनारस से निकलने वाली पत्रिकाओं में, जिनमें से अब कई अस्तंगत हो चुकी हैं, 'मित्रगोष्ठी', 'वल्लरी', 'सूर्योदय' (भारत धर्म महामण्डल का मुख पत्र) और 'सुप्रभातम्' (काशी विद्वत् मण्डल का पत्र), 'संस्कृत रत्नाकर' (संस्कृत साहित्य सम्मेलन का पत्र) और 'पण्डित पत्रिका' (अखिल भारतीय पण्डित परिषद् का पत्र) का भी उल्लेख आवश्यक है। हृषिकेश भट्टाचार्य ने लाहौर से 'विद्योदय' आरम्भ किया; आर्य समाज ने 'आर्यसिद्धान्त' (इलाहाबाद) शुरू किया, और ब्रह्मसमाज ने 'धर्मप्रकाशिका' (कलकत्ता) प्रकाशित की। दक्षिण भारत में जो पत्र-पत्रिकाएँ चलीं, उनमें सर्वोच्च सम्माननीय स्थान 'सहृदय' (श्रीरंगम्) को देना चाहिए, जिसने बड़ा उच्च स्तर कायम रखा, और जिसके साथ दो बड़े विद्वान् सम्पादन में सम्मिलित थे— आर० कृष्णमाचारियर और आर०वी० कृष्णमाचारियर। उस पत्रिका का स्थान तिरुवायुर से निकलने वाली 'उद्यान' पत्रिका ने ले लिया, इसके सम्पादक डॉ० टी० भट्टाचार्य थे। 'मञ्जुभाषिणी' काञ्चीपुरम् से

निकलती थी, 'ब्रह्म विद्या' चिदम्बरम् से और 'विचक्षण' श्री पेरुम्बदूर से। 'अमृतवाणी' रामकृष्ण भट्ट द्वारा बंगलौर से निकलती थी, जो अब बन्द हो गई है। उत्तर कर्नाटक से जो 'मधुर वाणी' निकलती थी, वह अभी भी चल रही है। विविध प्रदेशों से संस्कृत-पत्रिकाएँ ऐसी निकलती थीं कि जिनमें प्रादेशिक भाषाओं के परिशिष्ट लगे रहते थे: 'द्विभाविका' बंगाल से, 'भारतदिवाकर' गुजरात से, 'मिथिला मोद' बिहार से, 'बहुश्रुत' वर्धा से। कुछ पत्रिकाएँ अंग्रेजी और संस्कृत की मिश्रित थीं, जैसे 'लोकानादीपिका' मद्रास से, पुदुकोट्टा से 'संस्कृत जरनल' और बर्दवान से 'संस्कृत भारती'। क० मा० मुंशी की संस्कृत-विश्व-परिषद् से जो पत्रिका निकलती है, उसमें अंग्रेजी और संस्कृत की सामग्री होती है। अगणित कालेजों की पत्रिकाओं से, जो कि अनेक भाषाओं में साहित्यिक सामग्रीयुक्त होती हैं, कई मौलिक संस्कृत-रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। जिन पत्रिकाओं की अखण्ड प्रकाशन-परम्परा रही है, उनमें 'संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका' कलकत्ता का उल्लेख आवश्यक है। वहाँ से के० सी० चटर्जी 'मंजूषा' चलाते थे। विविध केन्द्रों में संस्कृत कालेजों से संस्कृत-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं पट्टाम्बि संस्कृत कालेज ने 'विज्ञान-चिन्तामणि' चलाया, जिसे कि पुन्नशेरी नीलकण्ठ शर्मा सम्पादित करते थे। त्रिवेन्द्रम् के महाराजा संस्कृत कालेज से कुछ समय तक 'श्री-चित्र' प्रकाशित होता रहा, और मैसूर से अभी भी एक पत्रिका निकलती है। सरस्वती भवन काशी और बनारस संस्कृत कालेज एक उच्च कोटि की पत्रिका 'सरस्वती सुषमा' नाम से प्रकाशित करते हैं। सुदूर हैदराबाद (सिंध) से 'कौमुदी' छपता था। बिहार संस्कृत अकादेमी 'संस्कृत संजीवनम्' प्रकाशित करती थी। 'संस्कृत' (साप्ताहिक) और 'संस्कृत मार्तंड' अयोध्या से निकलते हैं। जयपुर से निकलने वाले 'संस्कृत रत्नाकर' के स्थान पर अब 'भारती' निकलता है। बम्बई से 'सुर-भारती' प्रकाशित होता है। साप्ताहिक 'संस्कृत भवितव्यम्', जो कि संस्कृत प्रचारिणी सभा नागपुर का मुखपत्र है, का विशेष उल्लेख करना चाहिए। इसमें जो सामग्री

ऐसे भी विषय हैं जिनके बारे में अब बहुत बार बोला और लिखा जाता है—संस्कृत राष्ट्रभाषा, संस्कृत का सरलीकरण, संस्कृत शिक्षा की पद्धतियाँ, संस्कृत की महत्ता, संस्कृत की वर्तमान दुर्दशा, संस्कृत विश्वविद्यालय इत्यादि। द्राविड़-आन्दोलन और ईसाई प्रचार की भी उसमें चर्चा है। एक सामान्य भाषा में विभूतियों के बारे में लिखकर और प्रादेशिक भाषाओं में महत्त्वपूर्ण देन देकर इन पत्रिकाओं ने अन्तर-प्रदेश-मैत्री-वर्धन में और देश के ऐक्य-स्थापन में बड़ा योगदान किया है।

निबंध

पत्र-पत्रिकाओं में लेखों के साथ-साथ, साहित्य-रूप के नाते निबंध भी, अलग से, विकसित हुआ। विभिन्न स्कूलों और कालिजों की कक्षाओं के लिए नये गद्य-ग्रंथों की आवश्यकता ने इस साहित्य-रूप को आगे बढ़ाया। जिन्होंने ऐसे निबन्ध-संग्रह लिखे हैं उनमें श्री हंसराज अग्रवाल और मुनिकान्त शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। 'संस्कृत-प्रबंध-प्रदीप' (लुधियाना १९५५) में श्री अग्रवाल ने ऐसे आधुनिक विषयों और वैज्ञानिक आविष्कारों पर निबंध दिये हैं जैसे 'कश्मीर का प्रश्न', 'अन्न-स्थिति', 'स्वतन्त्रता के चार वर्ष', 'संसार के प्रमुख देशों के संविधान', 'संस्कृत का भविष्य', 'हिंदू कोड बिल', 'भारत का भविष्य' और संस्कृत शिक्षा की पद्धति'। श्री शर्मा ने अपनी पुस्तक 'निबंध माला' (लुधियाना १९५५) में कुछ हल्के-फुल्के विषयों पर भी निबन्ध लिखे हैं, जैसे हुक्का, घोड़े और साइकिल में वार्तालाप, फुटबाल-मैच, तीसरे दर्जे में रेल-यात्रा, ऐहिक राज्य, यूनेस्को, चुनाव और मित्रता, सवाक् पट, निरर्थक घूमने का आनन्द, वन भोजन (पिकनिक), धोबी, क्रीड़ा-वृत्ति इत्यादि। 'गल्प-कुसुमाञ्जलि' ऐतिहासिक विषयों पर ऐसा ही निबन्ध संग्रह है।

पत्र-साहित्य का रूप भी विकसित किया गया है, यद्यपि यहाँ भी मात्रा थोड़ी ही अनुपात में, जैसे कि उनके कुछ प्रकाशित पत्र सिद्ध करते हैं।

यात्रा-वर्णन

प्राचीन संस्कृत साहित्य में तीर्थ यात्रा के रूप में यात्राओं का उल्लेख है। आधुनिक काल में भी, इस प्रकार की कुछ रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। महामहोपाध्याय लक्ष्मण शास्त्री का 'सेतु-यात्रा-वर्णन' यद्यपि परम्परागत शैली में लिखा गया है, फिर भी उसमें हिंदू मन्दिरों का वर्णन है। उसमें कई समकालीन विवरण और सामाजिक कुरीतियों का भी उल्लेख है। '[illegible]'* डॉ॰ एम॰ रामस्वामी शास्त्री की रचना है। वे मदुरै के एक वकील थे। उन्होंने अखिल भारत-भ्रमण और तीर्थ-यात्रा का वृत्तान्त इसमें दिया है। इसमें केवल पवित्र तीर्थ-स्थानों का ही वर्णन नहीं, बल्कि आधुनिक मनुष्य का ध्यान आकर्षित करने वाले विश्वविद्यालयों, सार्वजनिक वास्तु, प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों का भी वर्णन है। सखाराम शास्त्री ने [illegible]† में अपनी यात्राओं का वर्णन १९२४ में लिखा। एस॰ पी॰ भट्टाचार्य की 'उत्तराखण्ड यात्रा'‡ में हिमालय के तीर्थों का वर्णन है। डॉ॰ बी॰ च॰ छाबरा के 'नयनराजपदशोभा'* में हॉलैंड का वर्णन है, जहाँ उन्होंने कुछ समय बिताया था। डॉ॰ कुन्हन राजा, जो तेहरान में संस्कृत के प्रोफेसर थे, एक कविता में पर्सिपोलीस का वर्णन देते हैं ('अड्यार लाइब्रेरी बुलेटिन', दिसम्बर १९५३)। इधर एम॰ रामकृष्ण भट्ट ने जो कि बंगलौर से 'अमृत वाणी' नामक संस्कृत-पत्रिका का संपादन करते थे, और जो कुछ समय के लिए पूर्व अफ्रीका गए थे, उस देश के बारे में लिखा है। उन्होंने वहाँ के अपने अनुभव 'संस्कृत भवितव्यम्' में प्रकाशित एक लम्बे पत्र में दिये हैं।

* मदुरा, १९३०।
† 'ओरियंटल लिटरेरी डाइजेस्ट', पूना, खण्ड दो, पृ॰ १६५ देखें।
‡ कलकत्ता, १९४८।
* अ॰ भा॰ बंगलौर, १९५३

साहित्य-समीक्षा

अलंकार-शास्त्र के रूप में संस्कृत में साहित्य-समीक्षा का व्यापक विकास हुआ। अंग्रेज़ी शिक्षा के बाद, विदेशी आलोचना के नियम लगाये जाने लगे, कवि के चरित्र-चित्रण, शैली और संदेश-व्यंजना आदि का विचार अधिक होने लगा; तब संस्कृत में भी ऐसी आवश्यकता अनुभव हुई कि पश्चिम के साहित्य में प्रचलित ढंग की सभी समालोचनात्मक निबंध-रचना की जाय। संस्कृत की पत्र-पत्रिकाओं में इस प्रकार के कई लेख प्रकाशित किये गए, परन्तु इस प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित करने का प्रथम श्रेय श्री आर० कृष्णमाचार्य को दिया जा सकता है, जो 'सहृदय' का संपादन करते थे। उन्होंने 'रघुवंशविमर्श'* और 'मेघसंदेशविमर्श'* नाम से दो पुस्तकें लिखीं। ए० वी० गोपालाचार्य, तिरुचिरपल्ली ने इस प्रकार के साहित्यिक टीका-लेखन में विशेषता प्राप्त की। इस प्रकार की रचनाओं में एक है 'संदेशद्वय-सरस्वादिनी', जिसमें मेघ-संदेश और हंस-संदेश की तुलनात्मक समीक्षा है। मद्रास संस्कृत अकादेमी विगत तीस वर्षों से संस्कृत-कवियों का दिवस मनाने के अतिरिक्त संस्कृत-कवियों और नाटककारों की रचनाएँ पढ़ने और उनकी आलोचनात्मक समीक्षाएँ करने को प्रोत्साहन देती रही है।‡

लघु कथा

संस्कृत में जो नये परिवर्तन आ रहे थे, वे सर्वाधिक छोटी कहानी में दृष्टिगत होते हैं। छोटी कहानी संस्कृत के लिए नई नहीं है; परन्तु जिस रूप में वह अब संस्कृत में लिखी जाती है, इसके लिए पश्चिम का ऋण स्पष्ट है। आधुनिक काल के आरम्भ में, संस्कृत-पत्रिकाओं में आधुनिक ढंग की जो कहानियाँ प्रकाशित होती रही हैं; अब उनकी

* काव्यगुणादर्श सीरीज़, श्रीरंगम्, १९०८, १९१५।

‡ इस प्रकार के कई निबंध 'जर्नल आफ ओरिऐंटल रिसर्च' मद्रास में प्रकाशित हुए हैं।

स०सा० प० प० में प्रकाशित कहानियाँ हैं. भवभूति विद्यारत्न लिखित 'लीला' (१९२३-२४), तारणिकान्त चक्रवर्ती की 'पुष्पांजलि' (१९२४-२५), के० आर० लक्ष्मीनारायण शास्त्री की 'ऐन्द्रजालिक' (मई १९३०), 'रसमयी' (१९३३-३४), 'आमिन्य मदनालय' एक वृद्ध की तरुणी भार्या के विषय में (मई १९५५), तथा आर० रंगाचारी की आई० सी०एस० जमाई उल्लेखनीय है। इन सबमें पी० वी० वरदराज शर्मा की 'क्षम्यम् अपराध.' स० सा० प० प० अप्रैल १९३७) टेकनीक की पूर्णता और सूक्ष्म वर्णन-सौंदर्य की दृष्टि से अलग छाँटी जा सकती है। इसका कथानक भी दरिद्रता दैन्य के उस सामाजिक कलंक पर आधारित है, जिसके कारण जनसाधारण पाप की ओर प्रवृत्त होते हैं। स० सा० प० प० (मई १९३७) में रंगाचार्य ने 'नगर परिपालन सभा' नाम से एक प्रहसन लिखा है, जिसमें एक बूढ़ा को म्युनिसिपल कौंसिल के लिए चुना जाता है। स० सा० प० प० के पुराने अंकों में (१९२८-२९) वैंगुधर सर्क तीर्थ का एक प्रहसन है; एक यात्रा की कहानी कहते कहते लेखक स्वप्न में 'यमपुरी-पर्यटन' करता है, परन्तु उसकी यात्रा अधूरी रह जाती है, क्योंकि यमराज यह नहीं निर्णय कर पाते कि उनका अधिकार-क्षेत्र केवल हिंदुओं तक सीमित है, या उसमें म्लेच्छ भी शामिल हैं। उस भारतीय प्रवासी को अपने मृत्यु-लोक में पुनः इसलिए भेजा जाता है कि वह एक पंडित-सभा बुलाकर पहले इस बात का निर्णय करे।*

स० र० (१९०९-१९४८) में 'पत्रमोहर', 'दुखिनी बाला', 'असम साहस' (बाबू), 'अर्वाचीन सन्तता', 'निराश प्रणय', 'सरला', 'साक्षी', 'आदर्श दम्पति', 'अयम् एव प्रेमपरिपाक' (यह है प्रौढ़ प्रेम!) 'करुणा', 'वरेप्सु-वटुक-संवाद' (भावी ससुर और ब्रह्मचारी के बीच बातचीत) और 'न्यायाधिकारिणी' आदि कहानियाँ छपी हैं। सं० र० में दो कहानियों का उल्लेख किया जा सकता है; एक

* 'यमराजविचार' नामक कृति 'विनोद' में प्रकाशित हुई थी।

१९४५ में प्रकाशित हुई थी, जिसका आशय था कि आधुनिक चकाचौंध और छाया-प्रेम से पीछे भागने से नारी को सुख और शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती; दूसरी कहानी जून १९४७ में छपी थी, जिसका शीर्षक था 'धन्योऽयम् परीक्षा युगः'। इस कहानी में परीक्षाओं द्वारा सच्ची ज्ञानोपासना नहीं हो सकती, यह सिद्ध नहीं किया गया था। इनमें से कुछ रचनाएँ प्रहसनों के रूप में हैं। हैदराबाद (सिन्ध) की 'कौमुदी' में राम द्विवेदी (१९४४-४५) के 'विडाम्बा' और 'प्रमोद गृहम्', दहेज की कुप्रथा पर विश्वेश्वर दयाल द्वारा लिखित 'यौतक' नामक कहानी प्रकाशित हुई थी। एक काले बाजार वाले ने एक बिल्ली पर कैसे विजय प्राप्त की यह के० सी० चटर्जी ने 'मार्जार चरित्र' नामक कहानी (अक्तूबर १९५३) में लिखा है। पण्डिता क्षमा राव ने १९३१ में सदा की भांति अनुष्टुप छंद में अपनी पाँच कहानियाँ प्रकाशित कीं; ये पहले अंग्रेजी में लिखी गई थीं और बाद में संस्कृत में ढाली गईं; उनके विषय समाज-सुधार, बाल-विवाह, अल्पायु में वैधव्य इत्यादि हैं। 'कथा मुक्तावली' (बम्बई १९५४) के शीर्षक से उनकी १५ कहानियों का संग्रह उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ है। उनकी एक पुरानी पद्य-कथा यहाँ गद्य में प्रकाशित है; उनके ग्राम-ज्योति में असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह के दिनों में गुजरात के गाँव के बारे में तीन कहानियाँ हैं।

'सर्वमान संस्कृत माला' में, जिसका उद्देश्य संस्कृत में सरल गद्य की पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत करना था, ए० कृष्ण गोस्वामी ने संस्कृत में टाल्स्टाय की कहानी 'कणो मुष्टः गृहम् दहति' (एक भिखारी पर जो अन्ना देने) (गुन्टूर, १९५४) दी है। ईसप की लोक-कथाएँ एक से अधिक संस्कृत-लेखकों द्वारा अनूदित हैं।

उपन्यास

अब हम एक ऐसे साहित्य-रूप पर विचार करेंगे जो लिखित रूप

से आधुनिक कहा जा सकता है, और पाश्चात्य प्रभाव ने जिसको आकार दिया है, वह है उपन्यास। यहाँ भी हम देखेंगे कि 'कादंबरी'-जैसे कथानकों से सामाजिक कथानक और वातावरण तक परिवर्तन होता गया है। यह वर्ग अनुवादों, रूपांतरों और मौलिक रचनाओं आदि तीनों रूपों में समृद्ध हुआ है। अप्पा शास्त्री ने बंकिमचंद्र की 'लावण्यमयी' का संस्कृत अनुवाद किया, यह पहले 'संस्कृत चंद्रिका'* में प्रकाशित हुआ और बाद में एक स्वतंत्र ग्रंथ के नाते प्रकाशित हुआ। इसी प्रसिद्ध बंगाली लेखक का 'कपाल-कुंडला'† हरिचरण ने अनूदित किया। उपेन्द्रनाथ सेन ने 'पल्लिच्छवि', 'मकरंदिका', और 'कुंदमाला' लिखी। हरिदास सिद्धांत-वागीश ने 'सरला' नामक उपन्यास लिखा। ए० राजगोपाल चक्रवर्ती का 'शैवालिनी'‡ नामक रूपान्तर है। इसी लेखक ने दो और उपन्यास लिखे—'कुमुदिनी' और 'विलासकुमारी संगर'। कई लम्बी कहानियाँ और रोमांटिक कथाएँ तथा लघु उपन्यास संस्कृत की कई पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठों में क्रमशः प्रकाशित हुए हैं: सहृ० (३) में कल्याणराम शास्त्री की 'कनकलता' छपी। उत्तम गद्य में लिखा हुआ नब्बे पृष्ठों का यह रोमांस है, जो शेक्सपीयर के 'ल्यूक्रिसी' पर आधारित है। गोपाल शास्त्री द्वारा लिखित 'मतिरूप' (३); परशुराम शर्मा का 'विजयिनी' (४); नारायण शास्त्री का 'सीमन्तिनी' (७); चिदंबर शास्त्री लिखित 'कमलाकुमारी' और 'सती कमला' (६); एवं आर० कृष्णमाचारियर जैसे प्रतिभाशाली सम्पादक द्वारा लिखित 'सुशीला' (११) उल्लेखनीय है।

सं० सा० प० प० में निम्न उपन्यास छपे थे: रेणुदेवी का 'रजनी' (१६२८-२६), 'राधा', 'दुर्गेश-नंदिनी' (१६२२-२३) और 'राधारानी'

* वाई १६०७, धारवाड़ १६२०, बनारस १६४७। उनके अन्य गद्य-ग्रंथों में 'इंदिरा', 'देवी कुमुद्वती', 'दास परिणति' तथा 'मातृ-भक्ति' आदि हैं।

† कलकत्ता १६२६।

‡ मैसोर १६१७।

(१९३०-३१) बंकिम बाबू की बंगाली कृतियों के अनुवाद दें। उसी पत्रिका में 'दत्ता' नामक उपन्यास छपा (अक्तूबर १९३५)। म० सं० सा० सं० में एम० नरसिंहाचारी ने एक वीर रस के कथानक के आधार पर 'कीर्तिसेन' (१९४८-४९) लिखा। के० कृष्णमाचार्य (मद्रास १९१९) का 'मंदारवती' बृहत्कथामंजरी की एक कहानी पर आधारित है। श्रीशैल ताताचार्य (मृत्यु १९२५) ने भी बंगाली उपन्यासों के अनुवाद के लिए पग उठाया; उनकी दो कृतियां थीं 'दुर्गेशनन्दिनी' और 'क्षत्रियरमणी'। काव्यकण्ठम् गणपति शास्त्री ने 'पूर्णा'* नामक उपन्यास लिखा। बनारस से 'मित्रगोष्ठी' का संपादन करने वाले विधुशेखर ने 'चन्द्रप्रभा' नामक रोमांस लिखा। मेधाव्रत ने 'कुमुदिनी चंद्र' नामक उपन्यास लिखा (येवले, १९२०)। श्री नरसिंहाचार्य ने, जिनकी शैली बहुत प्रसन्न, काव्यमयी और प्राजल थी, 'सौदामिनी' नाम से एक उपन्यास लिखा (नवीन कृति, मद्रास १९३४)। 'सीमा समस्या' (सं० नवम्बर १९५०) गंगोपाध्याय का नया उपन्यास है, जिसमें वामपक्षीय तरुण का चित्रण है। ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित लंबी कहानियों में देवेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय की 'बंगवीर प्रतापादित्य' (सं० सा० प० प० १९१०-११) है, इंद्रनाथ बंद्योपाध्याय की 'गोरचंद्र' (सं० सा० प० प० १९१२-१३), आर० राममूर्ति की चोल इतिहास पर आधारित 'वीरलक्ष्म्‌पादितोपिकम्' (उ० प्र० १९५५) हैं। ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित कहानियों के कुछ उदाहरण हैं : 'वीरमती' (सं० र० १९०६), मुस्लिम युग की एक-एक घटना के आधार पर अत्याचार के परिणाम दरसाने वाली 'अत्याचारिणः परिणामः' (सं० र० १९४२) और 'दासी दिनेश' (सं० र० १९४३)। साप्ताहिक 'संस्कृत' में कुछ अच्छी ऐतिहासिक कहानियां छपी थीं, 'अजंता' (२७-३-५६), 'होल्ट' (१७-१-५६), 'ग्रश्वमेध याजि' (२७-१२-५५) इत्यादि। ए० राजम्माल, मद्रास की ' में पुराने ढंग की कथा प्रयुक्त है और कहानी के बीच में

* १९११, उमामहेश की भूमिका।

एक नाटक भी जोड़ा गया है। डी० टी० ताताचार्य ने वादुवुर दोराईस्वामी अय्यंगार के तमिळ उपन्यास 'मेनका' का संस्कृत अनुवाद किया है, जो उ० प० में क्रमश: छपता है।

छोटी कविताएँ

आधुनिक भारतीय साहित्य की एक विशेषता है छोटी कविता को मिला हुआ नया जीवन। अभिजात संस्कृत में मुक्तक, युग्मक, कलापक, कुलक और शतक की परम्परा रही है। परन्तु पाश्चात्य लिरिक के ढंग पर छोटे-से छन्दों में एक विशिष्ट विचार के विषय में आधुनिक संस्कृत-कवियों ने कविता-संग्रह कम प्रकाशित किये थे, अब वह भी होने लगे हैं। संस्कृत कवि इन भाव-गीतों में अभिव्यंजना कर रहे हैं। कुछ कवियों ने अपनी छोटी कविताओं के संग्रह प्रकाशित किये हैं, परन्तु अधिकांश रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में यत्र-तत्र या हस्तलिखित रूप में दबी पड़ी हैं। इन रचनाओं में अंग्रेजी साहित्य से अनुवाद और रूपान्तर हैं। श्री रामचन्द्राचार्य की 'लघुकाव्यमाला' (मद्रास १९२४) में कई अनुवाद हैं: 'पुरुष-दशासप्तक' मनुष्य की सात अवस्थाओं के विषय में है (शेक्सपीयर के 'एज यू लाइक इट'), 'मुमनोरथ' (राजर के 'ए विश'), 'पितृवध' (हैमलेट) और 'माधवाद-मंजरी' (ब्राउनिंग के 'आल्स राइट विद दि वर्ल्ड')। आई० महालिंगम् शास्त्री के 'किंकिणीमाला' (मद्रास १९३४) में शेक्सपीयर, वर्ड्सवर्थ, शेले और डॉ० जानसन के अनुवाद हैं, साथ ही कई नई छोटी कविताएँ भी हैं, जिनमें नए छन्द, जो कि संगीत, लय पर आधारित हैं, प्रयुक्त किये गए हैं। उदाहरणार्थ सबसे उल्लेखनीय रचना है 'रथाङ्गपरिदेवना' (भगवान् शंकर के दुःखों पर आधारित)। वी० सुब्रह्मण्य अय्यर की 'पद्यपुष्पांजलि' (मदुरा १९११) में मौलिक रचनाएँ और अंग्रेजी के अनुवाद दोनों हैं; प्रथम रचना में ऋषियों पर, कविता, जीवन, प्रकृति और कला, शकुन्तला का स्वगत-भाषण, अदम्य भारत इत्यादि विषयों पर कविताएँ हैं। एस०एस० के०

एस० कृष्णमूर्ति शास्त्री के 'प्रकृति विलास' (मदुराई १९५०) में प्रकृति के कई वर्णन हैं। जतीन्द्रनाथ भट्टाचार्य की 'काकली' (कलकत्ता १९३३) में परम्परित कविताएँ और स्तोत्र हैं, गांधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की दो छोटी प्रशस्तियां भी हैं। प्रोफेसर जी०सी० झा की 'सुमन' (बम्बई, १९५५) एक छोटी पुस्तिका है, जिसमें व्यंग्य, विनोदिका, वर्णनात्मक पद्य आदि हैं। डॉ० व० चन्द्र छाबरा के 'स्वर्णबिन्दु' (१९५१, सार्ईक्लोस्टाइल) में कुछ महत्त्वपूर्ण पद्य हैं; एक चींटी पर है, दूसरा सबसे भिन्न जीवन के सर्वोच्च आशीर्वाद हैं, इस विषय पर है। गांधी जी पर कविता वैदिक गायत्री छन्द में लिखी गई है, इसलिए उल्लेखनीय है। साहित्य तथा पुरातत्त्व-उत्खनन पर आधारित सांस्कृतिक स्थानों के उल्लेख वाली मथुरा पर कविता है। मथुरानाथ कवि शास्त्री, जयपुर निवासी ने कोई भी ऐसा आधुनिक या विज्ञान-सम्बन्धी विषय अछूता नहीं छोड़ा है, जिस पर उन्होंने अच्छी कविता न लिखी हो। इन कविताओं का संग्रह उनके बड़े ग्रंथ 'साहित्य वैभव' (बम्बई, १९३०) में मिलता है; इसके प्रथम खण्ड में प्रकृति-विषयक कविताओं के नमूने हैं, बाद में विविध भावों पर रचनाएँ हैं, विचारात्मक 'प्रत्यादेश' पद्य है और उनके बाद एक खण्ड है जिसका शीर्षक है 'नवयुग-वीथि', जिसमें कवि ने ट्राम, मोटर-कार, रेलवे, जहाज, विद्युत्, रेडियो, ग्रामोफोन, शल्य-चिकित्सा, क्षयकिरण, छायाचित्र विभाग, विज्ञान की अद्भुत, विशेषताओं के गुण आदि पर कविता की है। भारतीय सार्वजनिक आन्दोलनों पर भी वे ही अपने विचार प्रकट करते हैं।

'मेघ-सन्देश' के प्रचलित अनुकरणों में यहाँ कुछ विशिष्ट नमूनों का उल्लेख किया जा सकता है। जिनका मैं पत्र के जीवन की पुनर्रचना किया गया है, उसका कार्यक्षेत्र कैसा होगा, आज का क्या कारण व इत्यादि। (विचारनिधि सन्देश- एस० राधा लक्ष्मी, मैसोर १९३३); इसके बाद श्रीराम रामचन्द्र ने 'चक्रपूर्ण' (मद्रास १९५४) लिखा, जो कि वर्तमान की कृति का संकेत है। 'मेघ सन्देश' की अपनी नयी शैलियों प्रस्तुत

उल्लेखित है।

पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं के कुछ उदाहरण यहाँ यह दिखलाने के लिए दिये जा रहे हैं कि कितने विविध विषयों पर संस्कृत में काव्य-रचना हुई। सहृ० (२) में के० कल्याणी ने 'भारतीविलाप' नामक कविता में एक लेखक के दु:खों का वर्णन किया है कि लेखन, प्रकाशन, समालोचन, पठन और आस्वादन में कितनी कठिनाइयाँ आती हैं। 'भारतीय युद्धसज्जा' (स० सा० प० प० अक्तूबर, १९४२) प्राचीन और नवीन युद्ध-पद्धति के बीच में पद्यमय संवाद है, भारत के गत महायुद्ध में योगदान पर यह आधारित है। 'चर्म-गोल-क्रीडा' पुलिनबिहारी दासगुप्त (स० सा० प० प० १९२८–२९) की फुटबाल पर एक रचना है। कुक्के सुब्रह्मण्यम् शास्त्री ने (म० सं० का० मं० मैं०, १९२५) में जोग जलप्रपात पर एक कविता लिखी है।

कई छोटी-बड़ी कविताएँ, जिनमें एक कहानी गूँथी गई है, भी प्रकाशित हुई हैं। 'महीपो मनुनीति चोल' (१९४९) और 'देवबन्दी वरवराज.' (१९४८) प्रस्तुत लेखक ने चोल इतिहास और श्रीरंगम् मंदिर से प्राप्त वृत्तातों के आधार पर लिखे हैं। लेखक की एक अप्रकाशित कविता, शीर्षक है 'ना कदाचिद् अनीदृशम् जगत्' में प्रथम खण्ड में, पुरुरवा को उर्वशी ने वैदिक काल में कठोरता से छोड़ दिया था, इसका वर्णन है और दूसरे खण्ड में एक भारतीय राजकुमार को अंग्रेज पत्नी ने खूब लूटकर कैसे छोड़ दिया, इस बात का वर्णन है।

पुराने खण्डकाव्यों के ढंग पर कविता लिखी गई है और नए ढंग से उनमें विषय-निरूपण हुआ है। सी० वेंकटरमणैया (बंगलोर १९४४) के 'काव्य समुदाय' में हरिश्चन्द्र, नभनेदिष्ठ विश्वमित्र की वैदिक कथाओं पर इस ढंग से लिखा है। 'धरा-यशोधरा:' (सातारा १९५२) डी०एम० कुलकर्णी द्वारा रचित एक कविता है, जिसमें कि प्राचीन भारत के एक सांस्कृतिक केन्द्र भोज की राजधानी के वैभव का वर्णन है। विजयानगरम् के वी० वेंकटनारायणराय (बनारस १९०९) ने पद्मिनी-चन्द्र-

संवाद' नामक एक रचना लिखी है, जो कि 'चरित' पर है। [illegible] नारायण शास्त्री, तिरुवाम्पुर ने अपनी अनेक रचनाओं में 'चतुर्थी चिन्तामणि' (श्रीरंगम् १९२२) नामक रचना भी लिखी है। [illegible] कविता के लिए अन्यापदेश-शतक-जैसी प्राचीन [illegible] बहुत उपयुक्त माध्यम है और कई आधुनिक संस्कृतज्ञों ने भी इस तरह के [illegible] लिखे हैं। मथुरानाथ शास्त्री के 'अन्यापदेश' का पहले उल्लेख हो चुका है। वाई० महालिंग शास्त्री की 'व्याजोक्ति रत्नावली' (तिरुवालूर [illegible]) इसी कोटि की रचना है।

हास्य-विनोद की कविता

वर्तमान युग में व्यंग्य विनोद की कविता को विशेष प्रोत्साहन मिला है, जब कि आधुनिकतावादी लेखकों ने परम्परावादियों को अपने व्यंग्य बाणों का लक्ष्य बनाया है। पुरातन-पंथियों ने भी उनका प्रत्युत्तर उसी प्रकार से दिया है, बहुत-सी आधुनिक फैशन और रंग-ढंग उनकी आलोचना के विषय बने हैं। [illegible] और व्यंग्य [illegible] के लिए विविध प्रकार के [illegible] और [illegible], कई [illegible] और [illegible] किये गये हैं। यह एक नया [illegible] प्रकार है, जिसका [illegible] का [illegible] किया गया है।

[illegible]

[illegible]

स्वाद रोक पाना बहुत कठिन है और सहृ० (८) में मुद्दु विट्ठलाचार्य सनातनियों को इस वर्जित खाद्य वस्तु के प्रति आकृष्ट करते हैं (पलांडु-प्रार्थना)। जयपुर के कृष्ण शर्मा ने इस अमूल्य वस्तु पर 'पलांडु-शतक' नामक पूरा शतक लिख डाला है। झाड़ू के दिव्य कार्य पर 'मार्जनी' नामक प्रशस्ति लिखी गई है; और अनन्तलवार ने, जो मेलकोटे श्री वैष्णव मठ में बाद में आचार्य थे, झाड़ू के महत्त्व पर * एक पूरा शतक लिख डाला। कवियों ने खटमल और चींटी को भी नहीं छोड़ा है: के० वी० कृष्णमूर्ति शास्त्री पूना ने एक 'मत्कुणाष्टक' लिखा है (स० र० में प्रकाशित) और खटमल-जैसे पूना में त्रासदायक हैं वैसे ही बंगाल में भी हैं। फलतः पुलिनबिहारी दासगुप्त ने स० सा० प० प० (फरवरी १६२८) में एक 'मत्कुणाष्टक' लिखा है। खटमल से भी और कष्टदायक मच्छर या 'मशक' को प्राचीन संस्कृत-कविता में बड़ा गौरव दिया गया था। समकालीन लेखन में, आत्रेय (वी० स्वामिनाथ शर्मा) ने कुछ पंक्तियाँ उन पर लिखी हैं। † चाय और काफी-पान के आनन्द और उसके व्यसन से हानि पर कई काव्य-पंक्तियाँ लिखी गई हैं। सी० आर० सहस्रबुद्धे ने चाय पर एक गीता लिखी है ('चाय-गीता', धारवाड़)। आत्रेय ने काफी पर सोलह छन्द लिखे हैं (काफीषोडशिका) ‡ और दो और कविताएँ उसी विषय पर बेचारी काफी को बहुत भला-बुरा कहती हैं: एम० वी० सपतकुमार आचार्य की 'काफी-पानीयम्' (सं० सा० प० प०, अप्रैल १६४१) और 'काफी-त्याग-द्वादश-मंजरिका'; दूसरी कविता में शंकराचार्य के 'भजगोविन्दम्' छन्द और लय को प्रयुक्त किया गया है और उसमें जन-साधारण को काफी पीना छोड़ देने का उपदेश है। इससे चाय की प्याली की ओर मुड़ना लाजमी

* 'सम्मार्जनी शतक', मैसोर। संस्कृत-चन्द्रिका खंड ५ में झाड़ू पर एक अध्याय है (पृ० ७)।

† मन्नाममार्दनगर मिसलेनी, १६४०।

‡ वही।

देगा। कालिकट के एम० कृष्णन् नम्बूदिपाद ने सात छन्दों में एक कविता लिखी है (सं० ३-४-१९५७)। डी०टी० ताताचार्य ने एक मौलिक कविता 'कपीनाम् उपवास:' * में उन लोगों के मन की चंचलता पर व्यंग किया है, जो कि बड़ी पवित्रता का ढोंग रचते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'कान्यकुब्जलीनामृत' ३८ छंदों में कान्यकुब्जों का मज़ाक उड़ाती है (सं० चं० खण्ड ६)।

कुछ नये आन्दोलनों पर उनके नेताओं और समर्थकों पर भी व्यंग लिखे गए हैं। दयानंद को छज्जूराम ने 'दयानंदाष्टक' में व्यंग का विषय बनाया है। बंकिमचन्द्र चटर्जी का पशुओं की महासभा के रूप में आधुनिक सम्मेलनों पर व्यंग्य, संस्कृत में अनूदित किया गया है।¹ पुन्नसेरि नीलकंठ शर्मा ने सौ छन्दों में 'सात्विक स्वप्न' में राजनीतिक आन्दोलनकर्ता पर व्यंग प्रहार किया है (कोल्लम् १०६७, त्रिचूर)। विविध पार्टियों द्वारा विविध नारों और विचार-धाराओं का परिहास एक बाकायदा कान्फ्रेन्स के रूप में पेश किया गया है; जिसमें श्वान, मर्कट, शृगाल, शुक इत्यादि भाग लेते हैं, स्वागत-भाषण, उद्घाटन-भाषण, अध्यक्षीय भाषण इत्यादि होते हैं। 'कांग्रेस गीता' (सूरत १९०८) सूरत की कांग्रेस पर एक व्यंग रचना है।

नाटक

गंभीर नाटक में पुराने विषयों पर परम्परित ढंग से बहुत सारे नाटक लिखे गए हैं और यहाँ इतना सूचित करना काफ़ी है कि इस युग में श्रीनारायण शास्त्री-जैसे लेखक भी हुए हैं, जिन्होंने ९६ नाटक लिखे हैं ... तक ऐसे नाटक निरन्तर रूप से रचे जा रहे हैं। यहाँ पर ... विशेष रूप से करना चाहिए जिनमें प्राचीन ... होने पर भी, रूप, विचार तथा शैली में नई ...

¹ १९२२।
* एम० २।

उद्भावनाएँ की गई हैं। यह स्वाभाविक है कि जब आधुनिक शिक्षा-प्राप्त संस्कृतज्ञ संस्कृत में नाट्य-रचना करने लगे तो यह नये तत्त्व आये बिना नहीं रह सकते थे। *

क्लासिकल श्रेष्ठ रचनाओं में से नये विषय या प्राचीन नाट्य-वस्तुओं की नाट्यात्मक पुनर्रचना के प्रयत्न किये गए हैं। उदाहरणार्थ मैसोर के जग्गू वेंकटाचार्य ने अन्तिम प्रकार के नाटक रचे हैं और दो-तीन अंकों में छोटे नाटक रचे हैं, जिनमें कि प्रसन्न-काश्यप (मैसोर १६५१) का उल्लेख किया जा सकता है। इसमें दुष्यन्त और शकुन्तला के साथ शिशु भरत कण्व के आश्रम में जाते हैं। इसी आकर्षक विषय पर सूरत के जे० टी० पारीख ने एक एकांकी लिखा है। रूपकात्मक नाटक भी लिखे गए; उदाहरणार्थ . 'प्रधर्म-विपाक' (स० चं० खण्ड ५)। सी० वेंकटरमणय्या ने एक लंबा रूपकप्रधान नाटक 'जीवसंजीवनी नाटक' † नाम से लिखा, जिसमें आयुर्वेद का मूल्य वर्णित था।

मद्रास संस्कृत अकेडेमी ने एक अखिल भारतीय नाटक-स्पर्द्धा की, जिसका बहुत अच्छा परिणाम निकला। इस स्पर्द्धा का सम्मान 'प्रति-राजसूयम्' नामक नाटक को मिला, जो अभी प्रकाशित हुआ है। यह वाई० महालिंग शास्त्री ने लिखा। दुर्योधन ने अपने चचेरे भाइयों को जंगल में भेजने के बाद जो राजसूय-यज्ञ किया यह नाटक उस पर आधा-रित है। इसमें और इसी लेखक के अन्य अप्रकाशित 'उद्गातृदशानन' आदि नाटकों में नये विचारों की उद्भावना है। उनका 'कलि प्रादुर्भाव' ‡, जो हाल में प्रकाशित हुआ, सात छोटे अंकों में कलियुग के आगमन के साथ-साथ जो शीघ्र अनीति छा जाती है उसकी पुरानी मनोरंजक कहानी है। इसी लेखक का उभयरूपक एक सामाजिक सुखान्त नाटक

* एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह घटित हुआ कि प्राकृत का प्रयोग अब नहीं किया जाता।

† बैंगलोर, १६४६।

‡ उत्तर प्रदेश में क्रमशः प्रकाशित और अलग से मुद्रित; तिरुवेन्दपुर, १६५६।

वाग-विजय'* नाम से संस्कृत और हिन्दी में प्रकाशित किया है।

रचनात्मक उत्प्रेरणा के नये दौर में कालिदास, शूद्रक और भवभूति के भक्तों का ध्यान शेक्सपीयर की ओर भी गया। भारतीय भाषाओं में शेक्सपीयर पर कुछ परीक्षाएं प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु उनमें इस महान् नाटककार की कृतियों के संस्कृत-रूपान्तरों का उल्लेख नहीं है।† १८७७ में श्री शैल दीक्षितार, मद्रास ने 'भ्रांति-विलास' नामक 'कामेडी आफ एरर्स' का अनुवाद किया। राजराज वर्मा, त्रिवाकुर ने 'आथेल्लो'‡ का रूपांतर प्रस्तुत किया। आर० कृष्णमाचार्य ने 'सहृदय' में प्रकाशित करके बाद में स्वतन्त्र पुस्तिका 'वासंतिक स्वप्न'* छापा, जो कि 'ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम' का रूपांतर है। 'एज यू लाइक इट' अब क्रमशः 'यथाभिमतम्' शीर्षक से उत्तर प्रदेश में प्रकाशित हो रहा है। लैंब की 'टेल्स फ्राम शेक्सपीयर' विजयानगरम् के एम० वेंकटरमणाचार्य ने संस्कृत में प्रकाशित की है।† सहृ० ने अपने विविध अंकों में शेक्सपीयर के आथेल्लो हैमलेट इत्यादि नाटकों की कहानियों को गद्य रूप में प्रकाशित किया है। शेक्सपीयर से छोटे अंशों और कविताओं के रूपान्तर की चर्चा पहले आ चुकी है। संस्कृत में अन्य पाश्चात्य नाटक भी प्रकाशित हुए हैं। 'गोएटे के फाउस्ट' का संस्कृतानुवाद 'विश्वमोहन'‡ नाम से पूना के एस० एन० ताडपत्रीकर ने प्रकाशित किया है। डाक्टर श्यामा शास्त्री ने लेसिंग के 'एमेलिया गॅलेट्टी' को म० म० का० मै० मै० (७,१९३१) में अनूदित किया है। टेनीसन की द्वय की शोकांतिका 'दि कप' संस्कृत-

* दिल्ली १९४२।

† देखिये, 'भाषा पत्र', नवम्बर और दिसम्बर १९५५, सी०आर० शाह शेक्सपीयर के नाटक, भारतीय भाषाओं में।

‡ प्रकाशन : त्रिवेन्द्रम्।

* कुम्भकोणम् १८९२।

† मद्रास १९३३।

‡ पूना ओरियेंटेलिस्ट, १४।

है। तंजौर के सुंदरेश शर्मा ने एक रोमांटिक विषय, बिल्हण की गह के अनुकरण पर, 'प्रेम-विजय'* में प्रतिपादित किया है। इस नाटक के अभिनय भी कर चुके हैं।

भारतीय इतिहास की प्रसिद्ध विभूतियों पर नाटकों की संख्या ही यह पता चलता है कि नाट्य-विषयों में परिवर्तन घटित हुआ। वर्ग में हम म० म० मथुराप्रसाद दीक्षित का 'मेवाड़ का राणा प्रताप' (वीर प्रताप नाटक', लाहौर, १९३७), म० म० याज्ञिक के 'संयोगि स्वयंवर,' 'छत्रपति साम्राज्य' और 'प्रताप विजय'† नामक तीन न जिनमें गीत भी दिये गए हैं, सुन्दरराजपति का 'सिहलविजय'‡ वही इतिहास पर आधारित उड़ीसा के गीतों सहित, पंचानन तर्क रत्न का 'अमर मंगल' (बनारस १९३९) रख सकते हैं। प्रस्तुत लेख कृति 'अनारकली', जो अभी पांडुलिपि रूप में है, जहाँगीर के सा साथ प्रसिद्ध रोमांस की कथा पर आधारित नाटक है। क्षमा र मरणोपरांत प्रकाशित कृतियों में कुछ सामाजिक सुधार के ना यथा 'बाल विधवा',* तीन अंकों में है। नाटकीय रूप में कुछ नये विषय भी प्रस्तुत किये गए हैं। 'प्रकृति सौंदर्य' (बेतले १९३४) समाजी लेखक महाव्रत की रचना है। 'पंचाण्डविजय' पुष्पेरि शर्मा की 'विज्ञानतरंगिणी' पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ इस वि निरूपण करती हैं कि संस्कृत की सांप्रतिक दशा कितनी शोक और विभिन्न प्रदेशों में महाराजा संस्कृत कालेज खोलने से इस कैसा सामयिक सुधार हुआ है। इसमें ब्रह्मा, सरस्वती और अ अंग्रेजी, संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाएँ पात्र बनकर दिल्ली के प्रभुदत्त शास्त्री ने पाँच अंकों में ऐसा ही एक नाटक

* कुम्भकोणम् १९४२।

† अंग्रेजी अनुवाद सहित बड़ौदा से प्रकाशित, १९२६ (छत्रपति-साम्राज्य

‡ बहरामपुर १९५१।

* मं० १९५५।

सहृदये

वाग-विजय'* नाम से संस्कृत और हिन्दी में प्रकाशित किया है।

रचनात्मक उत्प्रेरणा के नये दौर में कालिदास, शूद्रक और भवभूति के भक्तों का ध्यान शेक्सपीयर की ओर भी गया। भारतीय भाषाओं में शेक्सपीयर पर कुछ परीक्षण प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु उनमें इस महान् नाटककार की कृतियों के संस्कृत-रूपान्तरों का उल्लेख नहीं है।† १८७७ में श्री शैल दीक्षितार, मद्रास ने 'भ्रान्ति-विलास' नामक 'कामेडी आफ एरर्स' का अनुवाद किया। राजराज वर्मा, त्रिवाकुर ने 'ओथेलो'‡ का रूपांतर प्रस्तुत किया। आर० कृष्णमाचार्य ने 'सहृदय' में प्रकाशित करके बाद में स्वतन्त्र पुस्तकका 'वासन्तिक स्वप्न'* छापा, जो कि 'ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम' का रूपांतर है। 'एज यू लाइक इट' अब क्रमशः 'यथाभिमतम्' शीर्षक से उत्तर प्रदेश में प्रकाशित हो रहा है। लैम्ब की 'टेल्स फ्राम शेक्सपीयर' विजयानगरम् के एम० वेंकटरमणाचार्य ने संस्कृत में प्रकाशित की है।† सहृ० ने अपने विविध अंकों में शेक्सपीयर के आथेल्लो, हैमलेट इत्यादि नाटकों की कहानियों को गद्य रूप में प्रकाशित किया है। शेक्सपीयर से छोटे अंशों और कविताओं के रूपान्तर की चर्चा पहले आ चुकी है। संस्कृत में अन्य पाश्चात्य नाटक भी प्रकाशित हुए हैं। 'गोइटे के फाउस्ट' का संस्कृतानुवाद 'विश्वमोहन'‡ नाम से पूना के एस० एन० ताडपत्रीकर ने प्रकाशित किया है। डाक्टर रामा शास्त्री ने लेसिंग के 'एमेलिया गलेटटी' को म० म० का० मे० मे० (७,१९३१) में अनूदित किया है। टेनीसन की इनक की शोकान्तिका 'दि कप' संस्कृत-

* दिल्ली १९४२।

† देखिये, 'भ अ पथ', नवम्बर और दिसम्बर १९५५, मो०एस० शाह 'शेक्सपीयर के नाटक, भारतीय भाषाओं में'।

‡ प्रकाशन : त्रिवेन्द्रम्।

* कुम्भकोणम् १८९७।

† मद्रास १९३२।

‡ पूना ओरियेंटेलिस्ट, १९४१

नाट्य-परम्परा के अनुकूल मी० वेंकटरमण्य्या के 'कमलाविजयनाटक'* में ढाली गई है।

पश्चिमी नाटकों के इन संस्कृत-अनुवादों के बाद छोटे आकार की नाट्य-रचनाएँ आती हैं। विशेषतः वे एकांकी, जिन्होंने पश्चिम की शैली से विशेष स्फूर्ति ली। ऐसे नाटकों में से बहुत बड़ी संख्या इस काल-खंड में प्रकाशित की गई। प्रहसन प्राचीन काल से ही संस्कृत-रंग-भूमि पर चले आ रहे हैं। ७वीं शती के बाद से ऐसे नाटकों के कुछ दो-चार अच्छे नमूने हमें मिलते हैं। इधर लिखे गए छोटे नाटकों में कई प्रहसन हैं; यह देखकर आनन्द होता है। ऐसे प्रसंग जैसे कि कालेज के वार्षिक दिवस आदि थोड़े समय के लिए संस्कृत में मनोरंजन प्रस्तुत करने के उत्तम अवसर होते हैं। उस समय की आवश्यकता से प्रेरित होकर कई ऐसे नाटक लिखे गए। इधर कुछ वर्षों से छोटे संस्कृत-नाटकों और नाट्य-संवादों को आल इंडिया रेडियो भी बहुत प्रोत्साहन दे रहा है।

समकालीन सामाजिक महत्त्व के विविध विषयों का, नये ढंग के एकांकियों में निरूपण मिलता है : वी० के० थम्पी के तीन संस्कृत-नाटक† ('प्रतिक्रिया', 'वनज्योत्स्ना', 'धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः') राजपूत मुस्लिम काल के ऐतिहासिक रोमांटिक विषयों पर आधारित हैं। 'कस्याहम्' टी० वरदराज शर्मा (सं० सा० प० प० १९३६) एक वधू के नये घर में स्वगत-भाषण पर आधारित नाटक है। 'मनोहरम् दिनम्' ए० आर० हेबरे (सं० सा० प० प० मार्च १९४१) शाला की एक साधारण घटना पर आधारित रचना है जिसमें छुट्टी के लिए बच्चों की युक्ति-प्रयुक्ति की घटना है। सीता देवी अपने 'अरण्य-रोदन' (मनोरमा, बेरहामपुर, नं० ३, १९४९) में घरेलू झगड़ों को नाट्य-रूप देती है। 'प्रमर्पमहिमा' (अ० सा० १९५१) में के० तिरुवेंकटाचार्य ने घर और दफ्तर के साधा-

* मैसोर १९३८।

† त्रिवेंद्रम, १९२४।

रण अनुभव को सफल नाट्य-रूप दिया है। एक क्रोधी अफसर अपनी पत्नी से लड़कर दफ्तर में आता है, अपना गुस्सा वह क्लर्क पर उतारता है; क्लर्क से उसकी पत्नी पर और पत्नी से घर की नौकरानी पर यह गुस्सा स्थानांतरित होता जाता है। 'वणिक्सुता' ('व्यापारी की पुत्री', मं०, अगस्त १९५५) में एक विचित्र विषय पर सुरेन्द्रमोहन पञ्चतीर्थ ने लिखा है। यहाँ एक धनी तरुणी विधवा का प्रणयाराधन हिंदू और बौद्ध धर्माभिमानी दोनों करते हैं, जिनमें प्रथम विजयी होता है। श्रीमती क्षमा राव के 'कटुविपाक' (मं०, दिसम्बर १९५५) में सत्याग्रह के दिनों की उस सामान्य करुण घटना का चित्रण है जिसमें कि कोई लड़का या लड़की आन्दोलन में घर पर माता-पिता के दिल तोड़कर कूद पड़ता था, या पुलिस की हिंसा में अपनी जीवनाहुति देता या देती थी। बाद की एक करुण स्थिति में, जिससे से कि देश गुज़रा, एक 'महा श्मशानम्' नाम से एकांकी नाटक कुशलतापूर्वक और सशक्त ढंग से लिखा गया। यह दुखान्तिका तीन छोटे दृश्यों में है, और वह 'कौमुदी' (हैदराबाद, सिन्ध, सितम्बर १९४८) में प्रकाशित हुई थी। इसमें विभाजन के समय के कलकत्ता की सड़कों का वर्णन, जिसमें लाशें फैली हुई थीं, ५०० बस्ती वाले गाँव में ५ बचे थे, और एक मुस्लिम दर्जी परिवार के सामने यह संकट था कि या तो वह अकाल से मर जाय या काले बाज़ार में पाए गए चावलों से बनी उस काँजी को पिए, जिसकी एक घूँट से उसकी एक-मात्र बची लड़की मर जाती है।

गत शताब्दी के अन्तिम भाग में लिखे गए इलत्तूर सुन्दरराज कवि के 'स्नुषाविजय' * के रूप में एक ऐसा एकांकी नाटक हमें मिलता है जिसका विषय सामाजिक, पारिवारिक होते हुए भी उसके भीतर परि-हास की सूक्ष्म छटा थी। ऐसे नाटक संस्कृत में प्रचलित हो गए हैं। इस शताब्दी में स्पष्ट रूप से प्रहसनात्मक तो कई नाट्य-कृतियाँ हैं।

* प्रस्तुत लेखक द्वारा स्वतंत्र टीका सहित सम्पादित : अनाल्स आफ़ ओरिएंटल रिसर्च, यूनिवर्सिटी आफ़ मद्रास ७, १९४२-४३ में प्रकाशित।

पुराने लेखकों में, जो अभी भी जीवित हैं और जो फार्स लिखते हैं, एस० के० रामनाथ शास्त्री हैं; 'दोला-पंचीलक प्रहसन' के अतिरिक्त, उन्होंने 'मणिमंजूषा' के नाम से सबसे मनोरंजक और चमत्कारिक सामग्री दंडी के 'दशकुमार चरित' के अपहारवर्मन कहानी से ली। * के० एल० वी० शास्त्री, मद्रास ने तीन प्रहसन लिखे: 'लीलाविलास', † 'चामुण्डा' ‡ और 'निपुणिका'। पहले में पिता माता अपनी लड़की को दो अलग-अलग वरों को देना चाहते हैं उनमें से एक तरुण पंडित है, दूसरा शास्त्री और बिगड़ा हुआ लड़का है; लड़की का भाई चाहता है कि उसके एक सहपाठी के साथ वह विवाह करे; अन्तिम लड़का लड़की को कुछ चोरों से बचाता है; और इस प्रकार से समस्या सुलझ जाती है—अन्तिम लड़के के साथ लड़की का विवाह हो जाता है। 'चामुण्डा' में भी लेखक ने आजकल के एक महत्वपूर्ण सामाजिक विषय को लिया है: गाँवों में आधुनिक सुधारों के प्रति प्रारम्भिक विरोध और धीरे-धीरे उन सुधारों से मिलने वाले फायदों के कारण उस विरोध के कम होने का वर्णन है। इसीमें एक तरुण विधवा, जो लंदन से लौटकर डॉक्टर हो जाती है, एक विरोधी गाँव का सामना करती है जो कि उसका अपमान करने पर तुला है, जहाँ सहसा उस विरोधी की पत्नी को दी गई चिकित्सा-सहायता, उसका सेवा-भाव और त्याग इन विरोधियों का हृदय-परिवर्तन कर देते हैं। वाई० महालिंगम् शास्त्री ने दो प्रहसन लिखे हैं, एक 'कौडिन्य प्रहसन'*; जिसमें वह लोकप्रिय कथा है कि एक कंजूस को उससे भी बड़ा धूर्त मिलता है, जो प्रतिदिन दूसरे के घर में खाता है; और दूसरा

* सं० स० प० प० में क्रमशः [illegible]।

† [illegible] १९३५।

‡ मद्रास।

* प्रकाशित, मद्रास १९३०।

'शृंगार नारदीय' * पौराणिक कथा के आधार पर यौन-परिवर्तन इस प्रहसन का विषय है। 'पल्लिमाला' प्रहसन में (म० स० वा० मं० मं०, मार्च जून १९४२), संस्कृत की श्लेष तथा कोटि क्रम की शक्ति का पूर्ण उपयोग करते हुए, एक साहसी माता का वर्णन है जो कि सीधे उस शाला के अध्यापक को ठीक कर देती है, जिसने उसके बच्चे को मारा है। एक स्त्री के गहने के लिए अतिलोभ और उसका दुःखपूर्ण अंत सुरेन्द्रमोहन के 'कांचनमाला' (म० फरवरी १९५५) का मुख्य कथा-सूत्र है। जीव न्यायतीर्थ ने अपने 'पुरुषरमणीय' में (म०मा० प०प० फरवरी १९४७) प्रहसन के शीर्षक के नीचे एक बिखरी हुई रचना दी है। परन्तु इसकी क्षतिपूर्ति उन्होंने 'शुन-शेप' में (म० नवम्बर १९५६) की है। एक कंजूस आदमी काले बाजार में अपार धनराशि जमा करके परलोक में भी सफल होता है और चित्रगुप्त को भी अपनी नौकरी में रखकर मरण के देवता यमराज पर भी विजय प्राप्त करता है और पुनर्जीवन प्राप्त करता है। एस० एस० लोन के 'मालभविष्यम्' तथा 'लालावैद्यम्' नागपुर में अभिनीत होकर बड़ी अच्छी तरह रसिकों द्वारा ग्रहण किये गए।

'आलस्य-कर्मीयम्' (बेकारी) नामक बहुत सुन्दर ढंग से लिखे नाटक में, जो कि 'श्रीचित्र'† में प्रकाशित हुआ, आलवाये के के० आर० नायर ने गरीब बेकार संस्कृत विद्वान् की दुर्दशा का वर्णन किया है जो कि युद्ध-काल में रंगरूट बनकर अपना नाम भरती कराना चाहता है कि सहसा पन्द्रह रुपये मासिक की एक अध्यापक की नौकरी उसे मिलती है, जो कि एक उपेक्षित संस्कृत कालेज के एक उपवासी आचार्य द्वारा दी जाती है; इसमें संस्कृत भाषा और साहित्य को रूपक के ढंग पर प्रस्तुत किया गया है। कवि नायक है, भावना उसकी अधीर पत्नी

* उ० प्र० में लखनऊ से प्रकाशित १९५६। देखें लखनऊ रेडियो से प्र० वा० १९५८, लेखक : पी०एम० ....।

† मद्रास संस्कृत कॉलेज त्रिवेन्द्रम से १९४७, व १९४९ में प्रकाशित।

है, 'गीर्वाणी' माता है, और घर में संतति निरोध द्वारा दैन्य के कारण अपत्य संख्या दो तक सीमित की गई है : काव्य पुत्र है, अभिरुचि पुत्री। वटुकनाथ शर्मा अपने पांडित्य-तांडवित (वल्लरी १९५३) में विभिन्न शाखाओं और दलों के पंडित जो शोर मचाते हैं और मिथ्या अहंकार दरसाते हैं उसका दम्भ-स्फोट करते हैं। मधुसूदन काव्यतीर्थ ने ऐसा ही एक व्यंग पंडितों पर 'विद्योदय' के 'पंडित चरित प्रहसन' में प्रकाशित किया था। 'प्रतापरुद्रीय-विडंबना', प्रस्तुत लेखक की एक अप्रकाशित रचना है, जिसमें पैरोडी के रूप में परवर्ती संस्कृत कविता की अति-शयोक्तियों की असभाव्यता का चार अंकों के हास्यपूर्ण कथानक में विवेचन किया गया है। प्रस्तुत लेखक का 'विमुक्ति' नामक दूसरा अप्रकाशित प्रह-सन है, जिसमें एक पूरा दार्शनिक रूपक गुम्फित है। प्राचीन 'भाण' रूप में 'मर्कट मर्दलिका' आई० महालिंग शास्त्री ने लिखा है (मं० मिनर्वर नवम्बर, १९५१)। नारियों के नये फैशन, उनके क्लब, नये परिधान, ताश-टेनिस आदि नये खेल, सिनेमा आदि के उल्लेखों से समकालीन सामा-जिक आधार देकर परम्परित भाण को भी इतना मनोरंजक बनाया जा सकता है, यह सुन्दरेश शर्मा के 'शृंगारशेखरभाण'* से प्रमाणित है।

छोटे एकांकी नाटक और नाट्य-रूप में प्रस्तुत घटनाएँ आल इंडिया रेडियो के लिए विशेष रूप से इधर लिखी गई हैं; प्रस्तुत लेखक ने इस प्रकार की भागवत पर आधारित संगीत 'रासलीला'† और 'काम-शुद्धि'‡ नामक 'कुमारसम्भव' में कालिदास के सन्देश का एक नया अर्थ देने वाली नाटिका लिखी है। 'संस्कृत साहित्येतिहास' में प्रसिद्ध विज्जिका विकटनितंबा और अवन्तीसुन्दरी नामक तीन लेखिकाओं के जीवन पर आधारित नाट्य-प्रसंग आल इण्डिया रेडियो पर प्रस्तुत किया गया था।*

* कुम्भकोणम् १९३८।
† आ० रा० और मलग से भी, १९५५।
‡ आ० रा० और मलग से भी, १९५६।
* मद्रास १९५६।

प्रादेशिक भाषाओं से अनुवाद और रूपांतर

प्रारम्भिक वृत्तान्त में जैसे उल्लेख किया गया है संस्कृत ने सदा लोकप्रिय भाषाओं और उनके साहित्यों से बड़ा घनिष्ठ सम्पर्क रखा था। आधुनिक काल में, भारतीय साहित्य के आलोचनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन से कई संस्कृतज्ञों को प्रेरणा मिली कि अपने प्रादेशिक साहित्यों के उत्तम अंशों को संस्कृत में वे प्रस्तुत करें। यह अनुवाद इन भाषाओं के प्राचीन तथा आधुनिक साहित्यों से है। विविध भाषाओं से अनूदित कहानियों और उपन्यासों का उल्लेख हो चुका है। अब हम देखेंगे कि इन भाषाओं में से छोटी और लंबी वर्तमान और अन्य साहित्यिक अंश कौन-से अनूदित हुए हैं। संस्कृत में प्रादेशिक भाषाओं से अनुवाद का प्राचीनतम उदाहरण तमिळ से मिलेगा। प्रसिद्ध श्रीवैष्णव दार्शनिक वेदान्त देशिक के कदमों पर कदम रखकर नए आधुनिक दक्षिण भारतीय संस्कृतज्ञों ने आळवारों के धार्मिक स्तोत्रों के अनुवाद किये हैं; आन्ध्र के मेदेपल्ली वेंकटरमणाचार्य ([illegible]) मैसूर के टी० नरसिंह अयंगार उर्फ 'वत्सी' ([illegible])* और काशी के पी०बी० अनन्तरङ्गाचारियर† आदि ने इस नालायिर प्रबन्ध संग्रह के कुछ अंशों को संस्कृत में निबद्ध किया है। प्रसिद्ध तिरुक्कुरळ के दो संस्कृत अनुवाद मिलते हैं, अप्पा वाजपेयिन के संस्कृत संस्करण का नाम है 'सुनीति कुसुममाला',‡ और उसके साथ [illegible] भी है, और एक और अच्छा और आधुनिक संस्करण सुगठित अनुष्टुप में है, जिसका नाम 'सूक्ति रत्नाकर' है और जो एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री द्वारा रचा गया और क्रमशः सहृ० (१३) में छप रहा है। उसी पत्रिका में कम्बन की तमिळ रामायण का रसग्रहण (१४) छपा है और तमिळ

* बैंगलोर १९६०।

† कांचीपुरम् १९५०, १९५२, १९५३, १९५४।

‡ कुम्भकोणम्, १९२०।

संत पट्टिनतार (१३) का लेख भी छपा है। कडय्यकुडी के सुब्रह्मण्य शास्त्री ने तमिळ के नीति-प्रधान अभिजात 'नलाडियर' को अपनी चतुष्पदी में अनूदित किया है। नेम्मारा (त्रावनकोर कोचीन स्टेट) के सी०नारायण नायर ने तमिळ महाकाव्य 'शिलप्पधिकारम्' को छह सर्गों के संस्कृत-काव्य में अनूदित किया है, जिसका नाम 'कण्णकीकोवलम्'* है।

वी० वेंकटराम शास्त्री के 'कथाशतक'‡ की कहानियाँ मूल देशी भाषाओं से ली गई हैं। शेष सूरि ने संस्कृत की चार हजार कहावतें जमा की (म० सं० का० मं० मं० १९४९), जिनमें से अधिकतर तमिळनाड और अन्य दक्षिण भारतीय प्रदेशों में से हैं। गद्य-पद्य में प्रसिद्ध तमिळ साहित्यिकों के छोटे वर्णन भी प्रकाशित हुए हैं, उदाहरणार्थ : के० एन० नागराजन, बंगलोर ने वैष्णव रहस्यवादी कवयित्री आण्डाळ पर (प्र० का० १९४७)। वाई० महालिंग शास्त्री ने 'द्राविडार्य-सुभाषित-सप्तति' में तमिळ की विदुषी अव्वै (तिरुवलंगाडु १९५२) के मूल्यवान पद्यों में से चुनी हुई रचनाएँ जमा की हैं। तमिळ लोक-गीतों और प्रसिद्ध धार्मिक गीतों की धुनें संस्कृत में दक्षिण भारत के विद्वान् संगीत रचनाकारों और कवियों ने प्रथित कीं : नौका-गीत, झूले [redacted] गीत, निदणुर, कुम्मी, कोलाट्टम् इत्यादि। इनमें से कई मौखिक परंपरा में सुरक्षित हैं, और कुछ पाण्डुलिपियों में। कडय्यकुडि के सुब्रह्मण्य शास्त्री की प्रकाशित रचनाओं में से एक में कवि ने इन कई लोक-गीतों की धुनों का उपयोग किया है। नरसिंह संस्कृत कालेज, चिट्टिगुडूर के एस० टी० जी० वरदाचारियार ने संस्कृत में तेलुगु के प्रसिद्ध शतक-काव्यों को पद्यबद्ध किया: वेमनशतक, सुमतिशतक, दाशरथीशतक, कृष्णशतक और भास्करशतक*। डॉ० टी० वी० सोमापति ने स्फुट तेलुगु पद्यों को संस्कृतबद्ध किया, जिनमें क्षेत्रय के कुछ तेलुगु पद हैं, जो भरतनाट्य में अभिनय के लिए प्रयुक्त कि

* सेलम १९५५।

‡ मैसूर १८८८।

* चिट्टिगुडूर और मद्रास १९२८ और १९५५।

जाते हैं, गुरजाड अप्पाराव की पूर्णम्मा नामक एक तेलुगु कविता भी है।

मलयालम में केरल के तीन प्रधान आधुनिक कवि उल्लूर परमेश्वर-ऐयर, वल्लत्तोल नारायण मेनन और कुमारन् आशान के अनुवाद ई० वी० रामण नम्बूतिरी‡ और एन० गोपाल पिल्लई* ने किये हैं। मलयालम से संस्कृत में अन्य पद्यानुवादों में उल्लेखनीय हैं—'चन्द्रिका' (हरिप्पाद १९५५), 'केशवीयम्' तथा 'नलिनी' काव्य। महाराष्ट्र में एम० आर० तेलंग नामक स्वर्गीय बहुगुणी विद्वान् ने, जिनकी सब रचनाएँ हस्तलिखित रूप में हैं, संस्कृत में अनूदित एक छोटी कविता ज्ञानेश्वरी प्रकाशित की है (एस० आर० १९४७)। सातारा के गंगाराम शास्त्री भागवत और पूना के एम० पी० ओक ने ज्ञानेश्वरी का संस्कृत में अनुवाद किया है। पंडित ओक का कार्य न्यायाधीश ए० बी० सासनीस ने आगे बढ़ाया। डी० टी० साकोरीकर का 'गीर्वाणकेकावली' (भोर १९४६) मोरोपन्त की 'केकावली' का संस्कृत रूप है। बंगाली संस्कृतज्ञों ने दक्षिण भारतीय बन्धुओं के ढंग पर सुमधुर कार्य किया है। बंगाली महाकाव्य 'मेघनादवध' संस्कृत में प्रकाशित हुआ (सं० सा० प० प० १९३३-३४, नित्यगोपाल विद्याविनोद)। भास्करानन्दस्वामिन ने संस्कृत में चैतन्य की जीवनी पर 'चैतन्यचरितामृत'—संस्कृत—अनुवाद' (सं० सा० प० प० १९५४) लिखा है। बंकिम चन्द्र और शरच्चन्द्र के अनुवादों का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कई कविताएँ और छोटी गद्य-कृतियाँ भी घटिकलाल दास ने संस्कृत में अनूदित कीं . उर्वशी, स्पर्शमणि, अभिसारिका, मसाररहारम्, विरक्त उपहार, राष्ट्रम् ना अनिबुद्धयनाम्, मस्तक-विक्रय, तुच्छ क्षति, स्वर्ण-मृग ये सब रचनाएँ मंजू० (१९५४-५५) में प्रकाशित हुईं; और प्रतिनिधि (सं०सा० प०प० अक्तूबर १९५५) तथा पुजारिनी, धीरेन्द्रनाथ द्वारा अनूदित (सं०सा० प०प० अक्तूबर

‡ 'मद्रासी दत्त', त्रिवेन्द्रम् १९४५; 'केरलकार्तविर्ने', त्रिवेन्द्रम् १९४८।

* 'सौन्दर्यलहरी', त्रिवेन्द्रम् १९४२।

१९५४) में प्रकाशित हुई। एस० पार्थसारथी ने ठाकुर के 'कच-देवयानी' का संस्कृत-रूपान्तर मद्रास संस्कृत कालेज में १९२४-२५ में रंगमंच पर अभिनीत किया। हिन्दी कविता को संस्कृत में उतारने का कार्य जयपुर के मथुरानाथ शास्त्री ने बड़े विस्तृत ढंग पर किया। 'जय-पुरवैभव', * 'साहित्यवैभव', † और 'गीतिवीथी' ‡ नामक ग्रंथों में कई छन्द और गीत रूप व्रज भाषा और हिन्दी और उर्दू से संस्कृत में वे लाये। उनका उद्देश्य संस्कृत-पण्डितों को प्रादेशिक छन्दों के सौंदर्य से परिचित कराना था; उन्होंने 'बिहारी-सतसई' का भी संस्कृत में अनुवाद किया। संस्कृत मासिक 'सूर्योदय' में प्रसिद्ध हिन्दी-निबन्धों के संस्कृत रूप मिलते हैं। विपुलानन्द ने तुलसीदास की एक प्रार्थना का अनुवाद (प्र० वा० १९५०) और मैसूर के के० तिरुवेंकटाचार्य के पास तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का एक संस्कृत-रूपान्तर है। 'संस्कृतम्' (३-४-५६) में बम्बई की गुजराती रहस्यवादी कवयित्री निर्मला उप-नाम 'श्यामा' पर लेख है।

आधुनिक संस्कृत की समृद्धि में विभिन्न भाषाओं और साहित्यों के अनुवादों ने बड़ा योग दिया है। अंग्रेजी कविता से अनुवाद का उल्लेख पहले किया जा चुका है। उमर खैयाम की रुबाइयात की ओर संस्कृत-लेखक भी स्वाभाविक रूप से आकर्षित हुए हैं : हरिचरण ने, जिन्होंने 'कपाल कुण्डला' का संस्कृत अनुवाद किया था, उमर खैयाम का संस्कृत अनुवाद किया है; उनके बाद गिरिधर शर्मा ने (अमर-सूक्ति-सुधा-कर' *); प्रोफेसर एम० आर० राजगोपाल आय्यंगार ने ‡ तीसरा और पी० सी० कृष्णन नायर ने चौथा, उमर खैयाम का अनुवाद 'अरि-

* जयपुर १९४७।
† जयपुर १९३०।
‡ बम्बई १९२६।
* झालरापटन १९२१।
‡ मद्रास १९४०।

रोम्यन' ‡ नाम से किया। मध्ययुग के साहित्य के अनुवादों में 'अली बाबा और चालीस चोर' * कहानी का संस्कृत अनुवाद जी० के० मोडक ने किया और 'अलादीन और उसका जादुई चिराग' (मद्र० ८) और 'गुलिवर्स' के दो अनुवाद 'प्रसून वाटिका' रामस्वामी द्वारा स० सा० ग०प० म (१६२३-२८) और 'पुष्पोद्यान' दो भागों में आर०वी० गोखले ने प्रकाशित किया। † 'आवेस्ता', जो कि 'ऋग्वेद' वाली संस्कृत के निकटतम है, को भी अनुवाद के लिए लिया गया, विशुद्ध संस्कृतज्ञों द्वारा नहीं परन्तु पारसियों द्वारा; पुराने अनुवाद 'सलेक्टेड संस्कृत राइटिंग आफ दि पारसीज' नामक सीरीज़ में प्रकाशित किये और आधुनिक पारसी लेखकों में भाषा-शास्त्रज्ञ डॉक्टर आई० जे० एस० तारापोरवाला ने मंजरी के पृष्ठों में आवेस्ता की प्रार्थना के संस्कृत-अनुवाद के कुछ नमूने दिए हैं। और प्रसिद्ध गुजराती कवि ए० एफ० खबरदार ने कई प्रार्थनाओं के संस्कृत रूप अपने 'न्यू लाइट आन दि गाथास आफ होली जरथुस्त्र' (बम्बई १६५१) में दिए हैं। बौद्ध पालि साहित्य से, म० म० विधुशेखर भट्टाचार्य का 'मिलिन्दपन्ह' का (सं० सा० प० प० दिसम्बर १६३६); मंजरी में भी 'धम्मपद' का क्रमशः (सितम्बर १६५२) संस्कृत अनुवाद प्रकाशित हुआ। प्राचीन ईसाई स्रोतों के और यूनानी मुहावरों और सस्कृत समानार्थी मुहावरों के संस्कृत अनुवाद आर० ग्रोस्वान एस० जे० और के० सी० चटर्जी ने प्रकाशित किये (मंजरी १६५१ और १६५३)। जापानी साहित्य से कुछ अनुवाद 'मित्रगोष्ठी' में प्रकाशित किये गए।

संस्कृत के लेखकों ने अपने उन बंधुओं की ओर भी ध्यान दिया है जिन्होंने अंग्रेजी माध्यम के द्वारा अपने साहित्यिक गुणों को व्यक्त किया। 'अहो कलोयस्व भविनश्यताय:' पी० शंकर सुब्रह्मण्य शास्त्री ने

‡ त्रिचूर १६०५।
* कुंभकोणम् १६३४।
† बेलगांव १६४६।

एक मनोरंजक दार्शनिक कहानी के संस्कृत-अनुवाद के रूप में प्रस्तुत की है, मूल अंग्रेजी में बी० आर० राजम अय्यर के 'रम्बल्ज इन दि वेदान्त' (सहृ०१२) नाम से थी। वी० वी० श्रीनिवास अय्यंगर मद्रास में अव्यावसायिक रंगमंच के संस्थापकों में से एक थे, उन्होंने अंग्रेजी में कई मनोरंजक नाटिकाएँ लिखीं, जिनमें से एक का संस्कृत रूपान्तर 'दामु कुटुम्बक' नाम से उ० प० में (संस्करण ४) प्रकाशित हुआ। 'उमादर्श' नामक कविता सी० वेंकटरामैया (बंगलौर १९३७) की 'उमाज मिरर' नामक के० ए० कृष्णस्वामी अय्यर की अंग्रेजी कविता का अनुवाद है। प्रसिद्ध भारतीय लेखक के० एस० वेंकटरमणी के 'ए डे विथ शम्भू'-बच्चों के लिए उपदेशात्मक रचना का संस्कृत अनुवाद वाई० एम० शास्त्री ने 'शम्भुचार्योपदेश' ‡ नाम से किया है। श्री अरविन्द के काव्यों में से कुछ रचनाओं का संस्कृत में अनुवाद टी० वी० कपाली शास्त्री ने 'कवितांजलि' (मद्रास १९४६) नाम से किया।

राष्ट्रीय आन्दोलन

नया आन्दोलन वस्तुतः एक नव-जागरण और भारत की आत्मा की एक नई खोज था। आधुनिक शिक्षा और आलोचनात्मक दृष्टि के विकास के साथ-साथ, भारतीय इतिहास अधिक गहराई से पढ़ा जाने लगा, भारतीय परम्परा के महत्व का नया अनुभव सामने आया। संस्कृतज्ञ प्राचीन भारत के वैभव की ओर ऐसे उत्साह से मुड़े जिससे नव जागरण के नये प्रयत्न की ओर वे प्रोत्साहित हुए। भारतीय संस्कृति के उच्चतर आध्यात्मिक मूल्य और आधुनिक सभ्यता का भौतिक स्वरूप, नई चीज़ों और रूपों का विकास, पश्चिम का दासत्वभरा मर्कटानुकरण, इन सबने एक प्रतिक्रिया पैदा हुई और भारतीय आत्मा की पुनः प्रतिष्ठा की भावना उसमें से जागी। राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता-आन्दोलन का जन्म हुआ, सार्वजनिक आन्दोलनों के नेताओं की एक नक्षत्रमाला सामने आई,

‡ मद्रास १९३१।

जिनकी देश-भक्ति, त्याग, वक्तृत्व और अभियानों ने बुद्धिजीवियों और जनसाधारण को एक साथ झकझोर दिया। संस्कृतज्ञ भी राजनैतिक आन्दोलनों से प्रभावित हुए और इस युग के संस्कृत-लेखन में नवयुग का प्रभाव स्पष्ट है। वस्तुत. इस नई भावना से अनुप्राणित साहित्य ही समकालीन संस्कृत का सबसे बड़ा भाग है।

इस वर्ग में सबसे पहले वे कविताएँ हैं जिनमें उच्छ्वसित ढंग से स्वप्निल लेखक भारत की महत्ता की चर्चा करता है, भारत के पतन और भावी पुनर्निर्माण के स्वप्न लेता है। 'तदतीतम् एव' (वह सब बीत गया) भारत की प्राचीन श्रेष्ठता की स्मृति दिलाने वाली विलापिका है, जो अप्पलाचरण तर्कचूडामणि (सं० च० खं० ५) ने लिखी है। 'भारती मनोरथ'* में एम० के० ताताचार्य, पी० डब्ल्यू० डी० मद्रास ने समुद्र के किनारे अपनी एक तंद्रा का वर्णन किया है, जिसमें वह इस देश की ऊँची संस्कृति और आधुनिक काल में उसके पतन के सपने लेता है। एस० टी० जी० वरदाचरियर के 'सुषुप्ति वृत्त' † में भी तीन सर्गों में एक स्वप्न है, जिसमें पहले प्राचीन गौरव की तुलना में अँधेरा चित्र दिया गया है, बाद में क्षितिज पर महात्मा गाधी की आकृति आती हुई दिखाई गई है, जो अँधेरा दूर करती है। पच्चीस मन्दाक्रान्ता छन्दों में एम० बी० सुब्रह्मण्य अय्यर (सं० सा० प० प० १९२५-२६) ने 'भारत-वधू-विषाद' में भारतीय परम्परा के ह्रास के प्रति शोक व्यक्त किया है। 'भारत-भाग्य-विपर्यय' ‡ के० एस० कृष्णमूर्ति शास्त्री की एक बड़ी लंबी कविता है, जिसका विषय भी यही है। 'भारत गीता' (सहृ० १) में भारत माता पर आर्याएँ लिखी हैं। किसी भी संस्कृत-पत्रिका का शायद ही कोई ऐसा अंक निकलता हो जिसमें भारत माता पर कविता

* प्रथम विश्वयुद्ध के समय प्रकाशित।

† चिट्टियुडूर-मद्रास १९३७।

‡ म० वा० में क्रमशः प्रकाशित।

प्रकाशित न हुई हो। टी० श्री० कपाली शास्त्री ने अपने 'भारती-स्तव'* में परम देवी माता के ही दर्शन भारत माता के रूप में किये हैं। लक्ष्मी अम्माल देवी के भारती गीता के तीन सर्गों में भारत की प्रतिष्ठा और पतन का वर्णन है और भारत माता के पुत्रों को उसके सर्वांगीण पुनर्जागरण के लिए कटिबद्ध होने का आवाहन है। 'शारदा प्रसाद'† मोवेर्ने रामकृष्ण की रचना है, जिसमें भारतीय संस्कृति के अनुयायियों की दुर्दशा वर्णित है।

आधुनिक घटनाओं का प्रभाव

इसके बाद राष्ट्रीय आन्दोलन से संबंधित नेताओं के विषय में साहित्य आता है। 'संस्कृत चन्द्रिका' के बाद सभी पत्रिकाओं में नेताओं की जीत और उपलब्धियों के विषय में कविताएँ और वर्णन प्रकाशित होते रहे हैं। सं० चं० के पाँचवें खंड में 'तिलकावतार' पर ३७ छन्दों की एक कविता है। सहृ० में गोखले का गद्य-वर्णन है, उनकी मृत्यु पर एक विलापिका (६, १०) है और सरोजिनी नायडू पर एक कविता है। हाल के लोकमान्य टिळक-उत्सव में आ० श्री अणे और के० डब्लू० चितळे ने दो टिळक-जीवनियाँ संस्कृत में लिखी हैं। बंगलौर के श्री नागराजन ने 'भारतीय देशभक्त चरित्रम्'‡ नाम से एक जीवनी-माला लिखी; जिसमें टिळक, एंड्रयूज, विवेकानंद* राधाकृष्णन् आदि की जीवनियाँ हैं। प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्रज्ञ आशुतोष मुखर्जी पर कालिपाद ने 'संस्कृत पद्यवाणी' पत्रिका में 'आशुतोष अवदान' लिखा। लक्ष्मी नारायण धणमोण के 'राष्ट्रसभापतिगौरव'‡ में सभी कांग्रेसाध्यक्षों का वर्णन है, सुभाष

* अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी १९४६।

† नेल्लोर १९४६।

‡ बैंगलोर १९५२।

* अलग से प्रकाशित, बैंगलोर १९४७।

‡ १९३८।

बोस पर एक विशेष कविता है, और कांग्रेस के १९३९ के स्वर्ण जयन्ती अधिवेशन की स्मृति का विशेष उल्लेख है। स० र० (नवम्बर १९४८) में एक विशेष कविता नेहरू पर है।

फिर भी महात्मा गांधी के व्यक्तित्व में, राजनैतिक कार्य के साथ भारत के महात्माओं के आदर्श और व्यवहार का ऐसा मिश्रण हुआ था कि संस्कृत के लेखकों का सबसे अधिक ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ, और उन पर नई गीताएँ और महाकाव्य रचे गए; जैसे कि किसी आधुनिक राम या बुद्ध पर लिखे गए हों। सत्याग्रह की कथा, जो आधुनिक भारत में एक गाथा की भाँति पढ़ी जाती है, कई काव्यों का विषय बनी। क्षमा राव की 'सत्याग्रह गीता'* और 'उत्तर सत्याग्रह गीता'† प्रसादपूर्ण महाकाव्य-शैली में लिखी गई हैं। पी० पांडुरंग शास्त्री की 'सत्याग्रह-कथा' (म० वा०) और पूना के साठवलेकर द्वारा गांधी-विचार का सार, जिसमें भगवद्गीता की पर्याप्त प्रतिध्वनियाँ मिलती हैं (गीता गांधी जी का प्रिय ग्रंथ था) इसके उदाहरण हैं। प्राचीन महाकाव्य शैली में, स्वामी भगवदाचार्य ने अपने महाकाव्य के तीन खंड लिखे हैं: 'भारत पारिजात', 'पारिजातापहार' और 'पारिजात सौरभ'‡। 'गांधी दर्शन' की टीकाओं में डी० एस० शर्मा के 'गांधी सूत्र'* उल्लेखनीय हैं। उसमें लेखक ने प्राचीन सूत्र शैली को प्रयुक्त किया है। इसमें गांधीजी के सूत्र गांधीजी की रचनाओं और भाषणों में से अंग्रेजी टीका-युक्त संकलन के रूप में जमा किये गए हैं। गांधीजी और उनके उपदेशों पर छोटी कविताएँ कई पत्र-पत्रिकाओं में तथा काव्य-संग्रहों में बिखरी हुई हैं। उदाहरणार्थ एस० कृष्णभट्ट की म० वा० (१९४५) में गांधी-सप्ताह और डॉ० छाबड़ा की 'स्वर्णबिन्दु', जिसमें प्रयुक्त वैदिक छंद में यह

* पैरिस १९३२।
† बम्बई १९४६।
‡ द्वितीय पूर्ण संस्करण, अहमदाबाद १९५१।
* मद्रास १९३८, १९४६।

प्रारूप 'भारत राष्ट्र-संगठन'† नाम से प्रस्तुत किया। इस दिशा में दूसरा प्रयत्न (शासकीय समिति ने जब यह कार्य उठाया उससे पहले) बेंगलोर के वकील जी० कृष्णमूर्ति ने किया। उन्होंने ८-१-१९४९ तक विधान-सभा द्वारा स्वीकृत धाराओं का अनुवाद संस्कृत में किया।

स्वातंत्र्योत्तर काल की राजनैतिक घटनाएँ विशेषतः काश्मीर की नाटकीय घटनाएँ, जिनका अन्त शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी में हुआ, एन० भीमभट्ट ने 'काश्मीर-सन्धान-समुद्यम्'‡ में वर्णित की हैं।

स्वतन्त्र भारत की कई समस्याएँ संस्कृत-पत्रिकाओं में विवेचित हैं। कांग्रेस सरकार के दोष, भ्रष्टाचार, काला बाजार और दूसरी बुराइयाँ स्वदेशी विद्याओं और संस्कृति के प्रोत्साहन के अभाव पर 'संस्कृत भवितव्यम्' (२१-८-१९५४) में पी० करमलकर शास्त्री ने 'स्वतन्त्र्याभास' नामक कविता में शोक व्यक्त किया है। संस्कृत और उसकी [illegible] स्थिति एक बार-बार चर्चित विषय है। 'विज्ञान चिन्तामणि' में प्रकाशित एक नाटक का उल्लेख पहले किया जा चुका है, जिसमें संस्कृत का भविष्य एक ओर अंग्रेजी और दूसरी ओर प्रादेशिक भाषाओं को पास ला के दरसाकर लिया है। उसीके समान अन्य रचनाएँ भी लिखी गई हैं, उदाहरणार्थ प्रभुदत्त शास्त्री ने संस्कृत-हिंदी-मिश्रित शैली में 'संस्कृत वाग्विजय' नामक एकांक नाटक (दिल्ली, १९४२) लिखा। इसी कृष्णमाचार्य के 'भारती-सप्तक-जय' और उससे पुराने आर० वी० कृष्णमाचारियर के 'वाणी-विलाप' (कुम्भकोणम् १९२६) संस्कृत विद्या की दुखद दशा पर कविताएँ हैं। पत्र-पत्रिकाओं में इस प्रकार की प्रकाशित कविताएँ छपी हैं।

संस्कृत-जगत् की आँखें अब उत्सुकता से साहित्य अकादेमी और उसकी संस्कृत-परामर्शदात्री-समिति की प्रेरणा से लिखित संस्कृत ग्रंथ-दान की ओर केंद्रित हुई हैं।

† कोइंबटूर, १९४८।
‡ [illegible], १९५०-५१।

इस सर्वेक्षण से यह स्पष्ट लक्षित होगा कि सस्कृत न तो सोई है और न वह प्राचीन विचार-बन्धों को ही पुन. दुहरा रही है। परिवर्तन के युग में स्थिरयन्तर में संस्कृतज्ञ भी अपना हाथ बँटाना चाहते हैं और चारों ओर घटित घटनाओं के प्रति अपने मन की प्रतिक्रियाएँ और आकाक्षाएँ व्यक्त कर रहे हैं।

संस्कृत का भविष्य

संस्कृतज्ञ बड़े शौर्य और धैर्य से अपनी भाषा को जीवित बनाये रखने का यत्न कर रहे हैं, और उसे केवल पुरातन विद्या और अतीत की कला-कृतियों का प्राचीन भाडार बनाये रखना नहीं चाहते। वे अब यह अनुभव करने लगे हैं कि निरी प्राच्य-विद्या के शोध पर विलियम जोन्स और मैक्समूलर के कथनों की उद्धरणी या प्राचीन की स्तुति गाने मात्र से काम नहीं चल सकता, न इस प्रकार से इस भाषा को जीवित भाषा का स्तर दिया जा सकता है। उसकी पूर्वप्रतिष्ठा कायम रखने के लिए समकालीनो द्वारा उस भाषा का उपयोग और मौलिक रचना ही एक-मात्र उपाय है। पडितों के साथ-साथ अग्रेजी पढ़ा-लिखा शिक्षित संस्कृतज्ञ भी अब मुक्त रूप से सस्कृत में लिखने और बोलने लगा है। विश्वविद्यालयों में भी सस्कृत के माध्यम द्वारा परीक्षा मे उत्तर दिये जाने लगे हैं और स्नातकोत्तर (पोस्ट-ग्रेजुएट) शोध-प्रबध भी लिखे जाने लगे हैं। अब नियमित रूप से सस्कृत-परिषदें होने लग गई हैं। संस्कृत कठिन भाषा है, इस तर्क के खंडन में संस्कृत को सरल बनाने के प्रयत्न और उसे सुधारने के यत्न भी किये जा रहे हैं। गत जन-गणना में कई लोगों ने अपनी मातृभाषा संस्कृत लिखवाई है। अपने अन्य कार्यों के बीच भूतपूर्व वित्त मंत्री महोदय-जैसे व्यस्त सार्वजनिक कार्यकर्ता भी सस्कृत में मौलिक रचना की शक्ति का अभ्यास बढ़ाते जाते हैं।

संस्कृत में इस नई आत्मा की कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं साहित्य के पश्चिमी विचार और रूपों का प्रभाव, प्रादेशिक साहित्यों के साथ

इस प्रकार से इस नियम का पालन नहीं होता कि सम चरण के अन्त मे ही लघु गुरुत्व प्राप्त कर सकता है, या कि वह अगले शब्द के लिए सन्धि-विरहित रखा जाय। संस्कृत मे अधिकाधिक रचना द्वारा ही इन बातो के लिए उचित श्रुति पाई जा सकती है। ऐसे युग में जब संस्कृत शिक्षा व्यापक या गहरी नही है, तब साहित्यिक कार्य की वृद्धि से भी ऐसे व्याकरण-दोष आ जाते है, परन्तु आश्चर्य तो यही है कि अधिकतर लेखक शुद्ध लिखते हैं। एक सरल सीधी गद्य-शैली का विकास बहुत लाभदायक होगा, परन्तु मुहावरो, शैली और रचना में अप्रचलित की रु कम होनी चाहिए और वह संस्कृत भाषा की परम्परा के अनुकूल होनी चाहिए। बाण-पूर्व युग म, पुराने भाष्यो मे, आरम्भिक नाटकं और लोक-गाथा साहित्य में बड़ी सुन्दर शब्दावली और प्रसादयुक्त शैली है, जो हम पुन प्रयोग मे ला सकते है। साहित्यिक शिल्प और विधाओं में, छोटी कविता, लघुकथा, दीर्घ कथा, नाटिका, बड़े नाटक, निबन्ध-प्रबन्ध आदि-जैसे पुरातन साहित्य में भरपूर प्रातिनिधिक रचनाएँ हैं, जिनका पुन. उपयोग किया जा सकता है।

नाटक मे, अक मे प्रवेशो का विभाजन पश्चिमी नाटको के ढग पर, कोई महत्त्वपूर्ण दोष नहीं; वे सब बाते अपना लेनी चाहिएँ जो संस्कृत-नाटक के ढाँचे में अच्छी तरह जम सकती हों। संस्कृत-नाटक की शब्द-बहुलता को कम करके नया रूप देना, उसके चरित्रों को अधिक मासल और सजीव बनाना, और कथानक को अधिक कार्ययुक्त बनाना जरूरी है, फिर भी यह ध्यान म रखना चाहिए कि संस्कृत-नाटक जब उन्नति पर था, तब उसके अपने अपूर्व टेक्नीक और सिद्धान्त थे। आज जब पश्चिम में ट्रैजडी का पुराना रूप बदल गया है और इलियट-जैसे आलोचक नाटक का उद्देश्य भरत और आनन्दवर्धन के ढंग पर निरूपित करने लगे है, तब संस्कृत-लेखकों को चाहिए कि पश्चिम के घिसे-पिटे नमूनों का अनुकरण करने मे पहले थोड़ा रुकें और आत्म-निरीक्षण

करें। कलात्मक मूल्यों के सत्व भी समोकर उनका अभिमन्थन होना चाहिए। कालिदास ने जैसे आदर्श सामने रखा था वैसे 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' और शालिभद्र ने जैसे कहा था 'गुणाः पूजास्थानं' है, न कि वह स्थान जहाँ से वह वस्तु आती है। संस्कृत पुनः एक रचनात्मक भाषा के नाते जीवित और जागृत हो, तथा अपने सार्थ इतिहास में नई उपलब्धियाँ जोड़े।

सिंधी

ला० ह० अजवाणी

भाषा

सिंधी भाषा, जैसा कि डॉक्टर ट्रम्प ने अपने 'व्याकरण' (१८७२) में कहा है, "विशुद्ध संस्कृत से निकली हुई भाषा है, उत्तर भारत की अन्य देशी भाषाओं से अधिक सिंधी विदेशी तत्वों से मुक्त है।" पुराने प्राकृत वैयाकरणों के चाहे जो कारण रहे हों, जिसे वे आधुनिक सिंधी को अपभ्रंश से निकली हुई मानते हैं और प्राकृत उपभाषाओं में सबसे निचला स्थान उसे देते हैं; परन्तु जब आज हम सिंधी की उसकी प्राकृत उपभाषा-भगिनियों के साथ तुलना करते हैं तो "व्याकरण की दृष्टि से उसे हमें प्रथम स्थान देना होगा।" (भूमिका, पृष्ठ १)। विद्वान् डाक्टर ट्रम्प से भी पहले, कैप्टेन जार्ज स्टेक ने सिंधी व्याकरण लिखा है, और उन्होंने इस प्रवृत्ति को बुरा कहा है कि सिंधी भाषा "केवल मसखरों के लिए उचित भाषा है," उन्होंने लिखा है कि "भाषा वैज्ञानिक के लिए किसी भी अन्य भारतीय उपभाषा से अधिक सिंधी बहुत मनोरंजक अध्ययन का विषय है। सर्वनामों और कारकों के बिना शब्दों को प्रत्यय चिन्ह लगाना, कर्मणी प्रयोग का नियमित रूप, भावी प्रयोग की अधिकता, कारणात्मक क्रियाओं का पुनर्द्वित्व और अन्य ऐसी बातें, जो कि सिंधी सीखने वाला विद्यार्थी धीरे-धीरे विशेष रूप से जानेगा,

अन्य भारतीय भाषाओं से सिंधी की विशेष सुन्दरता प्रकट करते हैं" (भेरूमल मेहरचन्द के सिंधी भाषा पर सिंधी ग्रंथ में पृष्ठ ७७ पर उद्धृत, १९५६ का संस्करण)। सिंधी लिपि आजकल जो प्रयुक्त होती है, ब्रिटिश शासकों ने १०० वर्ष पूर्व निर्मित की थी, और यह लिपि अरबी होने के कारण यह बात छिप जाती है कि सिंधी संस्कृत से निकली है और अन्य प्राकृतों में वह सबसे पुरानी है। एक मुस्लिम प्रोफेसर, जिनका कि नाम अब्दुल करीम सडेलो है, ने हाल में प्रकाशित एक पुस्तक में सिंधी शब्दों की व्युत्पत्ति ('तहकीक लुगात सिंधी', १९५५) में यह सिद्ध किया है कि अधिकतर सिंधी शब्द संस्कृत से निकले हैं। साथ ही यह भी जानना चाहिए कि सिंधी भाषा की शब्दावली मिश्रित है और उसमें हजारों शब्द फारसी-अरबी-स्रोत वाले हैं, कुछ द्राविड़ और अन्य आर्य-पूर्व शब्द भी हैं। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने जहाँ पहले भारतीय प्रदेश में हमला किया (७१२ ई०) वह सिंध था और इस हमले के पहले भी यूनान और ईरान, सीथिया और अफगानिस्तान की टोलियाँ बराबर इस प्रदेश पर आक्रमण करती रहीं। इस प्रकार से सिंध के रक्त में कई जातियों और राष्ट्रकों का रक्त मिश्रित है। सिंधियों को छुआछूत या विदेश-यात्रा-निषेध-जैसे धार्मिक बंधनों का कभी भी पता नहीं रहा। सिंधी व्यापारियों ने सदियों तक रेगिस्तान और समुद्र पार करके ऐसे दूर-दराज की जगहों में अपने-आपको स्थापित किया, जहाँ कोई दूसरा भारतीय शायद ही कभी पाया जाता हो। यह स्वाभाविक है कि उनकी भाषा कई विदेशी स्रोतों से प्राप्त उपहारों से समृद्ध होती गई।

यह सुविदित है कि सिंधियों के इतिहास के आरम्भ-काल से सिंधी एक सुसंस्कृत जाति रही है और यह आशा की जाती है कि शायद सिंधी भाषा के साहित्य में उस सभ्यता का कुछ लेखा हो। सिंध के इतिहास और उसकी सभ्यताओं का एक विशेष रूप मोहनजोदड़ो या 'मुर्दों के टीले' की पुनरावृत्ति है। सभ्यता के कई सतहों के नीचे दबे हुए यह टीले पाये गए

¹ न पत्थर, न संगमरमर, न कविता, न चित्र-कला के रूप में इस महान्

सभ्यता के वैभव का कोई चिन्ह अब बचा नहीं था, जब कि सहसा एक राखाल दास बॅनर्जी ने कई शतकों के बाद कुछ उत्खनन किया और उस सुप्त भूतकाल के कुछ अवशेष पाए। सिन्धु नदी का प्रवाह और किनारे हमेशा बदलते-बदलते रहे हैं, और इसी कारण से सिंधी-प्रदेश में रेगिस्तान छा गया।

कविता : शाह और उनके अनुवर्त्ती

इसलिए यह कोई विचित्र बात नहीं है कि सिंधी साहित्य का पहला बड़ा नाम पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में मिलता है। अरबों के राज्य के दिनों में कुछ छुट-पुट कविता मिलती है, और 'दो दो चनेसर' नामक कहानियाँ और पद्य में पहेलियाँ, जैसे कि मामुई भविष्य-वाणियाँ आदि गाँवों में प्राचीन काल से चली आ रही हैं; परन्तु प्रथम सिंधी कविता जो लिखित रूप में मिलती है, वह काज़ी काज़न के पदों में पाई जाती है (पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में)। यह दोहा रूप में है और इसमें सिंधी कविता का वह विशेष स्वर मिलता है जो बार-बार दोहराया गया है कि 'प्रिय दर्शन के बिना' (अनन्त की साधना के बिना) बाह्य गुण, जैसे विद्वत्ता या पवित्रता इत्यादि व्यर्थ हैं। ये सब तो उन राक्षसों की तरह हैं जो कि किसी भी समय हमें पाताल में या नरक-लोक में खींचकर ले जायेंगे। काज़ी काज़न ने जोगी या योगी का बार-बार शुक्रिया अदा किया है, जिसने उसको मानसिक आलस्य से जागृत किया। और इस प्रकार से सिंधी कविता के सबसे महत्त्वपूर्ण गुण का प्रमाण मिलता चलता है—हिन्दू दर्शन और मुस्लिम विश्वासों की दो धाराओं का संगम, इसीमें से विशेषतः जिसे सूफ़ी कविता कहते हैं, वह उमड़ पड़ी।

काज़ी क़ाज़न की कविता में अभिव्यक्त यह प्रेरणा उस महान् आध्यात्मिक जागृति या आन्दोलन का परिणाम है, जिसके कारण कबीर और चैतन्य, नानक और तुकाराम-जैसी ईश्वर-प्रेमोन्मत्त आत्माएँ पैदा हुई। सिंध में यह आन्दोलन भिट के शाह अब्दुल लतीफ़ (१६८६—१७५२) के रूप में अधिक आगे बढ़ा। इनका 'रिसालो' या काव्य-ग्रन्थ

दुनिया के महान् ग्रन्थों में से एक है और सिंधी जनता की मूल्यवान साहित्यिक परम्परा का अंग है। शाह अब्दुल लतीफ के पूर्ववर्ती कई कवि थे जिनमें मुख्य थे, उनके पिता के प्रपितामह, बुलरी के शाह अब्दुल करीम (१५३८—१६२३)। इनकी दार्शनिक कविता 'रिसालों' में उनके प्रसिद्ध वंशज ने संग्रहीत की है।

शाह अब्दुल लतीफ को केवल शाह या राजा कहते हैं, वे प्रकृति के कवि, गद्यकार और रहस्यवादी सब एक साथ थे। उनके बहुत-से 'सुर' या संगीतमय अध्याय पाठक के सम्मुख सिंध और वहाँ की जनता को समुपस्थित करते हैं—महान् सिंध नदी और उसके मछुआरे, अनंत-दूर रेगिस्तान और ऊँट वाले, राजा के महल की बुर्जियाँ और पनघट, बगीचे में शाहजादी और फारस की खाड़ी को ओर वापस जाने वाला मोती बेचने वाला व्यापारी, करघे पर काम करने वाले बुनकर और अपने चक्के पर काम करने वाला कुम्हार, वर्षा से सुखी किसान और लड़ाई में कूद पड़ने वाला वीर इत्यादि का वर्णन इस कविता में है। इन दृश्यों के आस-पास सिंधी वीर-गाथाओं की नायिकाओं की कहानियाँ इस महाकवि ने बुनी हैं, ये कहानियाँ बहुत उदात्त और करुण हैं। उनके निम्न चरित्र उस महाकवि (शेक्सपीयर) के निकट उसे ले जाते हैं, जिसके बारे में यह कहा गया है कि उसकी रचनाओं में नायिकाएँ ही हैं, नायक नहीं; सस्सुई और मारुई, सुहिणी और नूरी, मोमा और मूमल। शाह की हर कहानी में एक गहरा आध्यात्मिक अर्थ भी छिपा है। शाह के रेगिस्तानी संगीत से एक प्रकार का अलौकिक स्वप्न हमारे सामने उपस्थित होता है, जिसमें सारी स्थूलता मिट जाती है। प्रेमी, प्रेमिका और प्रेम यह त्रयी ही केवल नहीं है, तीनों के मेल से एक ऐसी मूर्ति निर्मित होती है, जो कि बची रहती है, जब कि अनेक परिवर्तन होते जाते हैं। शाह के सरल शब्दों ने कुछ विदेशियों को भरमाया है और वे समझते हैं कि वे एक साधारण कवि हैं। परन्तु सिंधी अधिक अच्छी तरह जानते हैं, वे महाकवियों और ऋषियों की कोटि में आते

हैं, जिसमें तुलसीदास और सूरदास, रूमी और हाफिज़ हैं। सिंधी लोग शाह को उस अखंड कोष की तरह मानते हैं, जिससे वे निरन्तर प्रेरणा और आनन्द ग्रहण करते रहे हैं।

शाह के साथ-साथ दो और अमर सिंधी कवियों के नाम लिये जाते हैं, और ये तीनों मिलकर एक ऐसा नक्षत्र बनता है, जिसमें अधिक आलोक सिंधी साहित्याकाश में अभी तक किसी ने नहीं पाया। सचल जिसका कि उपनाम 'सरमस्त' था (१७३९–१८२६) और सामी (१७४३-१८५०), जिसका नाम उसके गुरु (स्वामी) पर रखा गया, ऐसे दो अन्य कवि हैं, जिनकी किसी भी सिंधी कवि से तुलना नहीं की जा सकती। सचल का दिमाग इकसुरिया था और उनकी विशेषता उनके गीतों में है, उन्होंने कोई कहानी नहीं कही है, कोई दृश्य हमारे सामने उपस्थित नहीं किया है, वे तो अपनी प्रेयसी की उपस्थिति से इतने प्रेमोन्मत्त थे कि वे और कोई भौतिक बात सोच नहीं सकते थे। उसके लिए व्रत, उत्सव, कर्म-काण्ड का कोई अर्थ नहीं था; जिसने परम सुन्दर की उसकी खिड़की में एक झलक पा ली, उसे प्रार्थना और अध्ययन की क्या आवश्यकता ? सचल की 'काफ़ियाँ' बहुत मधुर, ओजस्वी, अलौकिक आनन्द के रस से भरी हुई हैं, वे आज भी सब वर्गों के सिंधियों द्वारा गाई जाती हैं। सामी के 'सलोक' उस अपार शान्ति और अविद्या (अज्ञान या माया) को दूर करने के वेदांती प्रेरणा से भरे हुए हैं, उनमें आत्मा के प्रकाश को पाने की छटपटाहट है। शाह, सचल और सामी में मुख्यत. सामान्य बात यही है : आत्मा की परमात्मा के लिए टोह, किरण की सूर्य की ओर वापस यात्रा, बुदबुद का फूटना और बिन्दु और सिन्धु की एकाकारिता।

शाह, सचल और सामी के ग्रन्थों ने सिंधी कविता का जो रूप निश्चित किया वह आज तक नहीं बदला है। सिंधी कविता सूफियानी है, वह सम्प्रदायवाद से मुक्त है, अनेक में एक की उपस्थिति की चेतना से वह

लिखी हैं, इसमें सीमा के लोगों की भाषा की सहजता और मधुरता मिलती है।

यह मानना होगा कि सिंध की अधिकांश उत्तम सूफ़ी कविता ब्रिटिश पूर्व दिनों की है और उसकी विषय-वस्तु तथा कला पक्ष (दोहा रूप) हिन्दी, पंजाबी और अन्य उत्तर भारतीय भाषाओं से मिलता-जुलता है। यह सामान्यतः १८४३ में अंग्रेजों के आने के बाद कुछ बिगड़ गई। फारसी दरबारी भाषा नहीं रही। पढ़े-लिखे लोग साधारण बोल-चाल और उत्तम रचना के लिए अपनी भाषा की ओर मुड़े तथा इस तरह सिंधी में कसीदा, ग़ज़ल, मसनवी, रुबाइयाँ, मुसद्दस, मुखम्मस इत्यादि लिखे जाने लगे। अंग्रेजों की विजय के पहले कोई-कोई सिंधी कवि कभी-कभी फारसी कवियों के ढंग पर सिंधी में मर्सिये या कसीदे लिखता था, जैसे साबित अली शाह (१७४०-१८१०)। परन्तु खलीफा गुल मोहम्मद (१८०९-१८५६) जब तक अपना दीवान या गजलों का खण्ड सिंधी में नहीं लाए तब तक फारसी-छन्द-शास्त्र, पुराने दोहे और श्लोक रूपों पर हावी होते रहे। गुल को कोई बड़ा कवि नहीं कहा जा सकता, परन्तु उनके आदर्श ने सिंधी कवियों को फारसी छन्द शास्त्र और फारसी कल्पना-चित्रों की ओर मोड़ा; यहाँ तक कि सिंधी कविता फारसी मुहावरे और अन्तर्कथाओं से बोझिल हो गई। वही बुलबुल और गुलाब, वही काँटे और गुल, वही शमा और परवाना, वही लाल शराब और साक़ी, वही झरने और सुगन्धित बगीचे, वही आहू-जैसी आँखें और सरो-जैसे ऊँचे कद और यूसुफ-जुलेखा, लैला मजनूँ, शीरीं-फरहाद इत्यादि कथाएँ सिंधी भाषा को इस तरह से फारसी छन्द रूपों में ढालना या बदलना, सिंधी भाषा और साहित्य के लिए कहाँ तक उपयोगी हुआ यह सन्देह की बात है। गुल के बाद जो १०० वर्ष बीते, उनमें एक भी ऐसा कवि नहीं पैदा हुआ, जिसकी ग़ज़ल रुबाइयात, कसीदा या मुसद्दस इस स्तर की हों कि जिनकी तुलना सिंधी के मोरियो (१८७६) और सालू (१८६०)-जैसे अप्रसिद्ध कवियों की काफी, बैत, वाई और सुर से की जा सके। इन कवियों ने

ससुई-पुन्हू, राय-ड्याच, मारुई, कामसेन-कामरूप इत्यादि के बारे में गाया है। यह उल्लेखनीय है कि प्रमुख सिंधी कवि (उदाहरणार्थ बेदिल) जिसने सिंधी में फारसी ढंग की कविता लिखने की कोशिश की, वह उन चीजों के लिए नहीं पढ़े जाते; उन्हें तो सिंधी काफ़ियों या शुद्ध गीतों के लिए याद किया जाता है। सांगी (१८५१-१९२४), 'साबी' (मीरा-रामसिंह), मिर्ज़ा कलीच बेग (१८५३-१९२९), हैदरबख्श जतोई (हारी हकदार नेता), शमसुद्दीन बुलबुल (जिनकी ग़ज़ल की किताब १९११ में छपी), और लेखराज अज़ीज़ (अधिकतर अनुकरणात्मक कवि) कुछ ऐसे नाम हैं जो कि विगत १०० वर्षों की फारसी ढंग की सिंधी कविता का लेखा लेते समय सामने आते हैं। परन्तु इनमें से कोई भी कवि ऐसा नहीं है, जिसे कि महान् या लोकप्रिय कवि कहा जाय। वैसे तो सिंधी में ग़ज़लों, कसीदों इत्यादि के दीवान या संग्रह प्रकाशित करने वाले ढेरों हैं, उदाहरणार्थ, कासिम, फ़ाज़िल, वासिफ़, काज़िम और अन्य; परन्तु उनकी कविताएँ सिर्फ़ पद्य की कसरत हैं और कुछ नहीं। मिर्ज़ा कलीच बेग के 'उमर खैयाम की रुबाइयात' का अनुवाद, मनसर की मुनाजात के रूप में महान् रचना, अज़ीज़ का उर्दू कवि हाली के आदर्श पर मुनाजात और जतोई का सिंध नदी के प्रति प्रसिद्ध सम्बोधन, ये कुछ थोड़ी कविताएँ हैं जो कि फारसी के ढंग पर हैं और शायद अधिक स्थायी रूप से याद की जायेंगी। इधर पाकिस्तान में और भारत में फारसी ढंग पर हँसी और मज़ाक की हल्की कविता लिखने की ओर कवियों का रुझान रहा है। राम पंजवानी ('बागी' के लेखक) पाकिस्तान में और नारायण श्याम भारत में इस तरह की कविता लिखते हैं। मगर लेखराज अज़ीज़ का नवीन प्रकाशन 'आबशार' (झरना) जिस तरह से बेअसर साबित हुआ, उससे यह सिद्ध होता है कि फारसी कविता के कृत्रिम और अब कालिक अनुकरण का सिन्धी जन पर अच्छा असर या प्रभाव नहीं पड़ेगा।

समकालीन कविता

समकालीन सिंधी कविता में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण धारा करीब ३० वर्ष पूर्व शुरू हुई जब कि मोहनजोदड़ो की खोज और सक्खर बाँध के निर्माण के बाद नया सिंध स्थापित हुआ। सिंधी साहित्य सोसायटी और सिंधी मुस्लिम अदबी सोसायटी-जैसी साहित्यिक और सांस्कृतिक सभाएँ स्थापित हुई और विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में सिंधी पढ़ाई जाने लगी। फारसी अनुकरण के जंगल से सिंधी कविता को मुक्त करके घरेलू बोल-चाल की स्वाभाविक सिंधी भाषा की ओर मोड़ने का श्रेय एक गरीब स्कूल मास्टर किशनचन्द बेवस (मृत्यु १९४७) को है, जिन्होंने गरीबों की गाथा गाई, प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन किया और बच्चों के लिए सरल गीत लिखे। उनकी पुस्तकों के नाम 'शीरीं शेर', 'गंगाजूँ लहरूँ' इत्यादि हैं। चाहे बेवस में कला पक्ष की विशेषताएँ बहुत उच्च न हों और उन्होंने सिंधी परम्परित छन्द को फारसी छन्द-रूपों के साथ मिला दिया हो, फिर भी उनकी रचना सदा ताजी, मौलिक और विशेषता-पूर्ण है। उनकी बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने एक कवियों का दल स्थापित किया—हरिदिलगीर ('कोड या सीप' के लेखक), हूंदराज दुखायल ('संगीत फूल' के लेखक), राम पंजवाणी, गोविंद भाटिया और अन्य। इन्होंने अपने गुरु की कविताओं को एक लोकप्रिय संस्करण के रूप में प्रस्तुत किया, (इस प्रकाशन की भूमिका लिखने का सौभाग्य प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को मिला है)। इन शिष्यों ने गुरु की उदार परम्परा को आगे बढ़ाया।

समकालीन सिंधी कविता का दूसरा बड़ा गुण यह है कि नवीन आन्दोलन में विद्यार्थी, अध्यापक और प्रोफेसर सब भाग ले रहे हैं। एन० बी० थधाणी ने 'भगवत् गीता' का (१९२३) में सिंधी पद्य में अनुवाद किया, यह पद्य तो फारसी बहर पर है, किन्तु भाषा संस्कृत धर्म-ग्रन्थों से ली है। ऐसे ही गीता के कुछ संस्मरणीय अनुवाद मेघराज

ससुई-पुन्हू, राय-ड्याच, मारुई, कामसेन-कामरूप इत्यादि के बारे में गाया है। यह उल्लेखनीय है कि प्रमुख सिंधी कवि (उदाहरणार्थ बेदिल) जिसने सिंधी में फारसी ढंग की कविता लिखने की कोशिश की, वह उन चीजों के लिए नहीं पढ़े जाते; उन्हें तो सिंधी काफ़ियों या शुद्ध दोहों के लिए याद किया जाता है। सांगी (१८५१-१९२४), 'साँगी' (लीला-रामसिंह), मिर्जा कलीच बेग (१८५३-१९२९), हैदरबख्श जतोई (हारी हकदार नेता), शमसुद्दीन बुलबुल (जिनकी ग़ज़ल की किताब १९११ में छपी), और लेखराज अज़ीज़ (अधिकतर अनुकरणात्मक कवि) कुछ ऐसे नाम हैं जो कि विगत १०० वर्षों की फारसी ढंग की सिंधी कविता का लेखा लेते समय सामने आते हैं। परन्तु इनमें से कोई भी कवि ऐसा नहीं है, जिसे कि महान् या लोकप्रिय कवि कहा जाय। वैसे तो सिंधी में ग़ज़लों, कसीदों इत्यादि के दीवान या संग्रह प्रकाशित करने वाले दर्जनों हैं, उदाहरणार्थ, कासिम, फ़ाज़िल, वासिफ़, काज़िम और अन्य; परन्तु उनकी कविताएँ सिर्फ पद्य की कसरत हैं और कुछ नहीं। मिर्जा कलीच बेग के 'उमर खैयाम की रुबाइयात' का अनुवाद, अयाज़ की मुसद्दस के रूप में महान् रचना, अज़ीज़ का उर्दू कवि हाली के आदर्श पर मुसद्दस और जतोई का सिंध नदी के प्रति प्रसिद्ध सम्बोधन, ये कुछ थोड़ी कविताएँ हैं जो कि फारसी के ढंग पर हैं और शायद अधिक स्थायी रूप से याद की जायेंगी। इधर पाकिस्तान में और भारत में फारसी ढंग पर रुबाई और नज़्म की लम्बी कविता लिखने की ओर कवियों का रुझान रहा है। शेख अयाज़ ('बागी' के लेखक) पाकिस्तान में और परसराम ज़िया भारत में इस तरह की कविता लिखते हैं। अगर लेखराज अज़ीज़ का नवीन प्रकाशन 'आबशार' (झरना) जिस तरह से बेधड़क स्वीकृत हुआ, उससे यह सिद्ध होता है कि फारसी कविता के कृत्रिम और कष्टकर अनुकरण का सिंधी मन पर अच्छा असर या प्रभाव नहीं पड़ेगा।

समकालीन कविता

समकालीन सिंधी कविता में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण धारा करीब ३० वर्ष पूर्व शुरू हुई जब कि मोहनजोदड़ो की खोज और सक्खर बाँध के निर्माण के बाद नया सिंध स्थापित हुआ। सिंधी साहित्य सोसायटी और सिंधी मुस्लिम अदबी सोसायटी-जैसी साहित्यिक और सांस्कृतिक सभाएँ स्थापित हुईं और विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में सिंधी पढ़ाई जाने लगी। फारसी अनुकरण के जंगल से सिंधी कविता को मुक्त करके घरेलू बोल-चाल की स्वाभाविक सिंधी भाषा की ओर मोड़ने का श्रेय एक गरीब स्कूल मास्टर किशनचन्द बेवस (मृत्यु १९४७) को है, जिन्होंने गरीबों की गाथा गाई, प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन किया और बच्चों के लिए सरल गीत लिखे। उनकी पुस्तकों के नाम 'शीरीं शेर', 'गंगाजूँ लहरूं' इत्यादि हैं। चाहे बेवस में कला पक्ष की विशेषताएँ बहुत उच्च न हों और उन्होंने सिंधी परम्परित छन्द को फारसी छन्द-रूपों के साथ मिला दिया हो, फिर भी उनकी रचना सदा ताज़ी, मौलिक और विशेषता-पूर्ण है। उनकी बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने एक कवियों का दल स्थापित किया—हरिदिलगीर ('कोड ऐं सीप' के लेखक), हूंदराज दुखायल ('संगीत फूल' के लेखक), राम पंजवाणी, गोविंद भाटिया और अन्य। इन्होंने अपने गुरु की कविताओं का एक लोकप्रिय संस्करण के रूप में प्रस्तुत किया, (इस प्रकाशन की भूमिका लिखने का सौभाग्य प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को मिला है)। इन शिष्यों ने गुरु की उदार परम्परा को आगे बढ़ाया।

समकालीन सिंधी कविता का दूसरा बड़ा गुण यह है कि नवीन आन्दोलन में विद्यार्थी, अध्यापक और प्रोफेसर सब भाग ले रहे हैं। एन० बी० वधाणी ने 'भगवत् गीता' का (१९२३) में सिंधी पद्य में अनुवाद किया, यह पद्य तो फारसी बहर पर है, किन्तु भाषा संस्कृत धर्म-ग्रन्थों से ली है। ऐसे ही गीता के कुछ संस्मरणीय अनुवाद मेघराज

कलवाणी, मूलचन्द लाला और चैनराय बूलचन्द ने किये हैं और अन्तिम उल्लेख्य अनुवाद मुक्तछन्द में टी० एल० वासवाणी का है। हैदरबख्श जतोई ने इक़बाल के ढंग पर 'शिकवा' लिखा, जिसमे कि सनातनियों में बड़ा तूफान उठ खड़ा हुआ, मगर उनकी 'दरियाये-सिन्ध को खिताब' (जिसका उल्लेख पहले हो चुका है) और १९४७ मे 'आज़ादी-ए-क़ौम' नामक कृतियाँ साहित्य की स्थायी निधि बनी रहेंगी। जब बहुत-सी नज़्में लोग भूल जायेंगे तब भी वह किताबें याद की जायेंगी। जतोई ने गुम और सांगी की धारा के अनुयायी के नाते साहित्य में आरम्भ किया, किन्तु राजनीति और साहित्य दोनों क्षेत्रों में वे क्रान्तिकारी बन गए। नई सिंधी कविता में बेवस के बाद उनका दूसरा नाम आता है। नये युग के दूसरे कवि, जिनका कि नाम उल्लेखनीय है, ढंवनदास आज़ाद हैं जिन्होने अर्नोल्ड के 'लाइट आफ एशिया' का 'पूरब संदेश' (१९३७) नाम से अनुवाद किया। सिंधी कविता-प्रेमियो में यह अनुवाद बहुत लोकप्रिय है।

सिंधी कविता की नई धारा न तो शाह, सचल और सामी के परम्परित पद्य का अनुकरण करने की है और न सूफी परम्परा वाली है, फारसी छन्द-शास्त्र और कल्पना-चित्रों से विवश होकर या पंडिताऊ ढंग से चिपटे रहने की भी नही है, परन्तु मुक्त-छन्द का ऐसा रास्ता, वस्तुतः यूरोपीय साहित्य के आधार पर ग्रहण करने की है। वह लेखक जिसने इस नई धारा को शुरू किया, सिंधी साहित्य के इतिहास में सबसे बड़ा लेखक है। दयाराम गिदूमल (१८५७—१९२७) विद्वान् सन्त थे, उन्होंने करीब ३० वर्ष पूर्व अपनी दार्शनिक कविता का बड़ा ग्रंथ ('मन-जा-चाबूक' मन के चाबुक) प्रकाशित किया—इन कविताओं के मुक्त रूप और आशय ने सिंधी तरुणों में विचारवान और उदीयमान लोगों की रुचि में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया। सिंधी में मुक्त छन्द को लोकप्रिय बनाने का दूसरा प्रयत्न कई प्रकार के लेखकों ने कई तरह से छन्दों और गद्य-काव्यों का प्रयोग करके किया। इन अनुवादकों

में मंघाराम मलकाणी, लालचन्द ग्रमरडिनोमल, ग्रर्जन हसराणी ग्रौर हरीराम मारीवाला हैं (जिनके 'फ़्लल चूंड' या टगौर के 'फ्रूट गेदरिंग' का ग्रनुवाद गत वर्ष प्रकाशित हुग्रा)। दूसरे भारतीय कवियों के ग्रनुवाद (उदाहरणार्थ द्यो मंधारमाणी का नजरुल इस्लाम का ग्रनुवाद) ने भी मुक्त छन्द की प्रवृत्ति को ग्रागे बढ़ाया। दो सच्चे कवि इस मुक्त छन्द की धारा में पैदा हुए—नारायण श्याम, 'माक-ग्रा-फुड़ा'(ग्रोस-कण) के प्राशिक लेखक ग्रौर सिंधी में सानेट के लेखक; ग्रौर ग्रय्याज, जो कि बहुमुखी प्रतिभा वाले लेखक हैं ग्रौर इस समय जीवित सिंधी कवियों में सबसे ग्रधिक प्रसिद्ध हैं। दूसरे ग्रौर नाम ग्रचल ग्रौर राही, गोरधन महबूबाणी ग्रौर किशनचंद फ़ानी, 'गुमनाम' (बलदेव गाजरिया), मोती प्रकाश, ग्रर्जन शाद (हिंदुस्तान में) ग्रौर वाई० के० शेख, बशीर मोरियाणी बुर-द-सिंधी, ग्रब्दुल करीम गदाई (पाकिस्तान में) हैं। समकालीन सिंधी कविता में दो बड़ी प्रभावशाली कविताएँ ग्रय्याज ने लिखी हैं, शाह के प्रति उनका सम्बोधन है, जिससे कि वर्ड्सवर्थ की कविता 'मिल्टन! तुम यदि ग्राज जीवित होते' की याद हो ग्राती है, दूसरी किशनचंद फ़ानी की 'ग्रो मेरे वतन ! मेरे वतन', नामक ग्रविस्मरणीय रचना है। भारत के विभाजन के समय उसे ग्रपने वतन को छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा; उन भावनाओं की ग्रभिव्यंजना इस कविता में दी गई है। टी० एल० वासवाणी के सिंधी मुक्त-छन्द में दूर-दूर तक पहुँचने वाले उपदेश ने सिंधी मन को फ़ारसी छन्द-शास्त्र ग्रौर कल्पना-चित्रों की दासता से मुक्त किया है। तोलाराम बालाणी नामक एक लेखक ने ग्रपने पद्य ग्रौर गद्य में बड़ी ग्राशाएँ पैदा की थीं, परन्तु उनकी ग्रकाल-मृत्यु हो गई।

नाटक

ग्रन्य देशों में कविता ग्रौर नाटक ग्रविच्छिन्न साथ-साथ चलते हैं। सिंध में कविता बहुत ग्रागे बढ़ गई ग्रौर नाटक पिछड़े रहे। सिंधी लोक-नृत्य (मग्रत) ने भी कोई नाटक नहीं निर्मित किया। केवल दो

नाटक-क्लब अब तक सिंध में चलते रहे, एक डी० जे० सिंध कालेज अमेच्योर ड्रामेटिक सोसाइटी, जो कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में शुरू हुई और दूसरा, 'रवीन्द्रनाथ लिटरेरी एण्ड ड्रामेटिक क्लब', जो १६२० के करीब शुरू हुआ। पहली नाटक-मंडली ने शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवाद (जिनमे से मिर्ज़ा कलीच बेग का 'शाह इलिया' या 'किंग लीयर' सबसे अच्छा था) और कुछ चुने हुए नाटक खेले, जिनमें से सेवासिंह अजवाणी का 'कनिष्ठ' (१६०२), जो कि शेरेडन के 'पिज़ारो' पर आधारित था, बहुत अच्छा था। कुछ नाटक रामायण और महाभारत से लिये गए (उदाहरणार्थ लीलारामसिंह का 'द्रौपदी', 'रामायण', और 'हरिश्चन्द्र')। आर० एस० डी० सी० का सबसे सफल नाटक था 'उमर-मारुई', यह नाटक लालचन्द अमर डिनोमल ने लिखा था, इसकी कहानी और कविता के अंश शाह से लिये गए थे। इस क्लब की सबसे बड़ी खोज थी के० एम० दरयानी, जिन्होंने 'मुल्क-जा-मुश्क़र' (इब्सन के 'पिलर्स आफ सोसाइटी') और 'बुख-जो-शिकार' (भूख के शिकार) लिखा। मंघाराम मलकाणी ने कई सामाजिक नाटक लिखे और एकांकी लिखा जाना उनसे शुरू हुआ (पांच छोटे नाटक)। वे ही आज के जीवित लेखकों में सबसे महत्त्वपूर्ण नाटककार हैं। शिकारपुरी ड्रामेटिक क्लब ने सिंधी में 'कामदू' (क्रिटेन्डर्स) नामक कई नाटक जेठानन्द नागराणी द्वारा लिखित किए, परन्तु उत्तमाणी के 'बदनसीब थरी' (अभागा थरी)-जैसे नाटक प्रहसनों से अधिक कुछ नहीं हैं।

आज के अध्ययन-कक्ष में जिन नाटकों का आनन्द उठाया जा सकता है, ऐसे साहित्य-रत्न नाटकों में निस्सन्देह दो सर्वोत्तम नाटक हैं, मिर्ज़ा कलीच बेग का 'खुर्शीद', जो कि चमत्कार नाटक है, उसके लेख बहुत सुन्दर हैं, जो १८७० में लिखा गया था और लीलाराम [illegible] 'हृदय [illegible]' (१९३६), [illegible] की 'गुड [illegible]' की [illegible] कहानी को नई और [illegible] का परिवर्तन उसमें किया गया है। [illegible] निरूपण के '[illegible]' के [illegible] और [illegible] [illegible]

दली' (१८८८) का अनुवाद, जिज्ञासु पाठकों के लिए ही महत्त्वपूर्ण है। राम पंजवाणी का 'मूमल राणो' एक उत्तम नाटक है। पढ़ने में और मंच के लिए वह खासा अच्छा है। कल्याण आडवाणी के 'शाकुन्तल' के अनुवाद के बारे में या आमूदोमल गिदवाणी के 'रघुवंश' के पद्य अनुवाद के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती।

गद्य

गए १०० वर्षों के सिंधी गद्य ने बड़ी प्रगति की है। पहले 'जाम अब्बो ज़मींदार' की देहाती कहानियाँ मिलती हैं (१८५३)–(गुलाम हुसैन द्वारा लिखित) और सादी के 'गुलिस्ताँ' की नकल पाई जाती है, जैसे कि कैवलराम सलामतराय की 'सूखरी' और गुलमालाओं में, 'अरेबियन नाइट्स' या अलिफ लैला के मनोरंजन के व्यंग-चित्र, आ अखुंद लुत्फल्लाह के 'गुल कन्द' (१८८२) में मिलते हैं, सिंधी गद्य इस प्रकार से अनुवाद से समृद्ध होता गया। १८५७-१९०७ की पहली आधी शती अनुवाद का युग है, इस युग को कई व्याकरण-शास्त्रियों और कोषकारों ने सहायता दी, जैसे अंग्रेजी में ट्रम्प, शर्ट, स्टेक और ग्रियर्सन, उधाराम थांवरदास (व्याकरण) और परमानंद मेवाराम (बड़ा कोष)। ये दोनों ग्रन्थ सिंधी में हैं। इस काल के अनुवादकों में दो बड़े नाम हैं, एक तो मिर्ज़ा कलीच बेग, जिन्होंने अपनी महान् विश्व-कोष-जैसी रचना का आरम्भ बेकन के 'एसेज़' (मिकालात अल हिकमत इसका नाम था) के अनुवाद से १८७७ में शुरू किया, इसके बाद 'बाबरनामा' का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित हुआ और गज़ाली के 'किमियाई-इसादत'-जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थों का सिंधी में अनुवाद प्रकाशित हुआ। कौड़ोमल चंदनमल (१८४४-१९१६) ने पहले स्त्रियों की शिक्षा के विषय में एक पुस्तिका 'पक्को पहु' (१८७२) प्रकाशित की, फिर बच्चों के लिए कई किताबों के अनुवाद किये, जैसे 'कोलम्बस का इतिहास', 'आर्य नारी चरित्र', और 'राधारानी' (बंकिम का)। एक अनु-

याद जो सबसे अधिक लोकप्रिय था वह था जानसन का 'रासेलास'। यह अनुवाद नवलराय और उधाराम(१८७०) ने किया था; इस अनुवाद से और अनुवाद आगे होने लगे, जैसे कि स्काट का 'टॅलिस्मन' नवलराय के भाई हीरानन्द ने प्रस्तुत किया। एक और अनुवादक, जो कि अनुवादक से अधिक मौलिक लेखक थे, दयाराम गिदूमल (१८५७-१९२७) थे, (योग दर्शन, जप साहिब, गीता-जो-सार इत्यादि)। जिन लोगों ने पाठ्य-ग्रन्थों का अनुवाद किया (नन्दीराम, नारायण जगन्नाथ, मूल-चन्द कोडूमल इत्यादि) केवल वह नाम जो आज तक चला आ रहा है मिर्जा कलीच बेग और कौडोमल चंदनमल के साथ ही है मूलचन्द कोडूमल का, उन्होंने 'इंगलैंड को इतिहास' का तर्जुमा उत्तम गद्य-शैली में किया। वासुमल जैरामदास ने तुलसीदास की रामायण का और मिसिर जैकिशन ने महाभारत के टुकड़ों का अनुवाद करने का महत्वा-कांक्षापूर्ण प्रयत्न किया।

सिंधी साहित्य के सिंहावलोकन में चार व्यक्तियों का उल्लेख चार स्तम्भों की तरह करना चाहिए, जिस पर सिंधी गद्य की इमारत खड़ी है। इनमें से तीन नाम पहले ही आ चुके हैं, वे थे मिर्जा कलीच बेग, कौडोमल चंदनमल और दयाराम गिदूमल—चौथे का नाम अभी नहीं दिया गया, वे थे परमानन्द मेवाराम, जो कि अपने निबन्धों और नैतिक रचनाओं के लिए सिंधी के एडीसन माने जाते हैं। मिर्जा साहिब (१८५३—१९२९) एक अनुवादक थे और कई क्षेत्रों में अपणी और मौलिक लेखक भी थे। उनका 'जीनत' (१८९०) सिंधी भाषा का पहला मौलिक उपन्यास है, प्रीतमदास के 'अजीब भेट' (१८९२) के साथ-साथ इस उपन्यास को यह श्रेय है कि उपन्यासों में चरित्र निर्माण और सिंधी जीवन की झाँकी इनमें दी गई है। शाह की रचनाओं का शब्द-क्रम विद्वत्ता और समालोचना की दृष्टि से सिंधी में पहला बड़ा काम था। इन्होंने करीब ३०० किताबें ज्योतिष, संगी, प्राणि-शास्त्र और स्त्रियों के विषय में लिखीं। कौडोमल चंदनमल की सिंधी साहित्य

को बड़ी देन उनका 'सामीआ-इलोक' का १८८५ में सम्पादित पाठशुद्ध संस्करण है। सारे उपदेश शुद्ध सिंधी में दिये गए हैं। दयाराम गिदूमल के गद्य ने मिर्ज़ा साहब के उमरखैयाम के अनुवाद और कौडोमल के 'सामि-जा-इलोक' की भूमिकाएँ प्रस्तुत की। सिंधी गद्य की यह सर्वोच्च उड़ान थी। क्योंकि इनकी भाषा ओजस्वी और सूक्ष्म है। परमानन्द मेवाराम ने 'जोत', सिंध की साहित्यिक पत्रिका, के सम्पादन-काल में जो कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्ष से बीसवीं शताब्दी के मध्य तक चलता रहा, सिंधी भाषी जनता को दो बहुत अच्छे निबन्ध-संग्रह दिए, उनमें से पहला 'गुल फुल' और दूसरा 'विचार' नामक संग्रह था, जो कि प्रस्तुत लेखक के डी० जे० सिंध कालेज मिस्लेनी में से चुना गया था। परमानन्द मेवाराम का 'इमिटेशन आफ क्राइस्ट' (क्राइस्ट-जी-पैरवी) का अनुवाद गद्य की एक उत्तम पुस्तक है और उनकी सिंधी भाषा की डिक्शनरी (१९१०) अभी भी सर्वोत्तम है। परमानन्द मेवाराम दूसरे उत्तम निबन्धकार को भी प्रकाश में लाए, जिनका नाम वाधूमल गंगाराम था, उन्होंने सामाजिक विषयों पर निबन्ध लिखे।

१९०७—५७ के पचास साल सिंधी गद्य में तेज विकास के वर्ष हैं, विशेषतः अन्तिम १० वर्ष। इन पचास वर्षों में १९०७—२७ के २० वर्ष तैयारी के वर्ष कहे जाने चाहिएँ और बाद के ३० वर्ष पूर्ति के या समकालीन सिंधी साहित्य के युग के वर्ष माने जाते हैं। ये वर्ष नए सिंध के उत्थान के साथ-साथ चलते हैं। तैयारी के वर्षों में सिंधी गद्य के तीन शैलीकारों के नाम सामने आते हैं, ये तीनों फारसी, इस्लाम और सूफ़ी मत के विद्वान् थे और सिंध के प्रेमी थे। निरमलदास फतेहचन्द ने कई विद्वान् मुसलमानों को अपने फारसी, अरबी और इस्लाम के ज्ञान से चकित कर दिया, 'आईना' (पत्रिका) में अपनी रचनाओं, और 'सरोजनी' और 'दनूराई जो नगरी' नामक कहानियों द्वारा सिंधी के वे उच्चकोटि के लेखक हैं, जिनको समझने के लिए डिक्शनरी की सहायता ज़रूरी है। उनके पुत्र सोभराज अपने पिता के हल्के पूरक हैं। इस

सदारंगाणी (नादिम) और दयो मंधारमाणी-जैसे हिन्दू विद्वानों ने इन्हीं निर्मलदास की परम्परा को आगे बढ़ाया। फतेह मोहम्मद सेवहाणी मैंद्य और विद्वान् थे, 'आफताब-इ-अदब' (साहित्य का सूर्य), 'मजुनफजन और पंजो' और 'सीरत-ए-नबी' नामक ग्रन्थों के वे लेखक हैं, मुस्लिम आलोचनात्मक विद्वत्परम्परा के वे अग्रणी हैं। १९३१ में मुस्लिम अदबी सोसाइटी कायम हुई, जिसमें यह परम्परा आगे बढ़ी जोयो और नबीबख्श बलूच, उसमान अंसारी और दीन मोहम्मद वफाई-जैसे विद्वानों का मुस्लिम अदबी बोर्ड बना और यह काम आगे बढ़ा। फतेह मोहम्मद सेवहाणी हिन्दू-मुस्लिम-एकता के बड़े ईमानदार कार्यकर्ता थे। साहित्य और संस्कृत के क्षेत्र में, उनका काम महत्त्वपूर्ण है। उनका गद्य प्रवाहपूर्ण और मार्मिक है।

सिंधी गद्य के इतिहास में इससे भी बड़ा नाम जो कि सिद्ध मिर्जा कलीच बेग से महानता में कम है, होतचन्द गुरबखशाणी का है, जिनका शाह का संस्करण (१९२४) यद्यपि अधूरा है, फिर भी बाद के सब लेखकों के लिए एक आदर्श उपस्थित करता है। आगा सूफी का संस्करण 'सचल सरमस्त' बीसवीं शती के चौथे दशक में, दाउदपोटा का संस्करण, शाह अब्दुलकरीम (१९३७), मुस्लिम अदब सोसाइटी का संस्करण 'गूल' (१९३३), शाहवाणी का संस्करण 'शाह' (१९५०), मुमवी का संस्करण 'बेंदिल' का (१९५४), नागराणी का संस्करण 'सामी' (१९५६), ये सब गुरबखशाणी के महान् कार्य की पूर्ति करने वाले ग्रंथ हैं। हरेक में गद्य भूमिका गुरबखशाणी के ढंग की है। गुरुबखशाणी का गद्य जो कि 'नूरजहाँ और शाह' की भूमिका (मुकद्दमाए लतीफी) और 'लवारी-जा-लाल' में है, यह गद्य फारसी मुहावरों से बोझल होने पर भी सिंधी लेखकों के लिए एक आदर्श है।

समकालीन गद्य

समकालीन सिंधी गद्य तीन बड़े लेखकों के प्रवाह से बढ़ा, तीन

साल पहले, जब कि, ऊपर जिन चार बड़े लेखकों का उल्लेख है वे सब अपना कार्य पूरा कर चुके थे (मिर्जा १६२६ में मरे, दयाराम १६२७ में और कौडोमल १६१६ में मरे)। सिंधी गद्य को हमारे युग में कायम रखने, प्रतिष्ठित करने और लोकप्रिय बनाने का सारा श्रेय जेठमल परसराम (मृत्यु १६४८), भेरूमल मेहेरचन्द (मृत्यु १६५०) और लालचन्द अमरडिनोमल (मृत्यु १६५४) को है। जेठमल परसराम थियोसफी, सूफी मत और हिंदू-मुसलमान-एकता के आजीवन प्रचारक रहे। शेक्सपीयर के सानेटों में भी उन्हें सूफी-धर्म दिखाई दिया! वे सिंधी के सबसे बड़े व सबसे पहले सिंधी पत्रों में लेख लिखने वाले और शाह के रहस्य के भाष्यकार थे (देखिये शाह की कहानियाँ)। उनके उत्साह से सिंध अपने रहस्यवादियों, सन्तों और सूफियों के प्रति अधिक जागरूक हुआ। उनके व्यक्तित्व का एक दूसरा मजेदार पहलू भी था, जो उन्होंने अज्ञात नाम से, 'चमचाचोर की कहानियाँ' लिखकर व्यक्त किया, इन कहानियों में अमीरों के लोभ और लालच का मजाक उड़ाया गया है। सिंधी साहित्य में जेठमल पहले सोशलिस्ट थे, फिर भेरूमल मेहेरचन्द सिंधी के व्याकरणकार और इतिहासकार थे। उनकी आलोचनात्मक दृष्टि बहुत सही थी, उनमें कार्य करने की विपुल शक्ति थी और भाषा का प्रेम था। उन्होंने 'सोहर मजमू' नाम से सिंधी कविता का पहला संग्रह सम्पादित किया, शाह की भाषा पर लिखा, 'आनन्दगुल-हिजर' नामक उपन्यास लिखा, कई पुस्तकों के अनुवाद किये, जिनमें जासूसी कहानियाँ भी हैं, और अपने जीवन की खोजों और अन्वेषणों को 'सिंधी व्याकरण', 'सिंधी भाषा का इतिहास' (१६४१) और 'सिंध के हिंदुओं का इतिहास' (१६४७) जैसे अधिकारपूर्ण ग्रंथों में समाप्त किया। भेरूमल मेहेरचन्द की शैली में कोई विशेषता नहीं थी, वे सहज भाव से लिखते थे, उनकी रचनाओं का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कई तरुण लेखकों पर प्रभाव पड़ा। उदाहरणार्थ सिंधी गद्य का महान् श्रेष्ठ ग्रंथ, 'सैरे-कोहिस्तान' (१६४२ कोहिस्तान की सैर) जो मम्पा मखाणी ने लिखा, वह भेरूमल मेहेरचन्द

का 'सिंध-जो-सैलानी' का परिणाम है। और चेतन मारीवाला जैसे ऐतिहासिक विषयों पर लिखने वाले (तारीखी मजमून, सिंध-जो-इतिहास); मोहम्मद सिद्दीक मेमण और लुत्फुल्लाह बदवी जैसे सिंधी कविता या साहित्य का इतिहास लिखने वाले; 'शाह', 'सचल' और 'सामी' पर पुस्तक लिखने वाले कल्याण आडवाणी जैसे जीवनी और समालोचना के लेखक; और गांधीजी, नेहरू इत्यादि की जीवनियाँ लिखने वाले लेखकों में भेरूमल मेहेरचन्द और गुरबख्शाणी से भी बहुत कुछ सीखा है। भेरूमल मेहेरचन्द के पुत्र प्रिभदास ने उनके अनुवाद 'सिंदबाद जहाज़ी' (मालिक-जो-सफर) में अपने पिता की गद्य-शैली को अच्छी तरह पकड़ा है।

लालचन्द अमरडिनोमल भारत और पाकिस्तान में सिंधी साहित्य के सबसे बड़े बुजुर्ग माने जाते हैं। १९५४ में उनकी मृत्यु पर सब सिंधियों को बहुत शोक हुआ। सिंध और सिंधी साहित्य के वे प्रतिभावान प्रेमी थे। उन्होंने अपना साहित्य-कार्य हजरत मोहम्मद की जीवनी से शुरू किया। फिर शाह की आलोचना, हूर डाकुओं की कहानी, और नई योजना पर 'चौथ-जो-चण्ड्र' (चौथ का चन्द्रमा) नामक एक साहसपूर्ण उपन्यास लिखा। १९१४ में सिंधी साहित्य सोसाइटी, तारनानन्द हालोमल के साथ साथ स्थापित करके सिंधी पाठकों की रुचि को उन्होंने बदल दिया। जब वे लिखने लगे, तब सिंधी लोग या तो यूरोपीय साहित्य से या बंगाली साहित्य से प्रभावित थे और सिंधी कथानक 'गुलबकावली' (१८८१) और 'मुमताज दमसाज' के ढंग की पुरानी कहानी या 'चन्द्रकान्ता'-जैसे उपन्यास, जिनमें तहखाने और जादू-ऐयारी जिनकी बातें दिलचस्प होती थीं, प्रचलित थे। इन्होंने जनता की रुचि को परिष्कृत किया और घरेलू विषयों पर घरेलू भाषा में सिंधी कहानियाँ लिखी जाने लगीं। वे इस क्षेत्र के निस्सन्देह अग्रणी थे, उनका उदाहरण सिंधी लेखकों ने अनुसरित किया; जैसे आसानन्द मामतोरा ('शायर' के लेखक, उथल-पुथल कर देने वाले परिच्छेदों का एक रोमांटिक उपन्यास).

शेवक भोजराज ('आशीर्वाद' और 'दादा श्याम' के लेखक, आत्मकथा-सम्बन्धी उपन्यास), नारायण भम्भानी (सामाजिक उपन्यासों 'विधवा' आदि के लेखक), राम पंजवाणी ('पद्मा', 'कैदी' और कलात्मक प्रकृति और भाव-चैतन्ययुक्त मनुष्यों के कुछ रेखा-चित्रों के लेखक) और मंघाराम मलकाणी (जिन्होंने लालचन्द अमरडिनोमल के 'सदा गुलाब' में से टैगोर की शैली के लेखन की लीला ग्रहण की)। उनका प्रभाव नारायणदास मलकाणी ('अनारदाणा' या अनार के बीज के लेखक) और तीरथ वसन्त ('चिणगूं' या चिनगारी के लेखक और जेठमल परसराम के साथी)-जैसे निबन्धकारों पर भी है।

लालचन्द अमरडिनोमल का नाम समकालीन सिंधी साहित्य के अन्तिम २० वर्षों को इस दशक से जोड़ता है। यह दशक सिंधी गद्य के इतिहास में कई दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है। १९४७ में भारत का विभाजन हुआ, ऐसा लगा कि सिंधी साहित्य का अब कठावशेष हो गया, हिन्दू शरणार्थी बन गए, सिंध के मुस्लिमों में शरणार्थी आ गए। परन्तु एक बड़ी आश्चर्यजनक बात हुई, तरुण लोग, जिन्हें लिखने का कोई अनुभव नहीं था, पत्र निकालने लगे। साहित्यिक समाज बने। अपनी भाषा और साहित्य के प्रति उनमें आश्चर्यजनक उत्साह पाया गया। सिंध में और 'हिंदुस्तान' में साहित्य की रचना गत १० वर्षों में बहुत ही विपुल है। सिंध में सिंधी भाषा और साहित्य की शोध का आन्दोलन चल पड़ा, जिसका कि उत्तम स्मारक साहित्यिक पत्रिका 'मेहराण' है, और भारत में सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक उपन्यास एवं कहानियाँ जोरों से चल रही हैं। ये कहानियाँ और उपन्यास पत्र-पत्रिकाओं में छपती हैं, जिनकी संख्या बहुत बढ़ गई है। एक सिंधी साप्ताहिक पत्रिका 'हिंदवासी' भारत में है, जिसके पढ़ने वालों की संख्या पंद्रह हजार से ऊपर है।

इस दशक की साहित्यिक हलचलों की एक विशेषता स्त्रियों द्वारा रचना है। भारत-विभाजन के पहले सारे साहित्यिक क्षेत्र में एक सिंधी

स्त्री साहित्यिक के नाते प्रसिद्ध थीं गुली सदारंगाणी, जिन्होंने टैगोर के 'गोरा' का अनुवाद किया था और एक उपन्यास 'इत्तहाद' लिखा था, जिसकी बड़ी आलोचना हुई थी (क्योंकि उसमें एक हिन्दू लड़की मुसलमान के साथ शादी करती है, यह दिखाया गया है)। अब तो स्त्रियाँ साहित्य के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ गई हैं, इस समय सिंधी पत्रिकाओं में सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्यिक एक स्त्री है पोपटी हीरानन्दाणी, और एक-दो सफल उपन्यासकारों में एक स्त्री है सुन्दरी उत्तमचन्दाणी; जो कि 'कोमान' (कहानियों) की लेखिका हैं, 'किरन्दर देवारियूँ' (गिरती दीवारें) एक सामाजिक उपन्यास उन्होंने लिखा है जिसमें मनोवैज्ञानिक ढंग से सिंधी जीवन का ज्ञान और सहज भाषा-शैली इतनी अच्छी है कि अकेले गोविन्द माल्ही को छोड़कर अन्य सब सिंधी गद्य-कथा-लेखकों से श्रेष्ठ मानी जायेंगी। गोविन्द माल्ही इस समय सिंधी साहित्य के सबसे सशक्त व्यक्तित्व हैं। उनका 'पखियड़ा वलर खाँ विछुड़िया' (झुण्ड से बिछड़े हुए पक्षी) सिंधी शरणार्थियों पर एक सप्राण रचना है, परन्तु उनके उपन्यासों की सूची 'आँसू' से 'लोक आहे बोक' (१८५१) तक ग्रन्थों की एक बड़ी सूची है। कहानी-लेखकों में मानन्द गोलाणी कदाचित् सबसे अच्छे हैं, यद्यपि उनसे कम अच्छे और भी दर्जनों मिल जायेंगे, जैसे सुगन आहूजा, कीरत बाबानी, उत्तम, बिहारी, छाबरिया, चावला इत्यादि। इस दशक के दूसरे प्रसिद्ध लेखकों में राम पंजवाणी 'आहे-न-आहे' के लेखक हैं, इसमें ऐसे कलाकार की कहानी दी गई है जो कि ईश्वर पर विश्वास करता है। मंघाराम मलकाणी नाटककार, निबन्धकार और साहित्यिक इतिहासकार हैं। 'अदबी उसूल' नामक एक-मात्र सिंधी आलोचना सिद्धांत-ग्रन्थ के वे लेखक हैं।

बाल-साहित्य

सिंधी में बाल-साहित्य अभी-अभी लिखा जाने लगा है। सरल कहानियाँ और बच्चों के लिए कविताएँ प्राथमिक कक्षाओं के उपयोग के लिए बनाई गई पाठ्य-पुस्तकों के लिए लिखी गई। बच्चों के लिए

लिखने वालों में सबसे अधिक रचनाएँ कौड़ोमल चंदनमल की लेख
निकली हैं। भेरूमल मेहेरचंद के लिखे हुए कुछ बालोपयोगी प
कक्षा से बाहर लोकप्रियता भी मिली। विशेषत: 'बूढ़े राजा काल'
एक अंग्रेजी कविता का अनुवाद। सिंधी में पहला बच्चों के साहि
प्रसिद्ध लेखक था परमानंद मेवाराम, जिसकी 'जोत' नामक
बालकों के लिए मनोरंजक और शिक्षाप्रद सामग्री भरपूर है
बहार' शीर्षक से उनकी लिखी बच्चों की कुछ कहानियाँ एकत्रि
प्रथम महायुद्ध के आसपास अंग्रेजी में टैगोर के 'क्रीसेंट मून' (
और 'पोस्ट आफिस' (डाकघर)-जैसे ग्रंथ और बंकिमचंद्र की का
अंग्रेजी में प्रकाशित हुई थीं। उनके सरल सिंधी गद्य औ
में कई अनुवाद और रूपांतर प्रकाशित हुए; जिनसे बालकों क
आनंद मिला।

सिंधी में बच्चों के लिए ही विशेष रूप से लिखी गई पहली
माला और कविताएँ 'बालकन-जी-बारी' नामक अखिल भारतीय
सरथा ने और उसके 'दादा' (सेवक भोजराज) ने रची। इस
गत तीन दशाब्दियों से ऊँचे अच्छे बाल साहित्य को प्रकाशित क
अपनी परंपरा को कायम रखा है। इसमें से कई रचनाएँ स्वय
द्वारा लिखी हुई हैं। परन्तु इसी बालकन-जी-बारी के लिए क
गीत और बच्चों की लोक-कथाएँ सिंधी में आज नहीं मिल
बीसवीं सदी की तीसरी दशाब्दी के अंत में, रैवाचंद पघाणी
वकील ने सिंधी में अर्थहीन तुकबंदियाँ लिखने का बड़ा साहसपू
किया। उदाहरणार्थ, 'भगत भभोर जो, बाबो आहे चोर जो'
में एक भगत है जो चोर का बाप है)। लेकिन अब ये सब तु
मिलती ही नहीं। बच्चों के लिए विशेष रूप से एक सिंधी
विभाग खोलने का श्रेय फतहचंद (मंघतराम वासवाणी) ना
राजस्व अधिकारी को देना चाहिए, जो अपने भाई मेलाराम के
'सुन्दर साहित्य' लिखता था। फतहचंद ने प्राथमिक काय

अनुकरण करने वालों को आकर्षित किया। उच्च बाल-कविता सिंधी में मुख्यतः 'बेवस' (किशनचन्द खत्री) और उनके शिष्य 'दुखायल' ने लिखी। इनके गीत सिंध के देहातों में गाये जाते हैं और वे सब जन-जन को मानो कंठस्थ हैं। चौथे और पाँचवें दशक में सिंधी के कई प्रसिद्ध लेखक बच्चों के लिए किताबें लिखने की ओर मुड़े; जिनमें सबसे मेहनती थे लालचन्द अमरडिनोमल।

सिंधी में तकनीकी या गंभीर वैज्ञानिक ग्रंथ नहीं के बराबर हैं। सिंधी के केवल एक लेखक ने ऐसे ग्रन्थ लिखने का यत्न किया है। उनका नाम मिर्ज़ा कलीच बेग है; और उनकी रचनाएँ भी मुख्यतः अनुवाद हैं। हरीसिंह और पोकरदास-जैसे प्रकाशकों ने साहस किया और गम्भीर ग्रन्थ छापे, विशेषतः चिकित्सा और स्वास्थ्य के बारे में। ये उर्दू से अनूदित थे, लेकिन इनका साहित्यिक मूल्य बहुत कम है। सिंधी में सरकारी प्रकाशन (खेती, अर्थशास्त्र, उद्योग इत्यादि) सदा की भाँति काठ-से कोरे और नीरस हैं। सिंधी कोशों के प्रथम लेखक यूरोपीय विद्वान् थे—यथा स्टैक, ट्रंप और शर्ट; और उनके बाद कई शब्द-सूचियाँ और छोटे-मोटे कोशों के लेखक आये, जैसे नारायणमल और दुलाराम कूमचन्द। अब तक सिंधी में सबसे प्रामाणिक कोश बहुभाषी विद्यार्थी लेखक परमानन्द मेवाराम द्वारा सम्पादित है। परन्तु वह भी ५० साल पहले प्रकाशित हुआ था और उसका पुनर्शोधन आवश्यक है।

१९४७—५७ के दशक के साहित्य के बारे में दो बातें प्रधान हैं। एक तो हरेक लेखक में अपनी भाषा और साहित्य (विशेष कर) के बारे में गहरा प्रेम है और मनुष्य और वस्तुओं के प्रति यथार्थवादी 'प्रगतिवादी' दृष्टिकोण है। बीच में एक अवरोध प्रवृत्ति, जो कि नये लेखकों में स्वाभाविक होती है, 'प्रेम'-प्रधान लेखन की भरमार थी परन्तु अब वह प्रवृत्ति खत्म मानी जाती है। आज के सिंधी लेखकों में आत्म-विश्वास है, अपनी शक्ति और भाषा में उन्हें आस्था है, और यह साहित्य के लिए अच्छा शकुन है।

हिन्दी

सच्चिदानन्द वात्स्यायन

ऐतिहासिक पृष्ठिका

हिन्दी परम्परा से विद्रोह की भाषा रही है। प्रारम्भिक काल से ही हिन्दी-रचना का एक बहुत बड़ा अंश न्यूनाधिक संगठित वर्गों द्वारा किसी-न-किसी प्रवृत्ति के विरोध की अभिव्यक्ति रहा है। यह विरोध का स्वर सदैव प्रगति का स्वर रहा हो, ऐसा नहीं है; कभी-कभी यह स्वर परिवर्तन के विरोध का; प्रतिक्रिया का, जीर्ण परम्परा अथवा पुराने विशेषाधिकारों की रक्षा की भावना से प्रेरित संकीर्णता का स्वर भी रहा। किन्तु विरोध भाव उसमें सदैव रहा; अर्थात् लेखक सदैव किसी-न-किसी रूप में एक आन्दोलनकारी, उपदेशक, सन्देशवाहक या प्रचारक रहा है; उसका लक्ष्य चाहे धर्म, दर्शन, आस्तिकवाद रहा हो चाहे आक्रान्ता, आततायी और मूर्ति-भंजक म्लेच्छ, चाहे वैरागी, संन्यासी और गृहस्थ, चाहे प्रकृति अथवा काम-शास्त्र अथवा स्वयं साहित्य ही।

निस्सन्देह इस प्रवृत्ति के ऐतिहासिक कारण रहे। हिन्दी उस प्रदेश की भाषा रही जो आरम्भ से ही भारतीय इतिहास की लीला-भूमि रहा और जिसमें निरन्तर साम्राज्यों और राजवंशों के भाग्यों का निर्णय होता रहा। संस्कृत के, जो कि उच्चतर अभिजात वर्ग के शिष्ट आदान-प्रदान और कला-विलासों की भाषा थी, विपरीत प्राकृत और अपभ्रंश

भाषाओं से जन-साधारण के अन्तर्जीवन को अभिव्यक्ति देने का
धिकार पाकर हिंदी अपना दायित्व-क्षेत्र निरन्तर बढ़ाती गई
विचार-धारा के प्रभाव से कर्मकाण्ड और जाति-पाँति के विरोध से
करके शीघ्र ही उसे तन्त्रवाद से सम्बद्ध उन जटिल प्रभावों का
करना पड़ा जो जन-साधारण को अगर वैराग्य की ओर नहीं
से-कम साधारण गृहस्थ-जीवन के उत्तरदायित्व के निर्वाह
ले जा रहे थे। विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचार और इस्ल
वृद्धि ने विद्रोह के स्वभाव में एक नया परिवर्तन उत्पन्न किया
सन्देशवाहकों की क्रूरता और असहिष्णुता के बावजूद सामाजि
से इस्लाम समता और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति की प्रेरणा देत
उसके प्रतिकार में हिन्दी एक संघटित प्रतिक्रिया की भाषा
संघर्ष के रूप ने प्रतिक्रिया के रूप को निश्चित किया। एक धर्म-वि
के मामले में पूरी स्वतन्त्रता के साथ कर्मकाण्ड के कड़े बन्धन
आग्रह करता था, दूसरा एक विश्वास अथवा धर्म-बीज पर कट्टर
के साथ कर्म की यथेष्ट स्वतन्त्रता देता था। मध्यकालीन हिन्दी
ऐसे समाज की भाषा रही जो व्यूह रचकर, अपने अनुशासन को
कड़ा करके, आत्म-रक्षा करना चाहता था। इस्लाम के क्रमिक वि
और मुस्लिम शासन-सत्ता के दृढ़तर संगठन के साथ साथ हिन्दी
अधिकाधिक एक उत्पीड़ित जाति की भाषा होती गई। उत्पीड़ित
की भाषा होने की यह स्वरूप-कल्पना और भावना अनन्तर ब्रितानी शा
काल में और बढ़ती गई। अंग्रेज़ी राज्य की भेद-नीति के और उर्दू को
आने वाले संरक्षण के प्रभाव ने इस सूक्ष्म विरोध-भाव को और तीव्र कि
उर्दू का प्रोत्साहन एक भाषा के नाते उसके गुणों और उसकी विशेषत
का प्रोत्साहन नहीं था वरन् एक संरक्षित, कृपा-पात्र जाति की भाषा
प्रोत्साहन था। इतना ही नहीं, उर्दू के इस रूप अथवा पद की भ

सुधारवादी आन्दोलनो, और उनके समानान्तर साम्प्रदायिक भावनाओं क
वृद्धि ने हिन्दी की इस प्रवृत्ति को और बढ़ाया, यद्यपि साम्प्रदायि
प्रभाव उतना महत्त्वपूर्ण नही था जितना कि राष्ट्रीयता के व्याप
विकास का प्रभाव। हिन्दी सहज ही राष्ट्रीय भावना की सबसे महत्त्व
पूर्ण (और जन संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक प्रबल) वाहिका ब
गई।‡ यह कहा जा सकता है कि इस काल का पुनरुत्थानवाद
वास्तव में संस्कृति की एक नई और अधिक लौकिक कल्पना का परि
णाम था और उसकी तत्कालीन अभिव्यक्ति, धार्मिक सुधारवादी आन्द
लन में हुई। सन् १८७५ में संस्थापित आर्य समाज निस्सन्देह ए
धार्मिक पुनरुत्थानवादी आन्दोलन था, जिसमें तीव्र शुद्धिवादी आग्रह
था, किन्तु इस बात के बढ़ते हुए ज्ञान ने, कि संस्कृति एक समूची जाति
परम्परा, समष्टिगत अनुभव और रचनात्मक प्रवृत्तियों का नाम
समाज के एकीकरण में अधिक महत्त्व का काम किया।

अपने इतिहास के अधिकतर भाग में हिंदी की जो विशेष मनस्थि
रही उसने एक दूसरे विरोधाभास को जन्म दिया। 'मध्य देश'
भाषा होने के नाते हिन्दी भाषा आरम्भ से हिन्दू दर्शन की मुख्य धारा
वाहिका रही और इसलिए उसकी परम्परा और प्रवृत्ति सर्वदा व्यक्ति
वादी रही है, किन्तु हिन्दी-साहित्य का कृतित्व मुख्यतया व्यक्ति का कृति
नही रहा। अर्थात् उसके इतिहास में प्रमुख स्थान अलग अलग मह
साहित्यिक प्रतिभाओं का न रहकर वैचारिक आन्दोलनों अथवा स
दना के रूप-परिवर्तनों का रहा है। हिन्दी साहित्य (उल्लेखनीय
वादों के रहते हुए भी) व्यक्तिगत कृतित्व की अपेक्षा प्रवृत्तियों
साहित्य रहा है। लेखक व्यक्ति की महत्ता का विचार तो विशेष

‡ इस कथन का उद्देश्य बंगाल की देन को कम करना नहीं है। बंगाल में
पुनर्जागरण हुआ, हिन्दी ने उसका प्रभाव सोखा भी और अनुवादों द्वारा भी प्र
किया। किन्तु बंगाल की प्रादेशिक सत्ता और हिन्दी की अंतर्प्रान्तीयता दोनों का प्र
बहुत गहरा था।

से उन्नीसवीं शती से ही आरम्भ हुआ, जब से पश्चिम की यह धारणा प्रचार पाने लगी कि कलाकार एक विशिष्ट, अद्वितीय और स्वतन्त्र व्यक्ति है। कलाकार के कृतित्व की परिकल्पना में होने वाला यह परिवर्तन इतना मौलिक है कि इसे 'कलाकार का स्वातन्त्र्य-लाभ' भी कहा जा सकता है। वर्तमान शती के तीसरे दशक में मार्क्सीय आलोचना ने कलाकार के पद का नया निरूपण करने का प्रयत्न किया—पहले साधारण स्थापनाओं द्वारा, और फिर उसे दल के नियमों और आदेशों द्वारा अनुशासन में लाने का यत्न करके—किंतु इस प्रयत्न को केवल आंशिक सफलता मिली। इसकी चर्चा यथास्थान होगी। यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि यह धारणा केवल उन्नीसवीं शती से प्रचलित और स्वीकृत होने लगी कि साहित्यिक रचना, अनिवार्यतया व्यक्ति लेखक के विशिष्ट चरित्र और प्रतिभा को प्रतिबिम्बित करती है और उसका वैसा करना उचित है। इसी बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी में शैली का महत्त्व साहित्यिक मूल्यों में एक नई चीज है। यह बात कदाचित् सभी भारतीय भाषाओं में सच होगी, किंतु अन्य भाषाओं की चर्चा यहाँ प्रासंगिक नहीं है।

हिन्दी की समकालीन प्रवृत्तियों के अध्ययन में इन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। किसी साहित्य की परम्परागत अवस्थिति और प्रवृत्ति को तथा किसी विशेष सन्दर्भ में अपने ध्येय और कार्य के बारे में समकालीन लेखक की धारणाओं को, ध्यान में रखे बिना किसी क्षेत्र में प्रभाव रखने वाली विशेष शक्तियों को पहचानना अथवा विभिन्न साहित्यकारों के कृतित्व का मूल्यांकन सदैव जोखम का काम होता है—ऐसे व्यक्ति के लिए और भी अधिक जो स्वयं उस क्षेत्र में क्रियाशील हो—किंतु साहित्य-रचना सर्वत्र अनिवार्यतया अधिकाधिक सचेतन और सोद्देश्य कला होती जा रही है और इसलिए लेखक को निरन्तर सम- रचना का मूल्यांकन करना पड़ता है। देश-काल की दूरी ही

अनासक्ति और निरपेक्षता देती है। लेकिन संघर्ष को निकट से देखना भी अपने ढंग की स्फूर्तिप्रद अनुभूति होती है।

भाषा

आधुनिक सन्दर्भ में हिन्दी-साहित्य का अर्थ प्रायः सम्पूर्णतया खड़ी बोली का साहित्य है, यद्यपि प्रतिष्ठित साहित्यिक माध्यम के रूप में खड़ी बोली का इतिहास एक शती से अधिक पुराना नहीं है, और कविता की मुख्य धारा की वाहिका के रूप में तो खड़ी बोली की प्रतिष्ठा बीसवीं शती में ही हुई। उस समय तक परम्परागत काव्य-भाषा ब्रज-भाषा थी, यद्यपि अवधी, मैथिली और अन्य जन व मातृ-भाषाओं में भी कविता लिखी जाती थी। हिन्दी-क्षेत्र के सीमा-निरूपण के बारे में विद्वानों में सदैव मतभेद रहा है और नई राजनीतिक परिस्थितियों तथा प्रादेशिक भाषाओं में नये आत्मगौरव की भावना ने परिस्थिति को और भी उलझा दिया है। भाषा शास्त्र के अध्ययन ने भी समस्या की जटिलता बढ़ाने में ही योग दिया है, क्योंकि उसकी खोज ने ऐसा नया साक्ष्य उपस्थित किया है जो हिन्दी के परम्परागत अथवा ऐतिहासिक पद का समर्थन नहीं करता है। यहाँ पर हिन्दी के क्षेत्र की परम्परागत रूप-रेखा दे देना ही यथेष्ट होगा; क्योंकि हिन्दी के अपने इतिहासकार अब भी निरपवाद रूप से इसीको मानते हैं और अध्येता को हिन्दी में जो सामग्री मिलेगी वह इसीको पुष्ट करने वाली होगी।

पारम्परिक परिभाषा में हिन्दी उस भाषा के प्रामाणिक रूप का नाम है जो पंजाब की पश्चिमी सीमा से लेकर बिहार की पूर्वी सीमा तक और नेपाल की सीमा से लेकर मध्य प्रदेश तक के क्षेत्र में बोली जाती है। अन्य भाषा क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र का अपना पृथक् कोई नाम नहीं है और इसे केवल 'मध्य देश' की अभिधा दी जाती है। अन्य भाषाओं से हिन्दी इस बात में भी भिन्न है कि इसके अन्तर्गत आने वाली बोलियाँ और मातृ-भाषाएँ सब प्रत्यक्ष रूप से एक ही उत्स से

निकली हुई नहीं जान पड़तीं और किसी-किसी का दूसरी भाषा की प्रतिवेशी बोली से अधिक निकट सम्बन्ध जान पड़ता है। एक तरह से यह भी कहा जा सकता है कि प्रामाणिक हिन्दी के रूप में खड़ी बोली का अभ्युदय होने तक हिन्दी किसी एकरूप भाषा का नहीं, बल्कि एक परम्परा का नाम था—एक संघटनशील केन्द्रोन्मुखी प्रवृत्ति का, जो सारे प्रदेश के रचनात्मक अथवा उपदेशात्मक साहित्यिक उद्योग को एक प्रामाणिक एकरूपता की ओर ले जाती थी और प्रदेश के भीतर विभिन्न बोलियों के क्षेत्रों के आपसी सम्पर्क का साधन उपस्थित करती थी। केन्द्रोन्मुखता की यह परम्परा ही हिन्दी का सम्बन्ध आठवीं शती की अपभ्रंश भाषा से जोड़ती है और हिन्दी के इतिहासकार को यह अधिकार देती है कि वह उसके साहित्य का आरम्भ बौद्ध सिद्धों के दोहों और गीतों से करे। निस्सन्देह आठवीं शती में कई अलग-अलग अपभ्रंश भाषाएँ प्रचलित थीं, लेकिन यह मान लेने के पर्याप्त कारण हैं कि सारे उत्तर भारत में प्रचलित साहित्यिक अपभ्रंश भाषा का एक प्रामाणिक रूप था। और यह तो निर्विवाद है कि अपभ्रंश की साहित्यिक परम्परा उत्तर भारत की किसी दूसरी भाषा की अपेक्षा हिन्दी में ही अधिक सुरक्षित रही। मध्यकाल के भक्ति-आन्दोलनों का दाय भी हिन्दी और उसकी बोलियों में ही सबसे अधिक सुरक्षित है। सन्त कविता की उपदेशात्मक, रहस्यमयी या भाव विभोर वाणियाँ भी मुख्यतया ब्रजभाषा और अवधी में ही सुरक्षित हैं, यद्यपि विभिन्न कवियों के जन्म स्थान प्रवास के क्षेत्र के अलग-अलग प्रभाव इन भाषाओं ने ग्रहण किये। सूरदास, तुलसीदास, कबीर और दादूदयाल तो हिन्दी-क्षेत्र के थे ही, किन्तु पूर्व, पश्चिमोत्तर और दक्षिण के भक्त कवियों का काव्य भी हिन्दी को प्राप्त हुआ और हिन्दी माध्यम से पुनः अपने-अपने प्रदेश में गया।

यहाँ इस जटिल और विवादास्पद विषय की अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं है। इस समय इतना स्मरण रखना पर्याप्त है कि हिन्दी आज निर्विवाद रूप से लगभग १५ करोड़ जनता की भाषा है

और उस का क्षेत्र भारतीय संघ की भूमि का लगभग आधा भाग है।

आधुनिक काल : आरम्भ

हिन्दी की केन्द्रोन्मुखी परम्परा को ध्यान में रखकर ही यह बात समझ में आ सकती है कि खड़ी बोली को मुख्य साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर देने वाले शक्तिशाली आन्दोलन का आरम्भ बनारस में कैसे हुआ, जो कि आज भी भोजपुरी बोली का क्षेत्र है, और कैसे इस आन्दोलन को अवधी प्रदेश से सक्रिय सहायता मिली। बल्कि खड़ी बोली का अपना प्रदेश इस दृष्टि से पीछे ही रहा; और उसकी उदासीनता ब्रज प्रदेश की उदासीनता से कुछ ही कम थी, यद्यपि ब्रज का ब्रजभाषा के प्रति मोह सहज और स्वाभाविक था और यह भाषा उस समय काव्य की प्रतिष्ठित भाषा थी।

खड़ी बोली हिन्दी के अपने प्रदेश में विकास पर एक और बात का गहरा प्रभाव पड़ा। वह बात यह थी कि उसी क्षेत्र पर ही नहीं बल्कि उसी परम्परा पर उर्दू का भी दावा था। उर्दू को सरकारी संरक्षण* मिलने पर भी हिन्दी क्रमशः अधिक उन्नति क्यों करती गई, इसका कारण उसकी संस्कृति का विस्तृत लौकिक आधार ही था, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। उर्दू, जो कि दरबारों से सम्बद्ध अत्यन्त सरकारी शहरी भाषा थी, अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण अपेक्षया दुर्बल भी थी। उसमें वह लचकीलापन और प्रत्युत्पन्न प्रतिभा नहीं थी जो कि देश-व्यापी हलचल के साथ चल सकने के लिए आवश्यक थी। हिन्दी में परिमार्जन और भाषा के सुनिश्चित प्रतिमानों की कमी रहते हुए भी उसमें यथेष्ट लचकीलापन और जीविष्णुता थी, यद्यपि उसकी प्रारम्भिक साहित्यिक रचनाएँ आज अत्यन्त अटपटी और ऊबड़-खाबड़ जान पड़ सकती हैं। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के हिन्दी लेखक

* सन् १८३७ में फ़ारसी के स्थान पर 'फ़ारसी-मिश्रित उर्दू' सरकारी भाषा घोषित कर दी गई थी।

लिया। अंग्रेजी साहित्य से परिचय का प्रभाव भी इन लेखकों द्वारा अपनाये गये साहित्यिक रूपों पर पड़ा। काव्य, नाटक, प्रहसन, व्यंग्य और विवादात्मक, आलोचनात्मक तथा हास्यमूलक निबन्धों के अतिरिक्त ललित गद्य भी लेखक अपनाने लगे और क्रमशः कहानी और उपन्यास। भारतेन्दु के समय से उन्नीसवीं शती के अन्त तक अंग्रेजी का प्रभाव प्रायः बंगला के माध्यम से ग्रहण किया जाता रहा, क्योंकि कलकत्ता तत्कालीन ब्रिटिश राजधानी और अंग्रेजी शिक्षा का केन्द्र था।* बीसवीं शती के आरम्भ में यह प्रभाव हिन्दी द्वारा सीधा-सीधा ग्रहण किया जाने लगा और दूसरे यूरोपीय प्रभाव भी (अंग्रेजी के माध्यम से) प्रकट हुए। इनमें रूसी उपन्यास-साहित्य और कुछ कम मात्रा में फ्रांसीसी उपन्यास-साहित्य और काव्य का प्रभाव उल्लेखनीय है। हिन्दी से अथवा बंगला से अनूदित कल्पना प्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों ने ऐयारी-तिलिस्मी की कहानियों और हल्की-फुल्की प्रेम-गाथाओं का स्थान ले लिया, जो कि उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक साहित्यिक मनोरंजन का मुख्य साधन थीं। हिन्दी-लेखक अंग्रेजी के विक्टोरियन युग के साहित्यकारों की रचनाओं से भली भाँति परिचित हो गया;

* पहला अंग्रेजी कालेज कलकत्ता में सन् १८३० में स्थापित हुआ। कलकत्ता स्कूल सोसायटी की स्थापना १८१७ में हो चुकी थी; आगरा में ऐसी ही एक संस्था १८३३ में बनी। बाइबिल का अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद १८३१ में हुआ। पहली हिन्दी पत्रिका कलकत्ता से सन् १८२६ में प्रकाशित हुई। सन् १८२९ में एक और पत्र हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी और फ़ारसी में निकलने लगा। राजा राममोहन राय, द्वारिकानाथ ठाकुर इत्यादि इसके मालिक थे। लगभग इसी समय राजा राममोहन राय ने पहले अंग्रेजी विद्यालय की स्थापना की। सन् १८४४ से अंग्रेजी का ज्ञान सरकारी नौकरी के लिए अनिवार्य हो गया।

हिन्दी के क्षेत्र में पहली पत्रिका सन् १८४५ में बनारस से निकली; इसके सम्पादक बंगाली थे और इसकी भाषा फ़ारसी-मिश्रित थी। बनारस से १८५० में और आगरा से १८५३ में अन्य हिन्दी पत्र निकले।

काव्य के क्षेत्र में रोमांटिक कवियों से उसका अन्तरंग परिचय हुआ, किन्तु पोप, ड्राइडन, मिल्टन, गोल्डस्मिथ आदि कवियों और प्रबन्धकारों से भी वह अपरिचित न रहा। ह्यूगो और ड्यूमा की रचनाओं से भी उसका परिचय हुआ और न्यूनाधिक मात्रा में मोलियेर, बालज़ाक, फ्लाबेयर, मोपासाँ और ज़ोला की रचनाओं से भी। तोलस्तोय, तुर्गेनेव, चेख़ोव परिचित नाम होने लगे।

किन्तु वास्तव में हिन्दी ने आधुनिक काल में प्रवेश पहले महायुद्ध के बाद ही किया और समकालीन प्रवृत्तियों का विवेचन तो इसके और एक पीढ़ी बाद से भी माना जा सकता है। अन्य देशों में इस काल के साहित्य-लोचकों ने 'मध्यभ्रान्ति युग' और 'चिन्ता के युग' की चर्चा की है; हिन्दी में यह दोनों समवर्ती और लगभग पर्यायवाची हुए। इतना ही नहीं, दोनों महायुद्धों के बीच के काल को हिन्दी के सन्दर्भ में एक और भी नाम दिया जा सकता है—यदि इससे भ्रम उत्पन्न होने की आशंका न होती—कुण्ठा का युग। वास्तव में ये तीनों नाम एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व की खोज के तीन अलग-अलग और अनिवार्य पक्षों के नाम हैं जिनसे समझाने इस काल के साहित्य को, और उसकी करुणा और दर्प, अस्वास्थ्य और तन्मयता की मूल प्रेरणा रही। भारतीय वाङ्मय में युग सदैव इतिहास से अधिक महत्त्व रखता रहा है और परिणामतः साहित्य की प्रवृत्ति व्यक्ति चरित्र के निर्माण की अपेक्षा उसके आदर्श (टाइप) के निर्माण की ओर अधिक रही है। काव्य में भी व्यक्ति की संवेदना की अपेक्षा वह अभिप्रायों और कल्पना का माध्यम अधिक रहा है। एक व्यक्ति के रूप में अपना साक्षात्कार होने के पहले पहल हिन्दी लेखक ने अनुभव किया कि इतिहास के रूप में उसका अपना व्यक्तित्व भी है [illegible]। यह अनुभव [illegible] कि अपना [illegible] है या किसी व्यक्तिगत इकाई के [illegible] किया जाना [illegible] है; [illegible] और [illegible] कि [illegible] नहीं। किन्तु इसके साथ के [illegible] में और परिस्थितियों और [illegible]

लक्षित हुआ वह सूचित करता है कि नई परिस्थिति को लेखक ने कैसी शीघ्रता से और कितनी दूर तक आत्मसात् कर लिया।

छायावाद और प्रगतिवाद

दोनो महायुद्धो के बीच के काल मे यद्यपि परम्परागत शैली में साहित्य लिखा जाता रहा और इस बात का प्रयत्न होता रहा कि परम्परागत रूपाकारो और शिल्प को छोड़े बिना नये विचार और संवेदना से समझौता किया जा सके, तथापि इस काल की विशेषता दो साहित्यिक आन्दोलनो में प्रकट हुई जिनमें से एक का क्षेत्र मुख्यतया काव्य का था, किन्तु दूसरे का अधिक व्यापक। परम्परागत रूपाकारों की मर्यादा न उलांघते हुए नई संवेदना का ग्रहण करने में मैथिलीशरण गुप्त (१८८६—) के काव्य को असाधारण सफलता मिली। उनकी फुटकर कविताओ पर छायावाद का प्रभाव न लक्षित होता हो ऐसा नही है, तथापि उनका काव्य इस धारा के अन्तर्गत नही माना जा सकता और उनके ५० वर्ष का काव्य-कृतित्व नये को अग्राह्य न करती हुई परम्परा के निर्वाह का ही उदाहरण है। भाषा की दृष्टि से वह प्रतिमानो की प्रतिष्ठा के उस आन्दोलन के, जिसके नियामक महावीर-प्रसाद द्विवेदी थे, मुख्य उदाहर्ता हुए; और प्रामाणिक हिन्दी के व्यापक स्वीकार में उनके कृति-साहित्य का योग अद्वितीय है।

नये साहित्यिक आन्दोलनो मे काव्य का आन्दोलन व्यक्तिगत संवेदना और सौंदर्य-चेतना का आन्दोलन था और उसके मूल में पूर्ववर्ती साहित्य की इतिवृत्त या उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति के विरुद्ध व्यक्ति का विद्रोह था। छः शताब्दी पहले के भक्ति-आन्दोलनों की भाँति यह नया आंदोलन छायावाद की रूढ़ि के बन्धनो के विरुद्ध हृदय की पुकार थी। कवि ने यह पाया था कि ऐसा भी कुछ है जो उसका एकान्त अपना है और उसकी अभिव्यक्ति के लिए वह छटपटा रहा था। अभिव्यक्ति के दो साधन—भाषा, काव्य, रूप, छन्द, शिल्प और तत्सम्बन्धी वर्जनाओं

का समूह—उसे उपलब्ध थे, उनकी असमर्थता और अपर्याप्तता उसके लिए असहनीय थी। आवश्यकता की भट्टी में उसने नये साधनों का निर्माण किया। 'निराला' (सूर्यकांत त्रिपाठी, १८९६–) और सुमित्रानन्दन पन्त (१९००–) इस आन्दोलन के आधार-स्तम्भ थे और दोनों ने उच्च कोटि का काव्य रचा। जयशंकर प्रसाद (१८८९-१९३७) और महादेवी वर्मा (१९०७–) का काव्य भी हिन्दी के गौरव की वस्तु है, किंतु इन दोनों को उसी अर्थ में प्रवर्तक नहीं माना जा सकता और न उनमें उसी कोटि की मौलिकता और अथवा रचनाशीलता है। पन्त और निराला की सूक्ष्म शब्द-चेतना, स्वरों का उपयोग और भाषा-संगीत का गहरा बोध, और प्रकृति के प्रति उनका सहज स्फूर्त भाव उन्हें न केवल अपने पूर्ववर्तियों और दूसरी शैली के समवर्तियों से अलग करता है बल्कि नये छायावादी कवियों से भी। छायावादी आन्दोलनों को रोमांटिक आन्दोलन कहा गया है और कदाचित् यह नाम किसी भी दूसरे विदेशी नाम से अधिक उपयुक्त है। इसमें भी सन्देह नहीं कि अंग्रेजी रोमांटिक कवियों का विशेषतया पन्त पर बहुत प्रभाव पड़ा। किंतु इस प्रकार की तुलनाओं में जोखम भी हो सकता है। हिन्दी के छायावादी आंदोलनों को अंग्रेजी के रोमांटिक आंदोलनों का प्रतिरूप मान लेना कितना भ्रांतिपूर्ण होगा यह इसीसे प्रकट होता है कि रोमांटिकवाद का उतना ही गहरा प्रभाव इसी काल के दूसरे और विरोधी आंदोलन प्रगतिवाद पर भी था। छायावाद में रोमांटिकवाद का प्रकृति-प्रेम और विस्मय भाव तो था किंतु सौंदर्य की भावकता का और कालरूपी नर-नारियों का वह प्रभाव नहीं था जो कि पाश्चात्य रोमांटिकवाद की विशेषता है; इसके अतिरिक्त छायावाद के मूल में आस्तिकता की एक गहरी अन्तर्धारा भी प्रवाहित हो रही थी। प्रगतिवाद भी एक भारतीय प्रगतिवाद था; जिसमें प्रतिलोम रोमांटिकवाद भी निहित था जिसमें प्रकृति की विरूपता, निर्ममत्व और वर्गीकरण पर जोर था, किंतु साथ ही उनके प्रति सहानुभूति का आग्रह भी, जो इस काव्य के उपेक्षित रहे थे—समाज के दलित और उत्पीड़ित वर्ग ग

ग्रंश। संक्षेप में कहा जा सकता है कि छायावाद पूर्ववर्ती रोमांटिक
और वेदांतवाद का समन्वय था; प्रगतिवाद परवर्ती रोमांटिकवाद
मार्क्सीय द्वंद्ववाद का संगम।

छायावाद के प्रेरणा-स्रोत को ध्यान में रखते हुए यह स्वाभा
माना जा सकता है कि इसके सौंदर्यवादी कवियों में उत्पीड़ित साध
जनता के कष्टों का उतना तीव्र बोध नहीं है। किंतु यह भी ध्या
रखना होगा कि प्रगतिवादी पक्ष के अनेक लेखकों ने मानव जाति
अपमान और उत्पीड़न के जो लोमहर्षक वर्णन किये उनमें मूलतः
प्रकार की अस्वस्थ मनोवैज्ञानिक भावना का पर्याप्त ग्रंश था जो
पश्चिम के उत्तरकालीन रोमांटिकवादी (डिकेडेंट) में लक्षित होता
मार्क्सवाद की क्रमशः लम्बी होती हुई जो छाया पश्चिमी रोमा
वाद पर पड़ी थी, और जिसके कारण (उदाहरणतया) वर्ड्सवर्थ
शैली, बायरन और स्विनबर्न सभी के रोमांटिक होते हुए भी प्रथम
और अंतिम दोनों में एक मौलिक अंतर आ गया था, उसका या
ढंग का प्रभाव हिन्दी में भी लक्षित हुआ। यों तो उन्नीसवीं श
अंतिम वर्षों से ही हिन्दी लेखक मानव जाति और उसके उद्योग क
नये प्रकाश में, अनेक स्तरों पर मुक्ति के लौकिक आन्दोलन के संद
देखने लगे थे। आर्थिक-सामाजिक स्तर का आंदोलन इन्हीं स्तरों
एक था, और लेखक की दृष्टि की लौकिकता स्वयं मुक्ति का एक
थी। किंतु प्रगतिवाद का उद्दिष्ट इस प्रकार की व्यापक, उदार, प्र
शील दृष्टि (जिसका उत्तम उदाहरण प्रेमचन्द हैं) नहीं था,
अपने प्रारम्भिक दिनों में प्रगतिवादी आन्दोलन ऐसी प्रवृत्तियों का
योग चाहता रहा। एक बहुमुखी और किसी हद तक दिग्विमूढ़ ग्रां
से, जिसका उद्देश्य लेखक की सामाजिक सहानुभूतियों का क्षेत्र वि
करना था, आरम्भ करके प्रगतिवादी आन्दोलन क्रमशः एक कट्टर सि
वादी कम्युनिस्ट आन्दोलन बनता गया और एक-एक करके उदार प्र
शील परम्परा के उन लेखकों का तिरस्कार एवं बहिष्कार करता

इस प्रकार जिस शोचनीय परिस्थिति से प्रेमचन्द ने अभी-अभी हिन्दी-उपन्यास को उबारा था वही परिस्थिति फिर उत्पन्न हो गई। अधिकतर लेखक क्योंकि मध्यवर्गीय शहरी थे, (और वह भी उद्योग-प्रधान शहरों के नहीं) इसलिए प्राय: उन्हें उन व्यक्तियों की मानसिक प्रवृत्तियों और सामाजिक परिपाटियों का कोई अनुभव या ज्ञान नहीं होता था जिनका चित्रण करने के लिए वे अपने को बाध्य मानते थे। फलत: यथार्थवाद का आभास देने वाली रचनाओं की भरमार होने लगी, इनका समर्थन और संगठित रूप से प्रशंसा करने वाले दलगत आलोचक भी प्रकट हुए, जिनका दुराग्रह आज आश्चर्य का विषय हो गया है। यह भी उतने ही आश्चर्य का विषय है कि इन लेखकों ने प्रेमचन्द के साहित्य की ओर इतना कम ध्यान दिया, यद्यपि प्रेमचन्द को वे हिन्दी का गोर्की और अपना नेता और गुरु घोषित करते थे। प्रेमचन्द हिन्दी के पहले आख्यान-लेखक थे जिनकी रचनाओं को आधुनिक अर्थ में उपन्यास कहा जा सकता है, और उन्होंने बहुत सोच-समझकर अपने उपन्यासों का क्षेत्र चुना। उनके अधिकतर पात्र समाज के उन वर्गों से लिये गए थे जिनसे उनका घनिष्ठ परिचय था—अर्थात् किसानों [illegible] वर्ग से अथवा निचले मध्य-वर्ग से। कभी-कभी ही उन्होंने ह्रासमान सामन्तवादी अभिजात वर्ग के व्यक्तियों का या नवोदित बुद्धिजीवी का चित्रण करने का प्रयत्न किया; उनके ऐसे चरित्र उतने सफल या विश्वासोत्पादक नहीं हो सके। कृषक वर्ग के जीवन का चित्रण उन्होंने बहुत सच्चाई और सहानुभूति के साथ किया। उनके उपन्यासों में सर्वदा एक स्पष्ट और सुगठित घटना-चक्र होता है और उसके द्वारा चरित्रों का व्यक्तित्व विशिष्ट होकर उभरता आता है। आरम्भ के सुधारवादी काल में उनके ग्राम-समाज के चित्रण में भावुकता की झलक रहती थी, किन्तु क्रमश: उनमें एक परिपक्व तटस्थता आती गई और इससे उनकी रचनाएँ अधिक प्रभावशाली हो गईं। आरम्भ के काल्पनिक समझौते को छोड़कर उन्होंने सामाजिक संघर्षों के नग्न को पहचान-

कर दृढ़तापूर्वक उसका चित्रण किया (गांधी युग के उपन्यास की एक विशेषता थी आश्रम-समाजों की परिकल्पना—आश्रम सेवा और बलिदान द्वारा संघर्षों के निराकरण के प्रतीक थे)। रचना शिल्प की दृष्टि से हिन्दी-उपन्यास प्रेमचन्द से कहीं आगे बढ़ गए हैं, किन्तु विस्तृत मानवीय सहानुभूति की दृष्टि से परवर्ती उपन्यासकार प्रेमचन्द को नहीं पा सके हैं। प्रगतिवादियों ने सुधारवादी राष्ट्रीयता से बढ़कर सामाजिक संघर्षों के यथातथ्य चित्रण तक प्रेमचन्द की यात्रा का यह अर्थ लिया कि उन्होंने वर्ग-युद्ध के सिद्धान्तों को पूरी तरह मान लिया है, और हिन्दी-उपन्यास को प्रेमचन्द की जो वास्तविक देन थी—प्रामाणिक व्यक्ति-चरित्रों का चित्रण—उसे सम्पूर्ण रूप से अनदेखा कर दिया।

किन्तु प्रगतिवादी आन्दोलन का एक रचनात्मक पक्ष भी था। उसने लेखक की सहानुभूतियों के क्षेत्र को कुछ बढ़ाया और उसकी मर्यादाहीनता ने अपेक्षया स्वतन्त्र लेखकों को आत्म-निरीक्षण की प्रेरणा दी और आत्म-सन्तोष अथवा वस्तु-स्थिति के प्रति सहज स्वीकार-भाव को दूर किया। छायावाद ने भाषा को जो नया लचीलापन, अर्थ गौरव और गहराई दी थी, उसे प्रगतिवाद से मिली हुई नई परीक्षणशीलता और प्रखरता ने पुष्ट किया और इससे परवर्ती साहित्य का रूप और स्वाद बदल गए। प्रगतिवाद ने लोक-जीवन के अध्ययन को और लोक-साहित्य तथा प्रादेशिक संस्कृतियों को भी प्रोत्साहन दिया। लोक-जीवन के प्रति इस नई उन्मुखता के मूल में भी दो भिन्न प्रकार की प्रेरणाएँ थीं। एक पक्ष का आग्रह लोक अथवा जन पर अधिक था—इस पक्ष की दृष्टि आर्थिक थी, किन्तु इसका आग्रह मुख्यतया राजनीतिक था। दूसरा पक्ष संस्कृति पर बल देता था, इसकी दृष्टि अनेकोन्मुखी थी (यद्यपि उसने संस्कृति की अनेकोन्मुखता और विविधता को स्वीकृति अधिक दी)। प्रगतिवादी आन्दोलन कुछ ऐसे वर्गों या क्षेत्रों से भी नये लेखकों को प्रकाश में लाया जिनके लिए स्वभावतया लेखक को सामने आने में अधिक देर लगती अथवा अधिक कठिनाई होती। छायावाद और प्रगतिवाद

दोनों आन्दोलनों का विकास किसी हद तक बलात्कृष्ट था, क्योंकि दोनों में ही थोड़े-से वर्षों के व्यास में ऐसी अनेक शक्तियों का घनीभूत प्रभाव संचित हो गया था जिन्हें अन्यत्र पीढ़ियों का समय लग जाता। इसी सकुलता का यह परिणाम है कि यद्यपि साहित्यिक आन्दोलन के रूप में छायावाद और प्रगतिवाद दोनों ही जीर्ण हो गए हैं; तथापि दोनों रीतियों का काव्य अभी तक लिखा जा रहा है; जैसे कि परम्परागत पद्धति का काव्य इन दोनों वादों के युग में भी लिखा जाता रहा और अब भी लिखा जा रहा है। मैथिलीशरण गुप्त की श्रेष्ठ रचनाओं का काल भी छायावाद और प्रगतिवाद का ही काल है : उन्होंने परम्परागत नैतिक मर्यादाओं और रूढ़ काव्य-शिल्प का निर्वाह करते हुए भी आधुनिक मानववादी विचारों को ग्रहण और आत्मसात् करके असाधारण प्रतिभा दिखलाई। माखनलाल चतुर्वेदी (१८८८—) और 'नवीन' (बालकृष्ण शर्मा, १८९७—) दोनों रोमांटिक राष्ट्रीयवादी हैं और दोनों में रहस्यवादी शब्दावली का व्यवहार करने की प्रवृत्ति है। 'दिनकर' (रामधारी सिंह, १९०८—) भी रोमांटिक राष्ट्रीयतावादी हैं, किन्तु उन्होंने पौराणिक वस्तु का आधुनिक सन्दर्भ में उपयोग भी किया है और मुहावरेदार बोल-चाली भाषा में उपदेशात्मक अथवा उद्बोधन-काव्य भी लिखा है। भाषा के व्यवहार की दृष्टि से इन कवियों की छायावादी कवियों से और आधुनिक कवियों से तुलना बहुत रोचक है। 'नवीन' सिद्धान्ततः शुद्धिवादी हैं और मानते हैं कि हिन्दी के शब्द-भण्डार में संस्कृत-व्युत्पन्न शब्दों को छोड़कर दूसरे शब्द नहीं होने चाहिएँ, किन्तु व्यवहार में वह किसी शब्द को उपयोगी पाने पर उसके कुल-शील-संस्कार के अन्वेषण की चिन्ता नहीं करते हैं। इसके प्रतिकूल अन्य दोनों कवियों में ऐसा कोई पूर्वग्रह नहीं है और वे काम दे जाने वाले किसी भी शब्द को ग्रहण करने को तैयार हैं। किन्तु छाया-वाद के कवियों में शब्द-संकेत की जो सूक्ष्म भावना है वह इन तीनों कवियों में नहीं है; न ही उनमें उस प्रकार का ध्वनि-विचार अथवा

शब्द-ध्वनियों का वैसा सोद्देश्य और सार-गर्भ उपयोग है जो नई कविता का लक्ष्य है ।

बालकृष्ण राव (१६११—) की प्रारम्भिक रचनाओं का छायावाद से निकट सम्बन्ध था, किन्तु पाश्चात्य साहित्य के उनके अध्ययन ने उन्हें छायावादी प्रवृत्तियों के साथ एकात्म नहीं होने दिया। उन्होंने चतुर्दशपदी (सानेट) के कुछ आकर्षक प्रयोग किये हैं। उनकी भाषा सरल और वाक्य-रचना साधारण बोल-चाल के निकट होती है। उनका काव्य विषय प्रायः हल्का होता है, किन्तु उनका रूप-बोध उनके काव्य को आनन्ददायक बना देता है।

'सुमन' (शिवमंगल सिंह, १६१६—) के काव्य में एक सहज उत्फुल्लता और मस्ती है, जो उनकी रोमांटिक प्रवृत्तियों की द्योतक है; किन्तु साथ ही प्रगतिवादी सिद्धान्त के प्रति उनकी निष्ठा प्रकट और मुखर है। यह सिद्धान्तवादी जामा उनकी चुलबुली मानवोन्मुखता पर फबता नही, और उनकी लम्बी कविताओं का वक्तृत्व चेष्टित जान पड़ता है। एक सहज विनोदशीलता भी उनके काव्य के स्वभाव में ही न होती तो उनकी लम्बी कविताएँ निरा वाग्जाल हो जातीं। किन्तु उनकी गीतात्मक रचनाओं की स्निग्धता, भोलापन और लक्ष्य भाव उनकी एक बहुत आकर्षक विशेषता है।

ऐसे और भी अनेक लेखक, विशेषतया कवि हैं जिन्हें स्पष्ट रूप से उपरिलिखित दोनों वादों में से किसी के अन्तर्गत नही रखा जा सकता, किन्तु जिनकी प्रवृत्ति साधारणतया रोमांटिक है, भले ही उनमें वेदान्त-वाद का या अन्य कोई पुट हो। 'बच्चन' (हरिवंश राय, १६०७—) स्वच्छन्दतावाद के लोकप्रिय कवि हैं। उनके काव्य में काल रूप नारी और पुरुष, प्रलय के पूर्व-संकेत, मृत्यु-चिन्ता, रात्रि-पूजा आदि रोमांटिक प्रवृत्ति के अनेक उपकरण मिलते हैं; उनकी भाषा साफ-सुथरी, मुहावरेदार और लोक-व्यवहार के निकट है, यद्यपि कभी-कभी अनुप्रास का मोह उन्हें स्खलित कर देता है। समकालीन काव्य-भाषा पर 'बच्चन'

का कितना प्रभाव पड़ा यह कहना कठिन है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि छायावाद-काल के पाठक की इस धारणा को बदलने में उनकी रचनाओं ने सबसे अधिक काम किया कि काव्य की भाषा अनिवार्यतया लोक-व्यवहार की भाषा से अलग कुछ होती है। नरेन्द्र शर्मा (१९१३–) अपनी सूक्ष्म संवेदना के कारण दोनों पक्षों में कभी इधर और कभी उधर झुकते रहे हैं और शिल्प की दृष्टि से भी उनकी कविता बीच-बीच में परम्परागत पद्धतियों से दूर हटती रही है, किन्तु क्रमशः अन्तर्वस्तु की दृष्टि से उनका काव्य वेदान्तवादी और भारतीय संस्कृतिपरक हो गया है और बहिरंग की दृष्टि से उन्होंने छन्द, तुक आदि के बन्धन को अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया जान पड़ता है। भगवतीचरण वर्मा (१९०३—) का काव्य रोमांटिक प्रतीकों और संकेतों से पूर्ण है, किन्तु साथ ही उनके विचार-पक्ष में एक ठोस व्यावहारिकता भी है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में प्रायः जो व्यंग्यात्मक उपहास-वृत्ति पाई जाती है वही कभी-कभी उनके काव्य में भी प्रकट होती है। उनकी इस ढंग की रचनाएँ तात्कालिक प्रभाव तो रखती हैं, लेकिन अभी तक उनमें उस कोटि का व्यंग्य अथवा गहराई नहीं है जो काव्य के क्षेत्र में उसे स्थायी प्रतिष्ठा दे सके। छन्द की दृष्टि से अन्य कवियों की भाँति भगवतीचरण वर्मा भी न केवल आग्रहपूर्वक भारतीय पद्धति का पालन करते हैं वरन् उससे बाहर काव्य के अस्तित्व की सम्भावना ही अस्वीकार करते हैं।

गिरिजाकुमार माथुर (१९१७—) भी मुख्यतया रोमांटिक प्रवृत्ति के गीतिकार हैं—अथवा कम-से-कम उनका उत्तम काव्य इसी प्रवृत्ति का है—किन्तु उन्होंने रूप और शिल्प की दृष्टि से कई प्रयोग भी किये हैं। अब जिसे 'नई कविता' कहा जाने लगा है उसके रूप और मुहावरे के विकास में गिरिजाकुमार माथुर का निश्चित योग रहा है। किन्तु अपने अमरीका-प्रवास से लौटकर उन्होंने जो कविताएँ लिखी हैं उनसे कुछ ऐसा जान पड़ता है कि वह प्रयोग की एक बँधी लीक में पड़ गए हैं

और उस लोक को यति की सीमा तक ले जा रहे हैं। फलतः उनके इधर के लेखन में संवेदना अथवा अनुभूति के नये स्तरों की अपेक्षा एक अतिरंजित शैली-वैचित्र्य ही प्रतिबिम्बित होता है।

दोनों महायुद्धों के अन्तराल के कवियों में सियारामशरण गुप्त पर विदेशी प्रभाव कदाचित् सबसे कम पड़ा है—इस काल के मुख्य कवियों में कदाचित् वही एक ऐसे भी रहे जिनके शिक्षण में अंग्रेजी का कोई योग नहीं रहा। उनकी रचनाओं में सूक्ष्म अनुभूति और निर्मम चिंतन के साथ-साथ एक शांत और संतुलित घरेलूपन है। भारतीय भूमि का धैर्य, सहिष्णुता और उर्वरता मानो उनके काव्य में प्रतिबिम्बित हो उठी है। सुभद्राकुमारी चौहान (१६०४–१६४८) की ओज-भरी राष्ट्रीय कविताएँ और गृहस्थ जीवन की सहज, सरल स्नेहभरी अंतरंग झाँकियाँ उन्हें इस काल के कवियों में एक अद्वितीय स्थान देती हैं। ऐसी ही सहज आत्मीयता होमवती (१६०४–१६५१) की कहानियों में मिलती है; उनकी कविताओं में भी यह गुण तो है लेकिन अपनी भावना के प्रति वह तटस्थता नहीं है जो उसे महत्ता प्रदान करती। सुभद्राकुमारी चौहान की भारतीयता उनके काव्य की ओजस्विता में प्रकट हुई तो होमवती की भारतीयता उनकी कहानियों की व्यंग्यात्मकता में।

जैनेन्द्रकुमार (१६०५—) एक और लेखक हैं जिन्हें समकालीन हिन्दी-साहित्य के साधारण प्रवाह में नहीं रखा जा सकता। उनके उपन्यास और कहानियाँ आलोच्य काल की सबसे अधिक अभिप्राय-भरी रचनाओं में गिनी जा सकती हैं। यद्यपि उनकी भाषा बहुधा अपनी चेष्टित सरलता और अति-वैशिष्ट्य के कारण दूषित हो जाती है और उनकी परवर्ती रचनाएँ हेतुवाद और निरी शब्द-क्रीड़ा के स्तर तक उतर आती हैं, तथापि उन्होंने कई स्मरणीय व्यक्ति-चरित्रों का [illegible] सुस्पष्ट अंकन किया है जो उनकी गम्भीर अन्तर्दृष्टि, [illegible] में उनकी पैठ और उसे प्रयुक्त करने की उनकी [illegible] की कर्म-प्रेरणाओं के घात-प्रतिघात के निर्मम

विश्लेषण की साक्षी हैं। गांधी-दर्शन के अकर्म विरोध के सिद्धान्त को उन्होंने रचनात्मक अभिव्यक्ति दी और उसे उसकी तर्क-संगत चरम सीमा तक ले जाकर उसका चित्रण किया जहाँ वह पाप के प्रति अविरोध और दुःख के स्वीकार का रूप ले लेती है। उनका लघु उपन्यास 'त्याग पत्र' एक प्रबल कृति है। उनकी अनेक कहानियाँ भी आख्यान-कला के उत्कृष्ट उदाहरण होने के साथ-साथ एक मौलिक, पैनी और उत्तेजना तथा स्फूर्ति प्रदान करने वाली बुद्धि का संकेत करती हैं। उनके उत्तम निबन्धों में भी यह ज्ञान लक्षित होता है, किन्तु कहीं-कहीं उनका स्तर निरी वाक्-चातुरी तक गिर जाता है।

उपर्युक्त दो काव्य-आन्दोलनों की मूल प्रेरणा क्रमशः पश्चिमी रोमांटिकवाद * और मार्क्सवाद थी, किन्तु पश्चिम में वैज्ञानिक चिन्तन की साधारण प्रवृत्ति का प्रभाव भी हिन्दी गद्य पर और विशेष रूप से आख्यान साहित्य पर पड़ा। पुराणों के सम्बन्ध में नई ऐतिहासिक दृष्टि के प्रभाव से नये प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास सामने आये। पौराणिक नायक को ऐसे घटना-चक्र द्वारा आवेष्टित कर देने-भर के, जो पाठक के विश्वास पर अधिक जोर न डाले, प्रयत्न को छोड़कर ऐतिहासिक उपन्यासकार अब एक ऐतिहासिक काल के पुनः संगठन की ओर उन्मुख हुआ। किसी काल की सामाजिक परिस्थिति और उसके लोक-जीवन का ऐतिहासिक चित्रण ही उपन्यासकार का उद्देश्य हो गया। भगवतशरण उपाध्याय (१९१०—) ने एक गल्प-माला में

* पश्चिम का रोमांटिकवाद स्वयं बहुत दूर तक पूर्वीय प्रभावों का परिणाम था, जो पूर्वीय साहित्यों के अनुवाद और अध्ययन के माध्यम से क्रमशः पश्चिम में और विशेष रूप से तत्कालीन तीनों प्रमुख साहित्यों में पहुँचे—अंग्रेजी, फ्रांसीसी और जर्मन साहित्यों में। ये प्रभाव 'अनिरु सैना' से लेकर 'अभिज्ञान शाकुन्तल', और 'कामसूत्र' से लेकर 'गीता-उपनिषदों' तक सभी प्रकार के ग्रंथों के अनुवादों से आए थे। भारतीय प्रभाव किस प्रकार पाश्चात्य संवेदना में से छनकर अंग्रेजी, फ्रांसीसी और अन्य यूरोपीय साहित्यों में प्रकट हुए और वहां से लौटकर फिर भारतीय काव्य-रचना पर रोपे गए, इसकी चर्चा लेखक ने अन्यत्र की है।

वैदिक काल से लेकर मध्य युग तक भारतीय समाज के विकास [illegible] चित्रण किया। राहुल सांकृत्यायन (१८९३—) ने प्राचीन [illegible] राज्यों के समाज और जीवन का पुनर्निर्माण करने का यत्न किया औ[र] रांगेय राघव (१९२२—) ने मोएं-जो-दड़ो के नागरिक राज्य [illegible] जीवन प्रतिबिम्बित किया। इस प्रकार के चित्रण कभी-कभी लेखक [के] ज्ञान और पांडित्य के बावजूद अनैतिहासिक हो जाते रहे, क्योंकि लेख[क] जहाँ एक ओर वर्णित काल अथवा समाज के बहिरंग और जीवन-विधि [illegible] के प्रति अत्यन्त सतर्क था और तत्कालीन वेश-भूषा, खाद्य-सामग्री, रीति[illegible] कर्म आदि की विशेषताओं का सजग निर्वाह करता था, वहाँ दूसरी ओ[र] वह उसके अन्तरंग पर आधुनिकता का आरोप कर देता था—आज की मनोवृत्तियाँ, सामाजिक संघर्ष और प्रवृत्तियाँ सुदूर अतीत पर आरोपि[त] हो जाती थीं। यह नहीं कि उपन्यासकार जान-बूझकर इतिहास को ए[क] मिथ्या रूप देना चाहता था, केवल उसका वैचारिक आग्रह और समाज-विकास के किसी विशेष सिद्धान्त को उदाहृत करने का उत्साह उसे अनै[ति]हासिकता की ओर बहा ले जाता था। राहुल सांकृत्यायन द्वारा अतीत [illegible] वर्ग-संघर्ष का अथवा यशपाल द्वारा नारी-आन्दोलन का आरोप [illegible] हरण के रूप में दिया जा सकता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी (१९०७—) की 'बाणभट्ट की आत्म-कथा' सम्पूर्ण युगतत्व और ऐतिहासिक चित्र[illegible] के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है। बाणभट्ट की कल्पित आत्म-कथा के माध्यम से एक समकालीन समाज का पुनर्निर्माण करते हुए लेखक ने न केवल बहिरंग का पूरा निर्वाह किया है [illegible] तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं और संवेदना के प्रति भी पूरी [illegible] करती है। तत्कालीन समाज को मूर्त करने में लेखक ने जिस [illegible] और निष्ठा का परिचय दिया है केवल उसी के कारण नहीं, [illegible] हिन्दी में एक ऐसी शैली और पद्धति की रचना के कारण [illegible] बाणभट्ट की [illegible], ललित और [illegible] पाया जा सकता है, 'बाणभट्ट की आत्मकथा' [illegible] हिन्दी

साहित्य में एक अद्वितीय स्थान रखेगी। वह एक ऐतिहासिक युग-चित्र ही नहीं, एक श्रेष्ठ उपन्यास भी है। विद्वान् लेखक, आचार्य और आलोचक के इस प्रथम और अभी तक एक-मात्र उपन्यास को उसके गौरव के अनुकूल मान्यता अभी तक नहीं मिली है। वृन्दावनलाल वर्मा (१८८८—) के उपन्यासों का काल सामन्तवाद के ह्रास का काल है। उनके अनेक उपन्यास लोकप्रिय भी हुए हैं और सम्मानित भी, किन्तु बहुधा उनका रूप-शिल्प अधूरा और त्रुटिपूर्ण हुआ है और कभी-कभी उपन्यास गाथा अथवा ऐतिहासिक वृत्तान्त के निकट आ जाते हैं। रूप-विधान की इस कमी के कारण कभी-कभी कथा-वस्तु में लगाव भी होता है, जैसा कि 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' में स्पष्ट है। लघु उपन्यास 'मुसाहिबजू' उनकी उत्तम रचना कही जा सकती है।

फ्रायड और उसके परवर्ती मनस्तत्त्वविदों का प्रभाव हिन्दी पर पड़ना स्वाभाविक ही था। यह विशेष रूप से हिन्दी-उपन्यास के क्षेत्र में प्रकट हुआ, यद्यपि हिन्दी-आलोचना पर भी उसके प्रभाव कुछ तो प्रत्यक्ष और कुछ समकालीन पाश्चात्य उपन्यास साहित्य के उदाहरण से पड़े। ये प्रभाव भारतीय साहित्य में केवल हिन्दी तक ही सीमित नहीं रहे और इसलिए हिन्दी-साहित्य के विवरण में उसका पृथक् विश्लेषण करना आवश्यक नहीं है। यों ऐसे उपन्यास हिन्दी में अधिक नहीं हुए हैं जिन्हें सीधा मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास कहा जा सके। कदाचित् इलाचंद्र जोशी (१९०२—) इस कोटि के एक-मात्र उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। उन्होंने ऐसे अनेक चरित्रों का वर्णन किया जिनका व्यक्तित्व न्यूनाधिक मात्रा में विघटित है और जो विषाद, कुंठा और हताशा के बोझीले वातावरण में अपनी समस्या के आस-पास चक्कर काटते हैं। इन अनेक उपन्यासों का प्रभाव और अधिक हो सकता था, किन्तु इस कारण न हुआ कि उनमें वर्णित घटनाओं के असम्भव न होते हुए भी उनके पात्रों की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं में अति-रंजना की उतनी मात्रा थी, जो उन्हें स्वीकार करना कठिन बना दे।

लेखक की प्रिय आत्म-कथा-मूलक शैली के कारण पात्रों में एक प्रक की एकरूपता रही। आत्म-कथा के रूप में वृतान्त कहने वाला व्यक्ति भी प्रायः प्रतिकूल स्वभाव का एक कुंठित अथवा निरुद्देश्य व्यक्ति होता जो एक के बाद एक नई और किसी हद तक आश्चर्यमयी घटना पड़ता चलता और इस प्रकार वृत्तान्त को एक सूत्र अथवा अनुक्रम देता। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में चरित्र का विकास बहुत क होता है, विश्लेषण द्वारा उसका क्रमिक उद्घाटन ही उनका विष होता है। 'संन्यासी', जो कि उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में से है, कदा चित् उनकी सर्वोत्तम कृति है; बाद के उपन्यासों में आवृत्ति और वृत्तात्मकता अधिक है।

इस काल की एक विशेषता उसके कृतिकारों की अनेकोन्मुखी प्रवृत्ति थी। अधिकतर लेखक कविता और आख्यान दोनों लिखते रहे और बहुधा आलोचनात्मक गद्य भी। उदाहरणतया भगवतीचरण वर्मा ने उपन्यास और नाटक भी लिखे हैं, सियारामशरण गुप्त ने उपन्यास नाटक और कहानी के अतिरिक्त निबन्ध भी; 'बच्चन', नरेंद्र शर्मा और सुभद्राकुमारी चौहान ने कहानियाँ; माखनलाल चतुर्वेदी और 'दिनकर' ने निबन्ध इत्यादि। किंतु उनकी कविता परम्परागत पद्धति का निर्वाह करती रही। वह छंदःशास्त्र की अनुगता, तुक-ताल और अनुप्रासों से युक्त रही और उसका रूप मुख्यतया गेय अथवा श्रव्य रहा। सिया रामशरण गुप्त ही इसके उल्लेखनीय अपवाद रहे। इस प्रकार 'निराला' और 'पन्त' के बाद आधुनिक प्रवृत्ति अभिव्यक्ति की प्रतीक्षा ही करती रही। यों तो काव्य की नई आवश्यकता का अनुभव दूसरे महायुद्ध से पहले ही होने लगा था और यत्र-तत्र कुछ कवियों ने उसके अनुरूप प्रयोग भी किये थे, किंतु परम्परागत पद्धतियों के विरुद्ध एक सशक्त स्वर सन् १९४३ में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ प्रकट हुआ। फलतः आलोचना में बहुधा इससे पहले के प्रयोगों का उल्लेख कि

जाता है, किंतु ऐसे पूर्व-सकेतों के रहते हुए भी उनकी विरलता के कारण एक व्यापक प्रवृत्ति का प्रारंभ वहाँ से नहीं माना जा सकता। वास्तव में प्रगतिवादी सम्प्रदाय के कवियों में से कुछ को काव्य की अथवा अभिव्यक्ति की समस्याओं का भी बोध था, किंतु अपने मुख्य (आर्थिक) आग्रह के कारण वे उधर को ही झुक गए और अभिव्यक्ति की समस्याएँ उनके निकट नगण्य नहीं तो गौण अवश्य हो गईं। परवर्ती अथवा अन्य कवियों के साहसपूर्वक इन समस्याओं का सामना करने और आरंभ में अटपटे किंतु क्रमशः स्पष्टतर उत्तर पाने के बाद ही प्रगतिवादी सम्प्रदाय के कवि उनके प्रयोगों को उपयोग में लाये। इसीलिए इन प्रयोगों के आन्दोलन को परवर्ती मानना ही युक्तिसंगत है। यों उसकी पूर्व-पीठिका में 'निराला' और पंत के अतिरिक्त श्रीधर पाठक (१८७६-१९२८) और शिवाधार पाण्डेय के नाम भी लिये जा सकते हैं।

मानववाद और व्यक्तित्व की खोज

दोनों महायुद्धों के अन्तराल में एक गम्भीर परिवर्तन भी हो रहा था यद्यपि वह उतना लक्ष्य नहीं था। वह न तो छायावाद की भाँति सम्पूर्णतया अन्तर्वस्तु अथवा संवेदना पर आधारित था, न प्रगतिवाद की भाँति बाह्य वस्तु-सम्बन्धों पर। इसका उद्देश्य मानव के प्रति एक नई दृष्टि प्राप्त करना था। उसके मूल में मानव की अद्वितीय सम्पूर्णता और मानव व्यष्टि की अखण्डता का गहरा बोध था। यह साहित्यिक चेतना का एक नया स्तर, संवेदना का एक नया आयाम था। यह भी कहना अनुचित न होगा कि उपर्युक्त दोनों साहित्यिक आन्दोलन इसी ज्वार के ऊपरी स्तर की तरंगें थीं। छायावाद जिस प्रकार अपने पूर्ववर्ती युग के नीरस उपदेशवाद और नैतिक बुद्धिवाद की प्रतिक्रिया था, प्रगतिवाद उसी प्रकार छायावाद के भाव-संकुल और रूप-कल्पना की प्रतिक्रिया-सा प्रकट हुआ; किन्तु ये तीनों प्रवृत्तियाँ परिवर्तन की उस गहरी

सम्पर्धारा की ऊपरी हिलोरें थीं, जिसे व्यक्तित्व की खोज का नाम दिया जा सकता है।

परिवर्तन के इस विस्तीर्ण प्रवाह को एक साहित्यिक आन्दोलन के, अथवा समूचे भारत के भी सन्दर्भ में ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता। न ही उसे केवल विदेशों से आयातित राजनीतिक विचार-धाराओं के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। वह वास्तव में समूचे पश्चिम के आघात की प्रतिक्रिया है। व्यक्तित्व की खोज के मूल में पश्चिम के प्रति एक उचित और सन्तोषप्रद मनोभाव की स्थापना की, और उसके साथ पूर्व की एक आध्यात्मिक तृप्तिप्रद और सारपूर्ण मूर्ति की प्रतिष्ठा की समस्या थी। अर्थात् व्यक्तित्व की खोज वास्तव में पश्चिम को सही सही निरूपित करने और उसके मुकुर में अपने सामूहिक प्रतिबिम्ब को देखने और पहचानने की समस्या थी। निम्न स्तर पर वह आत्म-रक्षा के किसी सहज मन्त्र की, जीवित रहने के उपाय की खोज थी; उच्चतम स्तर पर वह एक कठिन आत्म-परीक्षण, आध्यात्मिक चिन्तन, तपस्या और सभी मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन की समस्या थी। और इस समस्या के सम्मुख सभी प्रकार की प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलीं: एक ओर, प्राचीन परम्पराओं और शास्त्र-सम्मत मूल्यों के सम्पूर्ण खण्डन से लेकर आधुनिक परिस्थिति में आत्म-संतोष की परिधि से होते हुए एक कट्टर मताग्रही धार्मिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद तक सभी स्तरों के आग्रह व्यक्त हुए—ठीक उसी प्रकार जैसे कि भारत के सामाजिक-राजनैतिक चिन्तन में उद्योगवाद और औद्योगिक समृद्धि के प्रति उत्साह से लेकर पश्चिम के भौतिकवाद के प्रति घोर वितृष्णा तक सभी तरह की प्रतिक्रियाएँ लक्षित हुईं। विशाल मध्य-देश की संवेदना की वाहिका के रूप में हिन्दी ने इन सभी प्रभावों को प्रतिबिम्बित किया।

इस लेख की परिधि में इस विशाल संघर्ष और आन्दोलन का ... न तो सम्भव है और न आवश्यक ही। और कदाचित् इस बात

का उल्लेख भी प्रासंगिक न होगा कि इस संघर्ष के परिणाम में 'पूर्व' का एक भारतीय कल्पना-चित्र बन खड़ा हुआ, जो पश्चिमी अध्येता को उतना ही भ्रान्त और मनोरंजक जान पड़ेगा जितना हमें 'प्राच्य' का पश्चिमी कल्पना-चित्र जान पड़ता है। साहित्यिक प्रवृत्तियों के विवेचन में उल्लेखनीय बात इतनी है कि इस संघर्ष के अन्तिम वैज्ञानिक परिणति तक पहुँचने और एक व्यापक संश्लिष्ट दृष्टि के उपलब्ध होने तक के समय में एक के पीछे एक कई आदर्श अथवा प्रतीक-पुरुषों की परिकल्पना हुई। उपदेशवादी, रोमांटिक और प्रगतिवादी तीनों युगों के अपने-अपने प्रतीक-पुरुष अथवा नायक रहे। छायावाद का प्रतीक-पुरुष उत्कट देश-भक्त और परम्परागत आध्यात्मिक मूल्यों का रक्षक था; प्रगतिवाद का प्रतीक-पुरुष पार्टी आर्गेनाइजर, आन्दोलनकारी कामरेड था अथवा युयुत्सु किसान मजदूर। स्वदेश-भक्ति की प्रवृत्ति अनिवार्यतया वेदान्त की ओर हो जाती थी, क्योंकि वेदान्त पश्चिम के भौतिकवाद [illegible] निषेध का पर्याय हो जाता था। यही इस काल में लिखी गई अनेक हिमालय-वन्दनाओं का, और देश-भक्ति की भावना के साथ रहस्यवादी शब्दावली के उस गुम्फन का रहस्य है जो माखनलाल चतुर्वेदी अथवा 'नवीन' के काव्य में पाया जाता है।

प्रतीक-पुरुष की निष्क्रान्ति

समकालीन सन्दर्भ में इस संघर्ष का केवल ऐतिहासिक महत्त्व रह गया है। आज भारत आधी शताब्दी या एक पीढ़ी पहले की अपेक्षा संसार से कहीं अधिक सम्पृक्त हो गया है और पूर्व-पश्चिम का विरोध आज उतना सीधा या मौलिक नहीं रहा है। आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त स्वीकार और आत्मसात् कर लिया गया है और यह कहना कठिन है कि तरुण भारतीय लेखक और पश्चिमी लेखक की संवेदना में कोई आधार-भूत अन्तर है। अतएव हिन्दी में यह स्वाभाविक ही है कि छायावाद और प्रगतिवाद की नायक-पूजा का स्थान एक वैज्ञानिक मानववाद ले ले।

समकालीन प्रवृत्ति नायकवाद के विरुद्ध नहीं तो उसके प्रति उदासीन अवश्य है। लेखक अब मानव के निर्माण का प्रयत्न छोड़कर उसके परिचय और अनुसंधान से ही सन्तुष्ट है; क्योंकि वह उसकी गम्भीर महत्ता को स्वीकार करता है। समकालीन हिन्दी-लेखन की दृष्टि साधारण मनुष्य की ओर है। वह उसकी साधारणता को, और उसके राग-विराग, उसकी आशा-आकांक्षा, उसके सुख-दुःख, उसकी भूख-प्यास, उसके भय, त्रास, आनन्द और दुश्चिन्ताओं की साधारणता को स्वीकार करता है। वह साधारणता और अद्वितीयता में कोई विरोध नहीं देखता। मानव साधारण है; साथ-ही-साथ प्रत्येक मानव व्यष्टि अद्वितीय है: समकालीन लेखक इसी प्रतिज्ञा से मानव का अनुसन्धान और आस्था की खोज आरम्भ करता है। यह आस्था की खोज उसकी अनिवार्यता का संकेत भी समकालीन लेखन का, और विशेषतया नई कविता का एक लक्षण है। रोमांटिक कवियों के निराशावाद, अथवा प्रगतिवादियों के भविष्यत् स्वर्ण-युग के प्रति केन्द्रित आशावाद, दोनों के स्थान में मानव के प्रति आस्था की एक नई दृष्टि प्रकट हुई है जो मानव की त्रुटियों और मर्यादाओं को स्वीकार करती है। वर्गानुशासन, व्यापक सत्तावाद, राजकीय निर्देशन और संरक्षण के विरुद्ध जो प्रबल भावना आज लक्षित होती है उसके मूल में यह ज्ञान है कि अपनी साधारणता के कारण भाव को अपने बुनियादी मूल्यों की साधना से फुसलाया और बहकाया जा सकता है और अपनी बहुमूल्य निधि—अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता—को खो देने की दुर्बलता और उसके जोखम,—नया काव्य इन सभी को मानवीय अवस्थिति के रूप में स्वीकार करता है। इसी विशेषता के कारण सतही आलोचक नई कविता पर अनास्था का आरोप लगाते हैं। वास्तव में नये कवि में मूल्यों के प्रति एक नई और गम्भीरतर आस्था है और उसके साथ उन मूल्यों और प्रतिमानों की वास्तविकता और सात्त्विकता का बोध है। कुछ वर्ष पहले के लेखक ने अपने को जिस नैतिक संदर्भ के बीच खड़ा हुआ पाया था उसे

पुनर्निर्माण की तात्कालिकता का बोध नये कवि को है। मूल्यों के मूल स्रोत के बारे में आज जितना आग्रह है उतना पहले कभी नहीं था। इतना अवश्य है कि मानव के बाहर मूल्यों के किसी आधिदैविक स्रोत का आग्रह आज नहीं है। और मानवीय मूल्यों का उद्भव भी साधारण मानव में है, किसी काल्पनिक आदर्श अथवा प्रतीक-पुरुष से नहीं।

प्रयोगवाद : नई कविता

व्यक्तित्व की खोज के नये आधुनिक मानवतावादी आन्दोलन को प्रयोगवाद का नाम कुछ-कुछ वैसे ही व्यंग्यात्मक भाव से दिया गया था जिससे छायावाद को यह नाम दिया गया था। निस्सन्देह नई प्रवृत्ति के पहले संकलित प्रकाशन 'तार सप्तक' की भूमिका में जिज्ञासा और अन्वेषण की प्रवृत्ति पर जोर देते हुए 'प्रयोग' शब्द का व्यवहार किया गया था; इसी सूक्ष्म डोरे से यह नया नाम आन्दोलन के साथ बाँध दिया गया। नये आन्दोलन की प्रगतिशीलता केवल भाषा अथवा शिल्प के नये प्रयोगों तक सीमित हो ऐसा नहीं है। नैतिक जिज्ञासा, नये मूल्यों और प्रतिमानों की खोज, तथा उन आधारों और स्रोतों का अन्वेषण जहाँ से मूल्य उत्पन्न होते हैं, उसकी मूल प्रवृत्ति है। स्वयं इस प्रवृत्ति के कवि अपनी कविता को 'नई कविता' की अभिधा देना पसन्द करते हैं; यह नाम उनकी प्रवृत्तियों की विवेचना करते समय 'अज्ञेय'* द्वारा सुझाया गया था।

जैसा सभी साहित्यिक आन्दोलनों में सर्वत्र होता रहा है और होता है, नई कविता के आन्दोलन के साथ भी ऐसे लोग सम्पृक्त हैं जो उसे हल्का अथवा उसके प्रभाव को दुर्बल करते हैं। नये रूप-शिल्प की खोज की आड़ में बहुत-सी अधकचरी, भोंडी, रूपाकार-विहीन रचनाएँ नई कविता होने का दावा करने लगी हैं; निरा नयापन अथवा वैचित्र्य मौलिकता का, और अनगढ़पन प्रतिभा का दावा करने लगे हैं। और

*सच्चिदानन्द वात्स्यायन का उपनाम।

री दुखद बात यह है कि साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक,– जनमें (इने-गिने अपवादों को छोड़कर) सामूहिक रूप से दृष्टि अथवा ाहित्यिक परख का आधिक्य कभी नहीं रहा और जिन्होंने साहित्यिक त्रकारिता के प्रारम्भिक दिनों को छोड़कर अपने विचारों को कार्यान्वित करने का विशेष नैतिक साहस भी नहीं दिखाया,—वह कोई घनात्मक प्रभाव नहीं रखते हैं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं ा चयन विवेकपूर्ण नहीं होता। कहीं अमुक एक अथवा अमुक दूसरे कार की रचनाओं का सम्पूर्ण बहिष्कार है तो कहीं सभी प्रकार की चनाओं का उतना ही विवेकहीन स्वीकार। साहित्यिक पत्रिकाओं के म्पादन में इतना स्वेच्छाचार और पूर्वग्रह कभी नहीं देखा गया जितना ाज सहज होता है। समीक्षकों ने भी अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं िया है। देशी और विदेशी आलोचना-शास्त्र के अनुवाद अथवा अनु- रण के द्वारा आलोचना-सिद्धान्त का निरूपण और हिन्दी की सम द्धि अवश्य हुई है; पर समकालीन साहित्य के प्रति समीक्षा के उत्त- ..ित्व के प्रति बहुत कम समीक्षक सजग रहे हैं। भारत की प्राची परम्परा को देखते हुए, जहाँ सहानुभूतिपूर्ण व्याख्या और विश्ले- षण पर अधिक बल दिया जाता था और मूल्यांकन पर कम— साहित्यिक महत्त्व का निर्णय पाठकों की पीढ़ियों पर छोड़ दिया जा था—यह बात और भी विचित्र मालूम होती है कि आज का समीक्षक सबसे पहले मूल्यों का निर्धारण करना चाहता है, और उसके बा कुछ नहीं। यहाँ लेखक और पाठक के बीच की दूरी या तो [illegible] जीवन के विश्रृंखलता के कारण बढ़ती जाती है [illegible] [illegible] [illegible] के बीच सेतु बनाने के [illegible] और भी [illegible] रहा है। कहा जा सकता है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

अनुशासन के महत्त्व को वह और अधिक स्वीकार करता है।

सभी नई कविता को प्रयोगवादी, अथवा सभी प्रयोगशील कविता को नई कविता मान लेने से भ्रान्ति हो सकती है, क्योंकि वास्तव में नई साहित्यिक संवेदना का क्षेत्र भी राजनीतिक विचारों के कारण बँट गया है। नई संवेदना की दृष्टि से जिन कृतिकारों के नाम एक साथ लिये जाते, राजनीतिक मताग्रहों के आधार पर विवेचन करते समय उन्हें अलग-अलग और किसी हद तक परस्पर विरोधी वर्गों में बाँटना पड़ता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि प्रगतिवादी सम्प्रदाय के कुछ कवियों ने नई कविता के अनेक प्रयोगों को अपनाया अथवा उनसे लाभ उठाया; और यह स्वाभाविक भी था कि जनता के लिए लिखने का दावा करने वाले कवि क्रमशः ऐसे प्रयोगों को अपनाते चले जो दूसरों द्वारा किये गए थे और जो प्रारम्भ में एक शिक्षित अथवा दीक्षित समाज तक सीमित रहे भी हों तो क्रमशः सर्वमान्य हो गए। किंतु नई संवेदना के निर्माण में भी कुछ ऐसे व्यक्तियों का साथ रहा जो साधारणतया नई कविता के आंदोलन में नहीं गिने जाते अथवा जो साधारणतया किसी दूसरे सम्प्रदाय में गणित होते हैं। शमशेर बहादुरसिंह (१९११—) और भवानीप्रसाद मिश्र (१९१४—) का नाम इस कोटि के कवियों में लिया जा सकता है (दोनों 'दूसरे सप्तक' में संकलित हुए)। दोनों ही अपने-अपने ढंग से अद्वितीय हैं। शमशेर बहादुर की कविता में उर्दू की रंगत के साथ-साथ उसका परिमार्जन भी है, संवेदना की सूक्ष्मता के साथ भावों की सघनता और संकुलता भी। उनकी चित्रकली प्रतिभा ने उन्हें जापानी कविता की ओर भी आकृष्ट किया है। किंतु उनकी कठोर अनुशासित और मितभाषी भाव-संकुलता ही उनके जन-साधारण का कवि होने में बाधक होती है। उनकी काव्य-प्रतिभा असन्दिग्ध है, लेकिन वह जनता के नहीं, कवियों के कवि हैं। भवानीप्रसाद मिश्र भाषा और भाव-व्यंजना की दृष्टि से जन-

साधारण के अधिक निकट जा सके हैं। उनकी भाषा न केवल शब्द-चयन और वाक्य-रचना की दृष्टि से लोक-भाषा के निकट है वरन् उसका मुहावरा और उसके स्वरों का उतार-चढ़ाव भी साधारण बोल-चाल का है। 'बच्चन' स्वच्छंद-शास्त्र के बंधनों को मानते हुए जिस पथ पर चले थे, भवानीप्रसाद मिश्र ने उसी पथ पर चलते हुए छंद और ताल के नये बोध का निर्वाह किया है और इस प्रकार समकालीन प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया है।

नई कविता के सामने मूल्यों का प्रश्न मुख्य रूप से रहा है, किन्तु रचनात्मक गद्य में नई मानवतावादी प्रवृत्ति अनेक रूपों में प्रकट हुई है। निस्सन्देह जिस उभयचारिता का उल्लेख पहले किया गया वह नये लेखकों में भी पाई जाती है और ऐसे बहुत कम हैं जिन्होंने अपने को केवल एक साहित्य-रूप तक सीमित रखा हो। कवियों में से अनेक ने कविता के और साहित्यिक मूल्यों के सम्बन्ध में आलोचनात्मक गद्य लिखा है और कुछ ने अपनी जिज्ञासा का क्षेत्र रचना की प्रतिक्रिया के विभिन्न पहलुओं तक फैलाया है। धर्मवीर भारती (१९२६–) एक तरुण और प्रतिभाशाली कवि हैं, जिन्होंने उपन्यास और नाटक के क्षेत्र में भी प्रवेश किया है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (१९२९–), रघुवीर-सहाय (१९२९—), 'मदन वात्स्यायन', कुँवर नारायण, जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही, हरि व्यास (१९२३–), प्रयागनारायण त्रिपाठी (१९१९—) आदि अनेक तरुण साहित्यकारों के नाम लिये जा सकते हैं, जो हिन्दी के कृति-साहित्य के भावी उत्कर्ष की आशा बँधाते हैं।

प्रगतिवाद के उत्थान काल में ही एक और आन्दोलन भी प्रकट हुआ, जो कि नई कविता की साधारण धारा से अलग होते हुए भी मूलतः प्रगतिशील था—बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि ऐसे आन्दोलनों में सबसे अधिक मताग्रह था। इसका प्रभाव मुख्यतः प्रादेशिक रहा और बिहार के बाहर कदाचित् ही कोई इसकी ओर आकृष्ट हुआ हो।

इस आन्दोलन के प्रेरणा-स्रोत एज़रा पाउण्ड और ई० ई० कमिंग्स प्रभृति अंग्रेजी कवि थे। अपने तीन प्रवर्त्तकों के नामों के (नलिन विलोचन शर्मा, केसरी, नरेश,) आद्याक्षरों के आधार पर इसे 'नकेनवाद' कहा गया; स्वयं प्रवर्त्तकों ने अनन्तर इसे 'प्रपद्यवाद' का नाम दिया है। जैसा कि इस नाम से भी ध्वनित होता है यह आन्दोलन मुख्यतः काव्य-रूप से सम्बन्ध रखता है, और उसमें कोई विशिष्ट सामाजिक अथवा विषय-वस्तु-सम्बन्धी आग्रह नहीं है। प्रपद्यवाद के प्रतीक रोचक भी हैं और हिन्दी-काव्य के समकालीन शिल्प-विकास के अध्ययन में उपादेय भी, किन्तु उसे अभी तक कोई बहुत बड़ी उपलब्धि हुई है यह मानना कठिन है।

प्रामाणिकता की खोज ने प्रादेशिक अथवा आंचलिक उपन्यास-कहानियों को बल दिया। इसीको और इसके साथ-साथ एक अधिक व्यापक मानवीय सहानुभूति को प्रेरणा से गद्य और पद्य में देहाती और लोक-जीवन के नई भावपूर्ण चित्र रचे गए। नगरों की जीवनियाँ लिखी गई। निस्सन्देह कविता में 'गाँवों की ओर' जाने की प्रवृत्ति के कारणों का विवेचन करते समय नयेपन का आकर्षण और नये काव्य-रूप अथवा ताल के प्रति कुतूहल को भी उचित स्थान देना होगा और जनता के लिए जनता की भाषा में लिखने के वैचारिक आग्रह को भी। कविता के क्षेत्र में यहाँ पर शम्भूनाथ सिंह केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री (१९१९—), केदारनाथ सिंह, आदि के नाम लिये जा सकते हैं; यद्यपि लोक-गीतों की धुनों का आकर्षण औरों ने भी अनुभव किया। 'रेणु' (फणीश्वरनाथ, १९२१–), मार्कण्डेय (१९३१–), केशवप्रसाद मिश्र, मनोहर श्याम जोशी, शिवप्रसाद सिंह प्रभृति तरुण गद्य-लेखकों ने विभिन्न अंचलों के जीवन-चित्र, कहानी अथवा उपन्यास में प्रस्तुत किये हैं। 'रेणु' का 'मैला आँचल', नये प्रादेशिक अथवा आंचलिक उपन्यासों में विशिष्ट और

रखता है। प्रादेशिक उपन्यास के क्षेत्र में 'रुद्र' (१९११–) की 'बहती गंगा' में काशी नगरी की परम्परागत जीवन-पद्धति को मूर्त किया गया है। नागार्जुन और अमृतलाल नागर की देन भी उल्लेखनीय है। अमृतलाल नागर के उपन्यास विशिष्ट प्रदेश के जीवन का नहीं, किसी विशिष्ट समाज या वर्ग के जीवन का ही चित्रण करते हैं। लेकिन उनका जान-बूझकर इस प्रकार मर्यादित करना प्रामाणिकता के आग्रह का ही परिणाम है। उनका शिष्ट और संयत हास्य उनके चित्रण की प्रामाणिकता को पुष्ट करता है और उसे अधिक व्यापक आकर्षण देता है। गीति-नाट्य और संगीत-रूपक लिखने की प्रवृत्ति भी इधर लक्षित हुई है। निस्सन्देह ऐसी रचनाओं को रेडियो से भी विशेष प्रेरणा मिली, किन्तु वही इन रचनाओं का मूल कारण रहा हो ऐसा नहीं माना जा सकता। रेडियो के लिए विशेष रूप से अनेक नाटक और एकांकी लिखे गए, लेकिन इनका स्तर भारत में रेडियो-प्रसारण के साधारण स्तर से ऊँचा कदाचित् ही उठता है। जो नाटक विशेष रूप से रेडियो के लिए नहीं लिखे गए उनमें कोई-कोई अच्छे हैं, किन्तु एक जीवित रंग परम्परा और रंगमंच के साथ लेखक के सक्रिय सम्बन्ध की अनुपस्थिति नाटक के विकास में बाधक रही है। उपेन्द्रनाथ अश्क (१९१०–), रामकुमार वर्मा (१९०५–), लक्ष्मीनारायण मिश्र (१९०३–), जगदीशचन्द्र माथुर (१९१६–) और भारत भूषण अग्रवाल (१९१९–) की नाटक रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

जिस काल की विवेचना यहाँ की गई है उसमें अनेक कीर्तिमान भी हुए जिनमें से कुछ की रचनाएँ अपने ढंग की अच्छी रचनाएँ हैं और लोकप्रिय भी हुई हैं। किन्तु एक तो समालोचना रचना अच्छी होकर भी नई प्रवृत्तियों के विवेचन में स्थान नहीं रखती (यह सच है कि परम्परानुवर्ती रचना स्वयं नई प्रवृत्ति न बन भी जाय) और दूसरे [illegible] प्रवृत्ति [illegible] और कविता को सर्वव्यापी बनाने की नहीं है। फिर भी कोई भी [illegible] अपने [illegible] को अपने कविता न नहीं लिख

है। यदि यह पूर्वग्रह है तो इतना व्यापक कि उसे प्रवृत्ति मानना चाहिए; दूसरे लेखक को उसमें इन्कार भी नहीं है।

समकालीन साहित्य का विवेचन कृति साहित्य के विवेचन तक ही सीमित रह सकता है। समकालीन आलोचना की आलोचना दोहरे जोखम का काम है, क्योंकि उसमें पूर्वग्रह द्विगुणित हो जाता है। फिर भी जहाँ तक आलोचना की नई प्रवृत्तियाँ रचनात्मक अथवा प्रासंगिक हैं उनका उल्लेख यहाँ हो गया है।

समकालीन साहित्य-प्रवृत्तियों की कोई भी रूपरेखा विवाद से परे या पूर्वग्रह से सम्पूर्णतया मुक्त नहीं हो सकती। तटस्थता के लिए देश को नहीं तो काल की यथेष्ट दूरी अपेक्षित होती है।

प्रस्तुत रूपरेखा हिन्दी-साहित्य से परिचित पाठक को फिर से अपनी मान्यताओं की परीक्षा करने की और अपरिचित पाठक को उसका रसास्वादन करने की प्रेरणा दे सके तो लेखक के लिए इतना यथेष्ट है। लेखक के पूर्वग्रहों की जगह पाठक निस्सन्देह अपने पूर्वग्रह बैठा लेगा; इसका न्याय तो भविष्य ही कर सकता है।

अंग्रेज़ी

(भारतीयों द्वारा निर्मित साहित्य)

के० आर० श्रीनिवास आयंगर

सामान्य परिचय

भारत में ब्रिटिश प्रभाव के कारण और जो भी चीज़ हुई हो, अंग्रेज़ी में बहुत-सा महत्त्वपूर्ण लेखन शुरू हुआ, जिसे कि सुविधा के लिए 'इण्डो-इंग्लिश' साहित्य कहा जाता है। परन्तु यह वस्तुतः द्विमुख साहित्य है। पहले तो वह साहित्य है जो भारत में रहने वाले अंग्रेज़ों ने लिखा—या बहुत कम ऐसा भी हुआ है कि भारत की ओर आकर्षित हुए अंग्रेज़ों ने रोमांटिक दूरी से—दोनों ने भारत के बारे में लिखा है। इन सब लेखकों ने भारत को अपने लेखन का विषय बनाया। चौसर के समय से अंग्रेज़ लेखक निःसन्देह अपनी रचनाओं में भारत का कहीं-कहीं अस्पष्ट उल्लेख करते रहे हैं। परन्तु 'एंग्लो-इंडियन साहित्य' अर्थात् वह साहित्य, जो कि भारतीय विषयों पर भारतीय दृष्टि से प्रेरित होकर अंग्रेज़ों द्वारा रचा गया, सर विलियम जोन्स के साथ शुरू होता है, १८ वीं शती के अन्त में। दो समृद्ध संस्कृतियों के परस्पर-प्रभाव से नई निर्मिति अनिवार्य थी. परन्तु वस्तुतः 'एंग्लो-इंडियन' लोगों ने ऐसे मौके का फायदा नहीं उठाया। जोन्स और लेडेन, सर अलफ्रेड लियाल और सर एडविन अरनोल्ड ने शुरूआत तो बड़ी अच्छी की, मगर यह प्रारम्भ ही मानो उसका अन्त था। ये अच्छे इरादों वाले लोग थे, फिर भी 'एंग्लो-इंडियन' लोगों में

जातीय श्रेष्ठता की भावना ग्रंथि के रूप में थी, और इस कारण से इन दोनों संस्कृतियों का सच्चा संश्लेषण कभी नहीं हो सका। इसमें श्रद्धा और दिलचस्पी दोनों का अभाव था, साधारण 'एंग्लो-इंडियन' लेखक (मिस्टर० ई० एफ० ओटेन को उद्धृत करूँ तो) 'निरर्थकता और उद्देश्यहीनता की चट्टानों और जंगलों में, यह लेखक खो गया था। फॉस्टर का 'पैसेज टु इंडिया'-जैसा श्रेष्ठ ग्रंथ और (इसी क्रम में बिलकुल विपरीत छोर पर) निकल्स का 'वर्डिक्ट ऑन इंडिया'-जैसी भयानक पुस्तक अंग्रेजी साहित्य में केवल संयोग के रूप में हैं; वे 'एंग्लो-इंडियन' साहित्य के उत्कृष्ट या निकृष्ट नमूने नहीं हैं। भारत में स्वतंत्रता के आगमन के पश्चात् 'एंग्लो-इंडियन' साहित्य ने उसकी विशेष स्थिति स्वाभाविक रूप से खो दी, यद्यपि अभी भी अंग्रेजों (और अमरीकियों) द्वारा किताबें लिखी जा रही हैं, जिनमें कम या अधिक मात्रा में पहचानी जा सकने वाली भारतीय पार्श्व-भूमि होती है।

दूसरी तरफ वह साहित्य है जो कि भारतीयों ने अंग्रेजी में लिखा है, और इसे 'इण्डो-एंग्लियन' साहित्य कहना अनुचित न होगा। यद्यपि मिस्टर जार्ज सैम्पसन ने टैगोर, मनमोहन घोष और श्री अरविन्द-जैसे भारतीय लेखकों को अपने 'संक्षिप्त कैम्ब्रिज अंग्रेजी साहित्य के इतिहास' में शामिल किया है और 'एंग्लो-इंडियन' साहित्य-विभाग में उनकी रचनाओं पर अपने विचार भी दिए हैं। फिर भी वह अंग्रेज जो कि भारतीय विषयों पर लिखते हैं, और वह भारतीय जो अंग्रेजी को अपनी कलात्मक अभिव्यंजना का माध्यम मानते हैं, इन दोनों में हमें अन्तर करना ही होगा। १८८३ में कलकत्ता में एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक था 'इंडो-एंग्लियन साहित्य', इसमें देशी विद्यार्थियों की रचनाओं के नमूने थे। इधर हाल में, विशेषतः विगत २५ वर्षों में, 'इंडो-एंग्लियन' शब्द बहुत-कुछ चल गया। इसका कोई जातीय या धार्मिक अर्थ नहीं है। यह केवल वर्णनात्मक शब्द है और यह विशेषण लेखक तथा साहित्य दोनों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि

यह शब्द अब आम हो गया है।

प्रस्तुत लेखक की पी० ई० एन० द्वारा प्रकाशित 'इंडो-एंग्लियन साहित्य' पुस्तक की भूमिका में स्वर्गीय डॉ० सी० आर० रेड्डी ने घोषित किया था :

> 'इंडो-एंग्लियन' साहित्य भारतीय साहित्य से मूलतः भिन्न नहीं है। वह उसका भाग है, वह उसी गौरव का आधुनिक पहलू है जो कि उसे वेदों से मिलाता है, उसका सौम्य प्रकाश सामने और इतिहास की ऊँची-नीची अवस्थाओं में से कभी कम और कभी अधिक चमक के साथ फैलाता आता रहता है। टैगोर, इक़बाल और अरविन्द घोष के आधुनिक समय तक यह प्रकाश चला आ रहा है, वह फैलता ही जाता है और हमारी मानव-जाति की विस्तृत होती जाने वाली भवितव्यता का वह संकेत है।"

अब, भारतीय साहित्य भी, आधुनिक अवस्था में, एक शताब्दी से कुछ ही अधिक आयु वाला है। १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में इस विस्तृत महाद्वीप में, जो कि एक समय विद्या, कला और संस्कृति का घर था, शायद ही कोई शिक्षा प्रचलित थी, जिसका कि उल्लेख किया जा सके। उस समय कोई गम्भीर प्रयत्न भी नहीं हुआ—शायद परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं कि जिसके कारण न हो सका—कि जो थोड़े-बहुत परम्परित ज्ञान के धड़कते हुए केन्द्र थे, उनमें और अशिक्षित लाखों लोगों के बीच में बढ़ती हुई खाई पाटी जा सके। अकथनीय शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आलस्य, भारतीय जनता को घेरे हुए था। भारतीय संस्कृति का प्रभाव राष्ट्रीय दासता की तप्त मरुभूमि में मानो खो गया था।

ब्रिटिश प्रभाव ने समय के पूरे होने पर हमें तीन आवश्यक प्रेरणाएं दीं। श्री अरविन्द के शब्दों में "प्रसुप्त बौद्धिक और आलोचनात्मक शक्ति उसने पुनर्जीवित की; जीवन को उसने फिर से बसाया और नई सृजन स्पृहा जागृत की; पुनर्जागृत भारतीय आत्मा को नवीन परि-

:थतियो और आदर्शों के सामने उसने रख दिया, और उन्हें समझने, पनाने और जीतने की आवश्यकता के प्रति चेतन बनाया।" नये त्वार और नये साहित्य की यदि जड़ें जमानी थी और उन्हें फलना-लना था, तो विचार और उद्देश्य का नया वातावरण भी निर्मित करना ावश्यक था। यह वही परिचित भारतीय भूमि हो सकती थी, परन्तु ाधुनिक उपकरण और समृद्ध खाद का स्वागत भी बहुत आवश्यक था। जा राममोहन राय, एक द्रष्टा, महापुरुष थे। उनमें बड़ी प्रतिभा और केन थी। उन्होंने नये सशक्त भारत का स्पष्ट स्वप्न लिया, और उसे ा करने के लिए बड़ी तुरन्त असरकारक प्रयत्न उन्होंने किये। ईसाई मिश-रियों ने सारे देश में छापेखाने शुरू कर दिए थे और भारत की प्रादेशिक पाओं में 'बाइबल' के सस्ते संस्करण उन्होंने प्रकाशित किये थे। च्य-विद्यावादियों ने भारतीय विद्वत्ता को एक नया मोड़ दिया, प्राचीन ग्रंथों का विस्मृति के गर्भ से उद्धार किया और संसार लिए उन्हें सुलभ बनाया। उस समय तक अंग्रेजी के पक्षधर और ी शिक्षा के मानने वाले बड़े वर्षों तक तात्त्विक लड़ाई लड़ते रहे, परन्तु ारक परास्त होते गए। राममोहन और उनके साथियों का क्रांति-ी उत्साह, मिशनरियों का शिक्षा का प्रयत्न, और १८३५ में सरकार र मैकाले की अंग्रेजी के माध्यम से आधुनिक शिक्षा की योजना की पता ने कम-से-कम एक सदी के लिए भारतीय शिक्षा और संस्कृति एक ढांचा निश्चित कर दिया।

धीरे-धीरे किन्तु निश्चयात्मक गति से ऐसे स्कूल और कालेज, जो अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा देते थे, संख्या में बढ़ते गए और उनकी प्टा भी बढ़ती गई, और एक-दो पीढ़ियों के अन्दर भारतीयों की ा बड़ी संख्या यूरोपीय (और विशेषतः अंग्रेजी) साहित्य और ति की विविध समृद्धि से परिचित होने लगी। बहुत-से तरुण, े इस गतिशील शिक्षा का वरदान नई संस्थाओं द्वारा मिला, यह से चाहते थे कि भारत को फिर से दुनिया के सांस्कृतिक नक्शे में

प्रतिष्ठित किया जाय। उनकी आकांक्षाएँ थीं कि इस मौन देश को फिर से मुखर किया जाय। इसका स्वाभाविक अर्थ यह था कि उन्हें या तो अंग्रेजी में या अपनी मातृभाषा में लिखना चाहिए था। उन्हें अंग्रेजी में इसलिए लिखना आवश्यक था कि अपने अंग्रेज स्वामियों का ध्यान वे इस प्रकार से आकर्षित कर सकते थे और विभिन्न भाषा क्षेत्रों के देशवासियों तक वे पहुँच सकते थे; और वे अपनी मातृभाषा में इसलिए लिखना चाहते थे कि उसके बिना वे अपनी आत्म-तृप्ति नहीं पा सकते थे, और जनसाधारण को शिक्षित करने की आशा नहीं रखते थे। और चाहे वे अंग्रेजी में लिखें या अपनी मातृ-भाषाओं में, उन्होंने आदर्श ग्रहण किया अंग्रेजी साहित्य से। आधुनिक यूरोपीय साहित्य में यही एक-मात्र आदर्श उनके सामने था। पश्चिमी प्रभाव का आघात लगते ही यहाँ की धरती गोड़ी गई थी,, अंग्रेजी साहित्य ने मानो इस क्षेत्र को और उपजाऊ बनाया; धीरे-धीरे आधुनिक भारतीय साहित्य जन्म लेने लगा। आधुनिक बंगाला, हिन्दी, मराठी, तेलुगु, तमिल, और गुजराती साहित्य की भाँति 'इंडो-एंग्लियन' साहित्य भी एक भारतीय साहित्य ही है, जिसकी अपनी उज्ज्वल परम्परा है, और जो समृद्ध जीवन और शक्ति के चिह्न अभी भी प्रदर्शित करता है।

'इंडो-एंग्लियन साहित्य' की कहानी पाँच असमान हिस्सों में बाँटी जा सकती है :—

१८२०-१८७० : आरम्भिक—महान् अग्रदूतों का युग;

१८७०-१९०० : आत्मा का पुनर्जागरण—धार्मिक और सांस्कृतिक जागृति का युग;

१९००-१९२० : राजनैतिक जागृति का युग—'वन्देमातरम्' और 'होमरूल' का युग;

१९२०-१९४७ : गांधीवादी क्रांति का युग—आधुनिक 'चेतना' का युग;

१९४७—: स्वतन्त्रता का युग।

यह एक सुविधाजनक विभाजन है, इसे न अन्तिम मानना चाहिए, और न ही इसमें का एक भाग दूसरे भाग से बिलकुल अलग है।

१८२०-१८७०

जैसी कि आशा की जा सकती है, भारतीयों का अंग्रेजी में प्रथमतः श्रम गद्य में था और राममोहन राय पहले इण्डो-एंग्लियन लेखक थे। राममोहन राय सचमुच अग्रदूत थे। उनका व्यक्तित्व महान् था, हमारे राष्ट्रीय जीवन के कई अंगों में उन्होंने सोद्देश्य सुधार प्रारम्भ किया और जो-कुछ उन्होंने किया वह एक निर्माता का कार्य था। यह उनका सौभाग्य था कि वे बहुत-सी जमीन साफ करते और आने वाले नए भारत की नींव डालते। और सब बातों के अलावा वे अंग्रेजी गद्य के अधिकारी लेखक थे। उनका आकर्षक और शक्तिशाली व्यक्तित्व 'प्रिसेप्ट्स आफ जीसस' (१८२०)—जैसी पुस्तकों में और अगणित अन्य पुस्तिकाओं और ट्रैक्टों में व्यक्त हुआ।

यदि राममोहन राय आत्म-विश्वासी और अधिकारयुक्त सहजता से अंग्रेजी लिखने वाले पहले भारतीय थे तो हेनरी डेरोजिओ प्रथम इण्डो-एंग्लियन कवि थे। इनका जन्म १८०७ में हुआ। जीवन कुछ उखड़ा सा रहा, और हैजे से वे १८३० में मर गए। उन्होंने अपने पीछे काफी-सी अंग्रेजी कविता लिख छोड़ी, जिसमें 'दि फकीर आफ जंघीरा' नामक लम्बा कथा-काव्य भी है। अर्ध-भारतीय, अर्ध-पुर्तगाली डेरोजिओ अपने भावों में पूर्णतया भारतीय थे और भारत का राष्ट्रीय वीर-कवि बनने की इच्छा रखते थे। कविता के क्षेत्र में उनकी उपलब्धि उल्लेखनीय है। जो-कुछ उन्होंने लिखा है, उसमें बड़ी सम्भावनाएँ छिपी हुई थीं। दूसरे अग्रदूत काशीप्रसाद घोष 'शायर और दूसरी कविताएँ' (१८३०) के निर्माता थे; परन्तु उनकी कृतियों में बहुत कम सच्चे काव्य-गुण हैं।

बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के विश्वविद्यालय १८५७ में स्थापित

हुए। एक नई पीढ़ी जाग उठी जो कि मिल्टन की महान् कविता की तुतलाहट और बर्क के गर्जनायुक्त भाषणों की पुनरावृत्ति अपने गद्य और पद्य में करने लगी; और इण्डो-एंग्लियन लेखक को ऐसे लगा कि उसके पढ़ने वालों और रसिकों की संख्या बढ़ रही है। अंग्रेजी में पत्रकारिता ने कई तरुणों को आकर्षित किया, परन्तु कविता के अपने अलग रसिक थे। इनमें माइकेल मधुसूदन दत्त का स्थान बहुत उच्च है। वे एक भारतीय ईसाई थे, और इनके भाग्य-नक्षत्र भी काफी प्रतिष्ठित थे। वे प्रथमतः बंगला साहित्य में लिखते रहे, परन्तु बाद में उन्होंने अंग्रेज़ी अखबार का सम्पादन किया और अंग्रेज़ी में एक लम्बी कविता लिखी, जिसका शीर्षक था 'दि कैप्टिव लेडी' (१८४९), इसमें पृथ्वीराज और रानी संयोगिता की कहानी सजीव ढंग से कही गई है।

१८७०-१९००

यह थे अग्रदूत; परन्तु केवल अनुकरण करने वाले, ऐसे लेखक (जिन्होंने व्यर्थ ही भारतीय विचार या भावना का विवाह अंग्रेज़ी रूप-शिल्प के साथ करना चाहा,) कई थे। अंग्रेज़ी रोमांटिक—१९वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल के कवि और उपन्यासकार—उन्हें भयानक रूप से आकर्षित करते थे, परन्तु इंडो-एंग्लियन प्रयोग अधिकतर बिलकुल ही निकम्मे थे। साथ-ही-साथ युग की आत्मा कई अलौकिक स्त्री-पुरुषों के रूप में व्यक्त हुई, जिन्होंने बार-बार यह सिद्ध किया कि वे अंग्रेज़ी के माध्यम द्वारा वे बड़ी सफल आत्माभिव्यंजना कर सकते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों में एक ऐसा ही आध्यात्मिक पुनर्जागरण सा समस्त भारत में आया। रामकृष्ण परमहंस ने भारत की आँखें खोल दीं, जो कि कुछ समय के लिए पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध से मानो अंधी हो गई थीं। इन आँखों ने आत्मा के व्योम का वैभव देखा। विवेकानंद अपने स्वामी का संदेश सभ्य संसार के कोने-कोने तक ले गए, वेदान्त के भाष्य और मिशनरी प्रचार के उद्देश्य से उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा

का प्रयोग किया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज और प्रार्थना-समाज-आंदोलन के कई प्रचारकों ने अंग्रेज़ी भाषा का बड़ा अधिकारपूर्ण और प्रवाहपूर्ण उपयोग किया।

आरु दत्त और तोरु दत्त के रूप में इंडो-एंग्लियन कविता के इतिहास की सफलता का सच्चा सार्थक अध्याय सम्पूर्ण होता है—परन्तु इस सफलता के साथ-साथ शोक भी मिश्रित था। आरु १८७४ और तोरु १८७७ में स्वर्गवासी हो गईं, तब उनकी आयु क्रमशः २० और २१ थी। ईरोजिनी की तरह आरु और तोरु भी 'ऐसी कीर्ति की अधिकारिणी थीं जो कि अधूरी ही रह गई।' ये कवयित्रियाँ महान् सम्भावनाएँ लिये हुए थीं और उनकी उपलब्धि भी कम नहीं है। रोमांटिक स्कूल के फ्रेंच भाव-गीतों का अंग्रेज़ी अनुवाद जो उन्होंने किया था, वह १८७६ में प्रकाशित हुआ, उसका शीर्षक है 'ए शीफ ग्लीन्ड इन फ्रेंच फील्ड्स'। जब आरु अपने प्रसिद्ध 'मॉनिंग सेरेनेड' नामक कविता-संग्रह की नई रचनाएँ लिख रही थीं जिस संग्रह को देखकर एडमंड गोस 'आश्चर्य और आनन्द से भर उठे', तोरु की मूल प्रेरणा उनके पीछे-पीछे थी और वस्तुतः केवल उनका नाम मुख्य पृष्ठ पर छपा था। १८८२ में उनका 'एन्शण्ट बैलेड्स एंड लीजेंड्स ऑफ हिंदुस्तान' नामक संग्रह उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ और उससे यह और भी सिद्ध हुआ कि एक विदेशी माध्यम से भावोद्गार व्यक्त करने की उनकी शक्ति कितनी सहज थी और उन्हें अंग्रेज़ी पर कैसा अद्भुत अधिकार प्राप्त था! सावित्री और सीता, ध्रुव और प्रह्लाद की कहानियाँ ही इन कविताओं में पुनः नई ताज़गी और आकर्षण के साथ कही गई हैं। तोरु दत्त की कविता, प्रथम प्रकाशित होने को आज ८० साल बीत चुके हैं, फिर भी यह निश्चित है, जैसा मिस्टर एच० ए० एम० फिशर ने कहा है, उनकी कविता, 'अंग्रेज़ी कवियों की महान् परम्परा में गिनी जायगी।'

आरु और तोरु दत्त से उल्टे रमेशचन्द्र का जीवन लम्बा और सम्मानपूर्ण था। 'ए हिस्ट्री ऑफ सिविलाइज़ेशन इन एन्शण्ट इंडिया'

(१८९०), 'इकानामिक हिस्टरी आफ ब्रिटिश इंडिया' (१९०२) और 'इंडिया इन दि विक्टोरियन एज' (१९०४)–जैसे ग्रंथों के अलावा उन्होंने रामायण और महाभारत के अंग्रेजी पद्यानुवाद प्रकाशित किये; उनके दो बंगाली उपन्यास भी अंग्रेजी में छपे हैं, जिनके नाम हैं, 'दि लेक आफ पाम्स' और 'दि स्लेव-गर्ल आफ आगरा'। रमेशचंद्र के रामायण और महाभारत संक्षिप्तिकरण के महान् उदाहरण हैं, क्योंकि उन्होंने २,४००० मूल रामायण के श्लोकों को और महाभारत के २,००,००० श्लोकों को अंग्रेजी के ४,००० दो चरणों के पद्य में उतारा है। और यह कार्य भद्दे ढंग से मूल महाकाव्यों को संक्षिप्त करके नहीं किया, किंतु कई मूल घटनाओं को छोड़कर और कई मूल वर्णनों को कम करके और जहां आवश्यक था वहां गद्य में पूरक बातें सुझाकर किया गया है। रमेशचंद्र के कार्य के लिए यह कहना पर्याप्त प्रशंसा होगी कि समय की कसौटी पर यह ग्रंथ सफल साबित हुए हैं और अब भी अंग्रेजों को हमारे साहित्य का, हमारे राष्ट्रीय महाकाव्यों का सर्वोत्तम परिचय इन ग्रंथों से मिलता है। अंग्रेजी के अन्य लेखकों में रामकृष्ण पिल्लई ('टेल्स आफ इंडिया' १८९५), 'बेहराम जी मालाबारी' ('दि इंडियन म्यूज इन इंग्लिश गार्ब', १८७६, और 'दि इंडियन आई ऑन इंगलिश लाइफ', १८९३) और नागेश विश्वनाथ पै ('स्ट्रे स्केचेज इन चकमकपोर', १८९४ और 'दि एंजल आफ मिसफोर्च्यून', १९०४) थे। पै इन तीनों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण लेखक थे, डिकेन्स की तरह उन्होंने कई व्यक्ति-चित्र खींचे हैं और वर्णनात्मक कविता भी लिखी है। दोनों तरह के लेखन में अंग्रेजी माध्यम का निर्वाह करके उन्होंने भारतीय वातावरण पूरी तरह व्यक्त किया है और इससे उनके लेखन में एक विलक्षणता और चमत्कार उत्पन्न हुआ है। रामकृष्ण पिल्लई ने भी दो उपन्यास लिखे : 'पद्मिनी' (१९०३) और 'दि डाउन आफ ब्लड' (१९१२)। यह दोनों ही अत्यंत साधारण कोटि के हैं।

१९००–१९२०

अब हम दो महान् लेखकों की ओर मुड़ते हैं, टैगोर और श्री अरविन्द। ये दोनों ऐसी महान् प्रतिभाएँ थी कि इन्होंने एक ही क्षेत्र में कार्य नहीं किया, परन्तु अनेक क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा व्यक्त की। इन दोनों व्यक्तित्वों ने करीब साठ वर्ष तक अपना प्रभाव दिखलाया, उन्नीसवीं और बीसवी शताब्दी के बीच में ये लेखक पुल की तरह थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से राजनैतिक मोर्चे पर बहुत-कुछ हलचल शुरू हो गई थी। इस सदी के प्रथम दशक में राष्ट्रीय आन्दोलन को एक ज्वलन्त सोद्देश्यता और प्रयोजन प्राप्त हुआ। 'वन्दे मातरम्' भारत की जागरूक राष्ट्रीयता का यह मंत्र बन गया और पहले बंगाल और बाद में सारे भारत ने कर्मक्षेत्र की पुकार का उत्तर देना शुरू किया, जब कि एक विदेशी सत्ता ने उन्हें जेल में डाल दिया। रातों-रात साहित्यिक कर्मवीर बन गए और कर्मवीर साहित्यिक। श्री अरविन्द को अलीपुर की जेल की कोठरी में 'नारायण दर्शन' हुए, और टिळक ने माडले जेल में 'गीता-रहस्य' लिखा। बीसवी शताब्दी के पहले दो दशकों में 'वन्दे मातरम्' और 'होमरूल'-आन्दोलन ऐसे थे कि उनसे बड़ी हलचल और वीरोचित वेदना जाग उठी। इस काल का साहित्य—और इंडो-एंग्लियन साहित्य भी कम नहीं है—जनता के परिश्रम और सहनशक्ति, पराजय और सफलता का पूरा प्रतिबिम्ब व्यक्त करता है।

यद्यपि यह सच है कि टैगोर का स्थान—और वह काफी बड़ा स्थान है—बंगाली साहित्य में है। परिस्थितियों ने उन्हें मजबूर किया (जैसा कि कई और लेखकों को भी विवश किया) कि वे द्विभाषिक बनें, और इस तरह से इंडो-एंग्लियन साहित्य में भी एक चिरन्तन स्थान उन्होंने ग्रहण कर लिया। अपनी कविता और नाटकों के अंग्रेजी अनुवाद उन्होंने किये, उन अलावा उन्होंने अंग्रेजी में 'दि चाइल्ड' लिखा। यह सब तरह के स्त्री-पुरुषों के सन्तोष-मन्दिर की काल्पनिक तीर्थ-यात्रा का वर्णन है, इसमें

मानो इब्सन के 'ब्रांड' नाटक को उन्होंने पुनर्जीवित किया है। उनकी गद्य-कृतियाँ भी—विशेषतः 'साधना', 'नेशनलिज्म', 'परसनेलेटी', 'दी रिलिजन ग्राफ मेन' (१९३०) मूलतः अंग्रेजी में लिखी गई थीं, ये अन्तर्राष्ट्रीय पाठकों के लिए लिखी गई थीं। चाहे जिन मापदण्डों को काम में लाइये, टैगोर की प्रमुख उपलब्धियों की ओर ध्यान स्वाभाविक होता ही है। वे केवल बंगाल के नहीं हैं, परन्तु भारत और सारे विश्व के हैं। कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, दार्शनिक, शिक्षा-शास्त्री और उदात्त मानवतावाद के मसीहा के नाते जागृत भारत के इस महान् राष्ट्र-कवि के विभिन्न पहलू ऐसे बड़े व्यक्तित्वों में समाए हुए हैं, जिन्हें कि रवीन्द्रनाथ कहा जाता है और जो इन सबसे ऊपर और कुछ अधिक है। "हमारे दरवाजे पर उसने दस्तक दी और उसकी सब छड़ें जैसे टूट गईं। हमारा दरवाजा एकदम खुल गया।"

अरविन्द घोष और उनके बड़े भाई मनमोहन की शिक्षा इंग्लैंड में हुई और वहीं पर उन्होंने कला की मात्राएँ ग्रहण कीं। ऑस्कर वाइल्ड, मनमोहन की कविताओं से इस तरह प्रभावित हुए, जैसे कि उन्होंने 'पाल माल गजट' में लिखा : "मिस्टर घोष किसी-न-किसी दिन हमारे साहित्य में बड़ा नाम प्राप्त करेंगे।" 'लव सोंग्स एण्ड एलेजी' (१८९८) और उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित 'सोंग्स ग्राफ लव एण्ड डेथ' (१९१९) में मनमोहन का सबसे स्थायी कृतित्व है। 'इम्मार्टल ईव' और 'ओर्फिक मिस्टरीज' नामक दो लम्बी कविताएँ सच्चे करुण रस और भव्य कविता से आप्लावित हैं। दुःख उनके जीवन में था, मगर उनसे वे एकदम कड़ुवे नहीं हुए; वास्तवतः वे गहरी उदासी में डूबे हुए थे। मनमोहन अन्त तक 'उस महान् भय को पकड़े रहे, जिसकी, सर्वदा शानमयी होती है।"

मनमोहन के भाई अरविन्द की शिक्षा 'सेण्ट पाल्स' लंदन में शुरू होकर कैंब्रिज में समाप्त हुई। उन्होंने आई० सी० एस० की परीक्षा दी, फिर भी सौभाग्य से वे उसके बंधनों से मुक्त हुए। कुछ समय तक वे

बड़ौदा कालेज में पढ़ाते रहे और जल्दी ही वे राजनीति की ओर आकर्षित हुए। साथ-ही-साथ वे योग का अभ्यास भी कर रहे थे। १९०७-१९०९ तक राजनीति में प्रमुख भाग लेने के बाद वे पांडिचेरी में अध्ययन और मनन के लिए चले गए, और तब से दिसम्बर १९५० में अपनी मृत्यु तक वे वहीं रहे। उन्हें कई भाषाओं का ज्ञान था—ग्रीक और लैटिन, अंग्रेज़ी और फ्रेंच, जर्मन और इटालवी, संस्कृत और बंगाली—कई ज्ञान और विज्ञानों के वे स्वामी थे। समय आने पर वे एक 'महापुरुष' और 'महायोगी' और अनन्त के तीर्थ-यात्री बन गए। उनके आस-पास पांडिचेरी में साधकों का एक दल जमा हुआ और उनकी मृत्यु के समय से उन्होंने जो आश्रम स्थापित किया था, वही एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का केन्द्र बन गया है।

केवल कवि और जीवन तथा साहित्य के आलोचक के नाते श्री अरविन्द हमारे समय के महान् चिन्तकों में एक हैं। उनकी कविता के दो बड़े खण्ड 'कलेक्टेड पोयम्स एण्ड प्लेज़' (१९४२) में १८९० से लगाकर नवीनतम प्रयोगों तक उनकी कविता के नमूने जमा हैं। अनुवादक और वर्णनात्मक कवि के नाते, छन्द और शब्दों के कारीगर के नाते, गीत-कवि और नाट्य-कवि के नाते, एक प्रयोगकर्ता और अन्वेषक के नाते और सबसे बढ़कर एक भविष्य-वक्ता कवि के नाते श्री अरविन्द का काव्य-कृतित्व अतुल है। 'उर्वशी' और 'लव एण्ड डेथ' दिव्य मुखर पद्य-गाथाएँ हैं, जब कि 'बाजी प्रभु' प्रथम कोटि का वीर-काव्य है; 'परसियुस', 'दि डिलीवरर' मुक्त छन्द में एक नाटक है, उसकी घटनाएँ भविष्यवाणी से भरपूर हैं; 'दि रोज़ ऑफ़ गॉड' और 'थॉट दि पैरॅक्लीट' उत्तम रहस्यवादी कविता के नमूने हैं। श्री अरविन्द ने पुराने परिमाणात्मक छन्दों को सफलतापूर्वक अपने कार्य के लिए ढाला है और 'अाह्ना और इल्योन' नामक कविता में बेचारा निन्दित 'हैक्सामीटर' नामक छन्द प्रयुक्त करके वे नए लय उपस्थित करते हैं।

श्री अरविन्द गद्य के बड़े शैलीकार तो थे ही, सर टॉमस ब्राउन और डी

विदग्धों की परम्परा में शायद थे, लिखते थे; किन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे बहुत सादा और स्वाभाविक सहज गद्य भी लिखते थे। 'दि लाइफ डिवाइन', 'एसेज आन दि गीता', 'दि सिनथेसिस आफ योग', 'दि सोशल साइकल', 'दि आइडियल आफ ह्यूमन यूनिटी', 'दि फ्यूचर पोयट्री' (जो मूलतः १९१४ से १९२१ तक 'आर्य' पत्रिका में प्रकाशित हुए थे और उसके बाद अब पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए हैं) आदि ग्रंथों में जो विचार उन्होंने व्यक्त किये हैं उनमें एक ऐसी प्रसंडता है, जिसमें कि एक शोधक की लगन और कवि की उत्साही कल्पना-शक्ति तथा एक चिन्तक का रचनात्मक दृष्टिकोण व्यक्त होता है। उनके छोटे गद्य ग्रंथों में 'दि मदर', 'हेरोक्लाइट्स' और 'दि रेनेसां इन इंडिया' प्रसिद्ध हैं।

अरविन्द की भाँति सरोजिनी नायडू ने भी कविता से शुरू किया, परन्तु बाद में राजनीति ने उन्हें खींच लिया और गांधी-युग में उन्होंने एक महत्वपूर्ण कार्य पूरा किया। उनका पहला कविता-संग्रह 'दि गोल्डन थ्रेशहोल्ड' (१९०५), उन्हें एक प्रसिद्ध कवयित्री के नाते प्रतिष्ठित करता है। १९०६ में जब वे एक वक्ता के नाते प्रसिद्ध हुईं, तब गोखले ने कहा था :

"आपके भाषण उच्चकोटि की बौद्धिक दावत से अधिक थे। वे एक सम्पूर्ण कला की वस्तु थे। उन्हें सुनकर हम सबको एक क्षण-भर लगता था कि हम एक उच्च भाव-लोक में पहुँच गए हैं।"

बहुत कालान्तर के बाद 'दि बर्ड आफ टाइम' (१९१२) और 'दी ब्रोकन विंग' (१९१७) नामक दो कविता-संग्रह प्रकाशित हुए। कवयित्री के नाते सरोजिनी नायडू का छन्द पर अधिकार इतना उत्तम था कि 'पथ पर आसीन बुद्ध के प्रति' और 'वृन्दावन का बंसी वाला'-जैसे निर्दोष भाव-गीत वे लिख सकीं। उनके 'काल-पक्षी' की तरह सरोजिनी ने भी अपनी कविता में बहुत बड़ा क्षेत्र व्याप्त किया है, यद्यपि उनका विशेष क्षेत्र [illegible], वस्तुओं के सौंदर्य का अंकन है। बाद के ग्रन्थों में सचेष्ट रूप से [illegible] टेक अधिक सुनाई देती है; संयमित चित्रोपमता है, गहरा संगीत

और अधिक परिपक्व 'बुद्धि की प्रार्थना' है; और यद्यपि उनका काव्यास्वाद एक-सा रहा है, फिर भी बाद की कविताओं में 'दि गोल्डन थ्रेशहोल्ड' से अधिक प्रौढ़ावस्था का दर्शन मिलता है। उनके अन्तिम कविता-संग्रह 'दि टेम्पल : ए पिलग्रिमेज आफ लव' नामक तीन लम्बी गीत-सरणियाँ हैं, प्रत्येक में आठ कविताएँ हैं, और मिस्टर ओन गॉस्वर्थ ने इनकी तुलना श्रीमती ब्राउनिंग के 'सानेट्स फ्रोम दि पोर्चुगीज' से की है। यद्यपि सरोजिनी नायडू ने एक बार यह कहा था कि 'स्त्री की बुद्धि राजनीति के उच्च शिखरों को पकड़ नहीं सकती', फिर भी उन्होंने भारत माता की अन्त तक सेवा की, गांधी-युग में उनके लिए राजनीति एक प्रकार का प्रेम था, और राज-द्रोह एक प्रकार की कविता।

१९२०-१९४७

प्रथम महायुद्ध के अन्त तक भारत ने अपने-आपको एक नए युग की देहली पर पाया, जिसमें विलक्षण सम्भावनाएँ भरी थीं। दृश्य सब बदल गया था, नाटक के पात्र भी बदल गए थे। अब फीरोजशाह मेहता नहीं थे, गोखले और टिळक नहीं थे; विपिन पाल की वाग्मिता फीकी हो गई थी और सुरेन्द्रनाथ के भाषणों का पुराना जादू खत्म हो गया था; श्री अरविंद पांडिचेरी में बन्द थे। नए दृश्य, नए अभिनेता नए रूप सामने आए। इण्डो-एंग्लियन गद्य-शैली अधिक चटपटी और तीखी हो गई, हमारे भाषणकर्ता संक्षिप्त और ओजस्वी बनने लगे, हमारे गद्य-लेखक दिखाने के ढंग को छोड़कर अधिक स्वाभाविक रूप में लिखने लगे, जिसमें ओज अभिव्यंजना अधिक थी। गांधीजी के नेतृत्व के फल-स्वरूप से अंग्रेजी शिक्षा की बेतहाशा वृद्धि कम हुई, फिर भी १९१७ में जो ६१,००० कालेज के विद्यार्थी थे, वे १० वर्ष बाद ८८,००० हो गए। गांधीजी स्वयं अपने अंग्रेजी पत्रों पर अवलम्बित थे—पहले 'यंग इंडिया' और बाद में 'हरिजन'—इन्हीं के द्वारा वे अपने विचार, कार्यक्रम, प्रार्थना-भाषण और युद्ध के नारे व्यक्त करते थे। दूसरे नेता मुख्यतः सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, लाजपतराय, टी० प्रकाशम्, पट्टाभि

रमणी का दूसरा उपन्यास 'कंदन दि पेट्रिआट' (१९३२), गांधीजी के सन् १९३०-३१ के राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित था, इसमें राजनीति को भी उसी तरह आदर्शीकृत किया गया था, जैसे कि 'मुरुगन' में ग्रामीण अर्थशास्त्र को। दोनों में इतना ही अन्तर है कि दोनों परस्पर पूरक हैं। मद्रास के दूसरे लेखक शंकर राम ने, दो कहानी-संग्रह लिखे ('चिल्ड्रन ऑफ़ दि कावेरी' और 'क्रॉसर्ड आल') और बाद में एक मर्मस्पर्शी उपन्यास प्रकाशित किया, इसका नाम 'लव आफ डस्ट' (१९३८) है, इसमें एक किसान का धरती के प्रति आकर्षण वर्णित है। उपन्यास-लेखक के नाते शंकर राम मानवीय जीवन के आध्यात्मिक विघटन के उन मनोवेगों का बहुत अच्छा चित्रण करते हैं जहां अश्रु और हास्य के बीच की सीमा-रेखा बहुत झीनी होती है।

ऊपर के सब लेखकों से अधिक लिखने वाले मुल्कराज आनंद भारतीय समाज के शोषितों और दलितों में उलझे हैं। उनके चार उपन्यासों : 'टू लीवज़ एण्ड ए बड', 'दि कूली', 'दि अनटचेबल', और 'दि विलेज' (१९३९) में इस निम्न वर्ग का चित्रण केवल प्रोत्साहन-परक न होकर सहानुभूतिपूर्ण है, उन्हें मनुष्य प्राणियों की तरह आदर दिया गया है। भंगी, किसान, बागान के मजदूर, शहर के कुली, सिपाही सबके चित्र उनके उपन्यासों में बड़े सजीव ढंग से उभरे हैं—ये दुखी और भूखे मनुष्य प्राणी हैं, जो कि अंध-विश्वास और कुण्ठित व्यक्तित्व से पीड़ित हैं, उनके कुण्ठित उद्देश्यों के बावजूद उनका चित्रण बहुत ही स्पष्ट हुआ है। इसी प्रकार से बराबर संतोष देने वाले दूसरे कलाकार हैं आर० के० नारायण, जिनके उपन्यासों और कहानी-संग्रहों में से कुछ ये हैं : 'बेचलर आफ आर्ट्स', 'दि डार्क रूम' (१९३८), और 'दि इंग्लिश टीचर' (१९४५)। दक्षिण भारत के शिष्ट समाज की विचित्रताओं का वर्णन करने में वे बहुत सफल हैं। नारायण का विशेष लक्ष्य पर्यवेक्षण से भरा भारतीय है, उनके उपन्यासों और कहानियों में उसका वर्णन उसके खंडित व्यक्तित्व आत्म-वंचना और मूर्खता आदि के साथ किया जाता है। राजा राव के 'कंठपुर'

अपना काव्य कृतित्व, शुरू में आदर्शवादी और रूढ़िवादी के नाते आरम्भ किया, परन्तु व्यक्तिगत और बाह्य संघर्षों के कारण वे अधिकाधिक वाम पक्ष की ओर झुकते गए। ईश्वरन् के 'केटमट्म' और 'ओफ औरिमान्स' (१९४१) तीव्र प्रतिवाद के उदाहरण हैं। स्वप्न-भंग के कारण उनकी कविता में भयानक तेजी पैदा हुई है, फिर भी कभी-कभी उनमें मधुर गीतमयता पाई जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के परिवर्तन के साथ-साथ कैरणो, जिनकी पहली दो किताबें 'गीतांजलि' के ढंग की थी, अब रक्त और युद्ध की कविता लिखने लगे। अन्य आधुनिकवादियों में बी० राजन (मानसून, १९४५), कृष्ण शुगलू ('दि हार्ट इज हैवी' १९४३), शुभो टैगोर, सुधीन्द्रनाथ दत्त, सिरिल मोडक और नीलिमा देवी हैं। आदि के० सेट नाम से एक मनोरंजक नए कवि हैं, जो सच्ची भावना और प्रवाह-मयता से मुक्त छन्द में लिखते हैं।

कविता के अलावा साहित्य के नए रूप भी इंडो-एंग्लियनों द्वारा कुछ परिश्रम के साथ विकसित किये गए। नाटककार बहुत थोड़े हैं, चूँकि उनके नाटक मंच पर खेले जायें, ऐसा अवसर बहुत ही कम मिलता है। परन्तु वी० वी० श्रीनिवास अय्यंगार (ड्रामेटिक डाइवर-टिसमेंट्स), ए० एस० पी० अय्यर ('सीतास चॉइस' और 'स्लेव आफ आइडियाज़'), फैज़ी-रहमीन ('डॉटर आफ इंडिया'), भारती साराभाई ('दि वैल आफ दि पीपल', १९४३), मृणालिनी साराभाई ('वेरिटब कोइम', १९४५), जे० एम० लोबो प्रभु ('एप्स इन दि पारलर' और 'दि फैमिली केज') और पुरुषोत्तम त्रिकमदास ('गॉन्स फार दि गुड') आदि ने यह दिखलाया है कि इण्डो-एंग्लियनों द्वारा नाटक लिखना असम्भव नहीं है। हास्यमय निबन्ध, हल्के-फुल्के रेखा-चित्र, निबन्धों में मोन्तेन द्वारा परिभाषित 'मन का मुक्त विहार', और मोन्तेन के ढंग का मुखर चिन्तन, आधुनिक इण्डो-एंग्लियन लेखन में दिखाई देता है। एस० वी० वी० के 'सोप बबल्स', 'मोअर सोप बबल्स', और 'फन एण्ड पन', आर० बंगस्वामी के 'आई लाइक इट्स फ़न', किशोर दत्त के 'एण्ड सो ऑन', और 'नाग' के 'कानम

'साइड लाइट' में, पोथेन जोसेफ के कालम 'ओवर ए कप ऑफ टी' में विघ्नेश्वर के कालम 'सोट्टो वोसे' में इसके उत्तम उदाहरण उत्तम साहित्य-आलोचना भी लिखी गई; जैसे, एन० के० सिद्धान्त ('दि हीरोइक एज आफ इण्डिया'), अमरनाथ झा, अमिय चक्रवर्ती, नारायण मेनन द्वारा ('शेक्सपीयर क्रिटिसिज्म'); हुमायूँ कबीर ('पोइट्री मोनेड्स एण्ड सोसाइटी'), एस०एन० भट्टाचार्जी, और एस०सी० गुप्त द्वारा। श्री अरविन्द की साहित्य-समीक्षा ('दि फ्यूचर पोएट्री') और आनन्द कुमारस्वामी की कला-समालोचना ('हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट', 'दि डांस आफ शिव' और एन इण्ट्रोडक्शन टु इण्डियन आर्ट') अपने ढंग की अलग ही श्रेण्य पुस्तकें हैं। कुछ उत्तम जीवन-चरित भी लिखे गए, जैसे सर होमी मोदी ('फिरोज़शाह मेहता' १९२१), सर रुस्तम मसानी ('दादाभाई नौरोजी', १९३९), वी० एस० श्री निवास शास्त्री ('माई मास्टर गोखले', १९४६), पी०सी० राय ('लाइफ एण्ड टाइम्स आफ सी०आर० दास'), यदुनाथ सरकार (शिवाजी) और दिलीप कुमार राय ('अमंग दि ग्रेट')। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, नीरद सी० चौधरी, कृष्णा हठीसिंह ('विथ नो रिग्रेट्स'), भारतन् कुमारप्पा ('माई स्टूडेंट डेज़ इन अमरीका'), ईश्वर दत्त ('दि [illegible] इज़') और विश्वनाथ श्रीनिवास ('रिफ्लेक्शन्स एण्ड रिमिनिसेन्सेज़') आदि ने आत्म-कथा के क्षेत्र में अपने-अपने ढंग से भारतीयों की कुशलता सिद्ध की। इतिहास और दर्शन में ऐसे बड़े विद्वान् और विचारक हुए जैसे कि एम० जी० रानडे, तिलक, यदुनाथ सरकार, डा० सी० मजूमदार, वी०टी० श्रीनिवास आयंगर, बैरिस्टर [illegible], एम०एन० राय, ब्रजेन्द्रनाथ शील, एस० राधाकृष्णन्, वी०एन० [illegible]। और पत्रकार, व्याख्याता, वक्ता, राजनीति और अर्थशास्त्र के लेखकों की तो संख्या तो हजारों में है. उनमें से कुछ बड़े नाम हैं—एस० [illegible] राव जैसे पत्रकार, [illegible] जैसे [illegible], श्रीनिवास शास्त्री जैसे वक्ता, के० एम० पणिक्कर जैसे इतिहासकार, [illegible]

न्यारी-जैसे तर्क शास्त्री—अपने-अपने क्षेत्र में सर्वोत्तम अंग्रेज़ी या अमरीकी गद्य-शैलीकारों के साथ तुलनीय हैं।

गद्य-लेखकों में तीन या चार अलग से दिखाई देते हैं, चूँकि उनका व्यक्तित्व विशिष्ट और सप्राण है। उनके विचारों की कोटि भिन्न है, और उनकी शैली विलक्षण औचित्यपूर्ण है। गांधीजी की आत्म कथा, 'दि स्टोरी ऑफ़ माई एक्सपेरीमेंट्स विद ट्रुथ' वस्तुतः महादेव देसाई का अंग्रेज़ी में किया हुआ अनुवाद है। इस शिष्य ने अपने गुरु की शैली का इस तरह से अनुकरण किया है कि वह अमूल्यपूर्व है। गांधीजी ने जो कुछ लिखा, उस पर और विशेषतः इस पुस्तक के हर पृष्ठ पर गम्भीरता और सुन्दर शान्ति झलकती है। गांधीजी के गद्य में कहीं भी कोई नीरसपन नहीं है और विकृति भी नहीं है सब-कुछ स्पष्ट नियोजित है; विचित्र ढंग की सादगी उनके लेखन का प्रधान गुण है, उसकी आत्मनिर्भरता बाइबल की तरह है, कहीं भी कोई अस्पष्टता या हेर-फेर नहीं है। ताजे पानी की तरह साफ़, स्वच्छ और स्वस्थ, उनकी शैली एक आदर्श सरल और निर्दोष शैली है।

पंडित जवाहरलाल नेहरू की 'ऑटोबायग्राफ़ी' और 'डिसकवरी ऑफ़ इंडिया' अंग्रेज़ी गद्य के दूसरे महान् लेखक की कृतियाँ हैं। उनका अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन बहुत व्यापक और गहरा है, यूरोप के साहित्य और विचारों के प्रवाहों से वे सुपरिचित हैं, भारत की या एशिया की परम्पराओं में जो-कुछ भी सजीव है, उनसे भी वे प्रेरणा लेते हैं। नेहरू का अंग्रेज़ी लेखन स्वाभाविकता, सहृदयता, सूक्ष्म संवेदनशीलता और तटस्थ सर्वेक्षमता से भरा है। उनके लेखन के बारे में यह कहा जा सकता है कि "शैली ही व्यक्तित्व है" चाहे वे कोई भी लिखें, उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व,—उनकी प्रकृति, चरित्र, मानवता—आईने की तरह साफ़ झलकती है, और ऐसे व्यक्तियों के प्रति सहज प्रशंसा और प्रेम के भावों का उदय होता है।

प्रोफ़ेसर राधाकृष्णन् गद्य के दूसरे अधिकारी लेखक हैं।

उनकी श्रेष्ठ कृति 'हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी' (भारतीय दर्शन का इतिहास) दो खण्डों में है. अंग्रेजी में भारतीय दार्शनिक लेखन का आदर्श उन्होंने प्रस्थापित किया है। अपने स्पष्टीकरण में आकर्षक, विभिन्न दार्शनिक शाखाओं को स्पष्ट करने में विवेकयुक्त, तर्कमय आग्रही प्रो० राधाकृष्णन् ने भारतीय दर्शन को एक सजीव और सप्राण परम्परा का गुण प्रदान किया। उनकी बाद की कृतियाँ—विशेषतः 'एन आइडियलिस्ट व्यू आफ लाइफ'—उनमें के रचनात्मक दर्शन को स्पष्ट व्यक्त करती हैं। उनकी गद्य-शैली हर मानी में समुचित, रंगीन, समृद्ध, वक्तृतापूर्ण, पश्चिम और पूर्व के साहित्यों से चुने हुए उद्धरणों से भरी हुई—ऐसी शैली है कि वह बड़ा प्रभाव निर्मित करती है। भाषण देने में जैसे अजस्र, उसी प्रकार से लेखन में प्रोफेसर राधाकृष्णन् कुशल हैं, उनमें एक पण्डित, द्रष्टा, और व्यावहारिक मनुष्य का बड़ा अद्भुत संगम हुआ है, और इसी कारण से उनकी अंग्रेजी गद्य-शैली को भी शक्ति और सौंदर्य प्राप्त हुआ है।

एक और लेखक का भी उल्लेख करना चाहिए। श्री सी० राजगोपालाचारी को अधिकतर बड़े अच्छे तर्क-शास्त्री के नाते जाना जाता है, पर यह उनके व्यक्तित्व का पूरा वर्णन नहीं। निस्सन्देह उन्होंने अपनी अभिव्यंजना में बड़ा संयम प्राप्त किया है, परन्तु उनके व्यक्तित्व के भी भावनाशील और आध्यात्मिक पहलू हैं, जो कि उनके लेखन में प्रतिबिम्बित हैं। राजाजी का गद्य गांधीजी की भाँति बाह्यतः वर्णहीन नहीं है, और न उतना समृद्ध प्रेरणादायक एवं जीवन के प्रकाश से आलोकित है, जितना कि नेहरू का। वाक्यों का प्रवाह संतुलित है, लगता है कि एक प्रमेय गणित के बाद दूसरा प्रमेय गणित आता जाता है और पूरा भाष्य इस प्रकार से प्रभावशाली बनता जाता है; फिर भी शांत सतह के नीचे गहरे संकेतों के प्रवाह छिपे हुए हैं। महाभारत और रामायण के उनके नए रूपान्तर आधुनिक बौद्धिक परिभाषा के स्वार्थ के साथ व्यास और वाल्मीकि का सार प्रस्तुत करते हैं।

स्वतन्त्रता के बाद

१९४५ में दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ, परन्तु भारतवासी विजय का आनन्द नहीं मना सके, चूंकि वातावरण में निराशा व्याप्त थी। गांधी-जिन्ना वार्ता असफल हो गई थी, आइ० एन० ए० के नेताओं पर मुकदमे चल रहे थे और भूलाभाई देसाई की शानदार वकालत भी, इन सभी बातों ने उस समय भारत की स्थिति को और भी उलझा दिया था। २ सितम्बर १९४६ को (आज़ाद के पतन के बराबर एक वर्ष बाद) अन्तरिम सरकार की स्थापना हुई, जो कि हमारे इतिहास में एक महान् दिवस था, परन्तु आनन्द के साथ दुःख भी मिला हुआ था, क्योंकि मुस्लिम लीग हटकर अलग हो गई थी। कलकत्ता, नोआखाली, बिहार और पंजाब में साम्प्रदायिक दंगे उठ खड़े हुए और इतिहास के पाठ को, सामान्य समझदारी या विवेक को, महात्मा गांधी की अन्तर्दृष्टि और चेतावनियों को ठुकराकर कांग्रेस के नेताओं ने देश के विभाजन को कबूल कर लिया। जो दुखद घटनाएँ चारों ओर घट रही थीं, उनके कारण काफी गहरी निराशा से यह निर्णय लिया गया। १५ अगस्त, १९४७ को स्वतन्त्र भारत और पाकिस्तान का जन्म हुआ।

आज़ादी आ गई थी, मगर यह ठीक से वह आज़ादी नहीं थी, जिसका कि सपना बीते कल के लेखकों ने लिया था या जिसके बारे में उन्होंने गीत रचे या जिस स्वतन्त्रता की देश-भक्तों की पीढ़ियों ने कल्पना की थी या जिसके लिए उद्यम किया था। यह एक तरह की खंडित स्वतन्त्रता थी, अत्यन्त भयानक साम्प्रदायिक दंगों और अविश्वसनीय बहशीपन तथा बर्बरता की घड़ी में जन्मी हुई यह स्वतन्त्रता थी। करोड़ों लोगों ने सीमाएँ पार कीं, घर टूटे, जिन्दगियाँ तहस-नहस हो गईं, असंख्य मूल्य दाँव लगे और गए, फिर भी यह एक महान् चमत्कार है कि भारत जीवित रहा। ३० जनवरी १९४८ को जो हृदयविदारक शोकपूर्ण घटना घटित हुई, उसमें से भी ऐसी चमत्कार यहीं कि भारत जीवित रहा। भारतीय

साहित्य १६४६-४८ के इन आघातों से पूरी तरह से मुक्त नहीं हुआ है : कत्ल किये हुए निरीह लोग, महात्माजी की शहादत और इन घटनाओं के बाद अपमान, दुःख, घोर निराशा आदि आते गए; और जो लेखक इन सबमें से जीवित रहे, उन्हें इस सारे अनुभव को कला के रूप में व्यक्त करना अत्यन्त कठिन जान पड़ता है।

महीने बीतते गए, वर्षों पर वर्ष उसी एकरस नियमितता से बीतते गए, मंत्री-मण्डल बदले, नई राजनैतिक पार्टियाँ आईं, वामपन्थी और दक्षिणपन्थी आँखमिचौनी खेलते रहे, देश योजनाओं के साथ खेलता रहा। रचनात्मक लेखक को यह लगा कि हल्के-गहरे व्यंग्य, परिहास, सुखान्त नाटक, प्रहसन, नाट्यात्मक निन्दा मेलोड्रामा आदि के लिए पर्याप्त सामग्री उसके पास है, परन्तु सम्पूर्ति के महाकाव्य, अथवा प्रशंसा के भाव-गीतों के लिए सामग्री कहाँ है? सब ओर एक तरह से प्रयत्नों में शैथिल्य, मृत्यु का निरन्तर ह्रास दिखाई दे रहा है; देश में एक नई तरह का स्वार्थ-पोषण और अपना ही महत्त्व बढ़ाना बढ़ रहा है, जिसका कि वंशनाम 'चलो दिल्ली' है। आत्म वंचना ने विस्तृत राष्ट्रीय रूप ग्रहण कर लिया है। यद्यपि पंडित नेहरू देश और विदेश के आदर और प्रशंसा के उचित पात्र हैं फिर भी अवसरवाद और साहसिकता की शक्तियों के सामने वे भी मानो शक्ति-हीन हो गए हैं। ये अवसरवादी और अतिसाहसिक शक्तियाँ स्वतंत्रता के साथ-साथ मानो मुस्कराकर खेल रही हैं। विश्वविद्यालय, जो कि देश को उचित मार्ग-दर्शन कराते, मानो सबसे बुरे अपराधी बन गए हैं, इनके ऊपर ऐसे छोटे दिमागों के लोग हावी हो गए हैं, जिन्हें स्वतंत्र चिन्तन या रचनात्मक मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं है।

दूसरी ओर पंचवर्षीय योजनाओं की प्रगति के साथ-साथ ऐसे भी प्रयत्न हो रहे हैं कि जनता की रचनात्मक शक्तियों को एक दिशा में प्रवाहित किया जाय। साहित्य अकादेमी जो अभी हुई स्थापित हुई, वह निर्भयता पूर्वक "जनता की अभिरुचि को शिक्षित करने और साहित्य-चेतना बढ़ाने का प्रयत्न कर रही है।" 'बुक-ट्रस्ट' स्थापित हो गए हैं

पत्रकारिता को नई स्वतंत्रता और जिम्मेदारी मिल रही है। यह सब होने पर भी न केवल अकादेमियाँ, न ट्रस्ट, न चार्टर उत्तम साहित्य के निर्माण का आश्वासन दे सकते हैं। सच्ची साहित्यिक कृति तो ऐसी होती है, मानो एक व्यक्ति अनेक व्यक्तियों से बोल रहा हो। वह भाव स्पन्दनों का विनिमय है, हमारे विभाजित व्यक्तित्वों का विग-लन है, जिससे कि एक आत्मा दूसरी आत्मा से सम्बन्ध स्थापित कर सके और विविध मन साथ साथ बह सकें। साहित्य के गुण अन्ततः व्यक्तिगत लेखक के गुणों पर निर्भर करते हैं। जितने अधिक व्यक्तियों में, (जैसा कि प्रोफेसर राधाकृष्णन् ने कहा था) "अपने मन में अकेले होने का साहस होगा', जितने अधिक लेखक राजनीति, राजाश्रय या प्रचार के दबाव से, या कोरे नवीनता के आकर्षण से या निरी रूप-शिल्प की कसरत आदि से बच सकेंगे और उनका मुकाबला करने की ताकत अपने में विकसित कर सकेंगे, उतनी ही मात्रा में वे अपने अभूतपूर्व स्वप्नों को चिरन्तन कला में व्यक्त करने में सफल हो सकेंगे।

स्वतंत्रता के युग की एक महान् घटना थी अरविन्द की सावित्री (ए लीजेंड एण्ड ए सिम्बल) का १९५०-५१ में प्रकाशन है। गत शताब्दी के अन्तिम चरण में आरम्भ होकर, 'उर्वशी' और 'लव एण्ड डेथ' की तरह सावित्री भी पचास वर्षों में लिखी गई। उसमें अनेक बार संशोधन हुए, कभी काम रुक गया, कभी फिर से शुरू हुआ, नई नई प्रेरणाओं की शक्ति ने उसमें विलक्षण चमत्कार उत्पन्न किया। उसके अन्तिम रूप में यह मुक्त छन्द का महाकाव्य तीन खण्डों में है, जिसके कि १२ अध्याय या ४८ सर्ग हैं, कुल मिलाकर २४,००० पंक्तियाँ इस महाकाव्य में हैं। महाभारत की सावित्री-सत्यवान की कथा इसका आधार है। मगर श्री अरविन्द ने उसे एक रहस्यवादी रंग और उदात्तता प्रदान की है, और अरविन्द भावी साहित्यिक इतिहासकार 'पैराडाइज लॉस्ट' के बाद इसे अंग्रेजी का सबसे बड़ा महाकाव्य कहेंगे। [illegible]

पोयट्री' नामक उत्तम आलोचनात्मक गद्य में श्री अरविन्द ने करीब ४० वर्ष पूर्व भावी कविता के विस्तृत क्षेत्र पर विचार किया था। यदि कविता का आदर्श आत्मा से आत्मा की बातचीत है तो मँझली बाधाएँ जितनी ही कम होती जायेंगी कविता का परिप्रेषण उतना ही उत्तम होगा। इसके पहले कि बुद्धि कल्पना-चित्रों को विश्लेषित करे, वाक्यों की दाव-परीक्षा करे, या व्याकरण का व्यायाम शुरू करे, काव्योद्गार पहले ही क्षण में इस प्रकार से अभिव्यंजना कर चुका होता है कि जैसे कोई स्वर कानों को छू दे, प्रकाश किसी वस्तु को व्याप्त कर ले या कि मंत्र आत्मा में पैठ जायें। कविता के शब्द विचारों के परिवर्ती शार्टहैंड नहीं होते, बल्कि ये रचनात्मक जीवन की चिनगारियाँ होते हैं। अग्नि-परीक्षा द्वारा अलौकिक काव्यमय शब्दों को पुनः-पुनः गढ़ना नई कविता के लिए चुनौती के समान है। सावित्री की रचना के पीछे यह महान् उद्देश्य था 'लाइफ डिवाइन' (दिव्य जीवन) को पृथ्वी पर अवतरित करने की बात को कविता के माध्यम से मुखर करना। इस कविता में ज्ञान का निर्मल संयमित प्रकाश ऊर्जा का व्यापक भाण्डार और रचनात्मक जीवन की महान् लय छिपी हुई है। इस कारण से इस कविता को सचमुच पृथ्वी की ज्योति और फिर भी देवताओं का स्वर्गीय दूत कहा जा सकता है।

श्री अरविन्द के अतिरिक्त उनकी प्रेरणा से जो और लेखक आये, उन्होंने भी नई आध्यात्मिक कविता की धारा को बढ़ाया। के० डी० सेठना के 'दि एडवंचर ऑफ दि एपोकेलिप्स' (१९४६), उनकी पहली पुस्तक 'दि सीक्रेट स्प्लेंडर' के समान ही उनकी अलौकिक आध्यात्मिक सत्य की अनुभूति का स्पष्ट वर्णन है। दिलीप कुमार राय की 'आइज़ आफ लाइट' (१९४८) में एक लम्बी दार्शनिक कविता मिलती है जो कि भागवत की प्रह्लाद की कहानी पर आश्रित है। उनके कई गीत 'योग' की प्रेरणा से लिखे गए हैं, उनमें निरन्तर चमत्कार का रूप अभिव्यंजित है। नीरद बरन के 'सन-ब्लासम्स' (१९४७) में 'भावी

कविता के विकास के धीमे-धीमे खुलने वाले मार्ग के सुनिश्चित सोपान' का वर्णन किया गया है।' नलिनी कांत गुप्त ('टु दि हाइट्स'), निशिकांतो ('ड्रीम केडेंसेज़'), पुरुजलाल ('रोज़ेरी' और 'लोटस पेटल्स'), पृथ्वीन्द्र, रोमेन और तेहमी इत्यादि और कुछ कवि हैं जिनकी मूल प्रेरणा श्री अरविन्द से है। रहस्यवादी कविता, जैसे कि ऊपर वर्णित है, किसी भी प्रकार से पलायनवादी नहीं है। सच्चा रहस्यवाद वस्तुतः किन्हीं भी ऐसे युग-दोषों के लिए उत्तम सुधार का काम करता है जिनके मूल्य और स्तर बाहुल्य, खो गए हों। फिर से ज़मीन की ओर लौटना—सब चीज़ों के मूल्य और बीज की ओर लौटना—पुनर्नवीकरण का उत्तम मार्ग है। अरविन्दवादी कविता की धारा का मुख्य उद्देश्य, मंत्र के रूप में, आज के पथभ्रष्ट निराश वर्तमान में से ही 'नवीन मानव' और 'नवीन विश्व' के स्वप्न का निर्माण प्रस्तुत करना है।

कथा-उपन्यास में भी यह आध्यात्मिक रुझान स्पष्ट दिखाई देता है? उदाहरणार्थ दिलीप कुमार राय का 'दि अपवर्ड स्पायरल' (१९४९)। गत कुछ वर्षों के साधारण इंडो-एंग्लियन उपन्यास ने आशाएँ बढ़ाईं, लेकिन वे पूरी नहीं हुईं। हमें आशा थी कि आज़ादी की लड़ाई और स्वतंत्रता की प्राप्ति से हमारे उपन्यासकार महान् कृतियाँ देंगे। परन्तु वेणू चितले का 'इन ट्रांजिट' (१९५१), भवानी भट्टाचार्य का 'सो मैनी हंगर्स' (१९४७) और 'ही हू राइड्स ए टाइगर' (१९५४), आनन्द का 'प्राइवेट लाइफ आफ ऍन इंडियन प्रिंस' (१९५४), खुशवन्त सिंह का 'ट्रेन टू पाकिस्तान' (१९५६) और नारायण का 'वेटिंग फार दि महात्मा' में कुछ हल्की-सी उत्तेजना या सन्तोष एक या दूसरे कारण से मिलता है, परन्तु वे सचमुच में एक राष्ट्र के रचनात्मक उत्थान की कहानी नहीं पकड़ सके हैं। अभी भी ऐसे उपन्यासकार की प्रतीक्षा है जो कि भविष्य में हमें गद्य में एक महाकाव्य देगा; जैसे कि टाल्सटाय का 'वार एण्ड पीस' है। दूसरी ओर कमला मार्कण्डेय अपने 'नेक्टर इन ए सीव' में, और 'सम इनर फ्यूरी' (१९५६) में, आर० प्रावेर झावबाला 'टु हूम शी विल'

में, एम०पी० राम शर्मा 'दि स्ट्रीम' (१६५६) में और शान्ता राम 'रिमेम्बर दि हाउस' में—सब अभी हाल में प्रकाशित हुए—भ जीवन-पद्धति के भीतर प्रवेश कर सके हैं और उसको शाश्वत आ को पहचान सके हैं। स्वतंत्रता के बाद इंडो-एंग्लियन कथा लेखन से अधिक आत्म-विश्वस्त हो गया है और यह निकट वर्तमान में शुभ लक्षण है। पश्चिम और पूर्व या नवीन प्रयोग और पर बीच में संघर्ष, जो कि बहुत से आधुनिक उपन्यासों में मिलता भारती साराभाई के नाटक 'टू विमेन' (१६५२) का मूल भाग

कविता हो या नाटक, उपन्यास या कहानी, इतिहास या दार्शनिक या राजनैतिक ग्रंथ, भारतीयों का अंग्रेजी में लेखन समाप्ति के चिन्ह कहीं भी नहीं दरसाता। इसमें कोई संदेह नहीं कि व्यक्तिगत दृष्टि और स्वर से इंडो-एंग्लियन साहित्य बढ़ेगा—अन्य समकालीन भारतीय साहित्य भी बढ़ेंगे—कदम-ब-कदम व ग्रहण करता जायगा, और हमारे एक नए राष्ट्र और नए निर्माण में सहायक होगा; राष्ट्रीय पुनर्जागरण और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के कार्य में वह प्रतिश्रुत होगा।

परिशिष्ट १

लेखक-परिचय

१. असमिया—डॉक्टर विरिंचिकुमार बरुआ एम० ए०, पी-एच०डी० (लन्दन); उपनाम—बीना बरुआ, कल्पना बरुआ। जन्म-वर्ष और स्थान—१९१०, नौगाग (असम)। रचनाएँ, अंग्रेजी में—'ॲसमीज़ लिटरेचर' (१९४४), 'ए कल्चरल हिस्ट्री आफ आसाम' (१९५१); 'स्टडीज़ इन अर्ली ॲसमीज लिटरेचर' (१९५३), तथा असमिया में 'अंकिया नाट' का सम्पादन तथा 'जीवनर बाटत' (१९४५); 'पट-परिवर्तन' (१९४८), 'असमिया भाषा आरु संस्कृति' (१९४७) इत्यादि। उपन्यासकार और आलोचक; गुवाहाटी विश्वविद्यालय में यूनिवर्सिटी क्लासेज़ के प्रमुख। साहित्य अकादेमी की असमिया परा-मर्शदात्री समिति के संयोजक। पता: गुवाहाटी (असम)।

२ उड़िया—डॉक्टर मायाधर मानसिंह एम०ए०, पी-एच०डी० (डरहैम); संपादक 'ओड़िआ विश्वकोश', उत्कल विश्वविद्यालय; जन्म-वर्ष और स्थान—१९०५, नदला (पुरी)। रचनाएँ, उड़िया में—(काव्य) 'कमलायन', 'धूप', 'हेमशस्य', 'पुजारिणी', 'जेमा', 'साधवभिया', 'कूश'; (गद्य-ग्रंथ) 'शिक्षा', 'शिक्षक ओ शिक्षायतन', 'पश्चिम पथिक', 'साहित्य ओ समाज', 'कवि ओ कविता', 'बुद्ध', और 'अन्वेषण'। कवि और आलोचक;

'कालिदास और शेक्सपीयर' के तुलनात्मक अध्ययन पर अंग्रेजी में प्रबंध। साहित्य अकादेमी की उड़िया परामर्शदात्री समिति के संयोजक। पता : कटक।

३. उर्दू—डॉक्टर ख्वाजा अहमद फारूकी एम०ए०, पी-एच० डी० (दिल्ली); दिल्ली-विश्वविद्यालय में उर्दू विभाग के अध्यक्ष। जन्म-वर्ष और स्थान—१९१७, बछरांव (मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश)। रचनाएँ, उर्दू में—'मीर तक़ी मीर' (साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत); 'उर्दू में वजूद'; 'शौक मसनवी', 'क्लासिकी अदब'। आलोचक। पता : दिल्ली।

४. कन्नड़—प्रो० वि० कृ० गोकाक, एम०ए० (आक्सफ़ोर्ड) एलिस स्कालर तथा विल्सन फिलोलाजिकल लेक्चरर (बम्बई विश्वविद्यालय); संप्रति प्रिंसिपल, धारवाड़ कालेज, धारवाड़। जन्म वर्ष और स्थान—१९०९; सावनूर (धारवाड़)। रचनाएँ, अंग्रेजी में 'दि सॉन्ग ऑफ लाइफ' (कविताएँ); 'दि पोएटिक अप्रोच टु लैंग्वेज' (आलोचना), कन्नड़—'कलोपासक' (१९३४); 'समुद्र-गीत' (१९४०), 'जीवन के मंदिर में' (१९५३), 'समरसवे जीवन' (१९५७); 'युगान्तर', 'नव्य' (१९५६); 'जीवन देवागान' (१९४९), सेगुडिन मीनुगु' (१९५०)। कवि, उपन्यासकार और आलोचक। साहित्य अकादेमी की कन्नड़ परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता : धारवाड़।

५. कश्मीरी—प्रो० पृथ्वीनाथ 'पुष्प' एम०ए०, अमरसिंह कॉलेज, श्रीनगर में संस्कृत तथा हिन्दी के विभागाध्यक्ष, हिन्दी आयोग के सदस्य। जन्म-वर्ष और स्थान—१९१७, कश्मीर। रचनाएँ १९३९ में 'नई दृष्टि' का सम्पादन, कश्मीरी, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू में कश्मीरी भाषा और [illegible] सम्बन्धी लेख। साहित्य अकादेमी की कश्मीरी परामर्शदात्री [illegible]। पता : श्रीनगर (कश्मीर)।

[illegible]ी—प्रो० मनसुखलाल झवेरी, एम० ए०, बम्बई [illegible] कॉलेज तथा [illegible] बम्बई के गुजराती [illegible]

निर्देशक। जन्म-वर्ष तथा स्थान—१९०७, जामनगर (सौराष्ट्र)
नाएँ (कविताएँ): 'फूलडोल', 'आराधना', 'अभिसार', 'अनुभूति
ालोचना): 'थोड़ा विवेचन लेखो', 'पर्येषणा', 'गुजराती साहित्य
ादर्शन', 'गुजराती भाषा— व्याकरण अने लेखन'। साहित्य अकादे
गुजराती परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता : बम्बई।

७. तमिल—ति० पो० मीनाक्षिसुन्दरम्, एम०ए०, बी० एल
ान्; मद्रास हाईकोर्ट में वकील; अन्नामलाई विश्वविद्यालय
ल विभागाध्यक्ष (१९४४–४६)। जन्म-वर्ष—१९०१। रचनाएं
न शासवत', 'वल्लुवर का नारी राज्य' तथा 'प्रेम चित्रण'। प
स।

८. तेलुगु—कौ० रामकोटीश्वर राव, बी० ए० बी० एल
र—नोबेल कालेज, मसुलीपट्टनम् तथा लॉ कालेज, मद्रास। ज
और स्थान—१८९४,—नरसारावपेट, (गुन्तूर) प्रिंसिपल, नेश
ज, मसुलीपट्टनम् (१९२३-२७); सम्पादक 'त्रिवेणी';
दक, स्वर्ण सेवेज बुक ट्रस्ट। रचनाएँ—तेलुगु, 'काकर प्र
न चरित'); 'महाराष्ट्र वीरन्' (रेखाचित्र) इत्यादि। सा
देमी की तेलुगु परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता . मद्रास

९. पंजाबी—सरदार गुरबंत सिंह, एल-एल०बी० (लन्दन
टर। जन्म-वर्ष और स्थान—१९१५, हदली (पश्चिमी पंजाब)
यूनिवर्सिटी लाहौर में १९४७ तक प्रोफेसर; लन्दन में ह
श्नर के प्रेस अताशी और पब्लिक रिलेशन्स अफसर (१९४
; आकाश वाणी में १९५१-५२; यूनेस्को में १९५४-५६
'योजना' के सम्पादक; रचनाएँ—अंग्रेजी में—'दि मिस्ट्स';
आफ विष्णु'; 'ट्रेन टु पाकिस्तान'; पंजाबी—'नाम विच को पि
साहित्य अकादेमी की पंजाबी परामर्शदात्री समिति के सदस्य
: नई दिल्ली।

१०. बंगला—काज़ी अब्दुल वदूद, एम०ए०, ढाका कालेज में बंगला के प्राध्यापक; रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा विश्व भारती में १९३१ में निज़ाम लेक्चर्स के लिए आमन्त्रित। जन्म-वर्ष और स्थान—१८९४, बागमारा (फरीदपुर)। रचनाएँ—'शाश्वत बंग'; 'कविगुरु गोएटे'; 'व्यावहारिक शब्दकोष'; 'बांग्लार जागरण'; अंग्रेजी में—'क्रिएटिव बंगाल'। साहित्य अकादेमी की बंगला परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता: कलकत्ता।

११. मराठी—प्रो० मंगेश विट्ठल राजाध्यक्ष, एम०ए०, जन्म-वर्ष तथा स्थान—१९१३, बंबई। एल्फिन्सटन कालेज, बंबई में अंग्रेजी के अध्यापक, प्रतिष्ठ आलोचक तथा निबंधकार। रचनाएँ 'पाँच कवि'; अंग्रेजी तथा मराठी में विविध लेख। पता: बम्बई।

१२. मलयालम—डॉक्टर सी० कुन्हन् राजा। जन्म वर्ष और स्थान १८९५,—केरल। (आक्सफोर्ड तथा जर्मन विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त), मद्रास विश्वविद्यालय, तेहरान विश्वविद्यालय तथा आन्ध्र विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यापक, कई संस्कृत ग्रंथों के पाठशुद्ध संस्करण तथा अनुवाद प्रस्तुत किये; ब्रिटेन के 'एनसाइक्लोपीडिया आफ वर्ल्ड लिटरेचर' में 'मलयालम लिटरेचर' पर लेख। पता: वाल्टेयर।

१३. संस्कृत—डॉक्टर वे० राघवन, पी-एच०डी०, [illegible], जन्म-वर्ष और स्थान—१९०८, तिरुवारूर (तंजौर)। १९३५ से मद्रास में संस्कृत-विभाग से सम्बद्ध, अब आचार्य। २० ग्रन्थों तथा २२० लेखों के रचयिता। सूचना-प्रसार तथा शिक्षा-मन्त्रालय की विविध समितियों पर सलाहकार। अखिल भारतीय प्राच्य-विद्या-परिषद् के मंत्री तथा [illegible] अकादेमी की संस्कृत-परामर्शदात्री समिति के संयोजक। [illegible] पता: मद्रास।

१४. सिन्धी—प्रो० ला० ह० अजवानी एम०ए०। जन्म-वर्ष और स्थान—१८९९, खेरपुर मीर्स (सिन्ध)। प्रिंसिपल नेशनल कालेज बान्दरा, बम्बई। रचनाएँ, अंग्रेजी में–'इम्मोर्टल इण्डिया'; सिन्धी में—(सम्पादित)–'शैर जो सुखरो', 'विचार'; 'उमंग', 'नवदौर'। साहित्य अकादेमी की सिन्धी परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता : बंबई।

१५. हिन्दी—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन; उपनाम–'अज्ञेय' बी०एस-सी०; जन्म-वर्ष तथा स्थान—१९०९ कसिया गोरखपुर; क्रान्तिकारी आन्दोलन से सबद्ध राजबन्दी; सपादक 'सैनिक', 'विशाल भारत'-'भारती', 'प्रतीक','वाक', आकाश वाणी में हिंदी-शब्द-कोष तथा समाचार विभाग से संबद्ध; गत महायुद्ध में आसाम के मोर्चे पर लिएजाँ अफसर; सम्प्रति दक्षिण-पूर्वी एशिया के सांस्कृतिक अध्ययन में संलग्न; रचनाएँ—(कविताएँ) 'भग्नदूत', 'चिन्ता', 'इत्यलम्', 'तार सप्तक', 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी','इन्द्रधनु रौंदे हुए'; (उपन्यास)-'शेखर—एक जीवनी' (दो भाग) 'नदी के द्वीप'; (कहानी सग्रह)–'विपथगा', 'परम्परा', 'कड़ियाँ,' 'जयदोल'; (सम्पादित)–'नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ'; अंग्रेजी में–-'प्रिज़न डेज् एण्ड अदर पोयम्स'। साहित्य अकादेमी की हिंदी परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता नई दिल्ली।

१६. अंग्रेजी—डॉक्टर के० आर० श्रीनिवास अय्यंगार, डी० लिट्०। जन्म-वर्ष—१९०८। पी०ई०एन० के १९३८ से सदस्य; आंध्र विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अध्यापक। प्रकाशन, अंग्रेजी में—'लिटन स्ट्रैची', 'म्यूज़िंग्ज़ आफ बसव'; 'इंडो-एंग्लियन लिटरेचर एण्ड आयरिश इन इंडिया'; 'आन ब्यूटी'; 'श्री अरविंदो'; 'जेराड मैनली हाप्किन्स'; 'आन दि मदर'; 'दि माइंड एण्ड हार्ट आफ ब्रिटेन'। साहित्य अकादेमी की अंग्रेजी परामर्शदात्री समिति के सदस्य। पता : वाल्टेयर।

अर्थैन्स २६१
अर्द्ध मागधी २८७
अन्नदाचरण तर्कचूडामणि ३४३
अन्नगारु १७१
अन्नदाशंकर राय ४०, २२५, २२६, २२९
अन्नप्पाई २६८
अन्नमाचार्य १६८
अनग भीम ३८
अनंगरंगाचारियर, पी० बी० ३३७
अनन्त काणेकर २०६, २५५, २६३
अनन्त कृष्ण शर्मा, रा० १८४
अनन्त कृष्ण शास्त्री, म० म० २६५-६
अनन्तकृष्ण शास्त्री, एन० एस० ३०४
[illegible] ३२७
अनन्ताचार्य, पी० ३१८
[illegible] ८१
अनवर ६२
अनवर [illegible] ६८
[illegible] ७०१
[illegible] ३१०
[illegible] (आ० [illegible]) २६० २६६
[illegible] ३०

अनुजन [illegible]
अनुरूपा देवी [illegible]
अपभ्रंश ११६, १११, ११२ [illegible]
अप्पन तम्पुरान [illegible]
अप्पर १०, ११
अप्पाचार्य [illegible]
अप्पा वाजपेयिन [illegible]
अप्पा शास्त्री राशिवडेकर [illegible]
१११, ११२ ११४, ११६
अफ़ग़ानिस्तान [illegible]
अब्दुल अहद आज़ाद [illegible]
अब्दुल करीम [illegible] [illegible]
अब्दुल [illegible], क़ाज़ी [illegible]
अब्दुल [illegible] [illegible]
अब्दुल [illegible] [illegible]
अब्दुल वदूद, क़ाज़ी [illegible]
अब्दुल [illegible] [illegible]
अब्दुल [illegible] [illegible]
अब्दुल [illegible] [illegible]
अब्दुल्ला, [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]

जो ३६०
ज्ञान शाकुन्तल (शाकुन्तल
खिए) ३६५
दास १८६
नाथ झा ४२८
ीश्चन बैप्टिस्ट मिशन ३
ीका-अमरीकी ४७,४११
द्र घोष २२७
लाल नागर ४०८
र सन्तान ४३
ा प्रीतम १९८,१९९,२००
य चक्रवर्ती ९, २२४,४२८
त ६८
र ५२
दार १११
ादत्त व्यास २९८
, ए० एस० पी० ४२६,
२७
, के० बी० ८५
न, घोष ३६०,३६३
२९१
माल १०८
न्द ८१, १००, १०१, ३०८,
४२. ४११,४१२,४१६,४२०,
२१. ४२३, ४२८, ४३३,४३४
न्द गोखले २६०

अरिकमेड्डु उत्खनन १४६
अरुणोदय ३
अरुलानन्दि १४७
अलफ्रेड लियाल ४१०
अलमेलम्मा २९९
अल-हिलाल ४८
अलाऊन २२१
अल्ला बचायो ३६९
अल्लि अरशाणि मालई १५४
अलीगढ़-आन्दोलन ५०
अलीमोहम्मद खोन १०६
अलेक्जेंडर २९८
अलेक्जेण्ड्रिया २९१
अवध अखबार ६६
अवधी ३७९, ३८०-३८१
अवन्तिसुन्दरी ३३६
अवनीन्द्र नाथ २२८
अव्वै १६२, ३३८
अश्वत्थनारायण राव ८७
अश्विनीकुमार घोष ४३
अश्विनीकुमार दत्त २२९
अशफ़ाक़ अहमद ६४
अर्श मलसियानी ५७
असीम राय २२७
अशोक २६५, २९८
असकरी ७०

असगर ५५
असमिथा १, २४, २०६
असर ५२, ५३, ५५
अहमद अली ६३, ६८, ४२६
अहमद नदीम कासमी ६३, ६४
अहमद शुजा ६६
अहल्याबाई २६६
अक्षयकुमार दत्त २१०
अक्षय कुमार बड़ाल २१७
अज्ञेय (देखिये सच्चिदानंद वात्स्यायन) ४०३
अंगद १८६
अंगारे ६२
अंग्रेजी २९२, २६५, ४१०, ४२०-४२१
अंग्रेजी साहित्य ३८३
'अचल' (रामेश्वर शुक्ल) ३६३, ३८८
अंबिकागिरि रायचौधरी ६
आ
आइन्स्टाइन ६६
आगरकर २३४, २३८
आगस्ट कौंत ५
आगा सूरी २६८
आगा हश्र काश्मीरी ६६
आजाद ४६
आन्डाल १४५
आतंकवादी २१६
आत्रेय, आचार्य १७६-८०
आत्रेय (बी० स्वामीनाथ शर्मा) ३२७
आदमखोर २०१
आदि के० सेठ ४२७
आदि ग्रंथ १८६
आबिद रशीद ६८
आधा ७७, ८५, ९०, ९५, ९६, ९७
आद्यनाथ शर्मा १५
आंत्वान, आर० ३४१
आन्ध्र १११
आन्ध्र प्रदेश ११४
आन्ध्र महाभागवतम् ११७
आन्ध्र महाभारतम् ११७, ११८
आनंद ८६, १००
आनन्द, मुल्कराज ४१५
आनंदशंकर ध्रुव १३१
आनंद कुमार स्वामी ४२६
आनंद गोस्वामी १३७
आनन्दवर्धन ३२१
आमटे ३९, ८०
आबिद ५६
आबिद अली आबिद ६६

बिद हुसैन, डॉ० ६८, ६६, ७०, ७१
र० एम० हुसैन (मिसिज) २२२
ज़ू ५३, ५६
मेंडो ४७६
रिक ११०, १११, ११४
रेज १११
ई दश ४१७
ई १७५, १८३
ईड ७६
३३
ई भाषा १
समाज १०४, १०६, १०८, १७३, ४१७
इंडिया रेडियो ३६७, ३३६
वार्ये, के० के० आर० नायर ३३५
वार १५७, ३२७
र ८३
मुहम्मद समर, प्रो० ७०
स्ता ३४१
नन्द मामनोरा ३७०
पूर्णा देवी २२६, २६७,२२८
नोर मुखर्जी ३४४, ४२८
म-समाज ३६०
र वाइल्ड ७६, ४२०
आस्तिकवाद १०३
आर्सो ११०
आमूदोमस गिदवाणी ३६५

इ

इकबाल ५०, ५३, ५६, ७१, ११७, ४१२
इमर्सन १४२
इम्प्रेशनिस्ट १७४
इञ्चल १००
इब्रीम ८२
इन्तजार हुसैन ६५, ६८
इन्दर सभा ६८
इन्दुलाल याज्ञिक ११८
इन्द्र १०३
इन्द्रजीत शर्मा ५६
इंद्रनाथ बंद्योपाध्याय १२२
इन्दुमेधा २६७, २६८
इटाल्लो रामवन शिस्लई २७३
इडान्दी ४२१
इडामेरी गोविन्दन नायर २७८
इडो एग्लिश्न ४१०, ४११, ४१४, ४१६
इंदिरा सत (श्रीमती) ३११
इन्तुम हसन ६५
इब्राहीम अश्क ६३, ६८
इस्लाम ७६, १४२

इबादत बरेलवी ७१
इम्तियाज अली 'ताज' ७०
इरावती कर्वे (श्रीमती) २६३
इलाचन्द्र जोशी ३६७, ३६८
इलकुल कुञ्जन् पिल्लई २८१, २८२
इलसूर सुन्दरराव कवि ३३३
इल्लिन्दला सरस्वती देवी १७७
इशतियाक हुसैन कुरेशी ६६
इस्मत चुगताई ६३, ६४, ६७, ६८
इस्माइल ५१
इस्लाम ६६, ३७६
ई
ईरान ३५४
ईलियट ४१, ३५१
ईश्वर गुप्त २०६
ईश्वरचन्द्र नन्दा २०३
ईश्वर दत्त ४२८
ईश्वरन ४२७
ईश्वर पेटलीकर १३०, १३१, १३३
ईश्वर चन्द्र विद्यासागर २१०
ईसप ३२०
ईसा २३४, २७८
ईसाई २६८, ३१५
ईसाई धर्म ६६, २११
ईसाई मिशनरी ४११
उ
'उग्र' पांडेय बेचन शर्मा १८८
उड़िया १, २१, २०६
उड़िया विश्व कोश ४४
उत्कल सम्मिलनी १५
उत्कल साहित्य २८
उत्तम १७२
उत्तर रामचरित ७८
उदागी ६२
उदारमतवाद २११
उर्दू १७४, १७६, १८१
उर्दू फारसी १८२
उर्दू थियेटर ६६
उधाराम चाँवरदास १६५, १६६
उन्नीस सौ बयालीस का आन्दोलन २५७
उपनिषद् ७८, २१४, २८६, ३६६
उपेन्द्रकिशोर रायचौधुरी २२८
उपेन्द्रनाथ अश्क ६६, ४०८
उपेन्द्रनाथ सेन १२१
उपेन्द्र भञ्ज १०
उपेन्द्र मेलाक २७
उपाध्याय, एम० ए० १०६
उमर खय्याम ११५, २८६, ३१७
उमर खैयाम की रुबाइयात ३४०, ३६०

…राव जान 'मज़ा' ६६
…पति १४०
…महेश्वर शास्त्री, पी० २६६, ४२६
…शंकर जोशी १२६, १२७, १२८, १३३, १३७
… कौल १०५
…णी ३६४
…र परमेश्वर ऐय्यर २७०, …७६, २८१, २८३, ३३६
…म् १२७
…न मस्तारी ३६८
…द २८६, ३४१
… संहिता ३०८
…य २३१, २३२
…ह १००
…इंडियन ४१०, ४११
… पाउण्ड ४१, ४०७
…मेंट (श्रीमती) ८१
… गोम ४१७
…थरटम २६६
… धरणीन्द्र १६६, ४१०
…७५, १५६, २६६
… ३४८
…ी ८५

एलिज़ाबेथ १७०
एस० बी० बी० ४२७
ए० हमीद ६८
एहसन फारूकी ६७
एहसान लखनवी ५६, ६६
एहतशाम हुसैन ७०

ओ

ओर, एम० पी० ३३६
ओटन, ई० एफ० ४११
ओथेल्लो ७८
ओ० एन० वी० कुरुप २७५
ओलप्पमण्णु २७५
ओल्ड टेस्टामेन्ट (देखिए इज़ील, बाइबल) २७४
ओमचान्द कुन्हे, मि० १७१

औ

औरीव २४५

क

कमली १४३
कबीर ८७ १००
कचारी राजा १
कर्ण राजशेखरगिरि राव १८४
कट्टक्कयत्तिल् चेरियान माप्पिला २७४
कट्टोमनि ६६
कट्टो, एम० ८३
कण्डत्तिल वर्गीस २८२

कडेगोंडलु ८४
कतील ५७
कदम्ब ७३
कन्हैयालाल कपूर ६९, ७०
कनुपर्ती वरलक्ष्मम्मा १७७
कन्नड़ ७३, १४५, १६६
कन्नड़ इंगलिश डिक्शनरी ७६
कर्नल हालरायड ५०
कर्नाटक प्रकाशिका ८२
कर्नाटक प्रदेश ७३
कर्नाटक संगीत १४७
कपिलेन्द्र ३८
कपाली शास्त्री, टी० वी० ३०८, ३४२, ३४४
कबीर १०७, ३४४, ३८०
कफन ६२
कम्बन १४६, १८१
कंब रामायण १८१
कम्युनिस्ट १६३, २०४, ३८७
कमलाकान्त भट्टाचार्य ५
कमलानन्द भट्टाचार्य १४
कमलाबाई टिळक (श्रीमती) २५३
कमला मार्कण्डेय ४३२
कमाल अतातुर्क २२२
कमिंग्ज, ई० ई० ४०७
करतार सिंह दुग्गल २०२
करमलकर शास्त्री, पी० ३४८
करसनदास माणेक १४१
कराका, डी० एफ० ४२६
करिक्कड के० एम० कृष्णन् नम्बूदिपाद ३२८
करुणानिधान बैनर्जी २१७
कर्वे, धों० के० २४३
कल्याण धाडवाणी ३६५, ३७०
कल्याणराम शास्त्री ३२१
कल्याण सुन्दरम् मुदलियार टी० वी० १५६, १५६
कल्याणी ३२५
कल्कि १५६, १५४
कलकत्ता ४१५
कलकत्ता युनिवर्सिटी ३०९
कसाणी १३१
कलीच बेग, मिर्ज़ा ३६०, ३६५
कलीमुद्दीन, प्रो० ३०
कवि कर्ण ३०७
कवि कोकिल वेंकटराव १३१
कविचरित ३९
कविमणि १५५, १५६
कविराज जगन्नाथ सेन ३११
कविराज मार्ग ४१

कश्यप ९९
स्तूरी ८४, ९६
श्मीरी (देखिए कश्मीरी) १०५
लासिकवादी १७५
प्रेस २१६
ास्टेबल १५८
का कालेलकर १३९
ाजिम ३६०
ाजी अब्दुल गफ्फार ६८, ७०
ाजी अब्दुल वदूद ७०, २०६
जी इम्दादुल हक २२२
जी काजन ३५५
जी मोतहर हुसैन २२९
डयबेम १६८
दूरी वेंकटेश्वर राव १७३
गे, जॉ० वी० ३१८
दम्बरी ७८
त १२२
म् १७६
ीलाल शाह ११९
हूचरण महान्ती ४३
दूद-दे-प्रबन्ध १२०
न डाइल ७६
ाल मिश्र ३८
रेड ४८
पूर ३६५

कामायनी १८४
कामिनी राय २२८
कामिल ११६, ११७
कार्ल मार्क्स ४१
कारन्त ८५, ९३, ९५, ९६
कारूर २७७
कारोड रामकृष्ण भवि ३०१
कालिदास ७, ३१, ३२, ७८, २१३, २६५, २७८, २८६, २८९, ३१८, ३२४, ३३१, ३३६
कालिदास राय २१७
कालिन्दीचरण पाणिग्राही ४०
कालिराम मेधी २२
कालीचरण पटनायक ४३
कालीहरदास बसु २९९
काले २९५
काव्यकंठम् गणपति शास्त्री २९५, २९७, ३०८, ३२२
'काव्य कलानिधि' ७९
काव्यानन्द ८३
काशीचंद्र ३०४
काशीकर, सी० जी० ३१२
काशी कृष्णमाचार्य ३४८
काशीप्रसाद घोष ४१५
काशी रामदास २०८
कासिम ३६०
किटेन्स ७९

केशव मेनन, के० पी० २८०
केशवदेव, पी० २७७
केशवलाल ध्रुव १२२
केशवसुत २३३, २३४, २३५
केसरी २४०, ४०७
कैमटन ७९
कैंकिणी, डॉ० बी० एम० ३०१
कैंकिणी, पी० आर० ४२६
कैप्टेन जार्ज स्टेक ३५३
कैलाशचंद्र ३००
कैलाशनाथ ३१८
कैलासम्, टी०पी० ७७, ८५, ९२, ९६, ९७, ९८
कोच्चुण्णि तम्पुरान् २९८
कोटा १४५
कोडगु १४५
कोडुङल्लूर कुञ्ञिक्कुट्टन् तम्पुरान् २९९
कोण्डवीडु १९८
कोणार्क २४, ३७
कोम्मूरि वेनुगोपाल १८३
कोरकू १४५
कोराड रामचन्द्र २२४
...ल्हटकर २४८, २५४
...रित्र ७९
...ट्र २७७
...धन वदनमम ३९४, ३९५,

ख
खड़ी बोली ३७९, ३८७, ...
खबरदार, ए० एफ० ...
खलीफ अहमद निजामी ...
खाकी
खाडिलकर १३६, २३७, ...
खादीजा मस्तूर
खारवेल
खालिद
खासनीस, ए० बी०
खाँ अर्जी
खांडेकर १४२, २५१, २५४, २५५
ख्वाजा अहमद अब्बास १४, ३८८
ख्वाजा अहमद फारूकी
ख्वाजा गुलामुस्सैयदैन
ख्वाजा हसन निजामी
खियलदास फानी
खिलाफत २१...
खिलाफत आन्दोलन १...
खुशवन्त सिंह
खुसरू मोहेरवान
खेर, एम० एम०

ग
गणपति शास्त्री, पी०
ग्रहण ५२, १२१, २४४, ...

ग़ाली ३६५
डियारम शेष शास्त्री १७६
ापति शास्त्री, एम० एम० टी० २६७
ड ८५, ८६
जगनाथ ७६
ाप्रसाद उपाध्याय ३००
ाधर गाडगिल २६०, २६१
ाधर शास्त्री मनवल्ली ३००
ाधर मेहेर ३४, ४०
ोपाध्याय ३२२
 साहिब १८६, १६०, १६१
न सिंह १६२
डविन ७८
मा सप्तशती १६६, २८४
धी जी ३५, ३८, ४८, ८१, ६१, १२२, १३१, १३२, १३८, १३६, १४६, २४३, २८४, ३०६, ३२४, ३४३, ३४५, ३७०, ४२३, ४२८, ४२६, ४३०, ४३१
धी दर्शन ३६२
धी युग १२३, १२४, १२६, २६०, ४२३
धीवादी ४१४
ल्सवर्दी २२६
ग़ालिब ५०, ५२, ५३, ५५, ७१
ग्रियर्सन, सर जी० ए० २, ३६५
गिड्गु राममूर्ति पंतुलु १७१
गिरिजाकुमार माथुर ३६३
गिरिजाप्रसाद शर्मा ३०३
गिरिधर शर्मा ३४०
गिरीन्द्र मोहिनी दासी २२८
'गिरीश'-वा० के० कानेटकर २४५
गिरीश चन्द्र घोष २२६
ग्रीक २६५, ४२१
गीता २८६
गीता परीख १४२
गीता साने (श्रीमती) २५३
गुजराती १६६, ४१४
गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद १४३
गुडिपाटी वेंकटचलम् १७७
गुण्डप्प, डी० वी० ८४, ८५, ८६, ६६
गुणवन्त राय आचार्य ११०
गुणाभिराम बरुआ ११
गुबारे ख़ातिर ७२
गुमनाम ३६३
गुर्जर २४०, २५४
गुरजाड अप्पाराव १८६, १७२, १७६, १७६, ३३६

गुरुदयालसिंह ढोसला २०३
गुरुबख्श सिंह २००, २०१
गुरुबख्शाणी ३७०
गुरु गोविन्दसिंह १९१, १९५
गुरुदास १९१
गुरु नानक १८७, १८८, १८९, १९५
गुरुमुख सिंह 'मुसाफिर' २०४
गुरुमुखी १८६
गुल ३६२
गुल बकावली ३७०
गुल मोहम्मद [illegible] ३२९
गुल रैज़ १०७
गुलाबराम [illegible] १३३, १३८
गुलाम अब्बास ६१
गुलाम [illegible] ३२३
गुलाम रसूल मेहर ७०
[illegible] ३७२
[illegible] गुप्त ८८, १०१
[illegible] ६७
[illegible] १८५
गोदान, [illegible] ७३, ७७, ८५, ८६, ९५, १०१
[illegible] ३२३
[illegible] ८२३, ८२१, ८२८
[illegible] ३८३
गोगोल २११
गोडवर्मा डी० ३८२
गोदान २८, ९१
गोदावरीश मिश्र ३९, ४१
गोपबन्धुदास ३५, ४४
गोपाल [illegible] ए० २९९
गोपालाचार्य, ए० बी० ३९०
गोपाल कृष्णराव ८९
गोपालनारायण [illegible] २४०
गोपालचन्द्र प्रहराज ४१, ४४
गोपाल [illegible], एन० ३३९
गोपाल शास्त्री ३३१
गोपाल हालदार २२३, २२९
गोपीनाथ ४१
गोपीनाथ माथुर, टी० एन० ३२९
[illegible] ३९१
गोरा १०२
गोर्की १६१, १६२
[illegible] ७२, ९९, १४८
[illegible] ३२१
[illegible] १४१
[illegible] ३१८
[illegible], डी० १४८
[illegible] २२८
[illegible] १००
[illegible] डी० ३००
[illegible] ८८, ९०, ९९, १००

[गो]विन्द भाटिया ३६१
[गो]विन्द महन्त १६
[गो]विन्द मालही ३७२
[गो]विन्द राम, के० २८२
[गो]विन्द सुरदेव ३८, ४३
[गो]साबि ८७
[गो]जेर ११६
[गो]रम्मा (श्रीमती) ८६
[गौ]रीराम शास्त्री ३०६

[च]कबस्त ४२
[च]क्रध्वज सिंह ११
[च]ङ्कम्पुषा कृष्ण पिल्लई २७१
[च]र्पा ३०६
[च]टर्जी, एम० जे० ३४१
[च]टर्जी, के० सी० ३१३,३२०, ३४१
[च]न्तु मेनन २६८
[च]न्दवास गर्ग १६
[च]न्द्रकांता ३७०
[च]न्द्रकुमार अग्रवाल ४, ५
[च]न्द्रकान्त फूकन १३
[च]न्द्रगुप्त २६८
[च]न्द्रधर बरुआ १२
[च]न्द्रभूषण शर्मा ३००
[च]न्द्रमणी दास ४३
चन्द्रवदन महेता १३६, २३८
चन्द्रशेखर २३६
चम्पू २६०, ३००
चरितपुथी ३
चण्डी-मंगल २०७
चण्डीदास २०७
चापली उरेवी १३८
चारुचन्द्र बेनर्जी २१७
चालुक्य ७३, २६६
चावला ३७२
चिपलूणकर २३४, २४१, २४२
चिमनलाल सीतलवाड ४२८
चिक्कदेवराय ७४
चितळे, के० डब्ल्यू० ३४४
चित्राल ६१
चिदम्बरवाद मुदलियार टी० के० १६६
चिदम्बर शास्त्री ३२१
चिन्ता दीक्षितुलु १७६
चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम् ११८ १३७
चिलिका, ३१, ३२
चुनीलाल बी० शाह् ११०
चुनीलाल मड़िया ११०, १३३, १३७
चेतप्पन नायर २७८
चेम्मीन २३७

चेस्टरटन २०
चेतन मारीवाला ३७०
चेट्टूर, जी० के० ४२६
चेलापती राव, एम० ४२८
चैखव ६२, १४२, २७७, ३८४
चैतन्य ३३६, ३५५
चैनराय बूलचन्द ३५२
चोल १६४
[illegible] ६२, ४१०

छ

छ माण आठ गुण्ठ २८
छाबरा, डॉ० ब० चन्द्र ३१६, ३२४, ३४५
छाबरिया ३७२
छायावाद-छायावादी १७५, ३८५, ३८६, ३८७, ३९०, ३९९, ४०१

ज

जग्गू वेंकटाचार्य ३२६
जगदीश गुप्त ४०६
जगदीश चन्द्र माथुर ४०८
जगदीश्वर शास्त्री, बी० ३०८
जगन्नाथ आज़ाद ५७
जगन्नाथ पंडितराज १६८
जगन्नाथ स्वामी, पी० १८४
जज़्बी ५९, ६०
जतीन्द्रनाथ भट्टाचार्य ३२४
जतीन्द्रनाथ सेनगुप्त २१७
जतोई ३६०
जदुनाथ सरकार ४२८
जहीर ५७
जन-नाट्य १६१
जन्मभूमि १४१
जनमसाखी १६२
जपसाहब १६०
जफ़र हुसैन ७१
जर्मन १९५, ४२१
जमनादास अख्तर ६८
जमीरुद्दीन ६४
जयदेव २११
जयन्ती दलाल ११७, १४२
जयशंकर 'प्रसाद' १८४, १८६
जरीफ़ १०७
जसवन्त सिंह 'कँवल' २०१
जसीमुद्दीन २३१
जहाँगीर ३१०
जंध्याल पापय्या शास्त्री १७५
ज़ाकिर हुसैन, डॉ० ७१
जार्ज, डॉ० के० एम० २८२
जार्ज पंचम २१५
जानसन, डॉ० ७५, १२१, २१६, ४२७
जानिसार अख्तर ६०
जापान ४११

ापानी कविता ४०५
ापानी साहित्य ३४१
ाफर अली खाँ ५८, ५६
ाफरी, सरदार ६०
वालाप्रसाद ३०६
ावडेकर, शं० दा० २५६
ेस्मा ४३१
गोदाम १५१
ेन्दा बोल १०६
ेगर ५५, ५६
ी० आनुका १७५
ीवन सिंह ३५८
ीवनानन्द दास ६, २२३ २२४
ुग्गी १०५
ेठमल परसराम ३६६
ेठानन्द नागराणी ३६४
ेन आस्टीन ७६
ैन ६६, २८७, ३०५
ैन चरित १०८
ेमुल आबदीन १०७
ैनेन्द्र कुमार ३२४
ेम्स जोयस ६७
ोशी २२५
ोगेश दास १६, २०
ोगिराव-गुरे ३३३
ोन्स ३४६, ४१०
ोर, डॉ० ७०
जोश मलीहाबादी ५८, ६०
जोशी, चि० वि० २५५
जोशी, रा० भि० २६३
जोशी, वा० म० २५०, २५१,
२५६
जोसेफ मुण्डस्सेरी २७५, २७८
ज्योतिप्रसाद अगरवाल १४
ज्योतीन्द्र दवे १४०
जोनाकी ४
जोयो ३६८
जोला ३८४
जोन गाल्सवर्दी, मि० ४२३
झ
झमटमल मारुमल ३६५
झवेरचन्द मेघाणी १३०, १३१,
१३३, १३४
झावबाला, आर० प्रावेर ४१५
झाला, प्रो० जी० सी० ३२४
झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ३६७
ट
टण्डन, डॉ० ३२३, ३६५, ३५८
टार २१२
टामस पेन ४७
टाल्सटाय ७६, १४२, १६४, ३८४
१२०, ३८४, ४३५
टिकट २४०, २४१, २४२, ३८८,
४१६, ४२३, ४२८

टिळक, ना० वा० (रेवरेंड) २२१
टिळक, श्रीमती लक्ष्मीबाई २२१
टिळक, बाळ गंगाधर १८०
टी० एस० इलियट ६, ६७
टी० प्रकाशम् १८०, ४२३
टी० राघवाचारी १७६
टीपू सुलतान २६७
टेनीसन ३३१
टैगोर रवीन्द्रनाथ ८, ३८, ३६, ८१, ८२, १४२, १६४, १७०, २०६, २१०, २१३, २१५, २१६, २१७, २१८, २२२, २२६, २२५, २२८, २२६, २८३, ३२४, ३३६, ३४०, ३६३, ३७१, ३७२, ३७३, ४११, ४१२, ४१६, ४२०
टोडा १४५
टोमस ब्राउन, सर ४२१
ठ
ठक्कर बापा १३६
ड
डफ, डॉ० ४७
डयूमा ३८४
डालिमी ११
डिकन्स ३६
डिवेंचर निमोग ८
डी० एच० लारेंस ६७
डी विन्सी ४८२
डी० जे० सिंध कालेज कमेमोर ड्रामैटिक सोसाइटी ३१४
डेबनराम बाजार ३६२
डेफी मार्केट २०४
डोगरकेरी, एम० आर० ४२६
त
तखम्मुस १७
तमिल १४५, १५०, १६६, २६२, ३३७, ४१४
तमिळनाड ७१
तमिळ विश्वकोश १५८
तमिळ रामायण ३३७
तमिळ संत पट्टिनतार ३३७-३३८
तकषी शिवशंकर पिल्लै २७६
तट्टी, बी० एम० ८१
तत्त्वबोधिनी शाला २१०
तन्हा ७०
तंजाऊर १६७
तरक्कीपसन्द अदब ६०
तमिल ८४

अवर मामरी ६८
डपत्रीकर, एस०एल ३३१,३४५

ताचार्य, एम० के० ३४३
ताचार्य, डी० टी० ३२३, ३५८
वे २४५, २४६, २५८
र्शिनशीन चक्रवर्ती ३१६
र मस्तक ४०३
रोरवाला, माई० जे० एम०
३४१
तानाथ १०१
राशकर बन्दोपाध्याय २२५,२२६
निध ६६
गीर ५६
गराज १६८, १८५, ३००
फल्ल १६७
मनम्तपुरम् २६७
ानि वेंकट बहुदु १६६
मम बुक्कपट्टनम् श्री निवासा-
चार्य २६६
नारायण मम्मदार, एम० के०
३१८
ल्लुवर १२१
वेंकटाचार्य, के० १३२, ३४०
पति शास्त्री १६६
ब बसन्त ३७१
राम २३१, २६६, ३२२

तुर्की १२२
तुर्गेन्येव १८४
तुलसीदास ३४०, ३५७, ३८०
तुरभरी ७८
तूलु १४५
तेगबहादुर १८६
तेनालि रामकृष्ण १६७
तेन्नेटि सूरि १८३
तेलुगु १४५, १६६, ४१४
तेलंग, एम० आर० ३३६
तेहमी ४३५
तोट्टक्काटर इक्काक्कम्मा २७४
तोरु दत्त ४१७
तोलकाप्पियम १४५
तोलाराम मालाणी १६३
थ
थवाणी, एन० बी० २६१, ४२६
थम्पी, बी० के० ११२
थंकरे ७६
द
दण्डी १०१
दरयानी, के० एस० ३६४
दयो मंडारमाली ३६३
दलपत २५८
दर्याखान २५८
दक्षिणामूर्ति, पी० एस० ३३५
दक्षिणारंजन मित्र मजूमदार २२८

दक्षिणी अफ्रीका का सत्याग्रह १४६
दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका १४६
दांते १३०, १३१
दण्डिन् ९३
दलितवर्ग कविता ७५
दयाराम १२०
दयाराम गिदूमल ३३२, ३४०, ३४१, ३५७, ३६६
दयानन्द सरस्वती २६६, ३००, ३०४, ३४८
दाग ५२
दाते १४२
दादाभाई नौरोजी ४३८
'दादा' (तेंवर भोजराज) ३७३
दादूदयाल १८०
दामेल रामाराव १०३
दामोदर शास्त्री ३००
दाशरथी १८२
दास (कन्नड संतकवि) ७४
दाण्डेकर, गो० नी० २६२
द्राविड ३४३
द्राविड आन्दोलन ३०५
द्राविड भाषा १६६
द्राविड-समूह १४५
... ठाकुर ३८३
... कर्णाटिका' ७६
...ति रामाराव १८३
दिवे, र० दि० २५१
दिवाकर कृष्ण २५९
दिनकर देसाई ९८
'दिनकर' रामधारीसिंह ३६१, ३६८
दिनेश दास ३२९
दिल्ली कॉलेज ४६
दिल्ली सोसाइटी ४६
दिलीपकुमार राय ४३८, ४३४, ४३५
दिवाकर, आर० आर० ७६, ८६, ९२, १०१
द्विजेन्द्र नाथ गुह चौधरी ३०२
द्विजेन्द्रलाल राय २१७, २१९
दीन बन्धु २०६
दीन बन्धु मित्र १२, २२८
दीन मोहम्मद वफाई ३१८
दीनानाथ शर्मा १८
दुखायल ३५४
दुर्गानन्द स्वामी २०१
दुर्गा भागवत (कु०) २६३
दुर्गासहाय सरूर ४१
दुर्गेश्वर शर्मा ५
दुव्वूरि रामि रेड्डी १७३
दूलामल बूलचन्द ३७४
दूसरा सप्तक ४०५
देवल, गो० ग० २१६

देवकीनंदन शर्मा ३४७
देवुडु सास्ति ८४, १००
देवकान्त बरुआ ८
देवचन्द्र तालुकदार १३, १५
देवेन्द्र इस्सर ६४
देवेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ३२२
देवेन्द्रनाथ सेन २०७
देशपांडे, पु० य० २५३
देशपांडे, पु० ल० २६३, २६४
देशपांडे, ना० ग० २६७
देशमुख (लोकहितवादी) गो० ह० २३३
दोड्डमनि, एम० ६८
दो मेर धान २७६
दौलत काजी २०८, २३१

ध

धनसुख लाल महेता ११३, ११८
धनीराम चात्रिक १६७
धर्म-तत्त्व २१२
धर्मेश्वरी देवी बरुआनी ६
धर्मवीर भारती ४०६
धूमकेतु १३०, १३१, १३३
धूर्जटी प्रसाद मुखोपाध्याय २२६
धीरो १२०
धीरुबेन पटेल १४२
धीरेन्द्रनाथ ३३६

न

नई कविता ३६३, ४०१
नकुलचन्द्र भुइयाँ १३, २२
नगेन्द्र नारायण चौधुरी १७
नजरुल इस्लाम १८४, २१६, २२०, २२१, २२२, ३६३
नजीर अकबराबादी ५०
नजीर अहमद ६५, ६६
नटवर सामन्तराय ४४
नटेश शास्त्री के० वी० १०४
नन्दूरि कृष्णमाचार्युलु १७५
नन्दूरि सुब्बाराव १६६, १७२
नदीम कासिमी ५६
नन्द किशोर बल १४
नन्नय्य १६७, १६८, १८५
नबीबख्श बलूच ३६८
नर्मद ११६, १२१
नर्मदाशंकर १६६
नम्मालवार १४६
नरसिंह चायगार, टी० १३७
नरसिंह महेता ११६, १२०
नरसिंहराव १२२
नरसिंहराव दिवेटिया ११६, १४३, १४४
नरसिंहराव, वी०वी०एम० १८४
नरसिंहाचार, एम०वी० ८३

नरसिंहाचारी, एम० ३२२
नरसिंहाचार, पु० ति० ८४, ८५, ८६, ९३, ९६, १००
नरसिंहाचार्य १०१, ३२२
नरहरि पारिख १३६
नरेश गुह २२५
नरेशचन्द्र सेनगुप्त २१६
नरेश मेहता ३८८
नरेश ४०७
नरेन्द्र मित्र २२६, २२७
नरेन्द्र शर्मा ३६३, ३६८
नलिन विलोचन शर्मा ४०७
नलिनीकांत गुप्त ४३५
नलिनीबाला देवी ८
नव्य-वैष्णव-आन्दोलन १
नवकांत बरुआ १०, १६
नवतेज सिंह २०१
नव-नाट्य २४४
नवनीत सेवक १४०
नवलराम ३६६
नवलकिशोर प्रेस ६५
नवीनचन्द्र २१२
'नवीन' बालकृष्ण शर्मा ३६१, ४०१
नसीम देहलवी ५१
नसीरुद्दीन हाशमी ७०
न्यायाधीश रामन्नार १९६
... के० ४२६
नागराजन, के०एस० ३००, ३३८, ३४४
नागराणी १६८
नागार्जुन ३८८, ४०८
नागेश विश्वनाथ ४१८
नाजिम १०६
'नाट्य-रूपक' १२८
नाडु बावा १७२
नायमाधव डी०एम० पितरे २३६
नादिम १०५, ११६, ११७
नादिर ५२
नानक १५५
नानकसिंह १०१
नानाभाई ११८
नानालाल १२२
नामदेव १३१
नायनि सुब्बाराव १७०
नायर, डॉ० के० एस० २८२
नायर वी० एम० ३११, ३४७
नारायण गंगोपाध्याय २२६, २२७
नारायण तीर्थ ११८
नारायणदास मलकानी १३१
नारायण पिल्लई, पी० के० ३१८, २७६
नारायण भम्भानी १३१
नारायण भट्ट ८६
नारायण मुरलीधर गुप्ते २३५

नारायण मेनन, सी० ४२८
नारायण, आर० के० ४२१, ४३५
नारायणराव १७८
नारायणराव, एच० ८८
नारायणराव दा० सी० १६६
नारायण रेड्डी, सी० १८१
नारायण शास्त्री ३२१
नारायण शास्त्री खिस्ते ३००
नारायण शास्त्री भट्ट २६५
नारायण श्याम ३६३
नाक्कन ३७४
नाल शरण ७६७
नालप्पाटु नारायण मेनन २७२, २८४
नालप्पाटु बालामणि अम्मा ५७४
नार्ल वेंकटेश्वर राव १७६
नासिख ५१
नासिर काज़िमी ५७
निबन्ध ४११
नित्यगोपाल विद्याविनोद ३३६
नित्यानन्द महाराज ८३
निधि लेबी ४
निरमल बरदलै ६
निर्मला उपनाम 'श्यामा' ३४०
निजाम पन्हुरी ६२, ६८, ७०, ७१
निरमलदास पत्रेहचन्द ३६७
'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी ३८६, ३६८
निरुपमा देवी २२८
निरंजन भगत १२७
नुन्द ऋषि १०७
नुसरती ५६
न्यू ड्रामा २४६
नृत्य नाटक १६८
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ६०
नेपाल ३७६
नेल्लूर १६६
नेहरू, पं० जवाहर लाल ८१, ३७०, ४२८, ४२६, ४३०, ४३२
नैषध २१४
नैनम २६८
नौरि नरसिंह शास्त्री १७८
नौशिराद १०३
नीरद बरन ४१४
नीरद, सी० चौधरी ४२८
नीलकण्ठ दास ३६, ३७, ४०, ४१
नीलकण्ठ निम्बर्ड, एच० ३१८
नीलिमा देवी ४२७
नील दर्पण २२, २२८
नीलमणि फुकन ५

प

पृथ्वीचन्द ४३५

पुष्कर मान १०५
पूर्णचन्द्र उड़िया भाषा कोश ४८
पूर्णेन्दु पत्री २२८
पूर्व-प्राकृत २०६
प्रेमचन्द २८, ६२, ६६, १४२, १७६, ३८२, ३८७, ३८८, ३६०
प्रेमानन्द १२०
प्रेमी १११, ११३
प्रेमेन्द्र मित्र २२३, २२४, २२५, २२६, २२७
पेड्डन्न कृष्णदेवराय १६७
पेडसे, श्री० ना० २६१
पेरिक्लिज १७०
पैलग्रेव ७६
पैशाची १६६
पोकरदास १७०
पोट्टेक्काट्ट २७७, २८०
पोतन्न १६७
पोतुकूचि सुब्रह्मण्य शास्त्री १८४
पोयेन जोसेफ ४२६, ४२८
पोन् कुन्न वर्की २७७
पोन्न ७३
पोप ३८४
पोपटी हीरानन्दाणी ३७२
पोल्हाट्टम राम शास्त्री ३०७
पोवाडे २३२
पोशिदार १४३
पौ ७६
फ
फकीरमोहन सेनापति २६, २७, २८, २६, ३०, ३४, ४२, ४३
फजल हक कुरेशी ६६
फटिकलाल दास ११६
फटेंडो ४२६
फड़के २५१, २५२, २५४, २५५, २५६
फतहचन्द ३७१
फतेह मोहम्मद सेवहाणी ३६८
फय्याज अली ६७
फरहतुल्ला बेग ६८
फसाना-ए-आजाद ६५, ६६
फायड ४१, ६६, ३६७
फायडवादी २२१
फ्लाबेयर ३८४
फासीसी ३८३, ३६१
फाजिल ३३३, ३६०
फादर हेरास १४५
फार्बस गुजराती सभा, बम्बई १४१
फानी ५५
फारसी १०५, २६१, ३४६, ३६०, ३६१, ३६७, ३६८, ३८१
फारसी-मिश्रित उर्दू ३८१
फार्स्टर ४११
फिक्र तौंसवी ६८

फिट्जजेराल्ड २८४
फिरदौसी ५६, १०८
फिराक ५६, ६०, ७०
फियर, मिस्टर एम० ए० एल० ४१७
फीरोजशाह मेहता ४१३, ४२८
फेल्टन फावराओ ४२६
फैज ५६, ५७, ६०
फैजी रहमान ४२७
फेथ ४२१
फोर्ट विलियम कालेज २०६
ब
बयोर्नसेन २४६
वृन्दावनदास १०८
ब्रज प्रदेश १८१
ब्रज भाषा १७०, १८०, १८१
ब्रजलाल मुखोपाध्याय १०५
ब्रजेन्द्र नाथ शील ४२८
ब्रह्ममुनि परिव्राजक १०८
ब्रह्म-समाज २११, २१२, ४१७
ब्रह्मानंद २१६
ब्राउन ५
ब्राउनिंग, श्रीमती ४११
ब्राउनिंग ११, २२३
ब्रान्सन ४
ब्राह्मो निधि १४६
ब्राड़ई १४५
ब्लेके १४८
बर्क ७५
बर्कले ३१०
बकार अजीम ७०
बंकिमचन्द्र चटर्जी १५, २७, ७६, १४२, १६६, १७७, २०६, २११, २१२, २१३, २१४, २१८, २४०, २८३, ३२१, ३२२, ३२८, ३३६
बकुल त्रिपाठी १४०
बगरू स्वामी ४२७
'बच्चन' ३६२,३६८,४०६
बटुकनाथ शर्मा ३३६
बटुभाई उमरवाडिया १३७
बट्रेंड रसेल ७८
बनफूल ७,२२५,२२६
बनारस १८१,३८३
बलभाई मेहता ३३६
बर्मा १४५
बरो २८७
बलदेव गाजरिया ३११
बलराम दास ११
बलवन्त गार्गी २०३
बलवन्तराय १८२
बलवन्तसिंह ६१
बशीर २३३
बशीर मोहियुद्दीन पुरस-मिश्री ३५३
बसवन्ना ८७,९२

बसवप्प शास्त्री ७८
बसुराय कवि १६८
बहिणाबाई चौधरी (श्रीमती) २५६
बगंदेशेर कृपक २१२
क्षण-भंग २१५
बंगला-बंगाली १, २४, ७६, २०६, ३८३, ४१४, ४१६
बंगाल का अकाल ६०
बंगाल बैलड्स २०६
बम्बई ४१५
बंशीधर महान्ती ४४
बाइबिल ८३, ३८३, ४११, ४२६
बाइरन २१३, ३८७
बाउल २०६, २२१
बाण, बाणभट्ट १८६, ३०१, ३१८, ३५१, ३६६
बाणभट्ट की आत्मकथा ३६६
बाणीकांत काकती २१
बाणी राय २१८
बापिराजू अडवि १७३, १७७, १७८
बाबा पदमनजी २३३
बारह माह १८८, १८६
बाल्मीकि ४३०
बालरुन जी बारी ३७३
बाल-कवि २३५
बालकृष्ण पिल्लई ए० २७५, २७८, २७६, २८४
बालकृष्ण राव ३६२
बालजाक ३८४
बालमणी अम्मा २७४
बालमुकुन्द दवे १२७
ब्रिटिश राज्य ४८, २०६
ब्रिटिश सरकार ४८
बिनन्दचन्द्र बरुआ ८
विपिन चन्द्र पाल २२६
विपिन बिहारी दास ४१
बिरंचिकुमार बरुआ १, २१
बिल्हण १५४, ३१०
बिलकोड़ी २०४
बिमलकर एस० आर० २११
बिहार-बिहारी ३७१, ३७६
बिहार संस्कृत अकादेमी ३११
बिहारीलाल चक्रवर्ती २११
'बी' (देखिये मा० मु० गुप्ते) १११
बीथि ६१
बीना बरुआ १८
बी० रामन ४१७
बीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य १०
बुक ट्रस्ट (नेशनल) ४१२
बुच्चि बाबू (एम० बी० गुब्बाराव) १७८, १७६, १८३
बुच्चि सुन्दरराम शास्त्री १०४
बुद्ध १५४, २१८, ३०८
बुद्धदेव बसु ६, २३१, २१८, ३११

२२६
बुरंजियाँ २
बुल्लेशाह १८७, १६२
बूदिहाळ मठ १०१
बूलचन्द कोडूमल ३६६
बेकन ३१०, ३६५
बेकस ३५८
बेगम रुकैया २२२, २२८
बेगम शम्स-उन-नाहर २२८
बेगम सूफिया कमाल २२८
बेचन शर्मा, पं० (देखिये 'उग्र') ३००
बेजवाडा १४८
बेटिगेरी ८४, ८५, ८६
बेंद्रेकर, दि० के० २६४
बेणुधर शर्मा २२
बेंदिल ३५८, ३६०
बेदी ६३
बेनजीर शाह ५२
बेबस
बेल्लमकोंडा रामदास
बेहराम जी
बेंडसे
बैरिस्टर सावरकर ४२५
बैलेण्टाइन, डॉ० ३०८
बोकिल, वी०वी० २५४
बौद्ध २८७, ३०५
बौद्धगान औ' दोहा २४
बौद्ध विचार-धारा १७६
बौद्ध सिद्धों के दोहे ३८०
बोरकर, बा०भ० २४६, २५८, २६२
बौस्वेल ७६
भ
भग्नमूर्ति २४७
भगवत शरण उपाध्याय ३६५
भगवती चरण वर्मा ३६३, ३६८
भगवद्गीता १४५, १४६, ३६१
भगवद्गीता दास ३०६
भगवानदास, डॉ० ३०४
भट्ट, एम० रामकृष्ण ३४७
भट्ट, वि० वी० ६१, ६६
एस०पी० ११६
०टी० ३११
, एम०एम० ४२८
१८२
१२१
सैंक्रिया २०
१३१
१३८

भवभूति विद्यारत्न २१६, ३३१
भवभूति २७८
भवानी प्रसाद मिश्र ४०५
भवानी भट्टाचार्य ४३५
भाई वीरसिंह १६३, १६४, १६५, १६६, २०१
भागवत मेला १६१
भागवत पुराण २, १२०, २३२
भानु, वि॰गो॰ २३६
भारतचन्द्र २०८
भारतन् कुमारप्पा ४२८
भारत भूषण अग्रवाल ४०८
भारती (सुब्रह्मण्य) १४६, १५२, १५३, १५५, १५६
भारती साराभाई ४२७, ४३६
भारतीय विद्या भवन १४३
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ३८२
भारोपीय भाषाएँ ३०२
भालण १२०
भावराजु कृष्णराव १८०
भावे, य० दि० २५६, २६०
भाषा-पोषिणी सभा २८२
भास २८४, ३१८
भास्करन, पी० २७५
भास्कर रामचन्द्र तांबे २३५
भास्करानन्द स्वामिन् ३३६
भिखारीचरण पटनायक ३८
भिमे ३४०
भीम १२०
भीमभट्ट, एन० ३४८
भूदेव मुखोपाध्याय २२६, ३११
भूलाभाई देसाई ४३१
भूषण, बी० एन० ४२६
भेरूमल मेहेरचन्द ३५४, ३६६, ३७०, ३७४
भोगीलाल सांडेसरा १४३
भोजपुरी ३८१
भोजो १२०
म
म्हसकर, के० एस० ३११
मंगतराम बासवाणी ३७३
मंगलोदयम् २८२
मंगेश पाडगाँवकर २५८
मंगेश विट्ठल राजाध्यक्ष २३१
मघाराम मलकाणी ३६३, ३६४, ३७१, ३७२
मंजरी एम० ईश्वरन ४२१
मंटो ६३, ६६
मंसारमाणी ३६८
मकबूल अहमदपुरी ४६
मकबूल करलावारी १०६
मख्दूम ६०
मग्दलन मारियम २७०
मजनूं ३५६

मजनूं गोरखपुरी ७०
मजाज़ ६०
मजरूह ५६
मजीद हुसैन रिज़वी, प्रो० ७०
मजूमदार, आर० सी० ४२८
मणिप्रवाल शैली १४७, २८८
मणिमेखलै १४६
मणिलाल द्विवेदी १३२
मणीन्द्र राय २०८
मणीसिंह २६१
मथुराप्रसाद दीक्षित, म० म० ३३०
मथुरानाथ रवि शास्त्री ३०२,३२४
मथुरानाथ शर्मा २६५, ३४७
मथुरानाथ शास्त्री ३१६, ३४०
मदन वात्स्यायन ४०६
मद्रास ४१०
मद्रास संस्कृत अकादेमी १७
मदुरा १६७
मध्य देश १३३
मध्य प्रदेश १३६
मध्येशिया २०३
मयूर वेन्न ७१, ८०, ८८, ८९, ९५, १०७
मधुसूदन २६, ३१, ३५
मधुसूदन काव्यतीर्थ ३१६
मधुसूदन शर्मा २६६, ३०३
मनमोहन ३४८, ४२०
मनमोहन घोष ४११
मनमोहन मिश्र ४१
मनवाल महामुनि १४७
मनसुख लाल झवेरी ११६
मनाज़िर एहसन गेलानी ७१
मनु चरित्र १६७
मनुबेन गांधी १३६
मनुभाई पचोली ११०
मनोज बसु २२७
मनोमनी १४
मनोरमा ८१
मनोहर श्याम जोशी ४०७
मयूरम विश्वनाथ शास्त्री ३५७
मयूर संदेशम् २६६
महेश्वर बा० सी० २४८,२६२, २६४
मराठी ७१, २३१, ४१४
मराठे वि० म० २६१
मल्लवरपु विश्वेश्वर राव १७५
मल्लिनाथ सूरि ११८
मलयालम १४७, २६६, २६५
मलयालम भाषा और साहित्य का इतिहास (१ खंड) २८१
मलयालम मनोरमा २८२
मलयालम राज्य २८३
मलयाला १७५
मशेला बोस ११०

मसरूर ३६०
मसनवी १०७, ३५६
मसुली पट्टम १६६
महजूर १०६, ११०, १११, ११४, ११७
महमूद गजनी २६८
महमूदा खातून सिद्दीकी २२८
महमूद सामी १०७, १०८
महर्षि दयानन्द ८१
महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर २१०, २२६
महरूम ५७
महात्माजी (देखिये गांधीजी) ४१२
महादेव भाईनी डायरी १३६
महादेव शास्त्री जोशी २६१
महादेवी वर्मा ३८६
महानय प्रकाश १०६
महाभारत १, २, २४, २ , ३३, १६७, २०८, २२८, २६५, ३६४, ४१८, ४३०, ४३३
महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ३१६
महामहोपाध्याय लक्ष्मण सूरि ३६५
महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री २०६
महायान बौद्ध धर्म २०६
महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा १४३
महालिंगम शास्त्री, वाई० ३१८, ३२३, ३२६, ३३४, ३३६, ३३८
महावन ३३०
महावीरप्रसाद द्विवेदी ३२८, ३८२, ३८९
मही बरा १७
महेन्द्रनाथ ६३
महेश्वर निग्रोग २२
माइकेल मधुसूदन दत्त ६, १२, २११, ४१६
मावसंवाद ६८, १६८, २५६, ३६५
मार्क्सीय आलोचना ३७८
मार्कण्डेय ४०७
माखनलाल चतुर्वेदी ३६१, ३६२, ४०१
मार्गी तेलुगु साहित्य १६७
माटीर माणिय ४०
माटे, श्री० म० २५५, २६६
माडखूळकर ग० दि० २६६
माडखोलकर, ग० त्र्यं २५२
माणिक्कवाचगर १४६
माणिक बंद्योपाध्याय २२६, २२७
मातृभूमि २८३
मादाम ब्लैवेट्सकी २१२
माधव कंदली १
'माधव जूलियन'-मा० वि० पटवर्धन २४५

मानकुमारी देवी २२८
मानवनावाद १०३
मान्वि ८७
मामा वरेरकर २४६, २५१, २६३
मायावर मानसिंह २३
मालती १४५
मालती चन्दूर १७७
मालिकराम ७०
मावलकर जी०वी० १३४
मास्टर जी १०६, ११०, ११७
मावेलिक्करा कोच्चोपन तरकन् २६८
मास्टर तारा सिंह २०४
मास्ति (वेंकटेश आयंगर) ८४, ८५, ८६, ६२, ६५, ६६, १००, १७६
माहिर ५६
मालवाड ८७
मिर्जा ३६६
मिर्ज़ा कलीच बेग ३६४, ३६५, ३६६, ३६८, ३७४
मिर्ज़ा ग़रीब ६६
मिर्ज़ा गालिब ५०, ५२, ५३, ५५, १०१
मित्र २४०
मित्रदेव महन्त १२
मित्र-मंडली ८४
मिराशी, म० म० वी० वी० ३१८
मिरासदार, डी० एम० २६०
मिरी जियारी १४
मिल ४७, ७६, ७८
मिल्टन ६, ७५, ३८४
मिशनरी ७६, ८३, १११
मिस्टर जार्ज सेम्पसन ४११
मिसिर जेकिशन ३६६
मीनाक्षीसुन्दरम् पिल्लै, ति० पी० १४५
मीर ५०, ५२, १०६
मीर हसन ५०
मीराबाई ११६, २६६
मीराजी ६०
मुक्त छन्द १२६, १५४, १७५, १६४, १६७, ३६२
मुक्ताबाई दीक्षित २६३
मुक्तेश्वर २३२
मुकुन्दराज २३२
मुकुन्दराम चक्रवर्ती २०७
मुक्षम्मस ३५६
मुगल साम्राज्य ४६
मुगलि ८४, ८५, ८७, १०१
मुतुकुल पार्वति अम्मा २७४
मुत्तुस्वामी दीक्षितार ३००
मुदवीडु ८३
मुद्दु विट्ठलाचार्य ३२७

मुद्रण ८३, ९२
मुनि माणिक्यम् नरसिंहराव १७६, १८३
मुफीदन नाजनीन ४६
मुमताज मुफ्ती ६३
मुमताज शीरी ६३
मुमताज हुसैन ७०
मुम्मडि कृष्णराव ७५
मुराद ३५८
मुल्कराज आनंद ४२५
मुसद्दस ५०, ३५६
मुस्लिम अदबी सोसाइटी ३६८
मुसवी ३६८
मुसहफी ५२, ५४
मुंशी, क०मा० १३०, १३१,१३६, १३८, ३१३
मुहम्मद, के०टी० २७७, ३६२
मुहम्मद गोरी ३३
मुहम्मद शहीदुल्लाह, डॉ० २२६
मुस्लिम साहित्य समाज २२२
मूलवागल ७८
मूलिय तिम्मण्णय ८३
मृणालिनी साराभाई ४८७
मृत्युंजय विद्यालंकार २०६
मूर्कोत्तु कुञ्ञप्पा गुप्तन नायर २७६
मूर्तिराव, ए०एन० ८६, ६६
मूलचन्द लाल्ला ३६२
मेक्डोनाल ३०३
मैक्समूलर ७८, ३४६
मैकाले ७६, ४२३
मेघनाद वध १२, ३३१
मेघराज कलवाणी ३६१-२
मेघावत ३२२
मेघदूत २८१
मेडेपल्ली वेंकटरमणाचार्य ३३७
मेधाव्रती नारायण शास्त्री ३२६
मेनेजेस ४२६
मेरकंडार १४७
मेरीजोन तोट्टी २२४
मेरे सैंयां जियो ३६७
मेलाराम ३७१
मेहबूबल आलम २२५, २२६
मेहदी अफादी ७१
मेजिनी ४७
मैत्रेयी देवी २२८
मैथिली २०६, ३७६
मैथिलीशरण गुप्त ३८५, ३९१
मैन्युएल सी० रोड्रीउग ४२६
मैमनसिंह बैलेड्स २०६
मरेमल सहिमल ३६४
मैसूर ७१
मोग्रामरिया ३
मोहं-जो-दड़ो ३२८, ३६६
मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री १८२

मोराशी दि० बा० २६०
मोचर्ल रामकृष्ण ३४४
मोडक, जी० के० ३४१
मोन्तेन ४२७
मोती प्रकाश ३६३
मोतीलाल नेहरू ४२३
मोतीन्द्रपाल बसु २२७
मोमिन ५४, ५५
मोमिनेर जबानबन्दी २२६
मोपासा ६२, १४२, २७४, २७६, २८४, ३८४
मोरियो ३५६
मोरोपंत २३२, ३३६
मोलियेर ३८४
मोहनसिंह १६८
मोहम्मद मियाँ ६६
मोहम्मद मुजीब प्रो० ६६
मोहम्मद शेरानी ७०
मोहम्मद सिद्दीक मेमण ३७०
मोहम्मद हुसैन ६६
मोहिउद्दीन १०५
मोहिब्बे हिन्द ४६
मोहितलाल मजूमदार २१७, २२६
मौलवी अब्दुल हक ७१
मौलाना अब्दुल मजीद दरियाबादी ६८, ७१
मौलाना अशरफ अली ७१
मौलाना आजाद ४८, ७१, ७२
मौलाना गिरीशचन्द्र सेन २२६
मौलाना मोहम्मद अली ४८
मौलाना मौदूदी ७१
मौलाना हुसैन अहमद ७१

य

यतीन्द्रनाथ दुआरा ७, ८
यथार्थवाद ३८६
यमुना-पर्यटन २३३
यर्री प्रंगड १६७
यलदरम ६२
यशपाल ३८८, ३९६
यशवन्त पड्या ११७
यशवंत,(य० दि० पेंडरकर) २४५
यश गान ८०
यज्ञ १०३
यज्ञस्वामी शास्त्री, म० म० ३००
'यायावर' २२६
याम-ओ-आगाज ५३
याज्ञिक, म० म० ३३०
यात्रा ३८
युग-वीणा ३६
युग ६६
'युद्ध और शान्ति' १४२
यूनान २६१, ३५४
यूरोपीय प्रभाव २६२

यूसुफ-जुलेखा १०७
यूसुफशाह चक १०८
येंकी १७२
योगध्यान मिश्र ३१०
योग विद्या २०६
योगिराज अरविंद ८१
योगीन्द्रनाथ बसु २२८

र

रघुनाथ २१२
रघुनाथ चौधुरी ७
रघुवीर सहाय ४०६
रघुवंश २६८
रजनीकांत बरदलै १४
रज्जब अली बेग सुरूर ७१
रजा ७६
रजाउल करीम, डॉ० २२६
रणजीत देसाई २६०
[illegible] २०६
रत्नकांत बरकाकती ८
रत्ननाथ सरशार ६७, ६६
[illegible] ३१२
[illegible] ४३
[illegible] ५८, ३६
[illegible] ३१
[illegible] ८१, १०४
[illegible] ३३०, ३३८
[illegible] १९
रमा दास १९
रमेशचंद्र ४१७, ४१८
रमेशचंद्र दत्त १७३, २११
रवि-किरण-मंडल १७१, २४५, २४६
रविन ४५
रविशंकर महाराज १३६
रवीन्द्रकुमार शर्मा १११
रवीन्द्रनाथ लिटरेरी एण्ड ड्रामेटिक क्लब ३५८
रशीद अख्तर ६८
रशीद अहमद सिद्दीकी ६८, ७०
[illegible] ४३
रसूल मीर १०६
[illegible] १२७
रहमान १५८
[illegible] ७४
[illegible] ७६
[illegible] १३३
[illegible] ३४०, ३३०
[illegible] ३०६
[illegible] ४१
[illegible] १३१ ३४०
[illegible] १४०
[illegible] ३०६, ३२३, ४२७, ४३०
[illegible] ३४०

राजमहल १४५
राजमहेन्द्र १६८
राजम्भाल, ए० ३२२
राजमोहन्स वाइफ़ २११
राजर ३०३
राजरत्नम् ८४, ८६, ६५, ६८
राजराज वर्मा, ए०आर० १६८, २६७, २७६, २८२, २८४
राजराज वर्मा ३०२, ३३१
राजवल्लभ शास्त्री २६६
राजस्थान की गाथाएँ २१२
राजा राममोहन राय ८१, २०६, २१०, २२२, ३८३, ४१३, ४१५
राजा राव ४२५
राजेन्द्रशाह १२७
राजेन्द्र सिंह बेदी २०५
राजेश्वरी, प्रो० १५८
रामू शास्त्री (त्यागराज) म०म० ३००
राणा प्रतापसिंह २६८, ३३०
राधाकृष्ण १२०, २०७
राधाकृष्णन् प्रो०एस० ३४४, ४२८, ४२६, ४३०, ४३३
राधानाथ ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ४३
राधामंगलम् नारायण शास्त्री २६५
राधामोहन २६
राधामोहन महनायक ४२
राधारानी देवी २२८
राधिकामोहन गोस्वामी १६
रानडे, म०गो० २३८, २४२, ४२८
रानडे, रमाबाई (श्रीमती) २४२
रानी संयोगिता ४१६
राबर्ट ब्राउनिंग ८
राम ३४५
रामकुमार वर्मा ४०८
रामकृष्ण परमहंस ८१, १००, २२६, ३००, ३०८, ४१६
रामकृष्ण पिल्लई ४१८
रामकृष्ण भट्ट, एस० ३०८, ३१६, ३१८
रामकृष्ण (तात्या) शास्त्री ३००
रामकोटीश्वर राव, के० १६६
रामकौर १६२
राम गणेश गडकरी २३४, २३५, २३७
रामचन्द्र, प्रो० ४६
रामचन्द्राचार्य ३२३
रामण मम्बूतिरी, ई०पी० ३३६
रामदास १८६, २३१, २६६
राम द्विवेदी ३२०
रामर्मनु १०
रामन पिल्लई, सी०पी० २६८,

२७६, २७७, २७६
रामनाथ नन्दा २६६
रामनाथ शास्त्री, एस०के० ३३४
रामनारायण पाठक १३४
राम प्रसाद २०८
राम पजवाणी ३६१, ३६५, ३७१, ३७२
रामबाबू सक्सेना, डॉ० ७०
राममूर्ति, आर० ३२२
रामराज भूषण १६७
राम राय ३४६
राम वर्मा, एम० बी० ४३६
रामवर्मा, हि० हा० ३०१
रामशंकर राय ३८, ३६
रामस्वरूप ३०४
रामस्वामी ३४१
रामस्वामी राजा २६६
रामस्वामी शास्त्री ३१०, ३१६
रामसुब्बा शास्त्री ३०६
रामानंद १४७
रामानंद सागर ६७
रामाराव, डॉ० एम० १८४
रामाराव, बी० ८३
रामायण १, २, २४, २६, १००, १४६, २०८, २२८, २३२, २६५, ३६५, ४१८, ४३०
रामावतार शर्मा २६७
रामाश्वमेध ८३
रामुल रेड्डी, पी० सी० १८१
रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी २२६
राय एम० एन० ४२८
रायप्रोलु सुब्बाराव १६६, १७१
राय, पी० सी० ४२८
रौलट एक्ट ४७
रालपल्ली अनन्तकृष्ण शर्मा ३०१
राव ६०
राशिद ६०
राशिदुल खैरी ६६
राष्ट्रभाषा २६१
राष्ट्रीय आन्दोलन २७५
राही १११, ११६, ११७, ३६३
राहुल सांकृत्यायन ३६६
रियाज ५३
रुद्र ४०८
रुद्रमदेवी १७८
रुद्रराम बरदले ११
रुबाइयाँ १६५, १५८
रूमी ३२७
रुस्तम मसानी, सर ३२८
रुस्तमी ५६
रुसवा ६६
रे०, एस० आर० २६५
रेगे, पु० शि० २४८

रेडियो, (आल इंडिया देखिये) ४०८
'रेणु' फणीश्वर नाथ ४०७
रेणुदेवी ३२१
रेड्डी, डॉ० सी० आर० १७३, १८४, ४१२
रेवरेंड नारायण वामन टिळक २१४, २५६
रैवाचन्द धघाणी ७०३
रोजर दी कावरली २०
रोम २६१
रोमांटिक २३३, ३८६, ४०१, ४०२
रोमांटिकवाद २६५
रोमेन ४३२
रोशन १०५, १११, ११३, ११४, ११६, ११७
रोहन ३५८
रौनक बनारसी ६६
रंगण्ण ८७, ९९
रंगलाल २०६
रंगाचार्य ३१६
रंगाचारी, आर० ३१६
रांगयेकर, मा० गो० २५०
रांगेय राघव २२६
ल
लक्षिन बरचुकन ११
लल्लू धद १०६, १०७
ललिताम्बिका अन्तर्जनं २७४, २७७
लक्ष्मणराव, कै०वी० १८०
लक्ष्मीहरा दास ६
लक्ष्मी अम्माल देवी ३४४
लक्ष्मीकान्तम्, पी० १८४
लक्ष्मीकान्त फुकन १७
लक्ष्मीकांत बेजबरुआ ४, ५, ११, १६, १७, २०, २२
लक्ष्मीधर शर्मा १६
लक्ष्मी नरसिंहम् १६८, १६९
लक्ष्मीनाथ शर्मा १८
लक्ष्मीनारायण मिश्र ४०८
लक्ष्मीनाथ शास्त्री २६७
लक्ष्मी नारायण सत्यभोग ३४४
लक्ष्मीपुरम् श्रीनिवासाचार्य, म० म० २०३
लक्ष्मीश ७४
लक्ष्मेश्वर, बि० वै० ९२
लाक ३१०
लाजपत राय ४२३
लार्ड कर्जन २१५, २२७
लालुदेव महेता १४२
ल० म० महमद ६२
लानचन्द अमरडिनोमल ३६३, ३६४, ३६६, ३७०, ३३१, ३३४

सालू ३५६
सार्वाणियी २३२
सीला १०६
सीला तिलकम् २६५, २८१
सीला मजूमदार २२८
सीलाराम फेरवाणी ३६४
सीलाराम सिंह ३६४
सीला शुक १६८
सुत्फ़र रहमान २२२
सूरफुल्लाह बदवी ३७०
सेखराज मजीज ३६०
सेडेन ४१०
सेमुई १४४
लेविस राइम ३०१
लेसिंग ३३१
सैटिन ४२१
सैव ७६, ३३१
सैला मजनूं १०७

व

व्यंकटेश माडमूल्कर २६०
व्यंकटेश वकील २६३
वृहत् पिंगल १४३
वृन्दावन लाल वर्मा ३६०
वंशगोपाल शास्त्री ३११
वचन ७४
वर्जिल १४२
६, ७५, ७६, २१३, ३२३

३८७
वडक्कुंकूर राजराज वर्मा २७४, २८१
वड्डराधने ७३
वन्देमातरम् ४१४, ४१६
वर्नाक्यूलर ट्रांसलेशन सोसायटी ४६
वयलार रामवर्मा २७५
वरदराज शर्मा, पी०बी० ३१६
वरदराज शर्मा, सी० ३१२
वरदाचारियर, एम०टी०जी० ३०२ ३३८, ३४३
वल्लत्तोल २६६, २७०, २७३, २७५, २८३, २८४, ३३६
वल्लभ भाई पटेल ६१, ११६
वलीउल्लाह मद्दू १०५
वसवराजु मप्पाराव १६६, १७२
वसन्त बापट २५६
वशिष्ठ मुनि ३०८
वहाब्ब परे १०८, १०६
वहाबी मान्दोलन २२१, २३०
वहोउद्दीन सलीम ५२
व्यास ४३०
वाजिद मली शाह ६६, ७१
वाटवे, एन० एस० ३११
वादुवुर दोराईस्वामी मायंगार ३२३
वाधुमल गंगाराम ३६७

वामन २३२
वामन मल्हार जोशी २४०
वारियर, पी० एस० ३११
वारिस शाह १८९, १९२
वाल्ट विटमैन ४१, २२०
वाल्तेयर ४७
वासवाणी ३६२, ३६३
वासिफ ३६०
वासुकी १३३
वासुदेव शास्त्री खरे २३८
वासुमल जैरामदास ३६६
विक्टर ह्यूगो १४२
विक्टोरिया २६६
विघ्नेश्वर ४२८
विजय तेंडुलकर २६३
विजयदेव नारायण साही ४०६
विजयनगर ७३, ७४, १६६
विजय नगर बंग २६६
विज्जिका-विकटनितंबा १३६
विंदा करंदीकर २५८
विट्ठल विश्वम् १८१
विद्यापति २०७
विद्यानाथ १६८
विद्याशास्त्री ३०१
विद्युत प्रभा देवी ४४
विद्रोही २२०
विधुशेखर, भट्टाचार्य ३२२, ३४१
विनय घोष २२६
विनायक ६०, ६१, ६३, २३४, २६६
विनोबा भावे ३४६
विनोदिनी नीलकण्ठ १३३, १४२
विपिनपाल ४२३
विपुल आनन्द ३४०
विभावरी शिरूरकर २५१
विभूतिभूषण बनर्जी २२५
विभूतिभूषण मुखोपाध्याय २२६
विलियम कैरे २०६
विलियम जोन्स ४१०
विवेकानन्द १००, ३००, ३०८, ३४४, ४१६
विष्णु १०४
विश्राम बेडेकर २५३
विश्वनाथ १७८, १७९
विश्वनाथ भट्ट १४२
विश्वनाथ सत्यनारायण १७३, १७६
विश्वविद्यालय ४१५
विश्वेश्वर दयाल ३२०
विश्वेश्वरनाथ रेऊ, म० प० ३०४, ३०५
विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि ३१०
विहार ३६

विष्णु प्रसाद त्रिवेदी १४३
विष्णु दे २२४
वीरभद्र राव, सी० १८०
वीरशैव ९९
वीरसिंह १६३, १६४, १६६, १६७, २०१
वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य १६
वीरेशलिंगम १६८, १७०, १७३
वुनव लक्ष्मीनारायण १७८
वेंकट पर्वतीश्वर कवलु १७३
वेंकट नारायण राव, बी० ३२५
वेंकटरमणी, के० एस० ३६२, ४२४
वेंकटरत्नम् पतलू, के० ३०७
वेंकटराघव शास्त्री ३०६
वेंकटराम शास्त्री ३१८
वेंकटराव शास्त्री, आर०एस० ३०२
वेंकटराम शास्त्री, एस० ३१८
वेंकटराम शास्त्री, वी० ३२८
वेंकटरमैया, सी० ३११, ३४२
वेंकट शेट्टी ९२
वेंकटशास्त्री १६९
वेंकटचार्य ७६
वेंकटरमणाचार्य, एम० ३३१
वेंकटरमैया, सी० ३२५, ३२६, ३३२
वेंकटरमय्य, सी० के० ८५, ९५
वेंकटेश्वर राव, वी० १८४
वेंकण्णा ६८
वेद ७८, १८७, ४१२
वेदम् वेंकटराय शास्त्री १६६, १७९
वेटुल सत्यनारायण शास्त्री १३१
वेदान्त देशिक १४७, ३३७
वेदान्त-वेदान्तवादी १४७, ३६२, ३६३
वेम्मणि सम्पूतिरिप्पाडु २६६, २६७
वेणीकुलम् गोपाल कुरुप्प २७५
वेणीभाई पुरोहित १२७, १३४
वेणु चितळे ४३५
वेणुधर तर्कतीर्थ ३१६
वेल्लूरि चन्द्रशेखरम् १७१
वेलोपल्ली श्रीधर मेनन २७५
वैद्य, चि० वि० २१६
वैष्णव ९९, १०८
वैष्णव कवि २११
वैष्णव आळवार (देखिए आळवार) १४६
वैष्णव पाणि २८
वैज्ञानिक मानववाद ४०१
श
श्वेतारण्यम् नारायण यज्दान ३१८
शंकर १४६, ३०७
शंकर कुरुप्प २७५, २८३, २८४
शंकरदेव १, २

शंकर नारायण शास्त्री, के० आर० ३१९
शंकर पांडुरंग पंडित ३०१
शंकर राम ४२५
शंकर सुब्रह्मण्य शास्त्री ३३७, ३३८, ३४१
शंकराचार्य २९९
शबिन १५०
शकुन्तला ३२६
'शनक' १७०
शफीकुर्रहमान ६३
शमसुद्दीन बुलबुल ३६०
शमशेर बहादुर सिंह ४०५
शर्ट ३६५, ३७४
शर्मा, डी० एम० ३४५
शर्मा, डा० बी० एम० १८३
शरच्चन्द्र गोस्वामी १७
शरच्चन्द्र चटर्जी १४२, १७९, २१८, २१६, २२५, २४०, २५१, ३३६
शरच्चन्द्र मुखोपाध्याय २५८
शरीफ साहब ८३, ९२
शशांक मोहन सेन २२६
शशिभूषण राय ४३
शहाबुद्दीन अब्दुर रहमान ७१
शाँ ७६, ३४२
शांत कवि ८३
शान्तादेवी २२८
शान्ता रामा राव ४३६
शान्ति-निकेतन ३७, ४२
शाकुन्तल ७८, २६०, २८४
शाद अजीमाबादी ५३
शामराव मोक २५५
शामल १२०
शामा शास्त्री, डा० ३०२, ३१०, ३३१
शारदा २३६
शास्त्री, के० एल० वी० ३०१, ३३४, ३४७
शास्त्री, के० वी० एम० ३१८
शास्त्री, पी० पी० एन० ३०३
शास्त्री, वाई० एम० ३४२
शाह ३५५, ३५८, ३६२, ३६४, ३६६, ३६९, ३७०, ३७४
शाह अब्दुल करीम ३५९, ३६८
शाह अब्दुल लतीफ ३५५
शाहनामा १०८
शाह मोईनुद्दीन ७१
शाहवाणी ३६८
शाह, सी० आर० ३३१
शाहिद अहमद देहलवी ९९
शाहिद सुहरावर्दी ४२६
शितिकंठ १०६
शिबली ७१

३५३, ३५४, ३७५, ३८९, ४२१
संस्कृत नाटक ३५१
संस्कृति १४०
संत ८५
सईद मुहम्मद ७१
सखाराम शास्त्री २६६, ३१६, ३३६
सचल ३५७, ३५८, ३६२, ३७०
सच्चिदानन्द वात्स्यायन (देखिये 'अज्ञेय') ३७५, ४०३
सच्चिदानंद सरस्वती ३०७
सची राउत राय ४१
सजनीकांत दास २२६
सज्जाद जहीर ७०, ७२
सफिया अख़्तर ७२
'सबुज' ३८, ३९, ४०
समरेश बसु २२७
'समाज' ३६
'सत्य के प्रयोग' २८४
सत्यनारायण २६६
सत्यनारायण, डा० सी० १८४
२१
३६, ३७, ३९
३२०, ३३३, ३४५
१९७
२२
सदानन्द रेगे
सदाशिवराव, पी०
सर्वज्ञ
सर्वोनीय
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
सरदार जाफरी
सदानन्द हासोमल
सरमस्त
सरवरी, प्रो०
सर वाल्टर स्काट
सरशार
सरस्वती अम्मा
'सरस्वतीचन्द्र'
सर सैयद अहमदखां ५०, २
सरूर जहानाबादी
सरोजराय चौधुरी २२५, २
सरोजनी नायडू ४
ससि पुन्नू १
सहस्रबुद्धे, सी०आर० ३२६, ३
सांगी ३६०, ३
साकिब ५२,
साकोरीकर, डी० टी० ३
साखी गोपाल
'सागर' निजामी
स्यादवादी ३
साने गुरुजी १४२, २५४, २६३

३६३, ३६६
साबित मली साह १५६
सामी ३५७, ३५८, ३६२, ३७०
सारंग बारोट १३०
सारळादास ३१, ४०
सालिक ५७
सालिहा मबिद हुसैन ६३, ६७, ६८
सावरकर, वि० दा० २५६
सावित्री ४१७, ४३३
साहित्य प्रकादेमी ३४८, ४३२
साहित्य-समिति १७१, १७२
साहिर ५७
सिख १८६, १८७, २०४
सिंगेरियांगोर ३०१
सिद्धवनहल्लि कृष्ण शर्मा ६२
सिद्धान्त, एन० के० ४२८
सिन्धु नदी ३५५
सिंधी ३५३
सिंधी मुस्लिम अदबी सोसायटी ३६१
सिंधी साहित्य सोसायटी ३६१, ३७०
सियाराम शरण गुप्त ३६४, ३६८
सिराइकी बोली ३५८
सिरिल मोडक ४२७
सिंह सभा १६३
सिंहली प्रभाव १४६
सिंहरसी १८६
सी० आर० दास ४२३, ४२८
सी० एन० राय शास्त्री २६५
सीता ४१७
सीतादेवी २२८, ३३२
सीतादेवी, बी० १८३
सीतापति, डा० जी०वी० ३३८
सीतारमय्य, वी० ८४, ८७, ६०, ६३, ६६
सीथिया ३५४
सीदा ५०
सी०पी० ब्राउन १७३
सीमाब ५६
सुकान्त भट्टाचार्य २२८
सुकुमार राय २२८
सुकुमार सेन, डॉ० २२६
सुखमनी १६०
सुखलता राय २२८
सुमन ग्राहूजा ३७२
सुचित्रा रायचौधुरी ६
सुदर्शन पति ३३०
सुन्दरम् पिल्लै १६१
सुन्दरम् १२६, १२७, १३३
सुन्दरजी बेटाई १२६, १२७
सुन्दरी उत्तमचन्दाणी ३७२
सुंदरेश शर्मा ३३०, ३३६

हेमचन्द्र गोस्वामी ४,७१
हेमचन्द्र बरुआ १०,११ ७१
हेवर्ड, ए० आर० ३३२
हेमेन बरगोहाई ७७
हैराक्लाइटस ४८७
होमचन्द्र सुरबालाली ३६८
हैदरबख्श, जतोई ३६० ,३६२
हैमलेट ३२३
हौदर्न ७६
होन्नापुरमठ ६२, १०१
होमर १४२
होमरूल ४७, ८५, ६८
होमवती ३१४
होमी मोदी, सर ४२८
होयसल ७३
हौंड ३१६

क्ष

क्षमा राव (श्रीमती) २६६, ३०१, ३२०, ३३०, ३३३, ३४५
क्षितिमोहन सेन, प्रो० २२६
क्षेमेन्द्र १६८
क्षेत्रज्ञ ३३८

त्र

त्रिलोचन शास्त्री ४०७
त्रिविक्रम ७६
त्रिसूर ११३
त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी १७

ज्ञ

ज्ञानदास २०७
ज्ञानेश्वर २३१, २६८